

माणिकचन्द्र-दिगम्बर-जैन ग्रन्थमालायाः सप्तदशो ग्रन्थः ।

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य-विरचितः

षट्पञ्चमत्तादिसंग्रहः ।

पं० पद्मलाल सोनील्लनेन सम्पादितः संशोधितश्च

प्रकाशिका—

श्रीमाणिकचन्द्र दिगम्बर-जैन-ग्रन्थमाला समितिः ।

माघ, बीरनिर्वाणानन्द १४४७ ।

विक्रमांक १९७७ ।

प्रथमावृत्ति ।

मूल्यं ३)

Printed by M N Kulkarni at his Karnatak Printing
Press, No 434 Thakurdwar, Bombay and

Published by Nathuram Premi, Secretary, Manikchand Jain
Granth Mala Hirabag, Bombay, No 4

प्रकरणसूची

दर्शनप्राभृतं	१-२९
चरित्रप्राभृतं	३०-५५
सूत्रप्राभृतं	५६-७०
बोधप्राभृतं	७१-१२७
भावप्राभृतं	१२८-३०३
शोक्षप्राभृतं	३०४-३७९
लिंगप्राभृतं	३८०-३८४
शीलप्राभृतं	३८५-३९२
खणसारः	३९३-४२४
द्वादशानुपेक्षा...	४२५-४२५

भूमिका ।

इस संग्रहमें भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यके पद्मप्राभृत (दर्शन, चारित्र, सूत्र, बोध, भाव और मोक्ष प्राभृत), लिंगप्राभृत, शीलप्राभृत, रयणसार, और चारह अणुधेयखा ये पाँच ग्रन्थ प्रकाशित किये जाते हैं । समयसार, प्रवचनसार, पंचाशिकाय और नियमसार ये चार ग्रन्थ पहले कई स्थानोंसे प्रकाशित हो चुके हैं । अगरी तक कुन्दकुन्द स्वामीके बनाये हुए ये नौ ही ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं ।

इनमेंसे पद्मप्राभृत सटीक प्रकाशित किया जाता है और शेष ४ संस्कृत-च्छायासहित । इन पिछले ग्रन्थोंकी कोई टीका अभीतक देखने सुननेमें नहीं आई ।

भगवत्कुन्दकुन्द ।

दिगम्बर-जैन-सम्प्रदायमें आचार्य कुन्दकुन्द सबसे प्रसिद्ध और सबसे अधिक पूज्य आचार्य गिने जाते हैं । पिछले अधिकांश आचार्योंने आपको उन्हींके अन्वय या आम्नायका बतलाया है । उनकी रचना जैनसाहित्य भरमें अपनी तुलना नहीं रखती ।

अबसे लगभग ६ वर्ष पहले इस उनके सम्बन्धमें एक विसृत लेख प्रकाशित कर चुके हैं ।* वे इतिहासके 'कोण्डकुण्ड' नामक स्थानके रहनेवाले थे और इस कारण 'कोण्डकुण्ड' नामसे प्रसिद्ध थे । 'कोण्डकुण्ड' का ही श्रुतिमधुर संस्कृत-रूप 'कुन्दकुन्द' हो गया है । 'एलाचार्य' के नामसे भी ये प्रसिद्ध थे । तामिल भाषाके सुप्रसिद्ध महाकाव्य 'कुरल' के विषयमें महाराजा कालेज विजयानगरमके इतिहासाध्यापक श्रीयुत एम० ए० रामस्वामी आयंगरने लिखा है कि " जैनियोंके मतसे उक्त ग्रन्थ 'एलाचार्य' नामक जैनाचार्यकी रचना है और तामिल काव्य 'नीलकेशी' के टीकाकार समयदिवाकर नामक जैनमुनि कुरलको

अपना पूज्य ग्रन्थ बतलाते हैं ” । * इससे आश्चर्य नहीं कि कुरलके रचयिता भगवत्कुन्दकुन्द ही हों । कहते हैं एलाचार्यने इसे रचकर अरने एक शिष्यको इम लिए दे दिया था कि वह मदुराके कविसंघमें जाकर पेश करे ।

नन्दिसंघकी गुर्वावलीमें लिखा है कि भगवत्कुन्दकुन्दको वि० संवत् ४९ में आचार्यपद मिला और १०१ में उनका स्वर्गवास हुआ । तामिलदेशके विद्वानोंने कुरलकाव्यका रचना-काल भी ईसाकी पहली शताब्दि निश्चित किया है । यदि सचमुच ही वह इन्हीं एलाचार्यका बनाया हुआ है, तो पट्टावलीके समयके साथ उसका रचनाकाल मिल जाता है ।

हमने अपने पूर्वोद्धित लेखमें भगवत्कुन्दकुन्दका समय विक्रमकी तीसरी शताब्दि निश्चित किया था ।

उसके बाद जैनसिद्धान्त-प्रकाशिनी संस्थाद्वारा प्रकाशित ‘समयप्रावृत्त’ की भूमिकामें दक्षिणके सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो० के० बी० पाठकका यह मत प्रकाशित हुआ है कि कुन्दकुन्दाचार्य वि० संवत् ५८५ के लगभग हुए हैं । अपने मतकी पुष्टिमें उन्होंने लिखा है कि जिस समय राष्ट्रूट-वंशीय राजा तृतीय गोविन्द राज्य करता था उस समय, शक संवत् ७२४ का लिखा हुआ एक ताम्रपत्र मिला है । उसमें निम्नलिखित पद्य दिये हुए हैं —

कोण्डकोन्दान्वयोदारो गणोऽभूद्भुवनस्तुत ।

तदैतद्विपवविरत्यातं शास्त्रमलीप्राममावसन् ॥

भासीद(१)तोरणाचार्यस्तपःफलपरिग्रहः ।

तत्रोपशमसंग्रूतभावनापास्तकर्मप ॥

पण्डितः पुष्पनन्दीति बभूव भुवि विधुतः ।

अन्तेवासी मुनेस्तस्य सकलचन्द्रमा इष ॥

प्रतिदिवसमवदुद्धिर्निरस्तदोषो श्वपेतहृदयमलः ।

परिभूतचन्द्रबिम्बस्तन्निष्पयोऽभूत्पञ्चमाचन्द्रः ॥

उक्त तृतीय गोविन्द महाराजके ही समयका शक संवत् ७१९ का एक और ताम्रपत्र मिला है, जिसमें नीचे लिखे पद्य हैं —

भासीद (१) तोरणाचार्यः कोण्डकुन्दान्वयोद्भवः ।
 स श्वेतद्विषये श्रीमान् शास्त्रमालीग्राममाश्रितः ॥
 निराकृतमोऽरातिः स्थापयन् सत्पथे जनान् ।
 स्वतेजोद्योतितक्षीणिञ्जण्डार्धिरिव यो बभौ ॥
 तस्याभूत्पुष्पनन्दी तु शिष्यो विद्वान् गणामणी ।
 तच्छिष्यश्च प्रभाचन्द्रस्तस्येयं धसतिः कृता ॥

इन दोनों लेखोंका अभिप्राय यह है कि कोण्डकुन्दान्वयके तोरणाचार्य नामके मुनि इस देशमें शास्त्रमाली नामक ग्राममें आकर रहे । उनके शिष्य पुष्पनन्दि और पुष्पनन्दिके शिष्य प्रभाचन्द्र हुए ।

पाठक महोदयका कथन है कि पिछला ताम्रपत्र जब शक संवत् ७१९ का है तो प्रभाचन्द्रके दादा-गुरु तोरणाचार्य शक संवत् ६०० के लगभग रहे होंगे और तोरणाचार्य कुन्दकुन्दान्वयमें हुए हैं—अतएव कुन्दकुन्दका समय उनसे १५० वर्ष पूर्व अर्थात् शक संवत् ४५० लगभग मान लेनेमें कोई हानि नहीं है ।

चालुक्यवंशी कीर्तिवर्म महाराजने बादामी नगरमें शक संवत् ५००में प्राचीन कदम्बवंशका नाश किया था और इसलिए इससे लगभग ५० वर्ष पूर्व कदम्ब-वंशी महाराज शिवभृगेश्वरमें राग्य करते थे ऐसा निश्चित होता है । पञ्चास्तिकायके फनकी-टीकाकार बालचन्द्र और संस्कृत-टीकाकार जयसेनाचार्यने लिखा है कि यह ग्रन्थ आचार्य कुन्दकुन्दने शिवकुमार महाराजके प्रतिबोधके लिए रचा था और ये शिवकुमार शिवभृगेश्वरमें ही जान पड़ते हैं । अतएव भगवत्कुन्दकुन्दका समय शक संवत् ४५० (वि० ५८५) ही सिद्ध होता है ।

परन्तु हमारी समझमें भगवत्कुन्दकुन्द इतने पीछेके आचार्य नहीं हैं । जब तक शिवकुमार और शिवभृगेश्वरमाँके एक होनेके एक दो पुष्ट प्रमाण न दिये जायें तब तक इस समयको ठीक मान लेनेकी इच्छा नहीं होती । तोरणाचार्य कुन्दकुन्दके अन्वयमें थे, अतएव यह नहीं कहा जा सकता कि वे उनके १५० वर्ष बाद ही हुए होंगे । तीनतीस चारसौ वर्ष या इससे भी अधिक पहले हो सकते हैं ।

इस भूमिकाका कगोत्र हो चुकने पर हमें मालूम हुआ कि पञ्चास्तिकायके अंग्रेजी टीकाकार प्रो० ए० चक्रवर्ती नायनार एम० ए०, एल० टी०, ने भगवत्कुन्दकुन्दके समयके सम्बन्धमें एक विस्तृत लेख लिखा है । उसमें उन्होंने

प्रो० पाठकके मतका विरोध करते हुए यह सिद्ध किया है कि शिवकुमार महाराज कदम्बवंशी शिवमृगेशवर्मा नहीं, किन्तु पल्लववंशी शिवस्कन्दवर्मा होने चाहिए। स्कन्द, कुमार और कार्तिकेय पञ्चाननके नामान्तर हैं। अतएव शिवस्कन्द और शिवकुमार दोनों निस्सन्देह एक हो सकते हैं। पल्लववंशी राजाओंकी राजधानी काशीपुर या वर्तमान् सँजीवरम् थी। विद्या और कलाओंके लिए यह स्थान बहुत ही प्रसिद्ध था। दूरदूरके विद्वान् और कवि यहाँके दरबारमें आते थे। धार्मिक वादविवाद भी वहाँ होते थे। पल्लव राजा जैनी या जैनधर्मके आश्रयदाता थे, इसके भी प्रमाण मिलते हैं। उनकी दरबारी भाषा भी शायद प्राकृत थी। 'मायिडानोली' नामका सुप्रसिद्ध ग्रन्थ उसी समयका बना हुआ है और प्राकृतमें है। आचार्य तुन्दकुन्द द्रविडदेशके थे। इसके अनेक प्रमाण हैं, अतएव उनका शिष्य शिवकुमार यही शिवस्कन्दवर्मा होगा और उसका अवस्थितिकाल विक्रमकी प्रथम शताब्दि है।

श्रीश्रुतसागरसूरि।

पदप्राश्रुत या पदपाहुङ्के टीकाकार आचार्य श्रुतसागर बहुश्रुत विद्वान् थे। इस टीकासे और यशस्तिलक-चन्द्रिकाटीकासे मालूम होता है कि वे कलिकाल-सर्वज्ञ, कलिकाल गौतमस्वामी, उभयभाषाकविचक्रवर्ती आदि महती पदवियोंसे अलङ्कृत थे। उन्होंने 'नवनवति' (१९) महावादियोंको पराजित किया था।

वे मूलसूत्र, सरस्वतीगच्छ और बलात्कारणके आचार्य और विद्यानन्दि महारकके शिष्य थे। उनकी गुरुपरम्परा इस प्रकार थी—पद्मनन्दि—देवेन्द्र-कीर्ति—विद्यानन्दि।

परन्तु विद्यानन्दि महारकके पदपर जान पड़ता है उनकी स्थापना नहीं हुई थी। क्यों कि विद्यानन्दिके बादकी गुरुपरम्परा इस प्रकार मिलती है—विद्यानन्दि—मन्निभूषण—लक्ष्मीचन्द्र।

स्वर्गीय दानवीर सेठ माणिकचन्दजीके ग्रन्थभण्डारमें पं० आशाधरके महाभियेक नामक ग्रन्थकी टीका है। उसके अन्तमें इस प्रकार लिखा हैः—

“ श्रीविद्यानन्दिगुरोर्बुद्धिगुरोः पादपङ्कजभ्रमर ।

श्रीश्रुतसागर इति देशवती तिलकक्षीकृते स्मोदं ॥

इति ब्रह्मधीश्रुतसागरकृता महाभियेकटीका समाप्ता ॥

धीरस्तु खेलकपाठकयोः ॥ शुभं भवतु ॥ श्री ॥

संवत् १५८१ वर्षे चैत्रमासे शुक्लपक्षे पंचम्या तिथौ रवौ श्रीआदिजिन-
चैत्यालये श्रीमूलसंघे सरस्वतीमण्डले बलात्कारणने श्रीकुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टा-
रकश्रीपद्मनदिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीदेवेन्द्रकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीविद्यानदि-
देवारतपट्टे भट्टारकश्रीमल्लिभूषणदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रदेवास्तेषां शिष्य-
वरमल्लश्रीज्ञानसागरपठनाथं ॥ आचार्य श्रीविमलश्री चेली भट्टारक श्रीलक्ष्मीचन्द्र-
दीक्षित। विनम्रप्रिया स्वयं लिखित्वा प्रदत्त महाभिषेकभाष्यं ॥ शुभ भवतु ॥
कल्याणं भूयात् ॥ धीरस्तु ॥ ”

इससे मालूम होता है कि विद्यानदिके पट्टपर मल्लिभूषणकी और उनके पट्टपर
लक्ष्मीचन्द्रकी स्थापना हुई थी। यशस्तिलकटीकामें ध्रुतसागरने मल्लिभूषणको
अपना गुरुध्याता लिखा है। इससे भी मालूम होता है कि विद्यानदिके उत्तरा-
धिकारी मल्लिभूषण ही हुए होंगे। यशस्तिलकचन्द्रिका टीकाके तीसरे आध्यासके
अन्तमें लिखा है—

“ इतिश्रीपद्मनदिदेवेन्द्रकीर्तिविद्यानदिमल्लिभूषणाम्नायेन भट्टारकश्रीमल्लिभूषण-
गुरुपरमाभीष्टगुरुध्याता गुर्वादेशसिंहासनभट्टारकश्रीलक्ष्मीचन्द्रकाभिमतं मालव-
देशभट्टारकश्रीसिंहनदिप्रार्थनया यतिश्रीसिद्धान्तसागरव्याख्याकृतिनिमित्तं नवन-
वर्तिमहामहावाविस्वाद्वादलक्ष्यमित्रयेन तर्कव्याकरणछन्दोऽलकारसिद्धांतसाहिःवादि
शास्त्रनिपुणमतिना प्राकृतव्याकरणाद्यनेकशास्त्रवञ्जुना सूरिश्रीध्रुतसागरेण विर-
चितायां यशस्तिलकचन्द्रिकाभिधानाया यशोधरमहाराजचरितचम्पुमहाकाव्यटीकाया
यशोधरमहाराजराजलक्ष्मीविनोदवर्णनं नाम सुनीयस्थायचन्द्रिका परिसमाप्ता ॥ ”

इससे मालूम होता है कि उस समय गुर्जर देशके पट्टपर भट्टारक लक्ष्मीचन्द्र
स्थित थे और मल्लिभूषणका छायाद स्वर्णवास हो चुका था।

लक्ष्मीचन्द्रके बाद भी श्रीध्रुतसागरके पट्टाधिकारी होनेका कोई उल्लेख नहीं
मिलता। जान पड़ता है वे कभी सिद्धामनासीन हुए ही नहीं।

ये पद्मनदि, विद्यानदि आदि सब गुजरातके ही भट्टारक हुए हैं। परन्तु यह
मालूम न हो सका कि गुजरातकी किस स्थानकी गद्दीको इन्होंने सुशोभित किया
था। ईडर, सूरत, खोजिना आदि कई स्थानोंमें भट्टारकोंके पट्ट रहे हैं। यश-
स्तिलककी रचनाके समय मालवेके पट्टपर सिंहनदि भट्टारक थे। इन्हींकी
मेरणासे ध्रुतसागरसूरिने नित्यमहोद्योत या महाभिषेककी भी टीका लिखी थी।

श्रुतसागरसूरिके भी अनेक शिष्य रहे होंगे । इसी ग्रन्थमालाके तरवानुसामनादिसमूहमें इनके एक धोचन्द्र नामक शिष्यकी रची हुई वैराग्यमणिमाला प्रकाशित हुई है । आराधनाकथाकोश, नेमिपुराण, आदि अनेक ग्रन्थोंके कर्ता ब्रह्मचारी नेमिदत्तने भी—जो मल्लिभूषणके शिष्य थे—श्रुतसागरकी गुरुभावनासे स्मरण किया है * । नेमिदत्तने भी मल्लिभूषणकी वही गुरुपरम्परा दी है, जो श्रुतसागरके ग्रन्थोंमें मिलती है । उन्होंने सिंहनन्दिदा भी उल्लेख किया है ।

श्रुतसागरका अभी तक टाकाग्रन्थोंके अतिरिक्त कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हुआ है ।

उनके बनाये हुए ग्रन्थोंका परिचय आगे दिया जाता है —

१ यशस्तिलकचन्द्रिकार । यह निर्णयसागर प्रेसकी 'काव्यमाला'में प्रकाशित हो चुकी है । यह टीका अपूर्ण है—५ वें आश्रामके कुछ अंशकी और छठे आश्रामकी टीका नहीं है । जान पड़ता है, यही उनकी अन्तिम रचना है । यह टीका अनेक स्थानोंके ग्रन्थभण्डारोंमें मिलती है, परन्तु सबत्र ही अपूर्ण है ।

२ महाभिवेकटीका । सुप्रसिद्ध पंडित आशाधरजीक बनाये हुए निम्न महोद्योत या महाभिवेक नामक ग्रन्थकी यह टीका है । इसका अन्तिम अंश ऊपर उद्धृत किया जा चुका है । उससे मादुम हाता है कि उस समय श्रुतसागर देशप्रती या ब्रह्मचारी थे, सूरि या आचार्य नहीं हुए थे ।

३ सत्त्वार्थटीका । यह श्रुतसागरी टीकाके नामसे प्रसिद्ध है । इस टेलक लिखते समय हमें इसकी प्राप्ति नहीं हो सकी । परन्तु यह दुःप्राप्य नहीं है—इसका भाषानुवाद भी हो चुका है ।

४ सत्त्वप्रयप्रकाशिका । आचार्य गुमबद्रहन ज्ञानार्णवके अन्तर्गत जो गद्यभाग है, यह उसीकी टीका है । इसकी एक प्रति स्व० सेठ मोनिरुचन्द्रजीक ग्रन्थसमूहमें मौजूद है । उसकी प्रतस्ति देखिए —

* जीयामे सूरिवर्या व्रतविचयलसत्पुष्पयुक्त श्रुतादि ॥ ४

तथा पादपयोत्र गुमकृपया . . . इत्यादि ।

—आराधनाकथाकोशप्रसंगि ।

† ग्रन्थ न० १ ।

“ आचार्यैरिह शुद्धतत्त्वमतिभिः श्रीसिद्धनद्याद्यैः,
संप्राप्यं श्रुतसागरं [रां] कृ [कि] तवरं भाष्यं शुभं, कारितं ।
गद्यानां गुणवत्प्रियं विनयतो ज्ञानार्णवस्यांतरे,
विद्यानंदिगुरुप्रमादजनितं देयादभेयं सुखम् ॥

इति श्रीज्ञानार्णवस्य (१) स्थितगद्यटीका तत्त्वत्रयप्रकाशिना [का] ममात्
[मा] ॥ शुभमस्तु ॥ ”

५ जिनसहस्रनाम टीका । यह प० आचार्यरचित जिनसहस्रनामकी विस्तृत टीका है । इसकी भी एक प्रति सेठजीके प्रघसप्रहमें मौजूद है । शब्द-बोध और व्युत्पत्तिबोधके अभिलाषियोंके लिए बड़े कामकी चीज है । इसकी भी प्रशस्ति देखिए —

“ श्रीपद्मनदिपरमात्मपरः पवित्रो, देवैर्दकीर्तितश्च भाषुजनाभिर्धेयः ।
विद्यादिनदिवरसूरिरनल्पबोधः, श्रीमतिभूषण इतोऽस्तु च मंगलं मे ॥ २ ॥
अद्ः पट्टे मह्यादिकमतपटाघटनपटुः,
घटदर्मध्यानं स्फुटपरमभट्टारकपदं ।
प्रभाषुजं संयद्विजितवर्षीरस्मरनरः,
सुधीर्लक्ष्मीचन्द्रधरणचतुरोऽसी विजयते ॥ ३ ॥
आत घन सुविदुषो हृदयांशुजानां,
आनन्दनं मुनिजनस्य विमुक्तिहेतोः
सद्वैकनं विविधशास्त्रविचारचारु-
चेतश्चमस्कृतिकृतं श्रुतसागरेण । ४ ॥
श्रुतसागरकृतिवरवचनामृतपानमंत्रयैर्विहित ।
जन्मजरामरणहरं निरतरं तैः शिवं लब्धं ॥ ५ ॥
अस्ति स्वस्ति समस्तस्यर्घानिलकं श्रीमूलमयोऽनघं,
वृत्त यत्र सुमुधुचर्मशिवद संसेवितं साधुभिः ।
विद्यानंदिगुरुस्त्वहस्तिगुणवद्गच्छे गिरः सांप्रतं,
तच्छिल्प्य- श्रुतसागरेण रचिता टीका चिरं नन्दतु ॥ ६ ॥

इति सूरिप्रोश्रुतसागरविरचितायां जिननायसहस्रटीकायामंतकृच्छत विवरणो-
नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ श्रीविद्यानंदिगुरुभ्यो नमः । ”

६ प्राकृतव्याकरण। यह ग्रन्थ हमें अभी तक प्राप्त नहीं हुआ। यद्यपि लक्ष्मीटीकामें एक जगह उन्होंने अपने लिए यह विशेषण भी दिया है—“प्राकृत व्याकरणायनेकशास्त्ररचनाचञ्चुना।” इससे और पदमाहुट्टीकामें जो जगह जगह प्राकृत व्याकरणके सूत्र दिये हैं उनसे भी मालूम होता है कि इनके बनाया हुआ कोई प्राकृत व्याकरण अवश्य है। इस ग्रन्थका पता लगानेकी बहुत आवश्यकता है।

इनके सिवाय सर्वदीपक, विक्रमप्रबन्ध, ध्रुतस्कन्धावतार, आद्यापरवृत्त पूजा प्रबन्धकी टीका, कृष्णरुपाकोश आदि और भी कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए कहे जाते हैं।

इन्होंने अपने किसी भी ग्रन्थमें अपने समयका उल्लेख नहीं किया है, परन्तु यह प्रायः निश्चित है कि ये विक्रमकी १६ वीं शताब्दिमें हुए हैं। क्योंकि—

१—ऊपर जिस महाभियेकटीकाकी प्रतिका उल्लेख किया गया है वह वि० स० १५८२ की लिखी हुई है और वह मथुराके मन्दिभूषणके उत्तराधिकारी लक्ष्मीचन्द्रके शिष्य मङ्गलचारी ज्ञानसागरके पढ़नेके लिए दान की गई है और इन लक्ष्मीचन्द्रका उल्लेख ध्रुतसागरने स्वयं अपनी टीकाओंमें कई जगह किया है।

२—भारधनाक्षत्राकोशने कर्णाग्र० नेमिदत्त वि० १५७५ के लगभग हुए हैं और वे ध्रुतसागरके गुरुभ्राता मन्दिभूषणके शिष्य थे।

३—स्वर्गीय बाबादुलीचन्द्रजीकी स० १९५४ की बनाई हुई हस्तलिखित ग्रन्थोंकी सूचीमें ध्रुतसागरका समय वि० संवत् १५५० लिखा हुआ है।

४—पदप्राकृतटीकामें जगह जगह लोहानक्षत्रपर तीस्र भाकमण किये गये हैं और शेषाम्बरसम्प्रदायमेंसे यह मूर्तिपूजाका विशेषीपण वि० संवत् १५०८ के लगभग स्थापित हुआ है। अतएव ध्रुतसागरका समय इसकी स्थापनासे अधिक नहीं तो ४०-५० वर्ष पीछे अवश्य मानना चाहिए।

ग्रन्थ सम्पादन।

इस संग्रहका सम्पादन और सहायन पण्डित पद्मालालजी गोनीन श्रीचन्द्रगिरि प्रतिवोसे किया है। जिन जिन मन्त्रजनों इस कार्यके लिए ग्रन्थ भेजनेकी कृपा की है, उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट किये बिना हमसे नहीं रहा जाना।

क-यदपाहुडकी यह सटीक प्रति जो प्राय शुद्ध है जयपुरके लक्ष्मीमन्दिरके भण्डारसे प० इन्द्रलालजी शास्त्रीके द्वारा प्राप्त हुई थी। यह प्राय शुद्ध है।

ख-यह सटीक प्रति पूनेके 'डा० भाण्डारकर प्राच्यविद्यासंशोधनमन्दिर' से प्राप्त हुई थी। यह प्राय अशुद्ध है।

ग-यह यदपाहुडका मूल पाठ मान है और बम्बईके तेरहपथी मन्दिरके एक प्राचीन गुल्फकेमें लिखा हुआ है।

घ-यह प्रति सेठ बिनोदीराम बालबदजीके फर्मके मालिक सेठ लालचन्दजी सेठीकी कृपासे प्राप्त हुई थी। इसमें मूलके सिवाय बहुत ही सक्षिप्त संस्कृतटीका किसी अज्ञातनामा विद्वानकी की हुई है। यह वि० सं० १९१० की लिखी हुई है।

लिंगप्राभृत और दीलप्राभृतका संशोधन श्रीमान् प० घमालालजी काशीवालकी एक ही प्रतिपरसे किया गया है। प्रयत्न करनेपर भी इन प्राभृतोंकी दूसरी प्रतियाँ नहीं मिल सकीं।

रयणसारका संशोधन जेनेन्ट्र प्रेसके अध्यक्ष प० कलापा भरमापा निटवे द्वारा प्रकाशित मराठी अनुवादयुक्त प्रतिसे और बम्बईके तेरहपथी मन्दिरकी एक हस्तलिखित प्रतिसे किया गया है। इसकी छाया नई तैयार की गई है।

यारह अणुवेक्खा जैनग्रन्थरत्नाकर कायालयकी भाषाटीकासहित मुद्रि। प्रतिपरसे छपाई गई है।

सम्पादक महाशयने ग्रन्थसंशोधन करनेमें शक्तिभर परिश्रम किया है। इ पर भी यदि अशुद्धियाँ रह गई हों तो उनके लिए क्षमाप्रार्थना है।

बम्बई ।
माघसुदी ९ सं०
१९७७ वि० ।

निवेदक—
नाथूराम प्रेमी,
मनी ।



नमः सिद्धेभ्यः ।

श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्यविरचितं

षट्प्राभृतम् ।

श्रीमच्छ्रुतसागरसूरिविरचितया टीकया सहितम् ।

दृग्गुप्तसूत्रयोधाख्यं भाष्यमोक्तसमाख्यं ।

षट्प्राभृतमिति प्राहुः कुन्दकुन्दगुरुदितं ॥ १ ॥

अथ श्रीत्रिद्यानन्दिभट्टारकपदाभरणभूतश्रीमतिभूषणभट्टारकाणा-
मादेशादप्येषणानशाद्वृश प्रार्थनानशात्कलिकालसर्वहविरदाबलीविराज-
माना श्रीमद्धर्मोपदेशकुशला निजात्मस्वरूपप्राप्तिं पञ्चपरमेष्ठिचरणान्
प्रार्थयन्तः सर्वजगदुपकारिण उत्तमक्षमाप्रधानतपोरत्नसभूषितहृदयस्थला
भव्यजनजनकतुल्या श्रीश्रुतसागरसूरय श्रीकुन्दकुन्दाचार्यविरचितषट्-
प्राभृतग्रन्थं टीकयन्तः स्वरुचिरविरचितसद्दृष्टयः सम्पददर्शनप्राभृतस्यादौ
परापरगुरुप्रवाहमङ्गलप्रसिद्धिप्रार्थनपरा नान्दीसूत्रस्य विवरणमाहुः—

काउण णमुकारं जिणवरवसेहस्स बहुमाणस्स ।

दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेण ॥ १ ॥

कृत्वा नमस्कारं जिनवरपूषमस्य वधमानस्य ।

दर्शनमार्गं वक्ष्यामि यथाक्रम समासेन ॥

अष्टपदा नान्दी । वोच्छामि वक्ष्यामि कथयिष्यामि । क यर्ता, अहं श्रीकुन्दकुन्दाचार्य । क, कर्मतापन्न दंसणमग्गं सम्यग्दर्शनस्वरूपं । कथं वक्ष्यामि, जहाकम्मं यथाक्रममनुक्रमेण । केन कृत्वा, समासेण सक्षेपेण । किं कृत्वा, पूर्वं बह्वदमाणस्स णमुक्कार काउण्ण वर्द्धमानस्य प्रियकारिणीवल्लभश्रीसिद्धार्थमहाराजन दनस्यात्तिमतीर्थकरपरमदेवस्य भरतक्षेत्रस्थविदेहदशसम्बन्धिश्रीकुण्डपुरपत्तनोत्पन्नस्य सुवर्णवर्णशरीरस्य किञ्चिदधिकद्वासत्ततिथरपरमायुष सत्तहस्तोनतशरीरस्य निर्भयत्वरंजितसगमनामधेयदेवकृतस्तपनस्य वीरवर्द्धमानमहावीरमहतिमहावीरसमतिनामपंचकप्रसिद्धस्य । नमुक्कार नमोऽसिञ्जति वचनेन मनसा कायेन वचसा साष्टाङ्ग प्रणाम । काउण्ण कृत्वा । कथंभूतस्य वर्द्धमानस्य, जिणवरवसहस्स जिनवराणां श्रीगौतमादिगणघरदेवादीनां मध्ये वृषभस्य श्रेष्ठस्य । इत्यनेन विशेषणं प्रथमतीर्थकरश्रीमदादिनाथादीनामपि सर्वतीर्थकरसमुदायस्यापि नमस्कार कृतो भवतीति वेदितव्य ।

दंसणमूलो धम्मो उवइहो जिणवरेहि सिस्साणं ।

त सोउण्ण सक्कणे दंसणहीणो णं वदिच्चो ॥ २ ॥

दर्शनमूलो धर्म उपदिष्टो जिनवरे शिष्याणाम् ।

त श्रुत्वा स्वकर्णं दर्शनहीनो न वन्दितव्यः ॥

दंसणमूलो धम्मो दर्शनं सम्यक्त्वमूलमविष्टानमाधारं प्राप्तादस्य गर्तापूरवत् वृक्षस्य पातालगतजटानत् प्रतिष्ठा यस्य धर्मस्य स दर्शनमूल एवं गुणविशिष्टा धर्मो दयालक्षणः । जिणवरेहि तीर्थकरपरमदेवैरपरकेशलिभिश्च । उवइहो उपदिष्ट प्रतिपादित । कयामुपदिष्ट, सिस्माण शिष्याणां गणघरचक्रघरवज्रघरादीनां भव्यवरपुण्डरीकाणां । तं सोउण्ण सक्कणे त धर्मं श्रुत्वाऽऽकर्ण्य स्वकर्णे निजश्रवणे आमराब्दप्रहे ।

दंसणहीणो न वंदिव्यो दर्शनहीनः सम्यक्त्वरहितो न वन्दितव्यो
नैव वन्दनांयो न माननीयः । तस्यान्नदानादिकमपि न देयं । उक्तं च-
मिथ्यादृग्भ्यो ददद्दानं दाता मिथ्यात्ववर्धकः ।

अथ कोऽसौ दर्शनहीन इति चेत् तीर्थकरपरमदेवप्रतिमां न मानयन्ति
न पुष्पादिना पूजयन्ति । किमिति न पूजयन्ति ? मिथ्यादृष्टयः किलैव
वदन्ति तीर्थकरपरमदेवः किं देवान् पूजयति ? तथा वयमपि न पूजयाम ।
पंचमकाले किल मुनयो न वर्तन्ते तदयुक्तं । उक्तं च—

भर्तारः कुलपर्वता इव भुधो मोहं विहाय स्वयं
रत्नानां निधयः पयोधय इव व्याघृत्तवितस्फुहाः ।
स्पृष्टा कैरपि नो नभोविभुतया विश्वस्य चिद्धान्तये
सन्त्यद्यापि चिरंतनान्तिकचराः सन्त कियन्तोऽप्यमी ॥ १ ॥

मिथ्यादृष्टयः किल वदन्ति त्रैः किं प्रयोजनं, आत्मैव पोषणीयः,
तस्य दुःखं न दातव्यं, मयूरपिच्छं किल रुचिरं न भवति, सूत्रपिच्छं
रुचिरं, मयूरपिच्छेन आभेदनं छोतिर्भवति तदसत्यं । उक्तं च भगवत्या-
शयनाग्रन्थे—

रजसेद्राणमगहनं महवसुकुमालदालहृत्तं च ।
जश्वेदे पंच गुणा तं पडिलिहणं पसंसन्ति ॥ १ ॥

शासनदेवता न पूजनीयाः, आत्मैव देवो वर्तते, अपरः कोऽपि
देवो नास्ति, वीरादनन्तरं किल केवलिनोऽष्ट जाता न तु त्रयः,
महापुराणादिकं किल विकथा इत्यादि ये उत्सूत्र मन्वते ते मिथ्या-
दृष्टयश्चार्वाका नास्तिकास्ते । यदि जिनसूत्रमुल्लंघन्ते तदाऽऽस्ति-
र्युक्तिवचनेन निषेधनीयाः । तथापि यदि कदाग्रहं न मुञ्चन्ति तदा
समर्थैरास्तिकैरुपानद्भि गूयलिसाभिर्मुखे ताडनीयाः, तत्र पार्य नास्ति ।

दंसणमद्वा मद्वा दंसणमद्वस्म णत्थि णिव्वाणं ।

सिज्झंति चरियमद्वा दंसणमद्वा णे सिज्झंति ॥ ३ ॥

दर्शनभ्रष्टा भ्रष्टा दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम् ।

सिद्धयन्ति चरित्रभ्रष्टा दर्शनभ्रष्टा न सिद्धयन्ति ॥

दर्शनभ्रष्टा भ्रष्टा सम्यग्दर्शनात्पतिता पतिता उच्यन्ते । दर्शन-
भ्रष्टस्य नास्ति निर्वाण-सम्यग्दर्शनात्पतितस्य सर्वकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो
न भवति किन्तु सम्यग्दर्शनात्पतिता नरकादिगतिषु परितो दीर्घकालं
पर्यटन्ति । सिज्झंति चरियमद्वा सिद्धयन्ति आत्मोपलब्धिमनुभवन्ति
प्राप्नुवन्ति, के, ते चरियमद्वा-चारित्रात्पतिता यतिश्रावकलक्षणब्रह्मचर्य-
प्रत्याख्यानाभ्यां स्खलिता, सामग्रीं प्राप्य श्रेणिकमहाराजादिवत् स्तोकेन
कालेन मोक्षं प्राप्नुवन्ति । दंसणमद्वा न सिज्झंति सम्यग्दर्शनात्पतिता
न सिद्धयन्ति मोक्षं न प्राप्नुवन्ति भव्यसेनादिवत् वशिष्ठभ्यादिवच्च
संसारे निमज्जन्ति इति ज्ञात्वा श्रुतकीर्तिश्रेयासादिप्रमाणपुरुषैरुपप्रवर्तितं
दानपूजादिसत्कर्म न निषेधनीयं, आस्तिकभावेन सदा स्थातव्यमित्यर्थः ।

सम्मत्तरयणमद्वा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।

आराहंणाविरहिया भमंति तत्थेय तत्थेय ॥ ४ ॥

सोऽपि पापं स्वयं श्रेयादृणीमृतवाक्षणे ।

उद्यमी विद्वद्वाहर्तुं प्रस्फुरद्दानच्छदः ॥ १ ॥

सोऽपि तदक्षमं कश्चिदसुरं पुद्गलं तपः ।

हनिष्यति तमन्वार्यं शक्तं सन् सहते न हि ॥ २ ॥

सोऽपि रत्नप्रभां गत्वा सागरोपमजीवितः ।

धिरधनुर्मुखो दुःखलोभादनुभवविष्यति ॥ ३ ॥

धर्मनिर्मूलविष्वर्गं सहन्ते न प्रभावकाः ।

नास्ति मावच्छलेन विना धर्मप्रभायना ॥ ४ ॥

धर्मध्वसे सर्वा ध्वस्तस्तस्माद्धर्मदुहोऽघमात् ।

निवारयन्ति ये मन्तो रक्षितं ते सर्वा पगवः ॥ ५ ॥

सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टा जानन्तो बहुविधानि शास्त्राणि ।

आराधनाविरहिता भ्रमन्ति तत्रैव तत्रैव ॥

सम्मत्तरयणमद्वैता सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टा सम्यक्त्वमेव एतन् सर्वेभ्यो
भावेभ्य उत्तम वस्तु त्रैलोक्यपस्त्यसमुद्योतकत्वात् तस्माद्भ्रष्टा परिध्युता
दानपूजादिकनिषेधका । जाणन्ता बहुविहाइं सत्याइं जानन्तोऽपि
बहुविधानि शास्त्राणि तर्कव्याकरणछन्दोऽङ्गारसाहित्यसिद्धान्तादीन्
ग्रन्थान् जानाना अपि । आराधनाविरहिया जिनउचनमाननलक्षणा-
माराधनामकुराणा लोका पातकिन । भ्रमन्ति तत्स्थेव तत्स्थेव तत्रैव
तत्रैव नरकादिष्वेव दुर्गतिषु भ्राम्यन्ति न कदाचिदपि मोक्षं लभन्ते
इत्यर्थः ।

सम्मत्तविरहिया णं सुहु वि उग्गं तवं चरता णं ।

ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥ ५ ॥

सम्यक्त्वविरहिता ण सुष्ठु अपि उग्रं तप चरन्त णं ।

न लभन्ते बोधिलाम अपि वर्षसहस्रकोटिभिः ॥

सम्मत्तविरहिया णं सम्यक्त्वविरहिता सम्यक्त्वात् ये विरहिता
पतिता । णं वाक्यालङ्कारे । सुहु वि उग्गं तवं कुणन्ता णं सुष्ठु अपि
अतीवापि उग्रं तप कुर्वन्तोऽपि मासोपवासादिक तपोविशेषमाचरन्तोऽ-
पि । णमिति वाक्यालङ्कारे । न लहंति बोहिलाहं ते पुरया बोधि-
लामं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यलक्षणोपलक्षिता या बोधिस्तस्या लाभं
न लभन्ते । कियत्कालपर्यन्तं बोधिलामं न लभन्त इत्याह—अवि वास-
सहस्सकोडीहिं अपि वर्षसहस्रकोटिभिः वर्षसहस्रकोटिभिरपि अनन्त
कालमपि गमयित्वा ते मुक्तिं न गच्छन्तीत्यर्थः । इति ज्ञात्वा दानपूजा-
दिकं व्यग्रहारधर्मं निश्चयधर्मे प्रधानभूतं न वर्जनीयमिति भाग्यार्थः ।

सम्मत्तणाणदंसणवलवीरियवड्डमाण जे सव्वे ।

कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होति अइरेणं ॥ ६ ॥

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनबलवीर्यवर्द्धमाना ये सर्वे ।

कलिकलुषपापरहिता वरज्ञानिनो भवन्ति अचिरेण ॥

सम्मत्तणाणदंसणवलवीरियवड्डमाण सम्यक्त्वज्ञानदर्शनबलवीर्य-
वर्द्धमाना । जे सव्वे ये सर्वे भव्यजीवा । सम्यक्त्वेन जिनवचनरुचि-
रूपेण, ज्ञानेन पठनपाठनादिना, दर्शनेन सत्तावलोकनमात्रेण, बलेन
निजवीर्यानिगूहनरूपेण, धीर्येणात्मशक्त्या ये पुरुषा वर्द्धमाना वर्तमाना वा
वड्डमाणपाठेन ते पुरुषा । वरणाणी होंति केवलज्ञानिनो भवन्ति
वरशब्देन तीर्थकरत्वं प्राप्नुवन्तीत्यर्थ । कदा, अइरेण अचिरेण स्तो-
काढेन तृतीये भवे मोक्ष यान्तांत्यर्थ । ते पुरुषा कथभूता, कलिक-
लुसपावरहिया कलिसु कर्मसु यानि कलुषाणि दुष्टानि पापानि
मोहनीयज्ञानावरणीयदर्शनावरणीयान्तरायलक्षणानि दुरितानि तै रहिता
क्षय नीतघातिकर्माण इत्यर्थ । अथवा कलौ पचमकाळे कलुषाः
कर्मलिन शौचधर्मरहिता वर्णान् लोपयित्वा यत्र तत्र भिक्षाप्राहिण,
मासभक्षिगृहेष्वपि प्रासुकमन्त्रादिक गूह्यन्त कलिकलुषास्ते च ते
पापा पापमूर्तय श्वेताम्बराभासा लोकायकापरनामानो लौका म्ळेच्छ-
श्मशानास्पदेष्वपि भोजनादिक कुर्वाणास्तद्धर्मरहिता कलिकलुषपाप-
रहिता । श्रीमूलसधे परमदिगम्बरा मोक्ष प्राप्नुवन्ति लौकास्तु नरकादौ
पतन्ति देवगुरुशास्त्रपूजादिनिलोपकृत्वादित्यर्थ ।

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियंए पवट्टए जस्स ।

कम्मं वालुयवरणं वंधुच्चिय णासए तस्स ॥ ७ ॥

सम्यक्त्वसलिलप्रवाह नित्य हृदये प्रवर्तते यस्य ।

कर्म बालुकावरणं बद्धमपि नश्यति तस्य ॥

सम्मत्तसलिलप्रवाहो सम्यक्त्वसलिलप्रवाह सम्यक्त्वमेव सलिल
निर्मलशीतलसुगन्धसुखादुपानीयं ससारसन्तापनिवारकत्वात् पापमलकल-
कप्रक्षालकत्वाच्च सम्यक्त्वसलिलं तस्य प्रवाह प्रवाह पूर । निरुचं
हियए पवट्टए जस्स नित्यं हृदये प्रवर्तते यस्य जलपूरनद्वहतीत्यर्थः ।
कम्मं बालुकावरणं हिंसादिपचपातकपापं बालुकापाली । बंधु-
च्चियं बद्धमपि । नासए तस्स नश्यति तस्य । सम्यग्दृष्टेर्लभमपि
पापं बन्धं न याति कौरघटस्थित रज इव न बध्धं याति । परदेवनम-
स्कारोऽपि पापमायाति । उक्तं च—

एकधारं नमस्कारं परदेवे कृते सति ।

परदारेषु लक्ष्मेषु तस्मात्पापं चतुर्गुणं ॥ १ ॥

जे दंसणेसु भट्टा णाणे भट्टा चरित्तमट्टा य ।

एदे भट्टविमट्टा सेसं पि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

ये दर्शनेषु भट्टा ज्ञाने भट्टा चरित्रभट्टाश्च ।

एते भट्टविभट्टा शेषमपि जनं विनाशयन्ति ॥

जे दंसणेसु भट्टा ये पुरुषा दर्शनेषु सम्यक्त्वेषु द्विविधत्रिविध-
दशविधेषु भट्टा पतिता अधरा दर्शने सुष्ठु भट्टा । तथा णाणे भट्टा
भट्टनिधाचारज्ञानादपि भट्टा । चरित्तमट्टा य त्रयोदशप्रकाराचारित्रा-
दभट्टा । एदे भट्टविमट्टा एते भट्टा विशेषेण भट्टास्त्रिभट्टत्वात् ।
सेसं पि जणं विणासंति शेषमपि जनमभट्टमपि लोकं विणासन्ति-
विनाशयन्ति भट्टं विकुर्वन्ति ।

जो को वि घम्मसीलो संजमतवणियमजोयगुणधारी ।

तस्स य दोस कहन्ता भग्गा भग्गत्तणं दिंति ॥ ९ ॥

य कोपि धर्मशील समयतपोनियमयोगगुणधारी ।
तस्य च दोषान् कथयन्त मत्रा भगवत्त्व ददति ॥

जो को वि धम्मसीलो य कोऽपि धर्मशीलो धर्मे आत्मस्वरूपे
उत्तमक्षमादिदशलक्षणे च धर्मे, पचप्रकारे त्रयोदशप्रकारे चारित्रे च
प्राणिना रक्षणलक्षणे वा धर्मे शीलमम्यास समाधिरम्यासो यस्य स
धर्मशीलः । उक्तं च—

धम्मो घत्थुसहायो खमादिभावो य दसविहो धम्मो ।
चारित्तं खलु धम्मो जीवाणं रक्खणो धम्मो ॥ १ ॥

संजमतवणियमज्जोयगुणधारी तथा य कोऽपि समयतपोनियम-
योगगुणधारी वर्तते । समयश्च पडिन्द्रियपट्प्रकारप्राणिप्राणरक्षणलक्षण ।
तपश्च द्वादशप्रकारं । नियमश्च नियतकालव्रतधारण । उक्तं च—

नियमो यमश्च विहितो द्वेधा भोगोपभोगसहारात् ।
नियमः परिमितकालो यावज्जीव यमो ध्रियते ॥ १ ॥

योगश्च वर्षादिकालस्थितिः । अथनाऽऽत्मप्यानं योग उच्यते । उक्तं च
वीरनन्दिशिष्येण पद्मनन्दिना—

साम्यं स्यात्स्यं समाधिश्च योगश्चेतोनिरोधनं ।
शुद्धोपयोग इत्येते भवन्त्येकार्थवाचकाः ॥ १ ॥

गुणाश्चतुरशीतिलक्षसख्या । के ते चतुरशीतिलक्षगुणा इति चेदु-
च्यन्ते— हिंसाऽनृतस्तोयमैथुनपरिग्रहक्रोधमानमायालोभजुगुप्साभवारति-
रतित्यागा इतित्रयोदश दोषा । मनोवचनकायदुष्टत्वमिति षोडश ।
मिथ्यात्व प्रमाद पिशुनत्व अज्ञान इन्द्रियाणामनिग्रह एतै पंचभिर्भे-
दिता एकविंशतिर्दोषा भवन्ति तेषा त्यागा एकविंशतिर्गुणा भवन्ति ।

१ धर्मो वस्तुस्वभाव क्षमादिभावश्च दशविधो धर्मः ।
चारित्रं खलु धर्मं जीवानां रक्षणं धर्मं ॥ १ ॥

अतिक्रमव्यतिक्रमातिचारानाचारत्यागैश्चतुर्भिर्गुणिताश्चतुरशीतिगुणा भव-
न्ति ते पृथिव्यादिशतजीवसमासैर्गुणिताश्चतुरशीतिशतानि गुणा भवन्ति
ते दशशीलविराधनैर्गुणिताश्चतुरशीतिसहस्राणि गुणा भवन्ति ।
आस्ता शीलविराधना स्त्रीससर्ग १ सरसाहार २ मुग्धसस्कार ३
कोमलशयनासन ४ शरीरमण्डनं ५ गीतवादिनश्रवण ६ अर्थग्रहणं ७
कुशीलससर्ग ८ राजसेवा ९ रात्रिसचरण १० इतिदशशीलविराधना ।
ते आकम्पितादिदशालोचनादोषत्यागैर्दशभिर्गुणिता चत्वारिंशसहस्रा-
धिकाष्टलक्षाणि गुणा भवन्ति । उत्तमक्षमादिदशधर्मैर्गुणिताश्चतुरशीति-
लक्षाणि गुणा भवन्ति । अथातिक्रमादयश्चत्वार के ? अतिक्रमस्तापद्वि-
ष्टमतित्याग । व्यतिक्रम शीलवृत्तिलघन । अतिचारो विषयेषु प्रवर्तन ।
अनाचारो विषयेष्वत्यासक्ति । के ते दशालोचनादोषा ? तदर्धनिरू-
पिका गाथेय —

आकम्पित अणुमाणिभ ज दिष्ट पादर च सुहृम च ।

छन्न सहाउलय बहुजणमव्यक्त तस्सेवी ॥ १ ॥

अस्या अयमर्थ — आकम्पित आनम्पो भयमुपशते सा बहुदण्ड
दासीदाचार्य १ अणुमाणिय अनुमान इयेतावत्पाप कृत भविष्यति
निर्दारी नास्ति २ जे दिष्ट यकनचिद्दृष्ट तप्रकाशयति ३ बायर स्थूल
पाप प्रकाशयति ४ सुहृम अल्प पाप कथयति न महापाप
प्रकाशयति ५ छण्ण प्रच्छन्न आचार्याणि कथयति न प्रकट ६ । सहा
उलय सहादिवृत्तकोलाहले सति कथयति पाप ॥ बहुजण बहु संघो
मिलति तदा पाप प्रकाशयति ८ अव्यक्त अव्यक्त प्रकाशयति स्फुटं
न कथयति ९ तस्सेवी यत्पाप प्रकाशितं तदेव पुनरपि करोति १०
इति दशालोचनादोषा । दशकायसयमा के ? पचेन्द्रियनिर्जय पंचप्राण-
रक्षा इति दश । एतान् सयमतपोनियमयोगगुणान् धरतीयेवमवश्य

संयमतपोनियमयोगगुणधारी । तस्स य दोस कहंता तस्य च शेषान्
कथयन्तः केचित्पापिष्ठाः । भग्ना भग्नचणं दिंति स्वयं भग्नाधारित्रा-
त्यतिता भ्रष्टा अन्येषामपि भ्रष्टत्वमारोपयन्ति ते निन्दनीया इत्यर्थः ।

जह मूलम्भि विण्ढे दुमस्स परिवार णत्थि परिवड्डी ।

तह जिणदंसणमहा मूलविण्ढा ण सिज्झंति ॥ १० ॥

यथा मूले विनष्टे दुमस्य परिवारस्य नास्ति परिवृद्धिः ।

तथा जिनदर्शनभ्रष्टाः मूलविनष्टा न सिद्धयन्ति ॥

जह मूलम्भि विण्ढे दुमस्स परिवार णत्थि परिवड्डी यथा मूले
पातालगतधारे विनष्टे विनाशं प्राप्ते दुमस्य वृक्षस्य परिवारस्य नास्ति
परिवृद्धिः शाखापत्रपुष्पफलादेर्वृद्धिर्नास्ति वृद्धिर्न भवति । परिवार
इत्यत्र पष्ठील्लुक् “लुक्चेति” वचनात् । दृष्टान्तं दत्त्वा दार्ष्टान्तं ददाति ।
तह जिणदंसणमहा तथा तेन दुममूलप्रकारेण जिनदर्शनभ्रष्टा आर्ह-
तमतात्पतिताः । मूलविण्ढा श्रीमूलसंघात्प्रच्युताः । न सिद्धयन्ति—न
मोक्षं प्राप्नुवन्ति जन्मशतसहस्रेष्वपि संसारे परिभ्रमन्तीति भावार्थः ।

जह मूलाओ खंधो साहापरिवार बहुगुणो होइ ।

तह जिणदंसण मूलो णिदिहो मोक्खमग्गस्स ॥ ११ ॥

यथा मूलात् स्कन्धः शाखापरिवारो बहुगुणो भवति ।

तथा जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं मोक्षमार्गस्य ॥

जह मूलाओ यथा मूलात् वृक्षस्य मूलात्कारणात् । स्कन्धः शाखा-
वधिः प्रकाण्डः । बहुगुणो होइ प्रचुरगुणो वृद्धयायतिशयवान् भवति ।
तथा साहापरिवार शाखापरिवारश्च लतास्वरूपी कटप्रश्च बहुगुणो
भवति पत्रपुष्पफलादिमान् भवति । दृष्टान्तो गतः । इदानीं दार्ष्टान्त-

माह—तह जिणदंसण मूलो निदिद्धो मोक्षमग्गस्स तथा तेनैव वृक्षमूलप्रकारेणैव मोक्षमार्गस्य मूलं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणस्य मोक्षमार्गस्य मूलं कारणं, जिणदंसणं—जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं श्रीगौतमस्वामिना कथितं । श्रीमूलसंघो मोक्षमार्गस्य मूलं कथितं न तु जैनाभासादिकं । किं तज्जैनाभासं ? उक्तं च—

गोपुच्छिकः श्वेतयासा द्राविडो यापनीयकः ।

निष्पिच्छश्चेति पंचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिताः ॥ १ ॥

ते जैनाभासा आहारदानादिकेऽपि योग्या न भवन्ति कथं मोक्षस्य योग्या भवन्ति । गोपुच्छिकानां मतं यथा, उक्तं च—

ईरधीणं पुणर्विक्खा खुल्लयलोयस्स वीरचरियत्वं ।

ककसकेसग्गहणं छट्ठं च गुणवत्तं नाम ॥ १ ॥

श्वेतयाससः सर्वत्र भोजनं गृह्णन्ति प्रासुर्कं मांसभक्षिणा गृहे दीपो नास्तीति घर्णलोपः कृतः । तन्मध्ये श्वेताम्बराभासा उत्पन्नास्ते त्वतीव पापिष्ठाः देवपूजादिकं किल पापकर्मदमिति कथयन्ति, मण्डलयन्तसर्वत्र भांडप्रक्षालनोदकं पिबन्ति इत्यादि बहुदोषयन्तः । द्राविडाः—सावर्धं प्रासुर्कं च न मन्यन्ते उद्वभोजनं निराकुर्वन्ति । यापनीयास्तु वैसरा इमोर्भयं मन्यन्ते, रत्नत्रयं पूजयन्ति, कल्पं च वाचयन्ति, स्त्रीणां तद्वदे मोक्षं, केवलजिनिना कवलाहारं, परशासने सप्रन्यानां मोक्षं च कथयन्ति । निष्पिच्छिका मयूरपिच्छादिकं न मन्यन्ते । उक्तं च ढाढसीगाथासु—

पिच्छे ण हु सम्मत्त करगहिण मोरचमरद्वंद्वरप ।

अप्पा तारइ अप्पा तम्हा अप्पा वि झायंयो ॥ १ ॥

तथा च सितपटमत—

सेयंयरो य आसवरो य बुद्धो य तह य अण्णो य ।

समभावमावियप्पा लहेय मोक्खं ण संदेहो ॥ १ ॥

जैमिनिकपिलकणचरच्चार्वकशाक्यमतानि तु प्रमेयकमलमार्तण्डा-
दिशास्त्रात् ज्ञातव्यानि ।

जे दंसणेसु भट्टा पांए ण पंडंति दंसणधराणं ।

ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं ॥ १२ ॥

ये दर्शनेषु भ्रष्टा पादे न पतन्ति दर्शनधराणाम् ।

ते भवन्ति लल्लमूआ बोधि पुनर्दुर्लभा तेषाम् ॥

जे दंसणेसु भट्टा ये पुरुषा दर्शनेषु भ्रष्टा निसर्गजाधिगमजलक्षणाद्
द्विविधारसम्यग्दर्शनात्, औपशमिकवेदकक्षायिकलक्षणान्निधासम्यक्त्व-
रत्नात् प्रच्युता ।

आज्ञामार्गसमुद्गयमुपदेशास्त्रयीजसंक्षेपात् ।

विस्तारार्थाभ्या भवमयपरमावादिगाढे च ॥ १ ॥

इत्यार्याफधितदशविधसम्यक्त्वरत्नात्पपिता । अस्या आर्याया अयमर्थ —

“सूक्ष्म जिनोदित याक्ख हेतुभिर्यत्त हन्यते ।

आज्ञासम्यक्त्वमित्याहुर्नान्यथावादिनो जिनाः ॥”

एव जिनसर्जज्ञीतरागवचनमेव प्रमाणं क्रियते तदाज्ञासम्यक्त्व-
कल्प्यते । १ । निर्ग्रन्थलक्षणो मोक्षमार्गो न बह्मादिवेष्टित पुमान् कदा-

१ पिच्छे न हि सम्यक्त्व करगृहीते मयूरचमरद्वन्द्वरे ।

आत्मा तारयत्यात्मान तस्मादात्मा ध्यातव्यः ॥ १ ॥

२ स्वेताम्बरश्चाश्वाम्बरश्च बुद्धश्च तथा चान्यथ ।

समभावमावितात्मा लभेत् मोक्षं न संदेहः ॥ २ ॥

३ पाएहिं ष । ४ पाडति ग । ५ होंति घ ।

ईदृशदर्शनेषु भ्रष्टास्त्यस्तमयुरपिच्छकमण्डलुपरमागमपुस्तकाः सन्तो
 गृहस्थेष्वप्यारिणः संयमधराणां संयमिनां सदृष्टीनां । पापं न पठन्ति
 पादे चरणयुगले न पतन्ति नैव नमोऽस्त्विति कुर्वन्ति अभिमानिन्वा-
 न्मुद्रात्प्रतिष्ठन्ति । ते किं भवन्ति ? ते ह्येति लट्मूत्रा ते भवन्ति लट्
 अस्तुष्ट्याचो मूत्रा वक्तुं श्रोतुमशिक्षिताः । बोही पुण दुष्टहा तेमिं बोधिः
 खलु रत्नत्रयप्राप्तिं पुनर्जन्मशतसहस्रेष्वपि दुर्लभा कष्टेनापि लब्धुम-
 शक्या तेमिं—तेषां जेनामासतदाभासान्ता च मिष्यादृष्टीनामिति शेषः ।

जे पि पठन्ति च तेसिं जाणन्ता लज्जगारवभयेण ।

तेसिं पि णत्थि बोही पापं अणमोअमाणानं ॥ १३ ॥

येषां पतन्ति च तेषां जानन्तो लज्जार्णवभयेन ।

तेषामपि नास्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानाम् ॥

जे पि पठन्ति च तेसिं ये सम्पद्दर्शनादधृष्टा अपि पुर्या तेसिं-
 तेषां परित्यक्तजिनमुद्राणां मयुरपिच्छाचोपकरणज्ञानोपकरणरक्षितानां
 पादे कायधरयुगले पतन्ति नमस्कारं कुर्वन्ति पूर्वमुद्राया इति । जाणन्ता
 विद्वतोऽपि जिनमुद्राधिराधका एते इत्यगच्छन्तोऽपि । लज्जागारव-
 भयेण लज्जया श्रयया, गारवेण स्मद्भिमानगर्वेण, भयेनापि रात्रमान्योऽ-
 स्माकं कमप्युपद्रवं कारयिष्यतीत्यादिभीत्या च । तेमिं पि णत्थि
 बोही तेषामपि बोधिर्नास्ति ते रत्नत्रयं प्रपादयन्तोऽपि रत्नत्रयाद्धृष्टा
 इति ज्ञातव्या इति भावः । कथनूतानां तेषां, पापं अणमोयमाणानं
 जिनदर्शनभ्रष्टाद्यदुपन्नं पापं पातकं तदनुमन्यमानानामिति शेषः । उक्तं
 च ममन्तभद्रेण गणिना

मयाशास्नेदलोमाद्य बुद्देयागमणिगिनां ।

प्रणामं दिनयं चैव न कुयुं नुद्धरयः ॥ १४ ॥

दुपिहं पि गंयनायं तीमु वि जोण्णु संजमो टादि ।

णाणम्मि करणमुद्रे उन्ममये दंमजं होइ ॥ १५ ॥

द्विविधमपि ग्रन्थयाग त्रिष्वपि योगेषु संयम तिष्ठति ।

ज्ञाने करणशुद्धे उद्भूतोऽने दर्शन भवति ॥

दुविहं पि ग्रन्थचायं द्विविधोऽपि ग्रन्थत्याग । तीसु वि जोएसु
त्रिष्वपि योगेषु मनवचनकायशुद्धिषु । संजमो ठादि सयगधारित्रं
तिष्ठति भवति । णाणम्मि करणसुद्धे सम्यग्ज्ञाने कृतकारितानुमोद-
निर्मले सति । उब्भसणे उद्भूभोजने च सति । दंमणं होदि सम्यक्त्वं
भवति मुनीनामिति शेष । अथ कोऽसौ द्विविधो ग्रन्थ इत्याह—वाङ्मा-
भ्यन्तरभेद इति । तत्र बाह्य परिग्रह कथ्यते—

क्षेत्र घास्तु धन धाम्यं द्विषद च चतुष्पद ।

कुप्य भाड हिरण्य च सुवर्णं च बहिर्दश ॥ १ ॥

क्षेत्र सस्याधिकरण । घास्तु गृह । धन द्रम्मादि । धान्य गोधूमादि ।
द्विषद दासीदामादि । चतुष्पद गोमहिषीवेगसरगजाश्वादि । कुप्य
कर्पासचन्दनकुकुमादि । भाड तैलघृतादिभृतं पात्र । हिरण्य ताम्ररु-
प्यादि । घटिताघटित सुवर्णं श्रान्तिकेतन हाटक कनकमिति यावत् ।
अभ्यन्तरग्रन्थश्चतुर्दशभेद —

मिथ्यात्यवेदहास्यादिषदकपायचतुष्टय ।

रागद्वयी च सगाः स्युरन्तराश्चतुर्दश ॥ १ ॥

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सब्बभावउवलद्धी ।

उवलद्धपयस्ये पुण सेयासेयं वियाणेदि ॥ १५ ॥

राग्यकचता ह्यन ज्ञानस सर्वमानोपलब्धिः ।

उल्लक्ष्यपदार्थे पुन श्रेयोऽन्धयो विजानाति ॥

सम्मत्तादो णाणं सम्यक्वाज्ज्ञान भवति यस्य सम्यक्त्वं नास्ति स
पुमानज्ञान एवत्यर्थ । णाणादो सब्बमाणउवलद्धि ज्ञानात्सर्वपदा-

१ यान शय्यासन कुप्य भाण्डं चेति बहिर्दश । इति पाठान्तरम् ।

धोनामुपलब्धि जीवादितत्वाना जीवस्य परिज्ञानं भवति । उवलद्ध-
पयत्थे पुण उपलब्धपदार्थे पुन उपलब्धश्चासौ पदार्थ उपलब्धपदार्थ-
स्तस्मिन्नुपलब्धपदार्थे सति । किं भवति, सेयासेयं वियाणेदि श्रेयः
पुण्य विशिष्टनीर्यकरनामकर्म, अश्रेय पाप चतुर्गतिपरिभ्रमणकारण निशे-
पेण जानीते । उक्तं च—

न सम्यक्त्वसमं विचित्रैकाल्ये त्रिजगत्स्यपि ।

श्रेयोऽश्रेयश्च मिथ्यात्वसमं मान्यत्तनूभृतां ॥ १ ॥

सेयासेयविदण्ह उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि ।

सीलफलेणभ्युदयं तत्तो पुण लहइ णिव्याणं ॥ १६ ॥

श्रेयोऽश्रेयोवेत्ता उद्धुतदुस्सील सीलवानपि ।

सीलफलेनाभ्युदयं तत् पुन लभते निर्वाणम् ॥

सेयासेयविदण्ह श्रेयस पुण्यस्य, अश्रेयस पापस्य विदण्ह—वेत्ता
पुमान् । उद्धुददुस्सील उन्मूलितदुःशीले भवति । सीलवंतो वि
शीलवान् पुमान् । सीलफलेण शीलफलेन कृत्वा । अभ्युदयं लहइ-
अभ्युदय सासारिकं सुखं प्राप्नोति । तत्तो पुण णिव्याणं लहइ तत्
पुनर्निर्वाणं लभते मोक्षं प्राप्नोति ।

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं ।

जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सन्नदुक्खाणं ॥ १७ ॥

जिनवचनमौपधिमिदं विषयमुखविरेचनममृतभूतम् ।

जरामरणव्याधिहरणं खयकरणं सर्वदुःखानाम् ॥

जिणवयणमोसहमिणं जिनवचनमौपधिमिदं इदं पूर्वोक्तलक्षणं
जिनवचनं सर्वज्ञवीतरागभायितं हेतुहेतुमद्भाषासहितं औपधं वर्तते । कथं-

भूत जिनवचन औपय, विषयसुखनिरेचन निषयाणा पचेद्रिसार्थानां
स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दाना सम्बन्धितेन यसुखं निषयसुख तस्य निरेचन
दूरीकरण । अमिदभूदं अमृतभूतं अविद्यमान मृत मरण यत्र भस्माद्वा
भव्याना तदमृतभूत अमृतोपमं । अतएव जरमरणवाहिहरणं जरा-
मरणव्याधिहरण विनाशक । स्वयकरणं सन्नदुःखाणं क्षयकरण
मूलादुन्मूलक सर्वदुःखाना शरीरमानसागतुदुःखाना विध्वंसकमि-पर्यं ।

एकं जिणस्स रूपं वीर्यं उकिट्ठसावयाणं तु ।

अवरट्ठियाण तइयं चउत्थं पुण लिंगदंसणं णत्थि ॥ १८ ॥

एक जिनस्य रूपं द्वितीय उत्कृष्टधावक्तानां तु ।

अवरस्थितानां तृतीय चतुर्थं पुन लिङ्गदर्शनं नास्ति ॥

एकं जिणस्स रूपं एकमद्वितीय जिनस्य रूपं नम्ररूप । वीर्यं
द्वितीय उत्कृष्टधावक्ताणां तु । उक्तं च—

आधास्तु पइ जघन्या स्युमंध्यमास्तवनु प्रया ।

शेषौ द्वापुत्तमापुत्तौ जैनेषु जिनशासने ॥ १ ॥

तेन—

“ दसनवयसामाइयपोसहसचित्तगयभत्ते य ” इति गाथासूक्तयिता
श्रावका पइजघन्या कथ्यन्ते । “ वमारमपरिमाह ” इति गाथापादो-
क्तास्त्रय श्रावका मध्यमा उच्यन्ते । शेषौ द्वापुत्तमापुत्तौ जैनेषु जिनशा-
सने “ अनुमणमुदिददेसनिदो य ” अनुमतादुदिष्टद्विरतो देशवि-
रतश्च कथ्यन्ते उत्कृष्ट धावक उच्यन्ते इति । अवरट्ठियाण तइयं
अवरस्थिताना आर्यिकाणा तइयं (तृतीय) । चउत्थं पुण लिंग-
दंसणं णत्थि अपरस्थितानामार्यिकाणा तृतीय दर्शनं चतुर्थं पुन-

लिङ्गदर्शन नास्ति । त्रीण्येव त्रिनशासने लिङ्गदर्शनानि प्रोक्तानि न
न्यूनानि नाप्यधिकानीति शेषः ।

छद्मव्य णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिदिद्वा ।

सद्दहद् ताण रूवं सो सदिद्दी मुणेयव्वो ॥ १९ ॥

पट्ट द्रव्याणि नव पदार्था पञ्चास्तिकाया सप्त तत्त्वानि निर्दिष्टानि ।

श्रद्धाति तेषा रूप स सदृष्टि ज्ञातव्य ॥

छद्मव्य पट्टद्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्मकालाकाशा पट्ट द्रव्याणि
भवन्ति । वर्तमानकाले द्रवन्तीति द्रव्याणि भविष्यति काले
द्रोष्यन्ति अतीतकालेऽदुद्रव्यमिति द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्मकाला-
काशनामानि । नव पयत्था नव पदार्था जीवाजीवपुण्यपापास्त्रयबन्धस-
वरनिर्जराभोक्षनामान । पंचत्थी पञ्चास्तिकाया जीवपुद्गलधर्माधर्माका-
शनामान पञ्चास्तिकाया उच्यन्ते । सत्त तच्च णिदिद्वा सप्त तत्त्वानि
निर्दिष्टानि कथितानि जीवाजीवास्त्रयबन्धसवरनिर्जराभोक्षनामानि । सद्द-
हद् ताण रूवं श्रद्धाति तेषा रूप स्वरूपं । सो सदिद्दी मुणेयव्वो
स पुमान् सदृष्टिरिति मन्तव्यो ज्ञातव्यः । तेषु द्रव्यादिषु जीव सचेतनः ।
पुद्गलो धर्मोऽधर्म काल आकाशश्च पञ्चाचेतना । पट्टविधोऽपि पुद्गलो
मूर्तः । इतरे पञ्चामूर्ताः । जीवपुद्गलयोर्गते कारण धर्मः । सर्वेषां
स्थिते कारणमधर्मः । सर्वेषामाधारमाकाशः । वर्तनालक्षण काल-
रत्नाना राशिवत् भिन्नपरमाणुकः । धर्माधर्माकाशा अखण्डप्रदेशाः । काल-
पुद्गलयोर्जीवानां च प्रदेशेषु खण्डत्व, न त्वेकजीवस्य प्रदेशानां खण्डत्व ।
धर्माधर्मकालाकाशाश्चत्वारो गमनागमनरहिताः । गमनागमने जीवपुद्गला-
नामन्यत्र सिद्धजीनेभ्यः । धर्माधर्मकजावानामसंख्येया प्रदेशाः । संख्ये-
यासंख्येयानन्तप्रदेश आकाशः । पुद्गलोऽनन्तप्रदेशश्च । सर्वाणि द्रव्या-

एकतो मिलितान्यपि निजनिजगुणान् जहति । एव तत्त्वास्तिकायपदार्थानामपि स्वरूप ज्ञातव्यम् ।

जीवादी सदृहणं सम्मत्तं जिणवरेहिं पण्णत्तं ।

ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥ २० ॥

जीवादीनां सदृघान् सम्यक्त्वं जिनवरैर्निर्दिष्टम् ।

व्यवहारात् निश्चयत आत्मा भवति सम्यक्त्वम् ॥

जीवादीनां श्रद्धान् रुचिं सम्यक्त्वमिति जिनवरैः प्रणीतं तत्तु सम्यग्दर्शनं व्यवहाराज्ज्ञातव्यम् । णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं निश्चयतो निश्चयनयादाभैव भवति सम्यक्त्वं रुचिसामान्यत्वादित्यर्थः ।

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण ।

सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥ २१ ॥

एवं जिनप्रणीतं दर्शनरत्नं धरत भावेन ।

सारं गुणरत्नेषु सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण । जिणपण्णत्तं जिनैः प्रणीतं जिनैः कथितम् । दंसणरयणं दर्शनरत्नं सम्यक्त्वमाणिक्त्वं । धरेह भावेण धरत यूयं भावेन धीतरागसर्वज्ञस्य भक्त्या । उक्तं च—

एकापि समर्थेयं जिनभक्तिर्दुर्गतिं निवारयितुम् ।

पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिर्धनं कृतिम् ॥ १ ॥

कथंभूतं दर्शनरत्नं, सारं उत्कृष्टम् । केषु सारं, गुणरयणत्तयं गुणेषु उत्तमक्षमादिषु तथा रत्नत्रये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्येषु । उक्तं च—

दर्शनं ध्यानचारित्र्यास्साधिमानमुपादनुते ।

दर्शनं वर्णधारं तन्मोक्षमार्गं प्रचक्षते ॥ १ ॥

पुनरपि कथंभूतं दर्शनरत्नं, सोवाणं सोपानं पादारोपणस्थानम् । अतिसंख्योपेतं, षष्ठमं प्रथमं अद्वितीयम् । कस्य, मोक्खस्स मोक्षस्य परमनिर्वाणस्य ।

जं सकृद् जं कीरद् जं च ण सक्केद् जं च सदहणं ।
 केवलजिणेहि भणियं सदहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

यत् शक्नोति तत् क्रियते यच्च न शक्नुयात् तस्य च श्रद्धान् ।
 केवलजिने भणितं श्रद्धानस्य सम्यक्त्वम् ॥

जं सकृद् जं कीरद् यच्छक्नोति तत्क्रियते विधीयते । जं च ण
 सक्केद् यच्च न शक्नुयात् यत्कर्तुं न शक्नोति । तं च सदहणं तस्य
 श्रद्धान् तस्य ज्ञानाचारादे रोचनं कर्तव्यम् । केवलजिणेहि भणियं
 केवलज्ञानिभिर्जिनैर्भणितं प्रतिपादितम् । केवलज्ञानं दिना तीर्थकरपरम-
 देवा धर्मोपदेशान् न कुर्वन्ति । अन्यमुनीनामुपदेशस्त्वनुरादरूपो ज्ञातव्यः ।
 अथवा केवलजिभिः समग्रशरणमण्डितकेवलज्ञानसंयुक्ततीर्थकरपरमदेवै-
 र्भणितं जिनैरनगारक्षेत्रजिभिर्भणितम् । किं भणितम् ? सदहमाणस्स
 सम्मत्तं श्रद्धानस्य पुरयस्य रोचमानस्य जीवस्य सम्यक्त्वं सम्यग्दर्शनं
 भवति ।

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालपसत्त्या ।
 एदे तु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं ॥ २३ ॥

दर्शनज्ञानचारित्र्ये तपोविनये नित्यकालप्रवृत्त्या ।

एते तु वन्दनीया ये गुणवादी गुणधराणाम् ॥

दंसणणाणचरित्ते दर्शनज्ञानचारित्र्ये दर्शनं च ज्ञानं च चारित्र्यं च
 दर्शनज्ञानचारित्र्यं समाहारो द्वन्द्वः तस्मिन् दर्शनज्ञानचारित्र्ये एतच्चित्तये ।
 तथा तवविणये तपोविनये च चतुर्विजया गतायामित्यर्थः । णिच्च कालप-
 सत्त्या नियंकाग्रप्रवृत्त्या नित्यमेव प्रकर्षेण स्वस्या एकलोलीभाय प्राप्ता ।
 एदे तु वंदणीया एते पुण्या महामुनयो वन्दनीया नमस्कृतव्या । एते

के १ जे गुणवादी गुणधराणं ये मुनय स्वय सम्पद्दर्शनादीनामाराधका अपरेषा गुणधराणामाराधनाराधकाना । ये मुनयो गुणनादिनो गुणवर्णनशीला न मत्सरिणस्ते वन्दनीया नमस्करणीया इत्यर्थ ।

महजुप्पणं रूवं ददुं जो मण्णाए ण मच्छरिओ ।

सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइद्दी हवइ एसो ॥ २४ ॥

सहजोत्पन्न रूप ददुं यो मन्यते न मत्सरी ।

स संयमप्रतिपन्न मिथ्यादृष्टिर्भवति एव ॥

सहजुप्पणं रूवं सहजोत्पन्न स्वभावोत्पन्न रूप नम रूप । ददुं ददुं विलोक्य । जो मण्णाए ण मच्छरिओ य पुमान् न मन्यते नमत्वेऽहं किं करोति नम्रवे किं प्रयोजन पशव किं नम्रा न भवन्तीति श्रूते । मच्छरिओ परेषा शुभकर्मणि द्वेषी । सो संजमपडिवण्णो स पुमान् संयमप्रतिपन्नो दीक्षा प्राप्तोऽपि । मिच्छाइद्दि हवइ एसो मिथ्यादृष्टिर्भवत्येव । अपवादवेष धरन्नपि मिथ्यादृष्टिर्जातव्य इत्यर्थ । क्लोऽपवादवेष १ कलौ किल श्लेच्छादयो नम्र दृष्टोपद्रव यतीना कुर्वन्ति तेन मण्डपदुर्गे श्रीवसन्तकीर्तिना स्वामिना चर्पादिवेलाया तद्दीप्तादरादिकेन शरीरमाच्छाद्य चर्पादिक कृत्वा पुनस्तन्मुञ्चन्तीरुपदेश कृत सममिना इत्यपवादवेष । तथा नृपादिवर्गोत्पन्न परमवैराग्यवान् क्षिण्णादिरहित उत्पन्नमेहनपुटदोष लज्जावान् वा शीताद्यसाहिष्णुर्वा तथा करोति सोऽप्यपवादोऽपि प्रोच्यते । उत्सर्गत्रेपस्तु नम्र एवेति ज्ञातव्यं । सामान्योक्तो विधिरुत्सर्ग । विशेषोक्तो निधिरपवाद इति परिभाषणात् ।

अमराण वंदियाणं रूवं ददुंण सीलसहियाणं ।

जे मारवं करति य सम्मत्तविवज्जिया होंति ॥ २५ ॥

अमराणां वा दितानां रूप ददुं सीलसहितानाम् ।

ये मर्षं कुर्वन्ति च सम्मत्तविवर्जिता भवन्ति ॥

अमराण चंदियाणं अमराणा भजनग्रासिब्यन्तरज्योतिष्ककल्पवा-
सिकल्पातीतदेवाना वन्दिताना तीर्थकरपरमदेवाना । रूवं दहू ण रूपं
वेप दह्वा विलोक्य । कथभूताना, सीलमहियाणं व्रतरक्षासहिताना ।
जे गारवं करति य ये पुरुषा जेनाभासास्तथान्ये च गर्गं कुर्वन्ति च-
कारात्सेवा न कुर्वन्ति । सम्मत्तमिवज्जिया होंति सम्यक्त्वरत्नरहिता
भवन्ति, मिथ्यादृष्टया भवन्ति, सम्यक्त्वरत्नघ्युता भवन्ति, महापातकिनो
भवन्ति, दीर्घकाल संसारमध्ये पर्यटन्ति । उक्तं च—

ये शुरु नैव मन्यन्ते तदुपास्ति न कुर्वते ।

अन्धकारो भवेत्तेषामुदितेऽपि दिवाकरे ॥ १ ॥

अस्संजदं ण वंदे वच्छविहीणो वि सो ण वंदिज्ज ।

दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि ॥२६॥

असयत्त न वन्देत वच्छविहीनोऽपि स न वन्देत ।

द्वावपि भवत समानी एकोऽपि न संयतो भवति ॥

अस्संजदं ण वंदे असयत्त गृहस्थवेपधारिण संयम पालयन्तमपि न
वन्देत । वच्छविहीणो वि सो ण वंदिज्ज वच्छविहीनोऽपि नप्तोपि स
संयमरहितो न वन्देत न नमस्कुर्येत । दुण्णि वि होंति समाणा द्वि-
तयेऽपि समाणा संयमरहिता भवन्ति । एगो वि ण संजदो होदि
(एकोऽपि संयतो न भवति) । गृहस्थ संयमं प्रतिपालयन्नप्यसयमी
ज्ञातव्य इति भावः ।

ण पि देहो वंदिज्जड ण पि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो ।

को वंदमि गुणहीणो ण सवणो णेयं सावओ होइ ॥२७॥

नापि देहो वन्दते नापि च कुल नापि च जातिसंयुक्तः ।

क वंदे गुणहीन न हि श्रवणो नैव श्रावको भवति ॥

ण वि देहो वंदिज्जइ नापि देहो वन्द्यते । ण वि य कुलो
नापि च कुल पितृपक्षो वन्द्यते । ण वि य जाइसंजुत्तो न च
जातिसयुक्तो मातृपक्षशुद्ध पुमान् वन्द्यते । को वंदमि गुणहीणो
कं वदे गुणहीन अपि तु गुणहीनं न कमपि वदे । न हु सवणो णेव
सावओ होइ गुणहीन पुमान् न थवणो दिगम्बरो भवति नैव श्रावको
भवति देशवती च न भवति । गुणगानेउ मुनिर्वन्दनीय इति भाव ।

वंदामि तवसमण्णा सीलं च गुणं च बंभचेर च ।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण सुद्धभावेण ॥२८॥

वन्दे तप समापन्नान् सीलं च गुणं च ब्रह्मचर्यं च ।

सिद्धिगमनं च तेषां सम्यक्त्वेन सुद्धभावेन ॥

वंदामि तवसमण्णा वन्देऽहं श्रीकुन्दकु दाचार्य । कान्, मुनी-
नित्यपरकार । कनभूतान् मुनीन्, तवसमण्णा तप समापन्नान् ।
तथा तेसिं तेषां मुनीनां । सीलं च पूर्वोक्तमष्टादशसहस्रसंख्य सीलं च
वन्दे । गुणं च पूर्वोक्तचतुरशीतिलक्षसंख्य गुणं चाहं वन्दे । तथा तेषां
मुनीनां पूर्वोक्तं नवत्रिंशं ब्रह्मचर्यं च वन्दे । तथा तेषां मुनीनां सिद्धि-
गमणं च आमोपलब्धिर्लक्षणं सिद्धिगमनं मुक्तिप्राप्तिं वदे । केन कृत्वा
वन्दे, सम्मत्तेण सम्यक्त्वेन श्रद्धया रुचिरूपेण सम्यग्दर्शनेन वदे । न
केवलं सम्मत्तेण वन्दे किं तु सुद्धभावेण निर्मलपरिणामेन अकुटिलतया
निर्मायत्वेनेति तापर्यं ।

चउसट्ठिचमरसहिओ चउतीसहि अइसएहि संजुत्तो ।

अणुचैरदहुसत्तहिओ कम्मकरयकारणनिमित्ते ॥२९॥

१ तवसउण्णा व । तवसमाण व । २ अणवर इति व पाठ तस्यार्थो
निरंतरमिति कृत । क ख ॥ पुस्तके तु उक्त एव पाठ

चतु षष्टिचमरसहित चतुस्त्रिंशद्भिरतिशयै सयुक्त ।
अनुचरबहुसत्त्वहित कर्मक्षयकारणनिमित्ते ॥

चउसष्टिचमरसहिओ चतु षष्टिचामरसहितस्तीर्थकरपरमदेवो
भजति त वन्दे इति त्रिपमव्याख्या ज्ञातव्या । चउतीमाहि अइसएहिं
संजुत्तो चतुस्त्रिंशदतिशयै सयुक्तस्तीर्थकरपरमदेवो भजति तं वन्दे ।
अणुचरबहुसत्त्वहिओ अनुचरबहुसत्त्वहित स्वामिना सह ये पृष्ठतो
गच्छन्ति तेऽनुचरा सेवका तथा बहुसत्त्वा अपरेऽपि जीवास्तेभ्यो
हित स्वर्गमोक्षदायक इत्यर्थः । कम्मक्षयकारणनिमित्ते कर्मणां
क्षयकारण शुक्लप्यानं तस्य निमित्ते प्राप्त्यर्थं तं वन्दे इति क्रियाकारक-
सम्बन्धः ।

अथ कानि तानि कर्मक्षयकारणानि शुक्लप्यानहेतव इति प्रश्ने
गाथामिमां चकार श्रीकुन्दकुन्दाचार्य —

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण ।

चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥३०॥

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्र्येण संयमगुणेन ।

चतुर्णामपि समायोगे मोक्षो जिनशासने दृष्टः ॥

णाणेण ज्ञानेन । दंसणेण य दर्शनेन च । तवेण तपसा । चरि-
एण चरितेन चारित्र्येण । संजमगुणेण एतच्चतुष्टय संयमगुण उच्यते ।
चउहिं पि समाजोगे चतुर्णामपि समायोगे सति एकत्र सामग्र्यां
सत्यां । मोक्खो जिणमासणे दिट्ठो मोक्षो जिनशासने दृष्टः कथितः ।
समस्तेन मोक्षो भजति न तु व्यस्तेन । उक्तं च बीरनन्दिशिष्येण पद्म-
नन्दिना—

घनशिलिनि मृतोऽन्धः संचरन् यादृमहि

द्वितयविकल्मशमूर्तिर्याक्षमाणोऽपि यजः ।

अपि सनयनपादोऽथ्रहृधानश्च तस्माद्
दृगवगमचरित्रैः सयुतेरेव सिद्धिः ॥ १ ॥

पाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं ।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं ॥ ३१ ॥

ज्ञान नरस्य सारं सारमपि नरस्य भवति सम्यक्त्वम् ।
सम्यक्त्वत चरणं चरणतो भवति निर्वाणम् ॥

पाणं णरस्स सारो ज्ञान नरस्य जीरस्य सार । सारो वि णरस्स
होइ सम्मत्तं सम्यग्ज्ञानादपि जीवस्य सम्यक्त्व सारतर भवति । कस्मात्
सम्मत्ताओ चरणं सम्यक्त्वाच्चरणं चारित्रं भवति यस्मात्, सम्यक्त्व
विना चारित्रं प्रतिपाद्यन्नपि पुमानचारित्रा भवति । चरणाओ होइ
णिव्वाणं चरणाच्चारित्रानिर्वाणं सर्वकर्मक्षयलक्षणो मोक्षो भवति ।
तेन सर्वेभ्यो दर्शनमुकृष्टमिति ज्ञातव्यम् ।

पाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिण्ण सम्मसहिण्ण ।
चोण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण संदेहो ॥ ३२ ॥

ज्ञाने दर्शने च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।
चतुर्णामपि समायोगे सिद्धा जीवा न संदेहः ॥

पाणम्मि ज्ञाने सति । दंसणम्मि य दर्शने सति । तवेण तप-
सा कृत्वा । चरिण्ण चरितेन चारित्रेण कृत्वा । सम्मसहिण्ण सम्य-
क्त्वसहितेन । ज्ञानं तपश्चारित्रं च व्यर्थं सम्यक्त्व विना । तेन चतुर्णां
समायोगे मलापक सति सिद्धा जीवा ण संदेहो जीवा सिद्धा मुक्ति
गता अत्र संदेहो नास्ति । तत्रा चोक्तः—

हृत ज्ञान क्रियाशून्यं हता चाह्वानिन क्रिया ।
धावन्नप्यन्धको नष्ट पश्यन्नपि च पशुक ॥ २ ॥

तथा चार्हता —

ज्ञान पगौ किया चान्धे नि श्रद्धे नार्थद्वय ।

ततो ज्ञानक्रियाध्वजाग्रय तत्पदकारण ॥ १ ॥

कल्याणपरपरया लहंति जीवा विमुद्धसम्मत्तं ।

सम्मदसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए ॥ ३३ ॥

कल्याणपरम्परया लभन्ते जीवा विमुद्धसम्यक्त्वम् ।

सम्यग्दर्शनरत्न अभ्यर्षते सुरासुरे लोके ॥

कल्याणपरपरया लहंति जीवा विमुद्धसम्मत्तं कल्याणानां गर्भा-
वतारज माभिषेकनिष्क्रमणज्ञाननिर्वाणानां परम्परया श्रेण्या सह जीवाः
भव्यप्राणिनो विमुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारसम्यक्त्वं प्राप्नुवन्ति । यदैव जीव
सद्दृष्टिर्भवति तदैव तीर्थं परमदेवो भवतीति भावः । सम्मदसण-
रयणं सम्यग्दर्शनरत्नम् । अग्घेदि सुरासुरे लोए अभ्यर्षते पूज्यते
बहुमूल्यं भवति देवदानमभुजने । एतद्रत्नमूल्यं कोऽपि कर्तुं न श-
क्नोति । करोति चेन्मूल्यं तदा सद्यः कुष्टी मुखे भवति ।

दहूण य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गुत्तेण ।

लद्धूण य सम्मत्तं अकखयसुखं च मोक्खं च ॥ ३४ ॥

दृष्ट्वा च मनुजत्वं सहितं तथा उत्तमेन गोत्रेण ।

लब्ध्वा च सम्यक्त्वं अक्षयसुखं च मोक्षं च ॥

दहूण य दृष्ट्वा च ज्ञात्वा । किं, मणुयत्तं मनुजत्वं मनुष्यजन्म अनेक
दृष्टान्तैर्दुर्लभं विचार्य महासमुद्रे कराच्युत्तरनमिव । महिम्नं तह उत्त-
मेण गोत्तेण उत्तमेन गोत्रेण कुलेन सहितं सयुक्तम् । लद्धूण य सम्मत्तं
सम्यक्त्वं च लब्ध्वा । अक्षयसुखं च मोक्षं च एतसामेव
प्राप्य अक्षयसौख्यं निजशुद्धबुद्धपरमामश्रद्धानज्ञानानुचरणस्वभावोत्थं

परमानन्दलक्षणं मुखं भवति न केवलमक्षयमुखं भवति मोक्षं च
द्रव्यकर्मनोकर्मभावकर्मरहित ऊर्ध्वगमनलक्षणं परमनिर्वाणं च चकास्ति ।

विहरदि जाव जिणिंदो सहस्रसुलक्षणोहि संजुत्तो ।

चउतीसअइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिथा ॥३५॥

विहरति यावज्जिनेन्द्रः सहस्राष्टसुलक्षणैः संयुक्तः ।

चतुर्विंशदतिशययुतः सा प्रतिमा स्थावरा भणिता ॥

विहरदि जाव जिणिंदो विहरति पर्यटति आर्यखण्डे यावत्सम्बो-
धनं करोति जिनेन्द्रस्तीर्थकरपरमदेवः । स कर्मभूतः, सहस्रसुलक्षण-
ोहि संजुत्तो अष्टाधिकसहस्रलक्षणैः संयुक्तः । चउतीसअइसय-
जुदो चतुर्विंशदतिशययुतः । सा पडिमा थावरा भणिथा सा
प्रतिमा प्रतियातना प्रतिबिम्बं प्रतिकृतिः स्थावरा भणिता इह मध्य-
लोके स्थितत्वात् स्थावरप्रतिमेत्युच्यते । मोक्षगमनकाले एकस्मिन्
समये जिनप्रतिमा जंगमा कथ्यते । व्यवहारेण तु चन्दनकनकमहा-
मणिरुफटिकादिघटिता प्रतिमा स्थावरा । समवशरणमण्डिता जंगमा
जिनप्रतिमा प्रतिपाद्यते । अथ कानि तानि जिनलक्षणानि अष्टाधिकसह-
स्रसंख्यानीति चेदुच्यन्ते—श्रीवृक्षः । करचरणेषु शंखः । अम्भोजं ।
स्वस्तिकः । अङ्गुशः । तोरण । चामरं । श्वेतातपत्र । सिंहासनं ।
ध्वजः । मत्स्यौ । कुम्भौ । कच्छप । चक्रं । समुद्रः । सरोवरं । वि-
मानं । भवनं । गजः । नरनार्यौ । सिंह । बाणधनुषी । मेरु । इन्द्रः ।
पर्वतः । नदी । पुरं । गोपुरं । चन्द्रः । सूर्यः । जात्यश्वः । व्यजनं ।
वेणु । वीणा । मृदङ्गः । पुष्पमाले द्वे । पङ्कजं । हस्तः । कुण्डलादि-
षोडशाभरणानि । फलिनमुशानं । सुपककलमक्षेत्रं । रत्नद्वीपः ।
वज्रं । मही । लक्ष्मीः । सरस्वती । सुरभी । वृषभः । चूडारत्नं ।
महानिधिः । कल्पवल्ली । हिरण्यं । जम्बूद्वीपः । गरुडः । नक्षत्राणि ।

तारका । राजसदन । प्रहा । सिद्धार्यपादप । अष्टप्रातिहार्याणि ।
 अष्टमगठानि । एवमादीनि अष्टोत्तरशत लक्षणानि । तिलकम-
 सकादीनि नवशतव्यञ्जनानि तान्यपिलक्षणशब्देनोच्यन्ते । अथ के
 ते चतुस्त्रिंशदतिशया ? निस्वेदता । निर्मलता । क्षीरगौररुधिरता ।
 समचतुरस्रसस्यान । यत्रवृषभनाराचसहनन । सुरूपता । सुग-
 न्धता । सुलक्षणता । अनन्तरीर्य । प्रियहितवादित्व । इत्येते दशा-
 तिशया जन्मन आरभ्य भवन्ति । तथा घातिकर्मक्षयजा दशातिशया
 सन्ति, ते के ? गव्यूतिशतचतुष्टयसुमिक्षता । गगनगमन । प्राणिवधा-
 भावः । मुक्तेरभाव । उपसर्गाभाव । चतुर्मुखत्व । सर्वत्रिद्याप्रमुख ।
 प्रतिबिम्बरहितत्व । लोचनपद्मनि स्पन्द । नखकेशानामवृद्धि । इति
 घातिकर्मक्षयजा दशातिशया । देवोपनीताश्चतुर्दशातिशया । तथा हि ।
 सर्वार्थमागधीका भाषा । कोऽयमर्थः ? अर्द्धं भगवद्भाषया मगधदे-
 शभाषात्मक । अर्द्धं च सर्वभाषात्मक । कथमेवं देवोपनीतत्वमिति चेत् ?
 मगधदेवसन्निधाने तथा परिणामतया भाषया सस्कृतभाषया प्रवर्तते ॥ १ ॥
 मैत्री च सर्वजनतान्निपया सर्वे जनसमूहा मागधप्रीतिकरदेवातिशय-
 यशात् मागधभाषया भाषन्ते परस्पर मित्रतया च वर्तन्ते इति द्वावति-
 शयौ ॥ २ ॥ सर्वर्तूना फलस्तवका । सर्वर्तूना पल्लवा । सर्वर्तूना
 पुष्पाणि तर्पादीना भवन्ति ॥ ३ ॥ आदर्शसदृशी रत्नमयी भूमिर्भवति
 ॥ ४ ॥ वायु पृष्ठत आगच्छति ॥ ५ ॥ सर्वलोकस्य परमानन्दो भव-
 ति ॥ ६ ॥ अग्रेऽग्रे योजनमेक सुगन्धगन्धावहा भूमिभाग प्रमार्जन्ति
 घूलीकटकखटकीटकर्करपापाणादिक च दूरीकुर्वन्ति ॥ ७ ॥ तद्भूम्युपरि
 मेघकुमारा गन्धोदक वर्षन्ति ॥ ८ ॥ सुवर्णपत्रपद्मरागमणिकेसरविराजितं
 योजनमेक कमल तादृशचतुर्दशकमलवेटितं स्वामिन पादाघो भवति
 तादृशानि पद्मानि सप्ताग्रे भवन्ति सप्त पृष्ठतश्च भवन्ति ॥ ९ ॥ अष्टादश

धान्यानि भूमौ निष्पद्यन्ते ॥१०॥ दिश आकाशश्च रजोधूमिकादिग्दाहादिर-
हिता भवन्ति ॥११॥ ज्योतिर्देवा व्यन्तरदेवा भवनप्राप्तिनश्च देवा सौधमे-
न्द्राज्ञया सर्वेषा देवादीना समाह्वानं कुर्वन्ति ॥१२॥ अग्नेऽग्ने धर्मचक्रं
गगने गच्छति चक्रं त्रिचक्रं गतं ॥१३॥ चतुर्दशोतिशयोऽष्टमङ्गलानि ॥१४॥
भृगार—सुरणां लुका । सालो-मजीर । कलश कनककुम्भ । ध्वज-
पताका । मुप्रीतिका विचित्रचित्रमयी पूजाद्रव्यस्थापनाहर्हा स्तम्भाधारकुम्भी ।
श्वेतच्छत्र । दर्पण । चामर च । एतानि प्रत्येकमष्टात्तरशतसंख्यानि ।
एव चतुर्दशातिशया देवोपनीता । अष्टप्रातिहार्याणि च भवन्ति—

अशोषघृक्ष. सुरपुष्पघृष्टिर्दिव्यध्वनिध्वामरमासन च ।

भामण्डल कुन्दुभिरातपत्र सप्तप्रातिहार्याणि जिनेश्वराणां ॥१॥

वारसविहृतवज्रुत्ता कर्म स्वविज्ज विहिवलेण स्तं ।

वोसट्टचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तर पत्ता ॥ ३६ ॥

द्वादशविधतपोयुक्ता वम क्षपयित्वा विधिबलेन स्वीय ।

•युस्तर्क्यकदेहा निर्वर्णमनुत्तरं प्राप्ताः ॥

वारसविहृतवज्रुत्ता द्वादशविधतपोयुक्ता मुनयः । कर्म स्वविज्ज
कर्माटविधं क्षपयित्वा । विहिवलेण चारित्र्यलेन । स्तं आत्मीय ।
वोसट्टचत्तदेहा पञ्चासनकायोत्सर्गलक्षणादिनिधियुत्सर्गेण त्यक्तशरीरा
मुनयः । णिव्वाणमणुत्तर पत्ता निर्गुणं मोक्षगनुत्तर सर्वगुणेषु लक्ष्म
प्राप्ता गता सिद्धा इत्यर्थः । सम्यक्त्वमाहात्म्यं सर्वभेदज्ज्ञातव्यमिति सिद्ध ।

इति श्रीपद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यचक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपिच्छा
चार्यनामपञ्चविराजितेन सीमन्धरस्वामिज्ञानसम्बोधितमन्त्रनेन श्रीजि-
नचन्द्रसूत्रिभारकपद्ममरणभूतेन कठिनालसवज्ञेन विरचिते पदप्राप्तपद्ये सर्व
मुनिमण्डलीमण्डितेन कठिनालगीतमस्वामिना श्रीमहिभूषणेन भट्टार-
केणानुमतेन सकलवेदब्रह्मसमाजसम्मानितेनोभयभाषाकवेचक्रवर्तिना श्रीपि-
द्यानन्दिशुर्वेदेवादिना सूत्रिवरश्रीश्रुतसागरेण विरचिता दशमप्राप्तपद्योका

चारित्रप्राभृतं ।



सर्वार्थसिद्धिप्रदमर्हदीश, विद्यादिनन्द वृषसस्यकन्द ।
मन्दोऽपि नत्वा चिवृणोमि भक्त्या, चारित्रसारशृणुतार्यमुख्या ॥१॥

सव्यण्ह सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी ।
वन्दित्तु तिजगण्दा अरहंता भव्वजीवेहि ॥१॥
णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेमिं ।
मुक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे ॥ २ ॥

सर्वज्ञान् सर्वदर्शिन निर्मोहान् वीतरागान् परमेष्ठिन ।
वन्दित्वा त्रिजगद्वन्दितान् अहत्त भव्यजीवे ॥
ज्ञान दर्शनं सम्यक् चरित्र शुद्धिकारणं तेषाम् ।
मोक्षाराधनहेतु चारित्र प्राभृतं वक्ष्ये ॥

जुगल । सव्यण्ह सर्वज्ञान् । वन्दित्तु वदित्वा । चारित्तं पाहुडं
वोच्छे चारित्र नाम प्राभृत चारित्रप्राभृत चारित्रसार नाम ग्रन्थं वक्ष्ये ।
क कर्ता, अह कुन्दकुन्दाचार्य । कथभूतान् सर्वज्ञान्, सव्वदंसी
सर्वदर्शिनो लोकालोकावलोकनशीलान् । अपर किं विशिष्टान् सर्वज्ञान्,
णिम्मोहा निर्मोहान् मोहनीयकर्मरहितान् । भूयोऽपि किं रूपान्,
वीयराय वीतरागान् वीत क्षय गतो रागो येषां ते वीतरागास्तान्, अज
क्षेपणे इति तावद्भातु “अजेयी” इति सूत्रेण वीरादेश, निष्ठाक्तप्र-
त्यये वीत इति निष्पद्यते । वीयराय इत्यत्र शस्त्रलोप । भूयोऽपि किं
विशेषणावितान्, परमेट्ठी परमेष्ठिन, कोऽर्थ, परमे इन्द्रचन्द्रनरेन्द्रपू-
जिते पदे तिष्ठतीति परमेष्टीति व्युत्पत्तेः समवशरणसम्पन्नमण्डितानि-

त्यर्थ । अपर कथंभूतान् सर्वज्ञान्, त्रिजगवंदा त्रिजगद्विदितान्
त्रिमुवनस्थितमव्यजनपूजितानियर्थ । पुनरपि कथंभूतान्, अरहंता
अविमोह, रकारेण रजो लभ्यते तत्तु ज्ञानाभरणदर्शनागणकर्मद्वयं
लभ्यते तथा तेनैव प्रकारेण रहस्यमंतराय कथ्यते तेन घातिकर्मचतुष्टय-
हननादिन्द्रादिहतामनस्यसंभविनीमर्हणा पूजामर्हन्तीत्यर्हं तस्तानर्हत ।
तथा भव्यजीवेहिं भव्यजीवेर्बन्वा इति सम्बन्ध । णाणं देसण सम्मं
चारित्तं सोहिकारणं तेसिं तेषां सर्वज्ञानां घातिसघातघातनलक्षणाया
शुद्धे कारण हेतुर्ज्ञानं दर्शनं सम्यक्चारित्रं च कारण । सम्म इति शब्द
एकत्र गृहीतोऽपि त्रिभिर्योग्य तेनायमर्थ सम्यग्ज्ञानं सम्यादर्शनं सम्य-
क्चारित्रं च सर्वेषामपि कर्मणां क्षयकारणं मूगदुन्मूलनस्य हेतुरिति
भाव । तेन मुखपाराहणहेतुं तेन कारणेन मोक्षाराधनहेतुं कारण । किं ?
चारित्तं चारित्रं । पाहुडं प्रामृत सारभूतं शास्त्रमहं वक्ष्य इति क्रिया-
कारकसम्बन्ध । युगल । एतद्रायाद्वय युगलं युगं वर्तते ।

एण तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स अररयामेया ।

तिण्हं पि सोहणत्वे जिणमणियं दुविह चारित्तं ॥ ३ ॥

एते त्रयोपि भावा भवन्ति जीवस्य अक्षय्य अमेया ।

त्रयाणामपि शोधनार्थं जिनभणितं द्विविधं चारित्रम् ॥

एण तिण्णि वि भावा एते त्रयोऽपि भावा ज्ञानदर्शनचारित्रपदा-
र्थास्त्रय परिणामा । हवंति जीवस्स जीवस्यामन सम्बन्धिनो भव-
न्ति न तु पुद्गलस्येति भाव । कथं भूतास्त्रयोऽपि भावा अररयामेया
अक्षया अधिनश्वरा, अमेया अमर्यादीभूता अनंतानन्ता इत्यर्थ । ज्ञानस्य
तावदानन्त्यं भवत्येव लोकालोकव्यापकत्वात् । सम्यक्चारित्रयो कथ-
मनन्तत्वे नियतामप्रदेशस्थितत्वादिति चेन्न तयोरपि तत्तद्व्यतिरेकत्वात्,
यावन्मात्रं ज्ञानं तावन्मात्रं सम्यग्दर्शनं सम्यक्चारित्रं च तेषामेकीभाव-

निश्चयात् । तिष्ठं पि सोहणत्थे त्रयाणामपि सम्भग्दर्शनज्ञानचारि-
त्राणा शोधनार्थे शोधननिमित्त । जिणभणियं दुविह चारित्तं जिनैर्भणि-
तं प्रतिपादित द्विविध चारित्र दर्शनाचारचारित्राचारलक्षण, तद्वक्ष्यति ।

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं भणियं ।
णाणस्स पिच्छियस्स य समवण्णा होइ चारित्तं ॥ ४ ॥

यद् जानाति तद् ज्ञानं यत् पश्यति तच्च दर्शनं भणितम् ।

ज्ञानस्य दर्शनस्य च समापन्नात् भवति चारित्रम् ॥

जं जाणइ तं णाणं यज्जानाति तज्ज्ञानं । जं पिच्छइ तं च
दंसणं भणियं यपश्यति तच्च दर्शनं भणितम् । “कृत्ययुटोऽन्यत्रापि च”
इतिवचनात्कर्तरि युट्प्रत्ययः । णाणस्स दंसणस्स य समवण्णा होइ
चारित्तं ज्ञानस्य दर्शनस्य च समापन्नात् समायोगाच्चारित्रं भवति ।

जिणणाणदिदिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ।
विदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि ॥ ५ ॥

जिनज्ञानदृष्टिशुद्धं प्रथमं सम्भक्त्वचरणचारित्रम् ।

द्वितीयं संयमचरणं जिनज्ञानसंदेशितं तदपि ॥

जिणणाणदिदिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं जिनस्य सर्वज्ञ-
धीतरागस्य सम्बन्धि यज्ज्ञानं दृष्टिर्दर्शने च ताम्या शुद्धं पञ्चविंशति-
दोपरहितं प्रथमं तान्देकं सम्भक्त्वचरणचारित्रं दर्शनाचारचारित्रं भवति ।
विदियं संजमचरणं द्वितीयं संयमचरणं चारित्राचारलक्षणं चारित्रं
भवति । जिणणाणसदेसियं तं पि जिनस्य सम्बन्धि यत्सम्यग्ज्ञानं
तेन सन्दर्शितं सम्पङ्गुनिर्गमितं तदपि चारित्रं भवति । उक्तं च—

मूढत्रयं मदाध्यायीं तथा नायकानि पट् ।

अष्टौ शकादयश्चेति दृग्दोषाः पञ्चविंशतिः ॥ १ ॥

एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाई ।

परिहरि सम्मत्तमला जिणमणिया तिविहजोएण ॥६॥

एवं चैव ज्ञात्वा च सर्वान् मिथ्यात्वदोषान् शंकादीन् ।

परिहर सम्यक्त्वमलान् जिनमणितान् त्रिविधयोगेन ॥

एवं चिय णाऊण य एव चैव ज्ञात्वा च । सव्वे मिच्छत्तदोस संकाई सर्वान् मिथ्यात्वदोषान् शंकादीन् । परिहरि परिहर हे जीव ! त्वं परित्यज । कथभूतान्, सम्मत्तमला सम्यक्त्वमलान् पूर्वोक्तलोक-कथितान् पंचविंशतिदोषान् । कथभूतान्, जिणमणिया सर्वज्ञमणि-तान् श्रीमद्भगवद्देहत्सर्वज्ञवीतरागप्रतिपादितान् । तिविहजोएण मनो-वचनकायलक्षणकर्मयोगेन कृत्वा । किं तन्मूढत्रय ? लोकमूढं, पाण्डि-मूढं, देवतामूढं चेति । तत्र लोकमूढ—

सूर्यार्घ्यं ग्रहणस्नानं संक्रान्तौ द्रविणवययः ।

सन्ध्यासेवाग्निसत्कारो देहगेहार्चनाविधिः ॥ १ ॥

शोषृष्टान्तनमस्कारस्तन्मूत्रस्य निषेधणं ।

रत्नवाहनमूढृक्षशस्त्रशैलादिसेवनं ॥ २ ॥

आपगासागरस्नानमुधयः सिकताश्मनां ।

गिरिपातोऽग्निपातश्च लोकमूढं निगद्यते ॥ ३ ॥

घरोपलिप्सयाशावान् रागद्वेषमलीमसाः ।

देवता यदुपासीत देवता मूढमुच्यते ॥ ४ ॥

सग्रन्थारम्भहिसानां संसारावतैवर्तिनां ।

पापण्डिनां पुरस्कारो ज्ञेयं पापण्डिमोहनं ॥ ५ ॥

अष्टौ मदाः के ते ?—

ज्ञानं पूजां कुलं जातिं बलमृद्धिं तपो वपुः ।

अष्टावाधित्य मानित्वं स्मयमाहुर्गेतस्मयाः ॥ १ ॥

पडनायतनानि कानि तानि ?—

कुदेवगुरुशास्त्राणा तद्गच्छानां गृहे गतिः ।

पडावतनमित्येव वदन्ति विदितागमाः ॥ १ ॥

प्रभाचन्द्रस्त्वेव वदति मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि त्रीणि त्रयश्च
तद्वन्त पुरपा पडनायतनानि । अथवा असर्वज्ञ १ असर्वज्ञायतन २
असर्वज्ञज्ञान ३ असर्वज्ञज्ञानसमवेतपुरुष ४ असर्वज्ञानुष्ठान ५ असर्वज्ञज्ञा
नानुष्ठानसमवेतपुरुषश्चेति ६ । शकादयोऽष्ट यथा शंका १ काक्षा २
विचिकित्सा ३ मूढदृष्टि ४ उपगूहन ५ अस्थितीकरण ६ अवात्स
ल्य ७ अप्रभावना चेति ८ अष्टौ शकादयः ।

णिस्संकिंय णिक्कंस्सिय णिव्विदिग्गिच्छा अमूढदिट्ठी य ।

उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ ॥ ७ ॥

नि शकित नि काक्षित निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टिश्च ।

उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावना च ते अष्टौ ॥

णिस्संकिंय इत्यादि । नि शकितं निर्भयत्वं परदर्शने जैनाभासे वा
मुक्तिमानन्त्य, अङ्गनचोरवज्जिनवचनमाननं च । णिक्कंस्सिय निष्का
क्षितं सम्यक्त्वव्रतादिफलेन राज्यदेवत्वेहभवमुखेष्टजनमेलापकत्वादिनिद्रा
नस्याकरण । सीतानन्तमत्तिसुतारादिवद्भ्रतदार्यं च । णिव्विदिग्गिच्छा
निर्विचिकित्सा स्तनत्रयपवित्रपात्रजनशरीरमलादिदर्शनेन शूकाया अक
रणं उदायनमहाराजवत् । अमूढदिट्ठी य अमूढदृष्टिश्च जिनवचनेऽग्नि
धिलत्वं रेवतीमहादेवीवत् । उवगूहण उपगूहनं जिनधर्मस्थवाडाशक्तव्र
नदोषज्ञपन जिनेद्रमत्तत्रेष्टिवत् । ठिदिकरणं स्थितीकरण सम्य
क्त्वव्रतादर्भश्यजैनस्य तत्र स्थापन पुष्पदन्तप्रिप्रस्य वारिपेणवत् । वच्छल्ल
वात्सल्य धर्मस्यजनोपसर्गनिवारणं अकम्पनादर्भेष्यकुमारमुनिवत् ।
पहावणा य प्रभावना च जिनधर्मोद्योतनं परधर्मप्रमात्रिष्वसनं च
वज्रकुमारविद्याधरमुनिवत् । ते अट्ठ ते सम्यक्त्वगुणा अष्ट भवन्ति ।

तं चेव गुणविमुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खसुठानाय ।

जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥ ८ ॥

तच्चैव गुणविमुद्धं जिनसम्यक्त्वं सुमोक्षस्थानाय ।

यच्चरति ज्ञानयुक्तं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्र्यम् ॥

तं चेव गुणविमुद्धं तच्चैव सम्यक्त्वं गुणविमुद्धं नि शंकितादिभिर-
ष्टगुणैर्विमुद्धं निर्मलं । जिणसम्मत्तं जिनसम्यक्त्वं जगत्पतिश्रीमद्भग-
वदहंत्सर्वज्ञवीतरागस्य सम्बन्धिनी श्रद्धा रुद्रादिश्रद्धानरहितं जिनसम्य-
क्त्वं कथमुच्यते । रुद्रादिसम्यक्त्वं किं ? तदुक्तं—

अभिधत्सर्वभक्ष्योऽपि भयभक्तिपरायणः ।

भुक्तिं जीयन्नवाप्नोति मुक्तिं नु लभते मृतः ॥ १ ॥

भवभक्तिपरायणो रुद्रभक्तिपरायणः । सुमुक्खसुठानाय सुमोक्षस्थानाय
तीर्थंकरपरमदेवो भूत्वा सर्वकर्मक्षयलक्षणं मोक्षस्थानं प्राप्नोति सुमो-
क्षस्थानं तस्मै सुमोक्षस्थानाय परमनिर्माणप्राप्त्यर्थमित्यर्थः । जं चरइ
णाणजुत्तं पचरति यत्प्रतिपालयति यति णाणजुत्तं ज्ञानयुक्तं सम्यक्त्वं
ज्ञानसहितं सम्यक्त्वं । अथवा क्रियाविशेषणमिदं । तेनायमर्थः ज्ञानयुक्तं
यथा भवत्येव चरति । पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं द्वयोर्दर्शनाच्चाचारि-
त्राचारयोर्मध्ये सम्यक्त्वाच्चाचारित्र्यं पढम-प्रथमं भवति ।

सम्मत्तचरणमुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा ।

णाणी अमूढदिट्ठी अचिरे पावंति निव्वाणं ॥ ९ ॥

सम्यक्त्वचरणमुद्धा समयमचरणस्य यदि वा सुप्रसिद्धा ।

ज्ञानिनः अमूढदृष्टयः अचिरे प्राप्नुवन्ति निर्वाणम् ॥

१ अस्मादग्रे व य मुद्रित पुस्तके च इदं गायसूत्रं वर्तते—

सम्मत्तचरणमूढा सज्जमचरणं परति जइ वि णरा ।

अण्णज्जणाणमूढा तह वि ण पावति निव्वाण ॥ १ ॥ इति ।

सम्मत्तचरणसुद्धा सम्यक्त्वचरणे सम्यक्त्वचारित्र्ये ये सूरयः शुद्धाः
सम्यक्त्वदोषरहिताः सम्यक्त्वगुणसहिताश्च भवन्ति । संजमेचरणस्स
जइ व सुप्रसिद्धा संयमचरणस्य यदि वा सुप्रसिद्धाः चारिभाचारे च
सुप्रसिद्धाः सुष्ठु आतिशयेन प्रकर्षेण सिद्धं चारित्रं येषां ते सुप्रसिद्धाः
सर्वलोकविदिता वा सम्यक्त्वपूर्वकचारित्रप्रतिपालका इत्यर्थः । णाणी
अमूढदिट्ठी ज्ञानिनोऽमूढदृष्टयश्च । अचिरे पावंति निव्व्याणं अचिरे
स्तोककाले निर्वाणं प्राप्नुवन्ति । अत्र चारित्रस्य मुख्यत्वेऽपि सम्य-
क्त्वज्ञानयोरपि सामर्थ्यमुक्तमिति भावः ।

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदानदच्छाए ।

मग्गगुणसंसणाए अवगूहण रक्खणाए य ॥ १० ॥

एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं ।

जीवो आराहंतो जिनसम्मत्तं अमोहेण ॥ ११ ॥

वात्सल्यं विनयेन च अनुकम्पया सुदानदक्षया ।

मार्गगुणसंज्ञनया उपगूहनं रक्षणेन च ॥

एतैः लक्षणैः च लक्ष्यते आर्जवैः भावैः ।

जीव आराधयन् जिनसम्यक्त्वं अमोहेन ॥

एएहिं लक्खणेहिं य एतैर्लक्षणैः । जिनसम्यक्त्वं । आराहंतो
आराधयन् । जीवो लक्खिज्जइ जीव आत्मा लक्ष्यते ज्ञायते ।
न केवलमेतैर्भावैरपि तु अज्जवेहिं भावेहिं आर्जवैर्भावैश्चाकुटि-
लपरिणामैश्चोपलक्ष्यते । केन कृत्वा लक्ष्यते ? अमोहेण अमोहेनान-
ज्ञानतया ज्ञानेन विचक्षणतया । विचक्षणं विना सम्यक्त्वाराधक पुरुषं
कोऽपि न जानाति सम्यक्त्वपरिणामस्यातिसूक्ष्मत्वात् । अथवा अमो-
हेण अमोघेन सफलजन्मना पुरुषेण । एतैः कैरित्याह—वच्छल्लं एक
त्वावद्वात्सल्यं धर्मिष्ठजनेषु स्नेहल्लवं सद्यः प्रसूतगौरिव वत्से वत्सलत्वेन

सद्दृष्टिर्विचक्षणैर्ज्ञायते । विणएण य विनयेन च विनयगुणेन गुरुजनेष्व-
म्युधानसम्मुखगमनकरयोटनपादबन्दनादिभिर्गुणैः सद्दृष्टिर्विचक्षणै-
र्ज्ञायते । अणुकंपाए अनुकम्पया दुखित जन दृष्ट्वा कारुण्यपरिणामो-
ऽनुकम्पया तथा सद्दृष्टिर्विचक्षणैर्ज्ञायते । कथभूतयानुकम्पया, सुदान-
वच्छाए शोभनदानदक्षया दु खितजनयोर्म्यदानविशिष्टया । मग्गगुण
संसणाए मार्गगुणशसनया निर्प्रयलक्षणो मोक्षमार्ग सप्रन्यो बद्धादि-
वेष्टित कोऽपि मोक्षं न गच्छति इति मोक्षमार्गस्तवनेन सद्दृष्टिर्विचक्ष-
णैर्ज्ञायते । अणूगूहण उपगूहन बालाशक्तजनजनितदोषाच्छादनेन सद्दृ-
ष्टिर्विचक्षणैर्ज्ञायते । रक्खणाए य मार्गाद्भ्रश्यजनस्थितीकरणेन सद्दृ-
ष्टिर्विचक्षणैर्ज्ञायते इति क्रियाकारकसम्बन्धः ।

उच्छाहभावणासंपसंसेवा कुदंसणे सद्धा ।

अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं ॥ १२ ॥

उत्साहभावनासंप्रशसासेवा कुदंशने श्रद्धा ।

अज्ञानमोहमार्गे कुर्वन् जहाति जिनसम्पत्त्वम् ॥

उच्छाहभावणासंपसंसेवा मिथ्यादृष्टिकथिताचारे योऽसावु-
त्साह उद्यमस्त, सपसस-सम्पन्नसः वचसा च प्रशसनं स्तुति
वचनं, सेना मिथ्यादृष्टे करादिना स्पर्शन । कुदंसणे सद्धा मिथ्यादर्शने
श्रद्धा रश्चि । अण्णाणमोहमग्गे न विद्यते ज्ञानं येषां तेऽज्ञानास्तेषां
मोघो निष्फलो मोहो वा सशयादिरूपो योऽसौ मार्गः ससारदुःखकारी
धर्मस्तस्मिन्ज्ञानमोहमार्गे श्रद्धा रश्चि कुर्वन् । जहदि जिणसम्मं जि-
नसम्पत्त्व जहाति मुचति ।

उच्छाहभावणासंपसंसेवा सुदंसणे सद्धा ।

य जहदि जिणसम्मच्च कुव्वंतो णाणमग्गेण ॥ १३ ॥

उत्साहभावनासप्रशसासेवा सुदर्शने श्रद्धा ।

न जहाति जिनसम्यक्त्व कुर्वन् ज्ञानमार्गेण ॥

उच्छाहभाषणासपसंगसेवा सुदंसणे सद्वा न जहाति जिणस
म्मत्तं उत्साह-उद्यमस्तं कुर्वन्निति सम्बध । भावणा-शरीराकर्म
णश्चामा पृथग्वर्तते इति भेदभाषणा ता । सपसस-सम्यक्प्रकारेण
मनोवचनकायकर्मभि प्रशसामर्हदादीना स्तुतिं कुर्वन् । तथा सेना स्तप
नपूजनस्तनजपनादिगुर्वादिपादसवाहनादिक च कुर्वन् । सुदंसणे-सम्य
ग्दर्शने रत्नत्रयलक्षणमोक्षमार्गे तत्त्वार्थे च श्रद्धां रुचिं कुर्वन् जिनस-
म्यक्त्वं न जहाति न यजति । उत्साहादिक केन कृत्वा कुर्वन्, णाण
मार्गेण ज्ञानमार्गेण सम्यग्ज्ञानद्वारेण ।

अण्णाण मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते ।

अह मोहं सारम्भं परिहर धम्मे अहिंसाए ॥ १४ ॥

अज्ञान मिथ्यात्व वर्जय ज्ञाने विगुद्धसम्यक्सत्वे ।

अथ मोह सारम्भ परिहर धर्मऽहिंसायाम् ॥

अण्णाणं मिच्छत्त वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते अज्ञान वर्जय
दूरीकुरु, कस्मिन् सति णाणे-ज्ञाने सम्यग्ज्ञाने सति, अज्ञानस्य ज्ञानं
प्रत्यनीक तत् । मिथ्यात्वं वर्जय, कस्मिन् सति सम्यक्त्वे सति मिथ्या
त्वस्य सम्यग्दर्शनं प्रतिवधक यत् । अह अथानन्तर । मोहं परिहर
परित्यज । कथंभूतं मोहं, सारम्भं सेवारूपिणाणि याचारम्भसहित ।
कस्मिन् सति, धर्मे सति चारित्रे सति । तथाऽऽरभ परिहर कस्या
सत्या, अहिंसाए अहिंसाया सत्या पञ्चमहाव्रतानि रात्रिभोजनवर्जनप
द्यानि सर्वाण्यप्यहिंसानिमित्त कथितानि यत् ।

पव्वज्ज संगचाए पयट्ठ सुतवे सुसंजमे भावे ।

होइ सुविसुद्धज्ञाणं णिमोहे वीयरायत्ते ॥ १५ ॥

प्रव्रज्यायां संगत्यागे प्रवर्तस्व सुतपसि सुसंजमे भावे ।
भवति सुविशुद्धध्यान निर्मोहे वीतरागत्वे ॥

पञ्चज्ज संगचाए पयट्ट हे जीव । त्व प्रव्रज्याया प्रवर्तस्व, कस्मिन्
सति, संगचाए—संगस्य वस्त्रादिपरिग्रहस्य त्यागे सति । तथा हे आत्मन् !
त्व सुतवे पयट्ट सुतपसि प्रवर्तस्व । कस्मिन् सति, सुसंजमे भावे
शौभनसंयमपरिणामे सति । असयमिनो मासोपवासादियुक्तस्यापि सुत-
पोऽसद्भावात् । तथा होइ सुविशुद्धज्ञानं निम्मोहे वीयरायत्ते भवति
सुविशुद्धध्यान निर्मोहे पुत्रयल्लमित्रधनादिव्यामोहवर्जिते पुरुषे, यस्तु
पुत्रादिमोहसहितो भवति तस्य विशिष्ट धर्मध्यानं शुक्लध्यानलेशोऽपि न
भवति पत । तथा वीतरागत्वे सति सुविशुद्धध्यान भवतीति तात्पर्यं ।
उक्तं च योगीन्द्रदेवनाम्ना भट्टारकेण—

जंस्तु हरिणच्छी हियवड्ड तासु न वञ्चु विचारि ।
एक्काहे केम सम्मति वड्ड । हे खड्डा एड्डियारि ॥ १ ॥

“मूढस्य नालियवढ्ढी” इति प्राकृतव्याकरणसूत्र ।

मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहि ।

वज्झंति मूढजीवा मिच्छंतावुद्धिउदएण ॥ १६ ॥

मिथ्यादर्शनमार्गं मलिनेऽज्ञानमोहदोषाभ्याम् ।

बध्यन्ते मूढजीवा मिथ्यात्वावुद्धिपुदयेन ॥

१ यस्य हरिणाक्षी हृदये तस्य नैव वञ्च विचारय ।

एकस्मिन् कथं समाधातौ वड्ड । द्वौ खड्गौ प्रतिद्वारे ॥ १ ॥

२ अत्र पुस्तके सम्मत्तावुद्धिउदण इति पाठ किं तु टीकाया मिच्छतावुद्धि
उदएण इति पाठ । न च पुस्तकेऽपि सम्मत्तावुद्धिउदएण इति पाठ । य
पुस्तके त्वस्याय अयं प्रकाशित जीवा सम्यक्त्ववुद्धपुदयात् सम्यक्त्वम् (कत्वा)
तिप्रकटनात् अज्ञानमोहादिदोषै मलिन कृष्ण मिथ्यात्वदर्शन मार्गं त्यजन्ति
मुच्यन्तीति । ■ पुस्तके तु टीकोक्त एव मूल पाठ ।

मिच्छादंसणमग्गे मलिणे मिथ्यादर्शनमार्गे मलिने पापरूपे सति ।
 कै कृत्वा, अण्णाणमोहदोसेहिं अज्ञान पच्चेमिथ्यात्वलक्षण, मोह पच
 जैनाभासलक्षण, अज्ञान च मोहश्चाज्ञानमोहौ तावेय दोषौ ताम्यामज्ञान
 मोहदोषाम्या वध्यन्ते पापै वेष्ट्यन्ते । के ते, मूढजीवा अज्ञानिन । केन
 कृत्वा, मिच्छताधुद्विउदण्ण मिथ्यात्वस्याबुद्धेधाज्ञानस्योदयेन प्रादु
 र्भावेन ।

सम्मदंसण पस्मदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया ।

सम्मेण य सद्वहदि य परिहरदि चरित्तजे दोसे ॥ १७ ॥

सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानाति ज्ञानेन इम्यपर्यायान् ।

सम्यग्भावेन च ग्रहयति च परिहरति चारित्रजान् दोषान् ॥

सम्मदंसण यस्सदि सम्यग्दर्शनेन सत्सारलोकनरूपेण विशेषम
 कृत्वा निराकाररूपेण पश्यति विलोकते । जाणदि णाणेण जानाति
 ज्ञानेन विशेषरूपेण साकाररूपेण ज्ञानेनात्मा जानाति । कान् पश्यति
 कान् जानाति, दव्वपज्जाया द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्माधर्मकालाकाशा
 स्तथा पर्यायाश्च जीवस्य मननारकादय क्रोधमानमायालोभमोहस्नेहपुण्य
 पापादयश्च पर्यायास्तान् पश्यति जानाति च । तथा पुद्गलस्य व्यणुकश्चणुक-
 चत्तुरणुकपचाणुकादिमहास्कधत्रैलोक्यपर्यन्ता पर्यायास्तान् पश्यति
 जानाति च । धर्मस्य येन रूपेण जीवपुद्गलौ गर्वि कुन्तस्तद्रूपा पर्याया ।
 तथाऽधर्मस्य पर्याया स्थितिरूपा जीवादीनां ज्ञातव्या । कालस्य समया
 बलिप्रभृतय पर्याया । उक्तं च—

ओषलि असखसमया सखेज्जावलिहिं होइ उस्तासो ।

सत्तुस्तासा थोओ सत्तथोओ एवो भणिओ ॥ १ ॥

१ आवलिखसखसमया संख्येवावलिभिर्भवति उच्छ्राम ॥

सहोष्वासा स्तोके सहस्तोके एवो भणित ॥ १ ॥

अद्वेत्तीसद्भवा नाली दो नालिया मुहुत्त तु ।

समऊण त भिण्ण अत्तमुहुत्त अणेयविद् ॥ २ ॥

एकन समपज पुनो मुहुत्तो भिन्नमुहुत्त कथ्यते । अन्तर्मुहुत्तस्त्रनेक प्रकार । के तेऽनेकप्रकारा अतर्मुहुत्तस्येयाह आनल्युपरि एक सम योऽधिको यदा भवति तदा अधन्योन्तर्मुहुत्तो भवति । एवमानल्युपरि इयादय समयाध्वदन्ति ते सर्वेऽप्यतर्मुहुत्ता भवति यावत्समयो नो मुहुत्त । एवमहोरात्रपक्षमासत्रयनवर्षपूर्वपत्योपमसागरोपमानसर्पिण्युत्सर्पिण्यादय कालस्य पर्याया ज्ञातव्या । आकाशस्य तु पर्याया घटाकाश पटाकाश स्तम्भाकाश इयादय । सम्मेण य मदहदि य परिहरदि चरित्तजे दोसे सम्पक्केन च श्रद्धाति रोचते न केवल श्रद्धते परिहरदि य-परिहरति च कान्, चरित्तजे दोसे-चारित्रजान् दोषानिति सम्बध ।

एण तिण्णि वि भावा हवति जीवस्म मोहरहियस्म ।

नियगुणमाराहतो अचिरेण वि कम्म परिहरह ॥ १८ ॥

एते त्रयोपि भावा भवन्ति जीवस्य मोहरहितस्य ।

निजगुण आराधयन् अचिरेणापि कर्म परिहरति ॥

एण तिण्णि वि भावा हवति जीवस्म मोहरहियस्म एते त्रयोऽपि भावा सम्पद्दानज्ञानचारित्रलक्षणा परिणामा भवन्ति जीवस्यात्मन । कर्षभूतस्य जीवस्य, माहरहितस्य चारित्रमोहापचर्निशतिभे दाद्रहितस्य वर्जितस्य । नियगुणमाराहतो अचिरेण वि कम्म परिहरह निजगुण शुद्धबुद्धैकस्वभावमगुण ज्ञानचानस्वरूपमाराधयन्नचिरेण स्तोफकालेन कर्म परिहरति सिद्धो भवति ।

सखिज्जमसखिज्जगुण च सासारिमेरुमिता ण ।

सम्मत्तमणुचरता करति दुक्खसक्खय धीरा ॥ १९ ॥

१ अष्टत्रिशार्चलवा नाली द्वे नालिके मुहुत्त तु ।

समयोक्त ॥ भिन्न अन्तर्मुहुत्तोऽनेकविध ॥ २ ॥

संख्येयामसंख्येयगुणा सर्पपमेरुमात्रां ॥ ।

सम्यक्त्वमनुचरत कुर्वन्ति दुःखक्षयधीरा ॥

संखिज्जं संख्येयगुणा निर्जरा सम्यक्त्वं प्रतिपालयतो धीरा योगीश्वरा प्राप्नुवतीति । असंखिज्जगुणं असंख्येयगुणा निर्जरा । अणुचरंता चारित्रपालयन्तो धीरा योगीश्वरा । करति-कुर्वन्ति । तदनन्तरं दुःखसंशयं करति सर्वकर्मक्षयादनन्तरं मोक्षं प्राप्नुवतीत्यर्थः । कथंभूता संख्येयगुणामसंख्येयगुणा च निर्जरा, सासारिमेरुमिता णं सर्पपमेरुमात्रा । सम्यक्त्वनिर्जराया सकाशात् चारित्रनिर्जरा बहुतरेति भावः । णं इति धाक्यालकारे ।

दुविहं संजमचरणं सायार तह हवे निरायार ।

सायार सगंधे परिग्रहा रहिय खलु निरायार ॥ २० ॥

द्विविधं सयमचरणं सागारं तथा भवेत् निरागारम् ।

सागारं सगन्धे परिग्रहाद्रहितं निरागारम् ॥

दुविहं संजमचरणं द्विविधं सयमचरणं द्विप्रकारधरिषाधारः । कौ तौ द्वौ प्रकारौ, सायार तह हवे निरायार सागारं तथा भवेन्निरागारः । सागारं कुत्र भवति, सायारं सगंधे सागारं चारित्रं सगन्धे गृहस्थे भवति । तर्हि निरागारं चारित्रं कस्मिन् भवति, परिग्रहा रहिय खलु निरायारं परिग्रहाद्रहितं निर्गन्धे निरम्बरे निरागारं चारित्रं वेदितव्यमित्यर्थः ।

सायार-अथ सागारं चारित्राचारं निरूपयन्ति श्रीकुन्दकुन्दाचार्याः -

दंसणं ययं सामाज्यं पोसहं सचित्तं रायमत्ते यः ।

वंभारं परिग्रहं अणुमणं उद्दिष्टं देसविरदो यः ॥ २१ ॥

दर्शनं यतः सामाजिकं श्रेयं सचित्तं रात्रिशुद्धिः ।

वद्वर्चसं आरम्भं परिग्रहं अनुमतिं उद्दिष्टं देशविरतः ॥

अष्टौ मूलगुणा । ते के, वटफलानामभक्षण १ पिप्पलफलवर्जन २
 “हृक्षो जटी पर्कटी स्यात्” तत्फलनिवारण ३ उदुबरो जघने फलामलयु
 गूलर इति देश्यात् तत्फलनिषेध ४ कठंजर कठुबर अंजीर इति देश्यात्
 तत्फलानामभक्षण मद्य ६ मास ७ मधुनिषेध इत्यष्टौ मूलगुणा । अथवा—

मद्यपलमधुनिशाशनपचफलीविरतिपचकासनुती ।
 जीघदया जलगालनमिति च क्वचिदष्टमूलगुणा ॥ १ ॥
 सप्तव्यसनवर्जन । उक्त च—

मद्यमाससुरायेद्याखेटचौर्यपराङ्मुना* ।
 महापापानि ससैव व्यसनानि त्यजेद्युध ॥ १ ॥

सम्पक्त्वप्रतिपालन परशास्त्राणामश्रवणमिति विशुद्धमिति । मूलक
 नालिकापत्रिनीक दलशुनकन्दतुषकफल उशुभशाककलिंगफलसूरणकन्द
 त्पागध्व । अरणीपुष्प वरणपुष्प सौभाजनकुसुम करीरपुष्प काच
 नारपुष्पमिति पचपुष्पयाग । लवणतैलघृतघृतफलसधानकमुहूर्तद्वयो-
 परिनवनीतमासादिसेविभाण्डभाजनवर्जन । चर्मस्थितजलस्नेहहिगुपरि
 हार । अस्थिसुराचर्ममासरक्तपूयमलमूत्रमृताङ्निदर्शनत प्रत्याख्यातान्न
 सेवनाच्चाण्डालादिदर्शनात्तच्छब्दश्रवणाच्च भोजन त्यजेत् । सुललित
 पुष्पितस्वादचलितमज्न त्यजेत् । षोडशप्रहरादुपरि तक्र दधि च त्यजेत् ।
 द्विदलान्नमिश्रं दधि तक्रं स्वादित सम्पक्त्वमपि मलिनयेत् । ताम्बूलौ
 पधजल रात्रौ त्यजेत् । एष सर्वोऽपि दर्शनप्रतिमाचार । वय
 द्वादशव्रतानि, अहिंसा स्थूलवधादिरमण, सत्य स्थूलसत्यरचन,
 स्थूलमचौर्य, ब्रह्मचर्य स्वदारसतोष परदारनिवृत्ति कस्य
 चित्सर्वस्त्रीनिवृत्ति, परिग्रहपरिमाणव्रत, दिग्विदिक्परिमाणविरति,
 अनर्थदण्डपरिहार, मोगोपभोगपरिमाणमिति गुणव्रतत्रय, सामायिक,

प्रोपधोपनास , अतिथिसन्निभास , सल्लेखनामरण चेति शिक्षाव्रतचतुष्टयं ।
सामाज्य त्रिकाटसामायिक । पोसह पर्वोपवास , । सचित्त सचित्तस्याभ-
क्षण । रायभक्ते य रात्रिभोजनपरिहारो दिवाव्रतचर्य , । वंभ सर्वथा व्रत-
चर्य । आरभ सेवाकृपिवाणिज्यादिपरिहार । परिग्माह वल्लभापरिमह-
स्वीकार मुग्धादिचर्जन । अणुमण विवाहादिकर्मानुपदेश । उद्दिष्ट
उद्दिष्टाहारपरिहार । देसविरदो य एव मागारचारित्र ।

पंचेवणुच्ययाहं गुणच्ययाहं हवंति तह तिणिण ।

सिक्खावय चत्तारि संजमचरणं च सायार ॥२२॥

पंचेवणुव्रतानि गुणव्रतानि भवन्ति तथा त्रीणि ।

शिक्षाव्रतानि चत्वारि संजमचरणं च सागारम् ॥

पंचेवणुच्ययाहं पंचेवणुव्रतानि भवन्ति । गुणच्ययाहं हवंति
तह तिणिण गुणव्रतानि भवन्ति तथा त्रीणि । सिक्खावय चत्तारि
शिक्षाव्रतानि चत्वारि भवन्ति । संजमचरणं च सायार संजमचरणं च
सागार भवति । एतानि द्वादशव्रतानि पूर्वमेव सूचितानि ।

धूले तसकायवहे धूले मोसे तित्तिक्खधूले य ।

परिहारो परपिम्मे परिग्माहारमपरिमाण ॥ २३ ॥

स्थूले तसकायवहे स्थूलाया मृपाया तित्तिक्कास्थूले य ।

परिहार परप्रेम्हि परिग्माहारमपरिमाणम् ॥

धूले तसकायवहे स्थूले तसकायवहे । परिहार इति शब्दध्वस्तु
सम्बध्यते । धूले मोसे स्थूलमृपावादे परिहार । तित्तिक्खधूले य ति-
त्तिक्कास्थूले चौर्यस्थूले परिहार । परिहारो परपिम्मे परिहार क्रियते
कस्मिन् परप्रेम्हि परदारो । परिग्माहारमपरिमाणं परिग्रहणा मुग्धा-
दीनामारंभाणा सेवाकृपिवाणिज्यादीना परिमाणं क्रियते ।

दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्म वज्जणं विदियं ।
भोगोपभोगपरिमा इयमेवगुणञ्चया तिणि ॥ २४ ॥

दिग्विदिग्मान प्रथम-अनर्घदण्डस्य वर्जनं द्वितीयम् ।

भोगोपभोगपरिमाण-इदमेव गुणव्रतानि त्रीणि ॥

दिसिविदिसिमाण पढमं दिग्विदिग्माने परिमाणं प्रथमं गुणव्रतं
ज्ञातव्यं । अणत्थदंडस्म वज्जणं विदियं अनर्घदण्डस्य वर्जनं द्वितीयं
गुणव्रतं भवति । भोगोपभोगपरिमा भोगोपभोगपरिमाणं तृतीयं
गुणव्रतं भवति । भोजनादिकं भोगः । यस्त्वस्त्रीप्रमुखमुपभोग इत्यर्थः ।
इयमेव गुणञ्चया तिणि इदमेवाचरणं त्रीणि गुणव्रतानि भवन्ति ।

सामाह्यं च पढमं विदियं च तद्देव पोसहं भणियं ।
तदयं अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥ २५ ॥

सामाधिकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोपधो भणितः ।

तृतीयमतिथिपूज्यं चतुर्थं सहेसना अन्ते ॥

समाह्यं च पढमं सामायिकं च प्रथमं शिक्षाव्रतं । चैत्यपचगुरु-
भक्तिसमाधिभक्तिरक्षणं दिनं प्रति एकवारं द्विवारं त्रिवारं वा व्रतप्रति-
मायां सामायिकं भवति । यत्तु सामायिकप्रतिमायां सामायिकं प्रोक्तं
तस्मिन् वारान् निश्चयेन करणीयमिति ज्ञातव्यं । विदियं च तद्देव
पोसहं भणियं द्वितीयं च तथैव प्रोपधोपनास शिक्षाव्रतं भणितं प्रति-
पादितं अष्टम्या चतुर्दश्या च । तदपि त्रिविधं, चतुर्विंशहारपरिनिर्ण-
नमुत्कृष्टं, जलसहितं मध्यमं, आचाम्लं जघन्यं प्रोपधोपनास भवति यथा
शक्तिं कर्तव्यं । तदयं च अतिहिपुज्जं तृतीयं चातिथिपूज्यं, न विद्यते
तिथिं प्रतिपदादिका यस्य सोऽतिथिः । अथवा समयमन्यामार्गमतति-
गच्छति उदंडचर्यां करोतायतिथिर्यनि स पूज्यो नवगुणसप्तगुणसम-
न्वितेन श्रावकेण यस्मिन् शिक्षाव्रते तदतिथिपूज्यं । चउत्थं सल्लेह-

णा अंते चतुर्थ शिक्षाव्रतमन्ते मरणकाले सल्लेखना कायकपायतनू-
करणमिति तात्पर्यं ।

एवं मायवधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं ।

सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिकलं वोच्छे ॥ २६ ॥

एव थावकधर्मं सयमचरण उपदेशित सकल ।

शुद्ध सयमचरण यतिधर्मं निष्कल वक्ष्ये ॥

एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेमियं सयलं एवमुना प्रकारेण
आनकधर्मलक्षणं सयमचरणं चारित्राचार, उपदेशितं भवन्तं कुर्वन्त्विति
प्रतिपादितं, सकलं समग्रं परिपूर्णं, किंचिद्विशेषरूपं तु न प्रतिपादित-
मित्यर्थः । उक्तं च—

त्रिद्व्यालानुफले च त्रिभुवनविजयी शिर्लीध्रक न सेधते ।

आ पचदशतिथिभ्यः पयोऽपि वरसोद्भवसमाख्य ॥ १ ॥

तथा च—

हृत्प्रायेषु पानीयं स्नेहं च कुतपादिषु ।

प्रतस्थो वर्जयेद्विष्य योपितध्यायतोचिताः ॥ १ ॥

त्रिभुवनविजयीति भगा तदुपलक्षणं सूक्ष्मकणत्वचाहिफेनार्दीनां । शि-
र्लीध्रक गोमयच्छत्रं केतव्यापुष्पदण्डिका च । चर्मतुलादिभूतं गुडादिकं
नादयं । अम्पुक्षणाचमनादिकं च विशेषशास्त्रोक्तं ज्ञातव्यं । सुद्धं संज-
मचरणं जइधम्मं णिकलं वोच्छे शुद्धं परिपूर्णं त्रिद्विसहितं
यतिधर्मं निष्कलं निष्कलकं वक्ष्ये वक्ष्यिष्यामि । इति वचनाच्छ्रान्क-
धर्मस्य यतिधर्मस्य च तारतम्येनोत्कृष्टता सूचिता भवतीति ज्ञातव्यम् ।

पंचिंदियसंवरणं पंचयया पंचविसकिरियासु ।

पंचसमिदि तयगुचीं संजमचरणं निरायार ॥ २७ ॥

पञ्चेन्द्रियसंवरणं पञ्चयया पञ्चविसतिरियासु ।

पञ्चसमितयं त्रिंशो गुणयः संजमचरणं निरायारम् ॥

पंचिन्द्रियसंवरणं पचानामिन्द्रियाणां सवरणं कूर्मवत्सकोचनं । पंच-
यया पचव्रता । व्रतशब्दस्य पुनर्पुंसकव्यमुक्तमस्ति तेनात्र पुंस्त्वं सू-
चित । तास्तु विवरिष्यति । पंचविंशकिरियासु पंचविंशतौ क्रियासु
सतीषु । ते पचव्रता भवन्तीति भावः । पंचसमिदि पचसमितयो
भवन्ति । तयगुत्ती तिलो गुत्तय । संजमचरणं निरायारं निरागार-
मनगार चारित्राचारो भवतीति द्वारगाथा वेदितव्या ।

अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदब्बे अजीवदब्बे य ।

ण करेइ रायदोसे पंचिन्द्रियसंवरो भणिओ ॥ २८ ॥

अमनोज्ञे च मनोज्ञे सजीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये च ।

न करोति रागद्वेषौ पंचिन्द्रियसंवरो भणित ॥

अमणुण्णे य अमनोज्ञे चासुन्दरे च । मणुण्णे मनोज्ञे मनोहरे । सजी-
वद्रव्ये इष्टवनितादौ । अजीवद्रव्ये य अजीवद्रव्ये चाचेतनद्रव्ये अश-
नवसनकनककाचादिके । ण करेदि रायदोसे न करोति रागद्वेषौ ।
मनोज्ञे राग न करोति । अमनोज्ञे द्वेष न करोति । पंचिन्द्रियसंवरो
भणिओ पंचिन्द्रियसंवरो भणित प्रतिपादित ।

अथ पचयया इत्येतत्पदविवरणार्थमाह—

हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरइ अदत्तविरइ य ।

तुरियं अग्रंभविरइ पंचम संगमि विरइ य ॥ २९ ॥

हिंसाविरतिरहिंसा असत्यविरतिरदत्तविरतिश्च ।

तुरीयमग्रमहविरति पञ्चम संगे विरतिश्च ॥

हिंसाविरइ अहिंसा हिंसाविरतिरहिंसा प्राणातिपातविरतिर्भवति ।
असच्चविरइ असत्यविरतिर्द्वितीय महाव्रतं भवति । अदत्तविरइ य
अदत्तविरतिश्चादत्ताद्विरतिरदत्तविरतिस्तृतीयं महाव्रतं भवति । तुरियं
अग्रंभविरइ अग्रहविरतिर्मेधुनादिरमण तुरिय-चतुर्थं महाव्रतं ज्ञातव्यं ।

“चतुरो यदीयौ च लोपथेति” सूत्रसाधुत्वात् । पंचम संगमि विरई य पंचम महाव्रतं भवति । का संगे परिग्रहे विरतिश्च परिग्राहद्विरमणमित्यर्थः ।

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुब्बेहिं ।

जं च महल्लाणि तदो महल्लया इत्तहे याई ॥ ३० ॥

साधयन्ति यम्महान्त आचरित यद्महत्पूर्व- ।

यच्च महान्ति तत महाव्रतानि एतस्माद्धेतोः तानि ।

साहंति जं महल्ला साधयन्ति यच्चस्मात्कारणात्प्रतिपादयन्ति । के ते, महल्ला—महान्तो गुरुणामपि गुरुः । पुर्याः । आहरियं जं महल्ल-पुब्बेहिं आचरितमादृतं वा यच्चस्मात्कारणात् महल्लपुब्बेहिं—महद्भिः गुरुभिः पूर्वं चिरन्तनाचार्यं वृषभादिभिर्महानीरपर्यन्तैः वृषभसेनगौतमान्तराण्यथैव जम्बूस्वामिपर्यन्तैश्च । जं च महल्लाणि यच्च यस्मात्कारणात् महल्लाणि—स्वयं महान्ति गुरुतराणि । तदो महल्लया इत्तहे ततस्तस्मात्कारणात् इत्तहे—एतस्माद्धेतोः तानि महाव्रतानीत्युच्यन्ते ।

वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमदी मुदाणणिस्सेनो ।

अवल्लोयमोयणाए हिंसाए भायणा होंति ॥ ३१ ॥

वचोगुप्तिः मनोगुप्तिः ईर्ष्यासमिति । मुदाननिक्षेपः ।

अवल्लोक्यभोजनेन अहिंसाया भावना भवन्ति ॥

वयगुत्ती वचोगुप्तिरेका । मणगुत्ती मनोगुप्तिर्द्वितीया भायणा । इरियासमदी ईर्ष्यासमितस्तृतीया भावना । मुदाणणिस्सेनो आदाननिक्षेपः पुस्तककमण्डलवादिकमुपकरणं पूर्वं विलोक्य मृदुना मयूरपिच्छेन प्रतिलिख्य गृह्यते ध्रियते च मुदाननिक्षेप उच्यते । अवल्लोयमोयणाए अवलोक्य पुनः पुनः दृष्ट्वा भोजनं क्रियतेऽवलोक्य भोजनं तेनावलोक्यभोजनेन । प्राकृते लिङ्गभेदः नपुंसकस्य स्त्रीयं । एता अहिंसा-महाव्रतस्य पञ्चभावना भवन्तीति वेदितव्यं ।

क्रोधभयहासलोभमोहा विवरीयभावणा चेव ।

विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति ॥ ३२ ॥

क्रोधभयहास्यलोभमोहा विपरीतभावना चेव ।

द्वितीयस्य भावना इमा पंचेव च तथा भवन्ति ॥

क्रोधभयहासलोभमोहा क्राधश्च भय च हासश्च लोभश्च मोहश्च
क्रोधभयहासलोभमोहा । विवरीयभावणा चेव विपरीतभावनाश्चैव ।
एतेषां पंचानां विपरीतभावना अक्रोधन , अभय , अहास , अलोभ ,
अमोहश्चेति । उक्तं च गौतमेन भगवता—

अक्रोधणो अलोहो य भयहस्सविवज्जिवा ।

अणुवीचीमासकुशलौ विदिय यदमस्सिदो ॥ १ ॥

अत्रामोहशब्देनानुवीचीभाषाकुशल इति लभ्यते । वीची यागलहरी
तामनुकृत्य या भाषा वर्तते साऽनुवीचीभाषा, जिनसूत्रानुसारिणी भाषा
अनुवीचीभाषा पूर्वाचार्यसूत्रपरिपाटीमनुकृत्य भाषणीयमित्यर्थः । उक्तं च
उमास्यामिभट्टारकेण—

• “क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचीभाषणं च पञ्च
विदियस्स भावणाए द्वितीयस्य महाव्रतस्य भावना । ए इमा
पञ्चभावना । होंति भवन्ति ।

सुण्णायारनिवासो विमोचितावास जं परोधं च ।

एसणसुद्धिसउचं साहम्मीसविसवादो ॥ ३३ ॥

शून्यागारनिवासो विमोचितावास यत् परोधं च ।

एषणसुद्धिसहितं सधर्मेसमविसवादः ॥

सुण्णायारनिवासो शून्यागारेषु गिरिगुहातरुकोटरादिषु निवास
क्रियते तथा सति अचौर्यव्रतभावनया प्रथमा भवति । विमोचितावास

१ अक्रोधनोऽलोभश्च भयहास्यविवर्जितः ।

अनुवीचीभाषाकुशलौ द्वितीयं व्रतमाधितः ॥ १ ॥

उद्दसप्रामादिषु निमोचितावासेषु धात्र्यादिभिरुद्दसेषु कृतेषु निवास क्रियतेऽचौर्यव्रतस्य भावना द्वितीया भवति । जं परोधं च परेषामुपरोधो न क्रियते भाटकाद्यधिक स्वामिना दत्त्वा स्वयं न निरुध्यतेऽचौर्यव्रतभावनया तृतीया भवति परोपरोधस्याकरणमित्यर्थः । एसणसुद्धिसउत्तं एषणाशुद्धिसयुक्तं सहितं, आगमानुसारेण भैक्ष्यशुद्धिरचौर्यव्रत भावना चतुर्थी भवति । साहम्मीसंविसवादो सधमाण समुखो भूत्वा सम्पक्कप्रकारेण विसवादो विगतसवादो त्रिवादो न क्रियतेऽचौर्यव्रतभावना पंचमी भवति ।

महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसच्चवसहिविकहाहि ।

पुट्टियरसेहिं विरओ भावण पचावि तुरियम्मि ॥ ३४ ॥

महिलालोकनपूर्वरतिस्मरणसंसक्तवसतिविकथामि ।

पुट्टरसे विरत भावना पचापि तुर्ये ॥

महिलालोयण महिलाया आलोकन स्त्रीमनोहराङ्गनिरीक्षणं तस्माद्विरत पराङ्मुखः । पुव्वरइसरण पूर्वव्रतस्मरणं पूर्वं या स्त्रीभिः क्रीड्य कृता तस्या स्मरणं चिन्तनं तस्माद्विरतः । संसच्चवसहि स्त्रीणां समीपतरे या वसतिर्निवासस्तस्माद्विरत निजशरीरसंस्काररहित इत्यर्थः । विकहाहि विकथाया विरत स्त्रीरागकथाविवर्जित इत्यर्थः । पुट्टियरसेहिं विरओ पु (पौ) टिकरसस्य सेवारहित वृष्यरसस्यानास्वादक इत्यर्थः यस्मिन् रसे सेविते वृषवत् शङ्खवत्कामी मगति स रसो वृष्य कथ्यते वाजीकरणरस न सेवते । भावण पचावि तुरियम्मि एता पचापि भावनास्तुरीये चतुर्थे ब्रह्मचर्यव्रते भवति ।

अपरिगह समणुण्णेषु सदपरिसरसरूपाङ्गेषु ।

रायदोसाईणं परिहारो भावणा होंति ॥ ३५ ॥

अपरिग्रहे समनोज्ञेषु शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु ।
रागद्वेपादीनां परिहारो भावना भवन्ति ॥

अपरिग्रहः समगुणेषु अपरिग्रहव्रते, अत्र लुप्तविभक्तिकं पदं । सम-
गुणेषु—समनाज्ञेषु मनोज्ञसहितेषु अमनोज्ञेषु चेति शेषः । सहपरिसरसरू-
पगन्धेषु शब्दस्पर्शरसरूपगन्धेषु पचद्रियविषयेषु । रायदोसाईणं राग-
द्वेपादीनां रागस्थ द्वेषस्य च । आदिशब्दात्पादपूरणमेव । मनोज्ञेषु विष-
येषु रागो न क्रियतेऽमनोज्ञेषु विषयेषु द्वेषो न क्रियते । इति रागद्वेषप-
रिहारः पचप्रकारः पचभावना भवन्तीति ज्ञातव्यः ।

इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो ।
सजमसोहिणिमित्ते संति जिणा पंच समिदीओ ॥३६॥

इर्या भाषा एषणा या सा आदानं चैव निक्षेपः ।

संयमशोधिनिमित्तं ख्यातिं जिनाः पञ्च समिती ॥

इर्यासमिति चतुर्हस्तवीक्षितमार्गगमनः । भाषासमिति आगमानुसा-
रेण वचनः । एषणासमिति चर्मणाऽस्पृष्टस्योद्गमो पादादिदोषरहितस्य
भोजनस्य पुनः पुनः शोधितस्य प्रासुकस्य भाजनस्य ग्रहणं वा समिति-
र्भवति सा तृतीया समितिः । आदाणं चैव आदानं चैव यत्पुस्तककम-
ण्डलप्रभृतिकं गृह्यते तत्पूर्वं निरीक्ष्यते पश्चाद्मृदुना मयूरपिच्छेन प्रति-
लिख्यते पश्चाद्गृह्यते चतुर्थी समितिर्भवति । णिक्खेवो यत्किंचिद्वस्तु
पुस्तककमण्डलमुख्यं कचिन्निक्षिप्यते मुच्यते ध्रियते तन्निक्षेपस्थानं दृष्ट्वा
तथैव प्रतिलिख्य च ध्रियते मयूरपिच्छस्यासन्निधाने मृदुवस्त्रेण कदाचि-
त्तया क्रियते निक्षेपणा नाम्नी पचमी समितिर्भवति । संजमसोहिनि-
मित्ते एतत्समितिपचकं संयमस्य महाव्रतपचकस्य शोधिनिमित्तं भवति ।
यो मयूरपिच्छवर्जितः साधुः स मासोपमासादिकं कुर्वन्नापि न शुद्ध्य-
तीति श्रीकुन्दकुन्दभगवदभिप्रायः । संति जिणा पंच समिदीओ खति-

ख्यान्ति प्रकथयन्ति के, जिणा—तीर्थकरपरमदेवा सामान्यकेवलिन
श्रुतकेवलिनश्चेति भाव । किं ख्यान्ति, पचसमिदीओ—पच समितीरिति
तात्पर्यार्थ । विस्तरस्तु वट्टकेरलवीरनन्यादिविरचिताचारग्रन्थेषु ज्ञातव्य ।

भवजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं ।

णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेह ॥ ३७ ॥

भग्यजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैर्यथा भणितम् ।

ज्ञान ज्ञानस्वरूप आत्मान त विजानीहि ॥

भवजणबोहणत्थं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यरत्नत्रयप्राप्तियोग्या ये ते
भग्यजनास्तेषां बोधनार्थं सम्बोधननिमित्तं । जिणमग्गे जिनस्य श्रीमद्भग-
वदहंस्तत्त्वज्ञस्य मार्गे सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यलक्षणोपलक्षिते मोक्षमार्गे ।
जिणवरेहिं जह भणियं श्रीमद्भगवदहंस्तत्त्वज्ञैर्यथा भणितं प्रतिपादित ।
किं तद्भणितं, णाणं णाणसरूवं ज्ञान व्यवहारनयेन सम्यग्ज्ञानं तथा
ज्ञानस्य स्वरूप स्वभावात् । उक्तं च समन्तभद्रेण महाकविना ज्ञानस्य स्वरूप—

अन्यूनमनस्तिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।

नि सम्बेह वेदं यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिनः ॥ १ ॥

ईदृग्विधं ज्ञानं ज्ञानस्वरूपं च निश्चयनयेन । अप्पाणं तं वियाणेह
आत्मान तज्ज्ञान ज्ञानस्वरूपं च हे भग्य । त्वं विजानीहि सम्यग्विचार-
येति क्रियाकारकसम्बन्धः ।

जीवाजीवविहत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी ।

रायादिदोसरहिओ जिणसासणे मोक्षमग्गुत्ति ॥ ३८ ॥

जीवाजीविमक्तिं यो जानाति स भवेत् सज्ज्ञानः ।

रागादिदोषरहितो जिनशासने माक्षमाण इति ॥

जीवाजीवविहत्ती जीवस्यात्मद्रव्यस्य, अजीवस्य पुद्गलधर्माधर्मकाला-
काशलक्षणस्य पचभेदस्य विभाक्तिं विमर्जनं निहचनमिति देयात् ।

जो जाणइ सो ह्वेइ सण्णाणी यो जानाति स भवेत् सज्ज्ञान
रायादिदोसरहिओ स ज्ञानी कथमूत , रागादिदोपरहित रागद्वेषमो-
हादिदोपरहित । जिणसासणे मोक्खमग्गुत्ति जिनशासने मोक्ष-
मार्ग इति ।

दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए ।

जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं ॥ ३९ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रं त्रीप्यपि जानीहि परमश्रद्धया ।

यद्ज्ञात्वा योगिनो अचिरेण लभन्ते निर्वाणम् ॥

दंसणणाणचरित्तं दर्शनज्ञानचारित्र । तिण्णि वि जाणेह परम
सद्धाए त्रीप्यपि जानीहि परमश्रद्धया प्रकृष्टरुच्या । जं जाणिऊण जोई
यदर्शनज्ञानचारित्र ज्ञात्वा योगिन । अइरेण लहंति णिव्वाणं अचिरेण
स्तीककालेन लभन्ते प्राप्नुवन्ति किं तन्निर्वाणं सर्वकर्मक्षयलक्षणं
मोक्षमिति ।

पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता ।

होति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥ ४० ॥

प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मलसुविशुद्धभावसंयुक्ता ।

भवति शिवालयवासिन त्रिभुवनचूडामणय सिद्धा ॥

पाऊण णाणसलिलं प्राप्य ज्ञानसलिलं लब्ध्वा सम्यग्ज्ञानपानीय ।
णिम्मलसुविसुद्धभावसंजुत्ता निर्मलो निरतिचार , सुविशुद्धो रागद्वेष
मोहादिरहित , भागो निजात्मपरिणामस्तेन संयुक्त्य सहिता पुरुषा ।
होति सिवालयवासी भवति शिवालयवासिन सर्वकर्मक्षयलक्षणनि-
र्वाणपदानिवासिनो भवन्ति । तिहुवणचूडामणी सिद्धा त्रिभुवनचूडा-
मणयस्त्रैलोक्यशिरोरत्नानि ते पुरुषा सिद्धा भवन्ति-आत्मोपलब्धिवतो
भवन्ति ।

णाणगुणेहि विहीणा ण लहंते ते सुइच्छयं लाहं ।

इय णाउं गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहि ॥ ४१ ॥

ज्ञानगुणैर्विहीना न लभन्ते ते स्विष्टं लाभम् ।

इति ज्ञात्वा गुणदोषौ तत् सद्विज्ञानं विजानीहि ॥

णाणगुणेहि विहीणा ज्ञानमेव गुणो जीवस्योपकारकं पदार्थस्तेन विहीना रहिता । ण लहंते ते सुइच्छयं लाहं न लभन्ते न प्राप्नुवन्ति (ते) सुष्ठु इष्ट लाभ मोक्ष । उक्तं च—

णाणविहीणहं मोक्खपड जीव म कासु वि जोइ ।

बहुयइ सलिलविरोलियइं करु चोप्पडड न होइ ॥ १ ॥

इय णाउं गुणदोसं इति पूर्वोक्तप्रकारेण गुण दोष च ज्ञात्वा ज्ञानस्य गुण, अज्ञानस्य दोष निज्ञाय । तं सण्णाणं वियाणेहि तत्तस्मात्कारणात्, सात्समीचीन, ज्ञानं विजानीहीति तात्पर्यार्थः ।

चारित्तसमारुढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी ।

पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ॥ ४२ ॥

चारित्रसमाहृत आत्मन परं न ईहते ज्ञानी ।

प्राप्नोति भविरेण सुखं अनुपमं जानीहि विधयत ॥

चारित्तसमारुढो चारित्रसमाहृतधारित्रं प्रतिपाद्यन् पुमान् । अप्पासु परं ण ईहए णाणी आत्मन सकाशात् (इष्टं स्वर्गनितादिकं न ईहते न वाञ्छति कोऽसौ, ज्ञानी ज्ञानवान् पुमान् । उक्तं च—

स (श) मसुखशीलितमनसामशनमपि द्वेषमेति किमु कामाः ।

स्थलमपि दहति क्षपाणां किमगं । पुनरङ्गमहाराः ॥ १ ॥

पावइ अइरेण सुहं प्राप्नोत्यचिरेण स्तोत्रकालेन सुखमनन्तसौख्यं । अणोवमं जाण णिच्छयदो कथंभूतं सुखं, अनुपममुपमारहितं जानीहि हे भव्य । त्वं णिच्छयदो—निश्चयत नि सन्देहान्निश्चयनयाद्वा ।

एवं संखेवेण यं भणियं णाणेण वीयराएण ।

सम्मत्तसंजभासयदुण्हं पि उदेसियं चरणं ॥ ४३ ॥

एव संक्षेपेण च भणितं ज्ञानेन वीतरागेण ।

सम्पत्त्वसयमाश्रयद्वयोरपि उद्देशितं चरणम् ॥

एवं संक्षेपेण य एवममुना प्रकारेण संक्षेपेण च । भणियं णाणेण वीयराएण भणितं प्रतिपादितं णाणेण—ज्ञानेन ज्ञानरूपेण ज्ञानस्वभावेन केवलज्ञानिना सर्वज्ञेन वीतरागेण रागद्वेषमोहादिभिरष्टादशदोषपरहितेन । किं भणितं, सम्पत्त्वसंज्ञमासयदुण्हं पि सम्पत्त्वसयमाश्रययोर्द्वयोरपि दर्शनाचारचारेणाचारयोर्द्वयोरपि । उद्देशियं चरणं उद्देशितमुद्देशमात्रं संक्षेपेण चारित्र्यं प्रतिपादितं । विस्तरेण तु वट्टकेरलादौ ज्ञातव्यं ।

भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुडं चेव ।

लहु चउगइ चइउण अचिरेणऽपुण्णम्मया होह ॥ ४४॥

भावयनं भावशुद्धं स्फुटं रचितं चरणप्राभृतं वैव ।

लघु चतुर्गती त्यक्त्वा अचिरेणाऽपुनर्भवा भवत ॥

भावेह भावसुद्धं भावयत भावनारिपयीं कुरुत यूयं हं भव्या । । फुडु रइयं चरणपाहुडं चेव स्फुटं प्रकटार्थं रचितं चरणप्राभृतं चारित्र्यसारं । चैवशब्दादर्शनाचरणं चोद्देशितं । लहु चउगइ चइउणं लघु शीघ्रं चतुर्गतीत्यक्त्वा नरकतिर्यङ्गानुष्यदेयगताश्रयपरिहाय । अचिरेणऽपुण्णम्मया होह अचिरेण स्तोककालेन—इतस्तुतीये भवेऽपुनर्भवा सिद्धा भवत यूयं । सिद्धिगतिं पंचमीं गतिं प्राप्नुत यूयमिति भद्रम् ।

इति श्रीपद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्त्रप्रतिवाच्यार्थेलाचार्यगृह्यपिच्छाचार्यनामपञ्चकविराजितेन श्रीमन्धरस्वामिज्ञानसम्भाषितमध्यजोवेन श्रीजिनचन्द्रसूरिभट्टारकपट्टाभरणभूतेन कलिकालसर्वज्ञेन विरचिते पदशास्त्रे प्रथमे सर्वमुनिमण्डलीमण्डितेन कलिकालगौतमस्वामिना—श्रीमहिमूषणन भट्टारकेणानुमतेन सकलविद्वज्जनसमाजसम्पन्नितेनोभयभाषाकविचक्रवर्तिना श्रीविद्यानन्दिशुव तेषासिना सूरिवरश्रीश्रुतसामरेण विरचिता चरणप्राभृतटीका समाप्ता ।

सूत्रप्राभृतं ।



अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंधियं सम्मं ।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सज्जणा साहंति परमत्थं ॥ १ ॥

अहंभापितार्यं गणधरदेवैर्भाषितं सम्यक् ।

सूत्रार्थमार्गणार्थं धम्मणा साधयन्ति परमार्थम् ॥

अरहंतभासियत्थं अहंस्तिर्तीर्थकरपरमदेवैर्भाषितोऽर्थं सूत्रं भवति ।
गणहरदेवेहिं गंधियं सम्मं गणधरदेवैश्चतुभिर्ज्ञानैः सम्पूर्णैरष्टमहा-
सिद्धिसहितैस्तीर्थकरयुवराजैः गंधिय-पदै रचितं, सम्मं-सम्यक् पूर्वापर-
विरोधरहितं शास्त्रं सूत्रं भवति । सुत्तत्थमग्गणत्थं सूत्रार्थमार्गणं
सूत्रार्थविचारं सोऽर्थं प्रयोजनं यस्मिन् सूत्रे तत्सूत्रार्थमार्गणार्थं । तेन
शुक्लप्यानद्वयं भवति । तेन सज्जणा साहंति परमत्थं सूत्रार्थेन श्रवणा
सद्दृष्टयो दिगम्बरा परमार्थं मोक्षं साधयन्ति-आत्मपदो दुर्वन्ति तेन
कारणेन सूत्रं मोक्षहेतुरिति भावार्थः ।

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरपरेण मग्गेण ।

णाऊण दुविहसुत्तं बट्ठइ सिवमग्ग जो भव्वो ॥ २ ॥

सूत्रे यत् सुदृष्टं आचार्यपरम्परेण मार्गेण ।

ज्ञात्वा द्विविधसूत्रं वर्तते शिवमार्गे यो भव्यः ॥

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं सूत्रे यत् सुष्ठु अतिशयेनाश्रिततया ॥ दृष्टं
प्रतिपादितं । आइरियपरपरेण मग्गेण आचार्याणां परंपरा श्रेणि-
र्यत्र मार्गे ॥ आचार्यपरम्परं आचार्यप्रवाहयुक्तो मार्गस्तेन मार्गेण ।
कोऽसौ मार्ग इति चेदुच्यते-श्रीमहावीरादनन्तरं श्रीगौतमं सुधर्मो

जम्बूधेति त्रय केनठिन । पिण्डु नन्दिमित्र अपराजित गोरधन भद्र-
चाहुधेति पंच श्रुतकेनठिन । तदनन्तरं, पिशाख प्रौष्टिल क्षत्रिय
जयस नागसेन सिद्धार्थ धृतिपेण रिजय मुद्रिल गणदेव धर्मसेन
इत्येकादश दशपूर्णिण । नक्षत्र जयपाण पाण्डु धुरसेन कसाधेति
पंचैकादशाह्नधरा । मुभद्र यशोभद्र भद्रवाहु लोहाचार्य एते चत्वार
एकाह्नधारिण । जिनसेनश्च । अर्हद्वलि माघनन्दी धरसेन पुष्पदन्त भूत
बलि जिनचन्द्र कुन्दपुन्दाचार्य उमास्वामी समन्तभद्रस्वामी शिवकोटि
शिवायन पूष्यपाद एलाचार्य धीरसेन जिनसेन नेमिचन्द्र रामसेनश्चेति
प्रथमाह्नपूर्वभागज्ञा । अकलंक अनन्तरिविद्यानदी माणिक्यनन्दी प्रमा-
चन्द्र रामचन्द्र एते सुताकिंका । वासवचन्द्र गुणभद्र एतौ मग्नौ
अन्ते वीराह्नजथ । णाऊण दुविहमुत्तं ज्ञाया द्विविधं सूत्रं अर्थत
शब्दतश्च द्विविधं सूत्र । चट्टं सिवमग्गे जो भज्यो वर्तते शिवमार्गे
मोक्षमार्गे यो मुनि स भज्यो ग्लान्ययोग्यो भवति मोक्षं प्राप्नोतीति भान ।

सुचं हि जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि ।

सूई जहा असुत्ता णासदि सुचे सहा णो वि ॥ ३ ॥

सूच हि जानान भवस्य भवनाशनं च सो करोति ।

सूची यथा असूया भवति सूत्रेण सह नापि ॥

सूच हि जाणमाणो भवस्स सूत्र शास्त्रानुक्रमं हि निधयेन जाना-
नो जानन् कस्य सूत्र, भवस्स-भवस्य सर्वज्ञवीतरागस्य । भवणासणं
च सो कुणदि भवस्य ससारस्य नाशने विनाशं स पुमान् करोति
विदधाति तीर्थकरा भूत्वाऽऽत्मानं प्रकटयति मुक्तो भवतीत्यर्थः । अमु
मेवार्थं दृष्टातेन दृढयति सूई जहा असुत्ता णासदि सूची लोहसू-
चिका वस्त्रदरकारिका असूया दवरकरहिता नश्यति न लभ्यते । सुचे

सहा णो वि सूत्रेण सह वर्तमाना सूत्रेण दोरेण सहिता णो विनापि नश्यति हस्ते चटति ।

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे ।
सच्चेयणपच्चकखं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥ ४ ॥

पुरुषोऽपि यः ससूत्रः च विनश्यति स गतोऽपि संसारे ।

स्वचेतनाप्रत्यक्षेण नाशयति तं सोऽदृश्यमानोऽपि ॥

पुरिसो वि जो ससुत्तो पुरुषोऽपि जांओऽपि यः ससूत्रो जिनसूत्र-
सहितः । ण विणासइ सो गओ वि संसारे न विनश्यति स पुमान्
गतोऽपि मद्योऽपि ससार पतितोऽपि पुनरुज्जीवति मुक्तो भवति ।
सच्चेयणपच्चकखं आत्मानुभवप्रत्यक्षेण । णासदि तं सो अदिस्समाणो
वि णासदि—नश्यति, अन्तरिण्यो प्रयोग, तेनापमर्थं नाशयति तं ससारं
स आसन्नभक्ष्यजीवः । कथंभूतः, अदिस्समाणो वि—अदृश्यमानोऽपि
चतुर्विधसधमप्येऽप्रकटोऽप्यप्रसिद्धोऽपि ।

सूत्तत्थं जिणमणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं ।

हेयाहेयं च तद्वा जो जाणइ सो हु मदिट्ठी ॥ ५ ॥

सूत्रार्थं जिणभणितं जीवाजीवादिबहुविधमर्थम् ।

हेयाहेयं च तथा यो जानाति स हि सदृष्टिः ॥

सूत्तत्थं जिणमणियं सूत्रस्यार्थं जिनेन भणितं प्रतिपादितः । जीवा-
जीवादिबहुविहं अत्थं जीवाजीवादिकं बहुविधमर्थं कर्मतापन्नं वस्तु ।
हेयाहेयं च तद्वा हेयं पुद्गलादिकं पञ्चप्रकारं, अहेयमादेयं निजात्मानं,
तथा तेनैव पद्भस्तुप्रकारेण । जो जाणइ सो हु मदिट्ठी यः पुमान्
जानाति वेत्ति स पुमान् हु—स्फुटं सदृष्टिः सम्यग्दृष्टिर्भवति ।

जं सूत्तं जिणउत्तं वगहारो तद्वा यो जाण परमत्तो ।

तं जाणिऊण जोई लहइ मुहं खवइ मलपुंजं ॥ ६ ॥

यत् सूत्रं जिनोक्तं व्यवहारं तथा च जानीहि परमार्थम् ।

तत् ज्ञात्वा योगी लभते सुखं क्षिपते मलपुञ्जम् ॥

जं सुत्तं जिणउत्तं यत्सूत्रं जिनोक्तं । व्यवहारो तद् य जाणपरम-
त्थो तत्सूत्रं व्यवहारं जानीहि तथा परमार्थं निश्चयरूपं च जानीहि हे
भगव । त्वं वेत्थ । तं जाणिउण्णं जोई तत्सूत्रं व्यवहारनिश्चयरूपं ज्ञात्वा
योगी ध्यानी पुमान् । लहइ सुहं खवइ मलपुञ्जं लभते सुखं निजा-
त्थोत्थं परमानन्दलक्षणं क्षिपते निर्मूलकाप कपते मलस्य पापस्य पुञ्जं
राशिं त्रिपट्ठिप्रकृतिसमूहं । धातिसधातथातनं कृत्वा केवलज्ञानमुत्पादय-
तीति भाव । यथा वशावष्टम्भं कृत्वाऽभ्यासवशेन रज्जूपरि चलयति
पश्चादभ्यासवशेन वंशं त्यक्त्वा निराधारतया रज्जूपरि गच्छति तथा
व्यवहारावष्टम्भेन निश्चयनयमलम्बते । तदनन्तरं व्यवहारमपि त्यक्त्वा
निश्चयमेवालम्बते इति भाव ।

सुत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिद्वी हु सो मुणेयव्यो ।

खेडे पि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचलैस्स ॥ ७ ॥

सूत्रार्थपदविनष्टो मिथ्यादृष्टिः हि स ज्ञातव्यः ।

खेलेऽपि न कर्तव्यं पाणिपात्रे सचलस्य ॥

सुत्तत्थपयविणट्ठो सूत्रार्थपदविनष्ट पुमान् । मिच्छादिद्वी
हु सो मुणेयव्यो मिथ्यादृष्टिरिति द्वे स्फुटं न पुमान् मुनितव्यो ज्ञातव्यः ।
खेडे पि खेलेऽपि त्रीडायामपि न कर्तव्यं पाणिपात्रेण भोजनं न
विधातव्यं । कस्य, सचलस्य गृहस्थस्य ।

हरिहरतुल्लो वि णरो मग्ग गच्छेइ एड भवकोटी ।

तद् वि ण पावड सिद्धिं समारत्थो पुणो भणिदो ॥ ८ ॥

हरिहरतुल्योऽपि नरः स्वर्गं गच्छति एति भवकोटी ।

तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्य पुनः भणितं ॥

हरिहरतुल्लो वि णरो हरिश्च नारायणो हरश्च रुद्रस्ताम्या तुल्य-
समान. ऋद्धिमानियर्थ । नर प्राणी मनुष्य । सगं गच्छेद् एद्
भवकोटी दानपूजोपवासादिक कृत्वा स्वर्गं देवलोक गच्छति
पश्चाद्भवांतराणां कोटीरसंख्यानि भवान्तराणि अनन्तानि या
भवांतराणि प्राप्नोति दुःखीभवति संसारी स्यात् । तद् वि ण पावद्
सिद्धिं तथापि भवकोटीपर्यटनप्रकारेणापि न प्राप्नोति सिद्धिं मोक्षं
न लभते । किं तर्हि भवतीत्याह—संसारत्यो गुणो भणिदो संसारस्य
संसारी पुनर्भणित सिद्धान्ते प्रतिपादित । जिनसूत्राभावाभिप्यादृष्टि
सन् संसारदुःखं सहते सुखी न भवतीति भावः ।

उक्किहसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुयमारो य ।

जो विहरद् सच्छन्दं पावं गच्छेदि होदि मिच्छत्तं ॥ ९ ॥

उत्कृष्टसिंहचरितं बहुपरिकर्मा य गुरुभारश्च ।

यो विहरति स्वच्छन्दं पापं गच्छति भवति मिथ्यात्वम् ॥

उक्किहसीहचरियं उत्कृष्टं सर्वयतिम्पोऽधिकं सिंहवन्निर्भयत्वेन
चरितं चारित्र्यं यस्य स पुमानुत्कृष्टसिंहचरितः । प्राकृतत्वादत्र नपुंसकत्वं ।
अथवा विहरतीति क्रियाविशेषणत्वाद्वितीयैक्यरचनं नपुंसकत्वं च ।
बहुपरिकर्म्मो य गुरुयमारो य बहुपरिकर्मा चानेकतपोविधानम-
ण्डितशरीरसंस्कारश्च मुनिर्गुरुतरभारश्च राजादिभयनिवारकः शिष्याणां
पठनपाठनसमर्थो यात्राप्रतिष्ठादाक्षादानायुर्वेदज्योतिष्कशास्त्रनिर्णयका-
रकः पडावश्यककर्मकर्मठो धर्मोपदेशनसमर्थः सर्वेषां यतानां च नैधिन्य-
कारको गुरुभार उच्यते, ईदृग्निधोऽपि गच्छनायको यतिः । जो विह-
रद् सच्छन्दं यो यतिः स्वच्छन्दं विहरति—जिनसूत्रं न प्रमाणयति ।
पावं गच्छेदि होद् मिच्छत्तं स मुनिः पापं गच्छति प्राप्नोति—मि-
थ्यात्वं तस्य भवतीति तात्पर्यार्थः ।

निचेलपाणिपत्तं उवइदं परमजिणवरिंदेहि ।

एक्को वि मोक्खसमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥ १० ॥

निचेलपाणिपात्र उपदिष्ट परमजिनवरेन्द्रे ।

एकोपि मोक्षमाग्न शेषाश्च वमार्गा सर्वे ॥

निचेलपाणिपत्तं निचेलस्य मुने पाणिपात्र करयो पुटे भोजन मुक्तं । उवइदं परमजिणवरिंदेहि उपदिष्टं परमजिनवरेन्द्रेस्तीर्थकरप रमदेवै । एक्को हि मोक्खसमग्गो एक एव माक्षमार्गो निर्ग्रन्थलक्षण । सेसा य अमग्गया सव्वे शेषा मृगचर्मवल्कलकर्पासपट्टकूलरोमवस्त्र-तद्गोणीतृणप्रानरणादि, सर्वे रत्नवस्त्रादि पीताम्बरादयश्च विरजे, वमार्गा ससारपर्यटनहेतुत्वा मोक्षमार्गा न भवन्तीति भव्यजनैर्ज्ञातव्य ।

जो संजमेसु सहिओ आरम्भपरिग्गहेसु विरओ वि ।

सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥ ११ ॥

य सयमेषु सहित आरम्भपरिग्रहेषु विरत अपि ।

स भवति वन्दनीय ससुरासुरमानुषे लोके ॥

जो संजमेसु सहिओ यो मुनिन तु गृहस्थ सयमेषु सहित शीघ्र यप्राणतैयमवान् भवति । आरम्भपरिग्रहेसु विरओ वि आरम्भा सेना-कृषिवाणिज्यप्रमुखा, परिग्रहा क्षेत्रशास्त्रादयस्तेषु विरतो निरक्तो भवति । अपिशब्द समुच्चये वर्तते । तेन ब्रह्मचर्यादयो गृह्यते तस्माद्ब्रह्मचर्यधरो यतिरिति वचनात् । सो होइ वंदणीओ स मुनिर्नन्दनीयो भवति । क वन्दनीयो भवति, ससुरासुरमाणुसे लोए लोके त्रिभुवने वन्दनीयो भवति । कथभूते लोके, समुत्तमसुरमानुष देवदानव मानवसहिते ।

जे वावीसपत्तीपट्ट सहंति सचीसएहि सजुत्ता ।

ते हांति वंदणीया कम्मकखयनिज्जरामाह ॥ १२ ॥

ये द्वाविंशतिपरीपहान् सहते शक्तिरतैः संयुक्ताः ।

ते भवन्ति वन्दनीयाः कर्मस्यनिर्जरासाधवः ॥

जे वावीसपरीमह सहति ये द्वाविंशतिपरीपहान् सहते । सत्ती-
सएहि संजुत्ता शक्तीनां शतैः संयुक्ताः । ते होति वंदनीया ते
भवन्ति वन्दनीया नमोऽस्तु शब्दयोग्या । कर्मस्यनिर्जरासाह
कर्मक्षयनिर्जरासाधव ये कर्मक्षये निर्जरायां च साधव कुशला भवन्ति
योग्या भवन्तीति भावः ।

अवसेमा जे लिंगी दंसणणाणेण सम्मसंजुत्ता ।

चेलेण य परिगहिया ते भणिता इच्छणिज्जाय ॥१३॥

अवसेमा ये निज्जिन दशनशानेन सम्पक्कसुक्ता ।

चेलेन य परिगहीता ते भणिता इच्छाकारयोग्या ॥

अवसेमा जे लिंगी अवसेमा ये लिंगिन क्षुल्लकगुरवः । दसण-
णाणेण सम्मसंजुत्ता दर्शनशानेन सम्पक्कसुक्ता । चेलेण य परि-
गहिया बल्लैकधरा सकोपीनाश्च बल्लमपि सीरित न भवन्ति किं तर्हि
खण्डबल्ल धरति ते बल्लपरिगृहीता । ते भणिता इच्छणिज्जाय ते
भणिता इच्छाकारयोग्या नमस्कारयोग्या ।

इच्छायारमहत्तं मुत्तठिओ जो हु छंडए कम्मं ।

ठाणे द्वियसम्मत्तं परलोयसुहकरो होइ ॥ १४ ॥

इच्छाकारमहार्थं सूत्रस्थितं यः स्फुटं त्यजति कर्म ।

स्थाने स्थितसम्पत्त्य परलोकमुखद्वारो भवति ॥

इच्छायारमहत्तं इच्छाशब्देन नम उच्यते कारशब्दस्तु अथ स्थ
क्रियते तत्र नमस्कार इति भवति । क्षुल्लकानां वदः । मुत्तठिओ जो
हु छंडए कम्मं मुत्तठिओ—सूत्रस्थितं समर्थं ज्ञानं य पुमान् कर्म
त्यजति गृहस्थकर्म न करोति वैयावृत्त्यं विना स्वयं रत्ननादिकं न

करोति । ठाणे द्वियसम्मत्तं एकादशस्वपि स्थानेषु सम्पक्त्वपूर्वको भवति । परलोयसुहं करो होइ स्वर्गसौख्य साधयति पोडशसु स्वर्गेष्वन्यतमस्वर्गे उत्पद्यते तत्तत्क्षुत्वा निर्प्रियो भूत्वा माक्ष गच्छति ।

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेदि निरवसेसाइं ।

तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥ १५ ॥

अथ पुन आत्मान नेच्छति धर्मान् करोति निरवशेषान् ।

तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्य पुन भणित ॥

अह पुण अप्पा णिच्छदि अथ अथना पुनरात्मान नेच्छति आत्म भावना न करोति । धम्माइं करेइ निरवसेसाइ धर्मान् करोति निरवशेषान् दानपूजातय शालादिकानि निरवशेषाणि समस्तानि पुण्यानि करोति । तह वि ण पावदि सिद्धिं तथापि पुण्यकर्मप्रकारेणापि सिद्धिं मुक्तिं न प्राप्नोति । संसारत्थो पुणो भणिदो संसारस्य पुनर्भणित संसारी भवतीति सिद्धांते प्रतिपादित । उक्तं च दशसेनेन भगवता—

अइकुणउ तय पालेउ संजम पढउ सयलसत्थाइ ।

जाम ण ज्ञावई अप्पा ताम ण मोक्ख जिणो भणई ॥ १ ॥

एएण कारणेण य तं अप्पा सदहेह तिविहेण ।

जेण य लहेह मोक्खं त जाणिज्जह पयत्तेण ॥ १६ ॥

एतेन कारणेन च त आत्मान श्रद्धा त्रिविधेन ।

येन च लभेच्च मोक्षं त जानीत प्रयत्नेन ॥

एएण कारणेण य एतेन प्रत्यक्षीभूतेन कारणेन हेतुना । चकार उक्तसमुच्चयार्थं, बहिस्तत्त्वभूतपंचपरमैष्टिकारणसूचनार्थं इत्यर्थं । तं अप्पा सदहेह तिविहेण तमात्मान शुद्धयुक्तैकमभ्यास-

१ कनिकरोतु तय पालयतु सयम पठतु सकलशास्त्राणि ।

यावच्च ध्यायति आत्मान तावच्च मोक्षं जिनो भणति ॥ १ ॥

मात्मतत्त्वं अद्वत्तं यूयं रोचत यूयं, त्रिविधेन मनोवचनकायप्रका-
रेण । जेण य लहेह मोक्खं येन चात्मतत्त्वेन लभेध्व मोक्षं सर्वकर्मक्ष-
यलक्षणं परमनिर्वाणं प्राप्नुत यूयं । अत्रापि चकार उक्तसमुच्चयार्थः तेन
स्वर्गसौख्यं यथासंभवं सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं पूर्वं लब्ध्वा पश्चान्मोक्षं लभेध्व ।
तं जाणिज्जह पयत्तेण तमात्मानं न केवलं अद्वत्तं अपि तु जानीत
विदांकुरुत चेति कथं, प्रयत्नेन साधनतया सर्वतात्पर्येणेत्यर्थः ।

वालग्गकोटिमत्तं परिगहगहणं ण होइ साहणं ।

भुंजेइ पाणिपत्ते दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि ॥ १७ ॥

शालाग्रकोटिमात्रं परिग्रहग्रहणं न भवति साधूनाम् ।

भुंजीत पाणिपात्रे दत्तमन्येन एकस्थाने ॥

वालग्गकोटिमत्तं बालस्य शम्भोऽग्रकोटिमात्रं अग्राममात्रं अती-
वाल्पमपि । परिगहगहणं ण होइ साहणं परिग्रहस्य ग्रहणं स्वी-
कारो न भवति साधूनां निरम्बरपतीनां । भुंजेइ पाणिपत्ते भुंजीत
भोजनं कुर्वीत कुर्यात्पाणिपात्रे निजकरपुटे । दिण्णण्णं इक्कठाणम्मि
श्रावकेण दत्तं न त्वव्रतिना दत्तं भुंजीत, प्रामुख्यभोजनं किल सर्वत्र गृह्यते
इति जैनाभासा । मुनन्ति तदनेन विशेषन्यास्यानेन प्रत्युक्तं भवतीति
भाषितव्यं । इक्कठाणम्मि—उद्धो भूत्वा एकगारं भुंजीतिति, यो बहुवारं
भुंक्ते स वन्दनीयो न भवतीति भाग्यार्थः ।

जहजायरुवसरिसो तिलतुसमेत्तं न गिह्दि हत्थेसु ।

जइ लेइ अप्पबहुयं तत्तो पुण जाइ णिग्गोदं ॥ १८ ॥

यथाजातरूपमदशः तिलनुषमार्तं न गृह्णाति हस्तयोः ।

यदि लाति अल्पबहुकं ततः पुनः याति निगोदम् ॥

जहजायरुवसरिसो यथाजातरूपः सर्वज्ञातरागस्तस्य रूपस-
दृशो नम्रशरीरः । तिलतुसमेत्तं ण गिह्दि हत्थेसु तिल-

स्य पितृप्रियकणस्य तुपस्त्वव्यात्र न गृह्णाति हस्तयोरित्युत्सर्गव्याख्यानं
प्रमाणमेव किं तु—

कचित्कालानुसारेण सूरिर्द्रव्यमुपादरेत् ।

गच्छपुस्तकवृद्धयर्थमयाचितमथाल्पकं

इतीन्द्रनन्दिभगवतोक्तं त्वपवादव्याख्यानं । तत्रापि स्वहस्तेन न स्पृश्यं
किन्तु श्रावकादिहस्तेन स्थापनीय । जइ लेइ अप्पचहुयं यदि छाति
गृह्णात्यल्प बहुक वा निजोदरपोषणयुद्धया च । ततो पुण जाइ णि-
ग्गोदं तत पुनर्याति निग्गोद प्रशंसनीयगतिं न गच्छतीत्यर्थ ।

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिङ्गस्स ।

सो गरहिउ जिणवयणे परिग्गरहिओ निरायारो ॥ १९ ॥

यस्य परिग्रहग्रहणं अल्पं बहुकं च भवति लिङ्गस्य ।

स गर्हणीयः जिणवयने परिग्रहरहितो निरागारः ॥

जस्स परिग्गहगहणं यस्य मुने श्वेताम्बरादे परिग्रहग्रहणं शासने
भूयति । अप्पं बहुयं च हवइ लिङ्गस्स अल्प अर्द्धफालिकादिकं बहुयं
च—चतुर्विंशत्यावरणादिकं भवति लिङ्गस्य कपटकर्पटसितपटादेर्वेपे ।
सो गरहिउ जिणवयणे तल्लिङ्ग स वेपो निन्दितोऽप्रशंसनीयो
भवति, क, जिणवयणे—धीवर्धमानगौतमादिप्रतिपादितसिद्धान्तशास्त्रे ।
तथा चोक्तं समन्तभद्रेण गुरुणा—

स्वमसि सुरासुरमहितो ग्रन्थिकसत्त्वाशयप्रणामामहितः ।

लोकत्रयपरमहितोऽनावरणज्योतिरुज्ज्वलधामहितः ॥ १ ॥

अत्र ग्रन्थिकसत्त्वा सितपटाः प्रभाचन्द्रेण क्रियाफलापटीकाया
व्याख्याता, सितपटाभासास्तु लोकायतिका अतीव निन्द्या अशौचव्यव-
हारोच्छिष्टान्नभोजित्यात् । परिग्रहरहिओ निरायारो परिग्रहरहितो हि
मुनिर्निरागारोऽनगारो यतिर्भवति यस्मात्कारणादिति शेषः ।

पंचमहव्ययजुक्तो तिहि गुत्तिहि जो स सजदो होइ ।

णिगंधमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ॥ २० ॥

पञ्चमहाव्रतयुक्तं तिसृभिः पुंसिभिः च संयतं भवति ।

निर्न्यमोक्षमार्गं स भवति हि चन्दनीयं च ॥

पंचमहव्ययजुक्तो पंचमहाव्रतैर्युक्तः प्राणातिपातानृतादत्तमुरत्तपरिग्रहहितं पुमान् पंचमहाव्रतयुक्त उच्यते । यस्तु स्तोत्रमपि परिग्रहीत करोति सोऽणुव्रतं सगारोऽव्रतो वा कथ्यते । तेन यच्चादौ परिग्रहे सति सत्र यूकालिक्षादयस्त्रीन्द्रिया जीवा उत्पद्यन्ते, यदि ततोऽपनीयापत्रं क्षिप्यते ततो ध्रियन्ते कथं प्राणातिपातकरहितो निरागारो भवति, अल्पमतिविस्तरेण परिग्रहयान् महाव्रती न भवति । तिहि गुत्तिहि जो स सजदो होदि तिसृभिर्गुत्तिभिर्युक्तो यो मुनिः स संयतः सपमवान् भवति । णिगंधमोक्खमग्गो निर्न्यमोक्षमार्गो यो मन्यते । सो होदि हु वंदणिज्जो स भवति हु—सुष्ठु चन्दनीय । यः सत्रं यमोक्षमार्गं मन्यते स मिथ्यादृष्टिर्जनाभासश्चानन्दनीयो भवतीति भाषार्थः ।

दुइयं च युत्तं लिङ्गं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च ।

मिक्खं भमेइ पत्तो समिदीमामेण मोणेण ॥ २१ ॥

द्वितीयं चोक्तं उक्त्तं उत्कृष्टं अवरथावकाणां च ।

मिक्षां भ्रमति पात्रं समिद्धिभावेण मौनव ॥

दुइयं च युत्तं लिङ्गं द्वितीयं चोक्तं लिङ्गं वेद्यं । उक्किट्ठं अवरसावयाणं च उत्कृष्टं लिङ्गं अवरथावकाणां चागृहस्थथावकाणां । सोऽवरथावकं मिक्खं भमेइ पत्तो मिक्षां भ्रमति पात्रसहितं परभोजी वा । समिद्धिभासेण मोणेण ईर्यासमितिसहितं मौनवर्ध, उत्कृष्टथावको दशमैकादशप्रतिभा प्राप्तः । उक्त्तं च समस्तमद्रेण महाफलिना—

आद्यास्तु पइजघन्याः स्युर्मध्यमास्तदनु त्रयः ।
 शेषी द्वाद्युत्तमावुक्ती जैनेषु जिनशासने ॥ १ ॥
 एकादशके स्थाने ह्युत्कृष्टः आद्यको भवेद्विविधः ।
 घर्लकधरः प्रथमः कौपीनपरिग्रहोऽन्यस्तु ॥ २ ॥
 कौपीनोऽसौ रात्रिप्रतिमायोग करोति नियमेन ।
 लोच पिच्छं धृत्वा भुक्ते क्षुपचिदय पाणिपुटे ॥ ३ ॥
 दीर्घपां च सूर्यप्रतिमात्रकाल्ययोगनियमश्च ।
 सिद्धास्तद्वहस्यादिष्वध्ययन नास्ति देशविरताना ॥ ४ ॥

लिङ्गं इच्छीण हवदि भुंजइ पिण्डं सुएयकालम्मि ।
 अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥ २२ ॥

लिङ्गं स्त्रीणां भवति भुक्ते पिण्डं स्वेककाले ।

आर्यापि एकवत्था वत्थावरणेन भुक्ते ॥

लिङ्गं इच्छीण हवदि तृतीयं लिङ्गं वेप स्त्रीणां भवति । भुंजइ
 पिण्डं सुएयकालम्मि भुक्तं पिण्डमाहारं मुष्टु निश्चलतया एककाले
 दिवसमध्ये एकवारं । अज्जिय वि एकवत्था आर्यापि एकवत्था भ-
 वति । अपिशब्दात् क्षुल्लिकापि सव्यानवस्त्रेण सहिता भवति ।
 वत्थावरणेण भुंजेइ भोजनकाले एकशटकं धृत्वा भुक्ते सव्यान
 उपरितनवस्त्रमुत्तार्य भोजनं कुर्यादित्यर्थः ।

ण वि सिद्धइ वत्थधरो जिणसासणे जइ वि होइ तित्थयरो ।
 णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥ २३ ॥

नापि सिध्यति वत्थधरो जिनशासने यद्यपि भवति तीर्थकरः ।

नग्नो विमोक्षमार्गं शेषा उन्मार्गका सर्वे ॥

ण वि सिद्धइ वत्थधरो नापि सिध्यति नैव सिद्धिमात्मोपलब्धि-
 लक्षणा मुक्तिं लभते वत्थधरो मुनिः । जिणसासणे जइ वि होइ
 तित्थयरो जिनशासने श्रीवर्मानस्वामिनो मते यद्यपि भवति तीर्थ-

कर तीर्थकरपरमदेवोऽपि यदि भवति । गर्भाजतारादिपञ्चन्यागवानपि सिद्धो न भवति, आस्ता तापदन्योऽनगारकेनल्यादिक । णगो विमोक्समगो नमो वस्त्राभरणरहितो विमोक्षमार्गं ज्ञातव्य । सेसा उम्मगया सब्बे शेषा सितपण्ढाना मार्गा सर्वेऽपि उम्मार्गका कुत्तिता मिथ्यारूपा मार्गा ज्ञेया जानीया निद्वन्द्वित्यर्थ ।

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकस्सदेसेसु ।

भणिओ सुहमो काओ तासं कह होइ पव्वज्जा ॥२४॥

लिङ्गे च स्त्रीणां स्तनान्तरे नाभिकक्षादेशेषु ।

भणितं सूक्ष्मं कायं तासां कथं भवति प्रव्रज्या ॥

लिंगम्मि य इत्थीणं लिङ्गे योनिमध्ये स्त्रीणां योनितां । थणंतरे णाहिकस्सदेसेसु स्तनान्तरे द्वयोः स्तनयोर्मध्ये वक्षः प्रदेशे, नाभिकक्षादेशेषु, नाभौ तृदिक्काया, कक्षादेशयोर्बन्धो मूलयोर्द्वयोः स्थानयोः । भणिओ सुहमो काओ भणित आगमे प्रतिपादित कोऽसौ भणित सूक्ष्म काय सूक्ष्मजीवशरीरं लोचनाद्यगोचरं सूक्ष्मपंचेन्द्रियपर्यन्तो जीववर्गः । तासिं कह होइ पव्वज्जा तासां स्त्रीणां कथं भवति प्रव्रज्या दीक्षा—अपि तु न भवति । यदि प्रव्रज्या न भवति तर्हि कथं पञ्चमहाव्रतानि दीयन्तः सत्यमेतत् सञ्जातिज्ञापनार्थं महाव्रतानि उपवर्त्यन्ते स्थापनान्यासं क्रियते इत्यर्थः । तथा चोक्तं शुभचन्द्रेण महाकविना—

मैथुनाचरणे मूढ ! प्रियन्ते जन्तुकोटयः ।

योनिरुन्धसमुत्पन्ना लिंगसंघट्टपीडिता ॥ १ ॥

कियन्तो जन्तवो प्रियन्त इति चेत् घाते घातेऽसंख्येया कोटय इति । “घाए घाए असंखज्जा” इति वचनात् ।

जइ दंसणेण सुद्धा उच्चा मग्गेण सा वि संजुत्ता ।

घोर चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पावया भणिया ॥ २५ ॥

यदि दर्शनेन शुद्धा उक्ता मार्गेण सापि सयुक्ता ।

घोरं चरित्वा चरित्रं स्त्रीषु न प्रवर्ज्या भणिता ॥

जइ दंसणेण सुद्धा यदि दर्शनेन सम्यक्तरत्नेन शुद्धा निर्मला भवति । उच्चा मग्गेण सा वि संजुत्ता तदा मार्गेण सम्यग्दर्शनज्ञान-
चरित्रलक्षणेन सापि स्त्री च सयुक्ता भवति-पचमगुणस्थानं प्राप्नोति, स्त्री-
लिंगं जित्वा स्वर्गाग्रे देवो भवति, तत्तद्व्युत्वा मनुष्यमनमुत्तमं प्राप्य
मोक्षं लभते । उक्तं च—

सम्यग्दर्शनसुद्धमपि मातङ्गदेहज ।

देवा देधं विदुर्भस्मगूढाद्भाराम्तरौजस ॥ १ ॥

स्वर्गोऽपि गता पुन स्त्रीलिंगं न लभते । तदप्युक्तं समन्तभद्रेण महा
कविना—

सम्यग्दर्शनसुद्धा नारकतिर्यङ्मनुसकस्त्रीत्वानि ।

दुष्कुलविकृताख्यायुर्वरिद्रता च व्रजन्ति नाप्यधृतिकाः ॥ १ ॥

• घोर चरिय चरित्तं घोर कातरजनभीतिजनकं चरित्रं चरित्वा
षोडशसु स्वर्गेष्वयतमं स्वर्गं यान्ति अहमिन्द्रत्वमपि स्त्रीभवे न लभन्ते
कथं मोक्षं स्त्रीभवे प्राप्नुवन्ति । तेन कारणेन इत्थीसु ण पावया भणिया
स्त्रीषु न प्रवर्ज्या निर्माणयोग्या दीक्षा भणिता । इत्यनया गाधया सित-
पटानां मतं स्त्रीमुक्तिप्राप्तिलक्षणं प्रयुक्तं भवति । मरुदेवी-ब्राह्मी सुन्दरी-
यशस्वती-मुनन्दा मुलोचना सीता-रात्रि मति चन्दना अनन्तमति-दौपदी-
त्यादिका स्त्रिय स्वर्गं गता न तु मोक्षमिति ।

चित्तासोहि ण तेसिं दिल्लं भावं तहा सहावेण ।

विज्जदि मामा तेसिं इत्थीमु णसंकया ज्ञाणं ॥ २६ ॥

चित्तासोधि न तेषां शिष्यो भावः तथा स्वभावेन ।

विद्यन्ते मासा तस्मां स्त्रीषु न भक्षक्या ध्यानम् ॥

चित्तासोहि ण तेसिं चित्तस्य मनसः आ समन्ताच्छोधिर्निर्मलता न विद्यते तासां स्त्रीणां । द्विल्लं भावं तद्वा सहंवेण शिथिलो भावः परिणामस्तथा स्वभावेन प्रकृत्यैव, कस्मिंश्चिद्वतादावतिदाढ्यं न वर्तते । चिज्जदि मासा तेसिं विद्यन्ते मासा—मासे मासे खिरत्तानस्तासां स्त्रीणां । इत्थीसु णऽसंकया द्वाणं स्त्रीषु न वर्तते किं तत्, अशंकया निर्भयतया ध्यानमेकाग्रचिन्तानिरोधलक्षणमिति भावः । “लुक्च” इति प्राकृतव्याकरणसूत्रेणाकारलोपः ।

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण ।

इच्छा जाहु नियत्ता ताह नियत्ताइं सब्बदुःखाइं ॥२७॥

प्राक्षेण अल्पप्राहाः समुद्रसलिले स्ववेक्षणैः ।

इच्छा येभ्यो निवृत्ता तेषां निवृत्तानि सर्वदुःखानि ॥

गाहेण अप्पगाहा प्राक्षेण आहारादिना ये मुनयोऽल्पप्राहाः स्तोफं गृह्णन्ति । समुद्दसलिले सचेलअत्थेण यथा समुद्रसलिले प्रचुरजलाशये सत्यपि स्वचेलप्रक्षालनार्थमल्पमेव जलं गृह्णते किं कियतैऽधिकजलप्रहणेन । इच्छा जाहु नियत्ता इच्छा तृष्णा लोभलक्षणा येभ्यो मुनिभ्यो निवृत्ता गता । ताह नियत्ताइं सब्बदुःखाइं तेषां निवृत्तानि नष्टानि सर्वदुःखानि शरीरमानसागन्तूनि कष्टानि नष्टान्येव सर्वापतरसिद्धिसुखसंभवादिति भावः ।

इति धीपद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्त्रप्रीचाचार्येलाचार्यगृह्यपि. कृष्णाचार्यनामपंचकविराजितेन धीसीमन्धरस्वामिशानसंशोधितमभ्यव्रतेन श्रीजिनचन्द्रसूरिभट्टारकपद्मभरणभूतेन कलिकालगर्भेण विरचिते पद्मप्रागृत-प्रणये सर्वमुनिमण्डलमण्डितेन कलिकालगौतमस्वामिना श्रीमहामुपपणेन भट्टारकानुमतेन सकलविद्वन्समाजसम्मानितेनोभयभाषाकविचक्रवर्तिना धी-विद्यानन्दिगुर्वन्तेवासिना सूरिवरधीश्वरतत्साराणेन विरचिता सूत्रप्रागृतटीका समाप्ता ।

बोधप्राभृतं ।



बहुसत्थअत्यजाणे संजमसम्मत्तमुद्धतवयरणे ।
वदिता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे ॥ १ ॥
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं ।
बुच्छामि समासेण य छक्कायहियंकर सुणसु ॥ २ ॥

बहुशास्त्रार्थज्ञायकान् संयमसम्यक्त्वमुद्धतपञ्चरणान् ।
वदित्वाऽऽचार्यान् कथायमलवज्जितान् शुद्धान् ॥
सकलजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैर्यथा भणितम् ।
वक्ष्यामि समासेन य पदकायहितकरं शृणु ॥

बुच्छामि वक्ष्यामि कथयिष्यामि । क कर्ता वह ब्रह्मकुम्भार्य । किं तत्कर्मतापत्ते, छक्कायहियंकरं पदकायहितकरं पृथ्व्यप्ते-
जोवायुवनस्पतिप्रसकायहितकारकं शास्त्रं बोधप्राभृताभिधानं शास्त्रं ।
कैन कृत्वा वक्ष्यामि, समासेण संक्षेपेण । सुणसु शृणु त्वं हे भव्य !
“विष्वादिषु त्रयाणामेकत्र दुसुसुध” इत्येनेन प्राकृतव्याकरणसूत्रेण हि-
स्थाने सुरादेश बहुवचने तु पचम्पा सुणह इत्येवं भवति मध्यमस्य ।
कथंभूतं बोधप्राभृतं, जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं जिनमार्गे
जिनशास्त्रे जिनरै केवलिभिर्यथा येन प्रकारेणाऽऽयतनादिभिर्भ-
णितं प्रतिपादितं । किमर्थं जिनैर्भणितं, सयलजणबोहणत्थं सर्वभ-
व्यजीवसम्बोधननिमित्तं । किं कृत्वा पूर्वं बुच्छामि, वदिता आयरिए
वदित्वाऽऽचार्यान् तृतीयपरमेष्ठिपदस्थान् गुरुन् । कथंभूतानाचार्यान्,
बहुसत्थअत्यजाणे अनेकशास्त्रार्थज्ञायकान् । पुन कथंभूतानाचार्यान्,
संजमसम्मत्तमुद्धतवयरणे सयमश्च चारित्रं, सम्यक्त्वं च सम्यग्दर्शनं

शुद्ध निरतिचार, तपश्चरणं च द्वादशशिष्य तपो येषां ते सयमसम्यक्त्व-
शुद्धतपश्चरणास्तान् सयमसम्यक्त्वशुद्धतपश्चरणान् । भूयोऽपि कथं
भूतानाचार्यान्, कसायमलवर्जितदे क्रोधमानमायालोभलक्षणचतुष्क-
पायमलवर्जितान् वषायोत्पन्नपापरहितानित्यर्थ । अपरं कथंभूताना-
चार्यान्, सुद्धे शुद्धान् पट्त्रिंशद्गुणप्रतिपालनेन निर्मलान् निष्पापान् ।
के ते पट्त्रिंशद्गुणा इत्याह—

भाधारयान् भुतांधारः प्रायश्चित्तासनोदिदः (१) ।

भायापायकथी बोधार्थापकोऽध्यायकोऽपि च ॥ १ ॥

सन्तोषकारी साधूना निर्योपक इमेऽष्ट च ।

दिग्भ्वरोऽप्यनुदिष्टमोजी शय्योऽशनीति च ॥ २ ॥

भारोगेभुक् क्रियायुक्तो मतवीन् ज्येष्ठैर्दृष्टः ।

प्रतिक्रिमी च वण्मासंयोगी च तद्विनिर्घर्षक ॥ ३ ॥

द्वि.येदितपास्तथा पद चावदयकोऽनि गुणा शुरोः ।

आयदणं चेदिहर जिणपडिमा दंसणं च जिणविंशं ।

भणियं सुवीयरायं जिणमुदा णाणमादत्थं ॥ ३ ॥

अरहंतेण सुदिहं जं देवं तिस्थमिह य अरहंतं ।

पावज्ज गुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो ॥ ४ ॥

आयतनं चैत्यगृहं जिनप्रतिमा दर्शनं च जिनविम्बम् ।

भणितं सुवीतराणं जिनमुदा ज्ञानमत्मस्थम् ॥

अर्हतां मुदष्टं यो देवं तीर्थमिह च अर्हन् ।

प्रजग्या गुणविसुद्धा इति ज्ञातव्या यथाक्रमशः ॥

आयदणं आयतनं ज्ञातव्यम् । चेदिहरं चैत्यगृहं द्वितीयं ज्ञातव्यम् ।

जिणपडिमा जिनप्रतिमा तृतीयोऽधिकारो बोधप्रामृते ज्ञातव्यः । दंसणं
च दर्शनं च चतुर्थोऽधिकारो बोधकरो मन्तव्यः । जिणविंशं जिन-

विम्बं पंचमोऽधिकारो बोधजनको विज्ञेयः । कथंभूतं जिनविम्बं, भणियं सुवीयरायं भणितमागमे प्रतिपादितं सुष्ठु अतिशयेन वीतरागं न तु लक्ष्मीनारायणवद्रागसहितं । जिणमुद्गा जिनमुद्गा बोधकरी पष्ठोऽधिकारो वेदितव्यः । णाणमादृत्यं ज्ञानमात्मस्थं सप्तमो नियोगो बोधप्राभृतस्य बोद्धव्यः । अरहंतेषु सुदिष्टं जं देवं अर्हता सर्वज्ञवीतरागेण सुदृष्टमवाधं प्रतिपादितं जं देवं यो देवः, प्राकृते लिगभेदत्वाद्वा देवशब्दस्य नपुंसकत्वं सोऽयं देवाधिकारो बोधजनकोऽष्टमोऽवगन्तव्यः । तित्थमिह य तीर्थमिह च नवमोऽधिकारस्तीर्थमिह बोधप्राभृतेऽवेतव्यः । अरहंतं अर्हत्स्वरूपनिरूपकोऽधिकारो दशमः प्रत्येतव्यः । यावज्जगुणविसुद्धा प्रवज्जा एकादशोऽधिकारो बोधप्राभृतस्य स्मर्तव्यः । कथंभूता प्रवज्जा, गुणविसुद्धा गुणैरुज्ज्वला । इय णायव्वा जहाकमसो इति ज्ञातव्या यथाक्रमशः । एते एकादशाधिकारा बोधप्राभृतस्य चिन्तनीयाः ।

• गाथाद्वयेन द्वारं बोधप्राभृतस्य कृतं । इदानीं तद्विवरणं कुर्वन्ति श्रीमन्तो गृह्यपिच्छाचार्यास्तत्रायतनं निरूपयन्ति —

मणवयणकायदब्बा आसत्ता जस्स इंदिया विसया ।

आयदणं जिणमग्गे णिदिष्टं संजयं खवं ॥ ५ ॥

मनोवचनकायद्रव्याणि आसत्ता यस्य ऐन्द्रिया विषयाः ।

आयतनं जिनमार्गे निर्दिष्टं संजयतं रूपम् ॥

मणवयणकायदब्बा मनोवचनकायद्रव्याणि हृदयमध्येऽष्टदलकमलाकारं मानसद्रव्यं यस्य मनो भवति । उरःप्रभृत्यष्टस्थानाश्रितं यस्य वचनं वचनशक्तिकं वाग्द्वयं भवति । अष्टावह्नानि अनेकोपाह्नानि यस्य मुनेः कायद्रव्यं भवति । आसत्ता जस्स इंदिया विसया । आसत्ताः सम्बन्धमायाता यस्य मुनेः ऐन्द्रिया विषयाः, इन्द्रियेषु स्पर्श-

नरसनप्राणचक्षु श्रोत्रलक्षणेषु द्वयोर्केषु भग एन्द्रिया ते च ते विषया
स्पर्शरसगन्धरूपशब्दलक्षणा यथासम्भव शक्तिरूपा व्यक्तिरूपाश्च
भवन्ति । आयदणं जिणमग्गे आयतन जिनमार्गे । णिदिट्ठं संजयं रुवं
निर्दिष्टमागमे प्रतिपादित सायत रूप सयमिन सचेतन शरीर ।

मय राय दोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता ।
पंचमहव्वयधारा आयदणं महरिसी मणियं ॥ ६ ॥

मदो रागो द्वेषो मोह कोधो लोभश्च यस्य आयत्ता ।

पञ्चमहाव्रतधरा आनतन महर्षयो मणित्ता ॥

मय राय दोस मोहो मदोऽष्टमिध । उक्तं च समन्तभद्रेण महा-
कविना—

ज्ञान पूजां कुल जार्ति वलमृद्धि तपो वपुः ।

अष्टावाधित्यमानितः स्मयमाहुर्गतस्मया. ॥ १ ॥

राग प्रीतिलक्षण । दोषोऽप्रीतिस्वभावा । मोह कलत्रपुत्रमित्रा
दिस्नेह । कोहो लोहो य जस्म आयत्ता क्रोधो रोषस्वभाव , लोभो
मूर्च्छा परिग्रहप्रहणस्वभावा । चकारात्परवचनप्रकृतिर्माया । एते पदार्था
यस्य महर्षे त्रिविधमुनिसमूहस्याऽऽयत्ता निग्रहपरिग्रहनाथवन्ता भवन्ति ।
पञ्चमहव्वयधारा पञ्चमहाव्रतधरा अहिंसासत्याचौर्यव्रह्मचर्याकिंचन्यानि
रात्रिभोजनवर्जनपष्टानि प्रतिपालयन्त । आयदणं महरिसी मणियं
आयतन महर्षयो मणित्ता । एतेऽभिगमनयोग्या भगति दर्शनस्पर्शन
वन्दनार्हाश्च भवन्ति । अन्ये विर्लिङ्गिनो जटिन पाशुपता एकदण्डत्रि-
दण्डधरा मिथ्यादृष्टिमुण्डिन शिखिन पञ्चचूला मस्मोद्धूतना नम्रा-
ण्डका चरकनामानो दिगम्बरसज्जका हंसपरमहंसाभिधाना पशुयाज्ञिका
दीक्षिता अध्वर्यव उद्गातारो होतार आर्यवणा व्यासा स्मार्ता जैना-

भासाथ नाभिगम्या न दर्शनीया नाभिवादनीयाश्च भवन्ति । अथ के
ते जैनाभासा पूर्वमप्युक्ता —

गोपुच्छिक श्वेतवासो द्राघिडो यापनीयक ।

निष्पिच्छश्चेति पचैते जैनाभासाः प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

एते मयूरपिच्छधरा अपि न वदनीया संशयमिष्याद्यष्टित्वात् ।
तथा च बौद्धमत आयतनलक्षण—

एवेन्द्रियाणि शब्दाद्या विषया ध्वज मानस ।

धर्मायतनमेवानि द्वादशायतनानि च ॥ १ ॥

धर्मायतन शरीरमिति ।

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धज्ञाणस्स णाणजुत्तस्स ।

सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थ ॥ ७ ॥

सिद्ध यस्य सदर्थं विसुद्धध्यानस्य ज्ञानयुक्तस्य ।

सिद्धायतनं सिद्धं मुनिवरवृषभस्य शास्ताया ॥

सिद्धं जस्स सदत्थं सिद्धं लब्धिमायातं यस्य मुनिरवृषभस्य ।
किं सिद्धं, सदर्थं निजामात्मरूप । कथभूतस्य, विसुद्धज्ञाणस्य णाण-
जुत्तस्स विसुद्धध्यानस्य आर्तरीन्द्रध्यानद्वयरहितस्य धर्म्यशुक्लध्यानद्वय-
सहितस्य गणधरकेरलिनो मुण्डकगलिनस्तीर्थकरपरमदेवकेरग्नो वा ।
कथंभूतस्यैतन्नयस्य, ज्ञानयुक्तस्य सकलमिमलरूपज्ञानयुक्तस्य ।
सिद्धायदणं सिद्धं सिद्धायतनं सिद्धं सिद्धायतनं प्रतिपादितं । कस्य,
मुनिवरवसहस्स मुनिवरवृषभस्य मुनिराणां मध्ये वृषभस्य श्रेष्ठस्य ।
कथंभूतमायतनं, मुणिदत्थं मुनिता यथानदिज्ञाता अर्था पद्द्रव्याणि
पंचास्तिकाया सप्ततनानि नवपदार्था । जीनपुद्गलार्माधर्मकालाकाशा
इति पद्द्रव्याणि । कालरहितानि पद्द्रव्याणि पंचास्तिकाया भवन्ति ।

भरणेण स्वर्गमोक्षं लभते । यज्जल चैत्यगृहस्य कार्यमायाति तद्वत्तदपि शुभभागभवति । यत्तेजोऽग्निं चैत्यगृहनिमित्तं प्रन्वाह्यते तदपि तद्वच्छुभं लभते । यो वायुश्चैत्यगृहनिमित्तं बर्हिं सधुक्षणाद्यर्थं विराप्यते घृणाङ्गाहवि पाकार्थं चोक्षेपनिक्षेपणं प्राप्यते सोऽपि तद्वच्छुभं प्राप्नोति । यो वनस्पतिं पुष्पादिकश्चैत्यगृहपूजाद्यर्थं ह्रूयते सोऽपि काययोगेन पुण्यमुपार्जयति तस्यापि शुभं भवति । उक्तं च—

कुलं पुकारश्च याद्वियाहि बहिया जिणह चडेसि ।

धम्मी को वि न आणियउ कपिय घरणि पडेसि ॥ १ ॥

अन्यच्च—

केणय घाडी याइया केणय घीणिय कुल ।

केणय जिणह चडाविया ए निणिण वि समतुल ॥ २ ॥

चेइयहर—चैत्यगृहाग्निकार समाप्त इत्यर्थः । २ ।

सपराजंगमदेहा दंसणणाणेण शुद्धचरणार्णं ।

निगंयधीयरया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥ १० ॥

स्वपराजङ्गमदेहा दर्शनज्ञानं शुद्धचरणानाम् ।

निर्गन्धवीतरागा जिनमार्गे इदं प्रतिमा ॥

सपराजंगमदेहा स्वकीया अर्हच्छासनसम्बन्धिनी । परा परकीयशासनसम्बन्धिनी प्रतिमा भवति । स्वकायशासनस्य या प्रतिमा सा उपादेया ज्ञातव्या । या परकीया प्रतिमा सा हेया न वन्दनीया ।

१ तात्पर्यात्तादृशमिति न्यायेन तदस्य जीवा ज्ञातव्या एवस्वपि कारयेत् शुभोपार्जका पृथिव्यादीनां केवलानां जट वातदसमवात् ।

२ कुलं पुकारयात् माली कथं जिनस्य चडेसि । १

धर्मी कोऽपि नाऽऽयात् कम्पायस्व घरणौ पातप्यसि ॥ १ ॥

३ केन च वागिका उपिता केन च चित्तिं नि पुण्यणि ।

केन च जिनस्य चाहापेतानि पुन त्रयाऽपि समनुव्या । २ ॥

अथवा सपरा—स्वकीयशासनेऽपि या प्रतिमा परा उत्कृष्टा भवति सा वन्दनीया न तु अनुकृष्टा । का उत्कृष्टा का वाऽनुकृष्टा इति चेदुच्यन्ते या पञ्चजैनाभासैरञ्जलिकारहितापि नम्रभूर्तिरपि प्रतिष्ठिता भवति सा न वन्दनीया न चार्चनीया च । या तु जैनाभासरहितै साक्षादार्हतसंघे प्रतिष्ठिता चक्षु स्तनादिषु विकाररहिता नन्दिसंघ-सेनसंघ-देवसंघ-सिंहसंघे समुपन्यस्ता सा वन्दनीया । तथा चोक्त इन्द्रनन्दिना भट्टारकेण—

चतुःसंघसंहिताया जैनं विम्बं प्रतिष्ठितं ।

नमोऽप्यपरसंघाया यतो न्यासविपर्ययः ॥ १ ॥

चतुःसंघ्या नरो यस्तु विदध्याद्देवमायना ।

स सम्यग्दर्शमातीतः संसारं ससरत्परं ॥ २ ॥

न्यासविपर्ययस्तु गुरुवचनादेवाप्तगन्तव्यः । तथा चोक्त श्रीवीरनन्दिशिष्यै श्रीपद्मनन्दिभिराचार्यै —

विम्बादलोभतियवोन्नतिमेव भक्त्या

ये कारयन्ति जिनसंघं जिनाकृतिं च ।

पुण्यं तदीयमिह वागपि नैव शका

वक्तुं परस्य किमु कारयितुं द्वयस्य ॥ १ ॥

ये ॥ प्रतिमाया वस्त्राभरणादि कुर्वन्ति प्रतिष्ठापेयाया दधितकुमुखे

अग्नन्ति तन्मतनिरासार्थं श्रीगौतमेन महामुनिना पृथ्वीवृत्तमुक्त—

निराभरणमासुरं विगतसामवेगोद्ध्या-

धिरम्बरमनोहरं प्रकृतिरूपनिर्दोषतः ।

निरायुधमुन्मिषं विगर्वाहस्यार्हिनारुमा

धिरामिषमुत्तृप्तिमद्विविधवेदनाना क्षयात् ॥ १ ॥

इषकहि फुल्लार्हि माटिदेहं सु मुरनररिद्धि ।

एही वरह कुसाटिघनु भोलिम जिणधरतणी ॥ १ ॥

एकह्रिं कुल्लहिं कुल्लसउ
 चाण कुल्ल सहासु ।
 जिम्ब जिम्ब जिणवर पुजियइ
 तिम्य तिम्य दुरियह नासु ॥ २ ॥

तथा चोक्त समन्तभद्रस्वामिना भुनिरणेण आर्याद्वय—

देवाधिदेवचरणे परिचरण सर्वदु खनिर्हरण ।
 कामदुहि कामदाहिनि परिचिनुयादादतो नित्यं ॥ १ ॥
 अर्हच्चरणसपर्या महानुभाव महात्मनामवदत् ।
 भेक. प्रमोदमत्त कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥ २ ॥

अजगमदेहा—मुवर्णमरकतमणिघटिता, स्फटिकमणिघटिता, इन्द्र
 नीलमणि, निर्मिता, पद्मरागमणिरचिता, निद्रुमकल्पिता, चन्दनकाष्ठानु
 ष्ठिता वा अजगमा प्रतिमा कथ्यते । ईदृशी प्रतिमा केपा भवति,
 दंसणणाणेण सुद्धचरणार्णं दर्शनेन ज्ञानेन निर्मलचारित्राणा तीर्थकर-
 परमदेवाना । कथभूता प्रतिमा, निर्गन्धवीयराया निर्ग्रन्था वस्त्राभरण-
 जटामुकुटायुधरहिता, यौतरागा रागरहितभावेऽन्यतरिता । जिणमग्गे
 एरिसा पडिमा जिनमार्गे सर्वज्ञवीतरागमते ईदृशी प्रतिमा भवति ।

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं ।
 सा होइ वंदणीया निगन्था संजदा पडिमा ॥ ११ ॥

य चरति शुद्धचरण जानाति पश्यति शुद्धसम्बन्धम् ।

सा भवति वन्दनीया निग्रन्था सांयता प्रतिमा ॥

जं चरदि सुद्धचरणं यो मुनिश्चरति प्रतिपालपति । किं, शुद्ध-
 चरण निरतिचारचारित्र । जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं जिनश्रुत जा-
 नाति स्वयोग्य वस्तु पश्यति च । शुद्ध पचविंशतिदोषरहित यस्य सुरे
 सभ्यस्त्व भवति । सा होइ वंदणीया सा भवति वन्दनीया नमस्क-
 रणीया । निगन्था संजदा पडिया निर्ग्रन्था चतुर्विंशतिपरिग्रहरहिता

सयताना मुनीना दिगम्बराणा प्रतिमा आकारः, जगमा प्रतिमा मुनयो भवन्तीत्यर्थः ।

दंसणअणंतणाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य ।

सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मद्वंदेहि ॥ १२ ॥

दर्शनानन्तज्ञान अनन्तवीर्या अनन्तसुखा य ।

सासयसुक्खा अदेहा मुक्का कर्माद्वन्द्वै ॥

दंसणअणंतणाणं दर्शनमनन्त केवलदर्शन सत्तालोकनमात्र-
लक्षण । काकाक्षिगोलकन्यायेनानन्तशब्द उभयत्राभिसम्बध्यते तेना-
नन्तज्ञान वस्तुयथास्तत्स्वरूपग्राहक केवलज्ञान लोकालोकन्यापकं द्वय ।
तद्योगादर्शनानन्तज्ञान अनन्तदर्शनमनन्तज्ञान च सिद्धा भवन्ति । उक्तं
चाशाधरेण महाकविना—

सत्तालोचनमात्रमित्यपि निराकार मन दर्शन

साकार च विशेषगोचरमिति भान प्रवर्द्धयति ।

ते नेत्रे क्रमप्रतिनी सरजसां प्रादेशिके सर्वतः

स्फूर्जन्ती युगपत्पुनर्धिरजसा युष्माकमङ्गातगा ॥१॥

तथा च नेमिचद्रसिद्धान्तचक्रवर्तिना चोक्त—

दसणपुब्ब जाण छुदुमस्थाण ण दोणिय उयभेगा ।

जुगन जम्हा केवलिणादे जुगव तु ते दो रि ॥ १ ॥

अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य अनन्तवीर्याश्च सिद्धा भवन्ति
लोकालोकस्वरूपाः लोकने ज्ञातृत्वं च या शक्तिस्तदनन्तरार्थं ज्ञातव्यं ।
अनन्तसौख्याश्च सिद्धा भवन्ति सर्वस्तुस्वरूपप्रविज्ञाने सति तेषां सुख-
मुत्पद्यते । तथा चोक्तं नेमिचद्रेण त्रिलोकसाग्रन्ये वैमानिकात्रिकार-
पर्यन्ते—

एय सत्थ सत्थ सत्थ वा सम्ममेत्थ जाणता ।

ति च तुस्सति णरा किं ण समत्थत्थतच्चण्हा ॥ १ ॥

चक्किरुकुक्कणिसुरेदसहमिदे अ सुह तिकालमय ।

तत्तो अणतगुणिद सिद्धाण खणसुह होदि ॥ २ ॥

मासयसुक्ख अदेहा शाश्वतमुखा अभिनश्नसुखा, अदेहा देहर-
हिता हानमयमूर्तय इयथ । भुक्ता कम्मद्वन्द्वेहिं मुक्ता कर्माद-
बन्धनै ।

निरुपममचलमखोहा निम्मिवियाजगमेण रूवेण ।

सिद्धद्वानाम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ॥ १३ ॥

निरुपमा अचला अक्षोमा निर्मादिता अव्यक्तमेव रूपेण ।

सिद्धस्थाने स्थिता व्युत्सगप्रतिमा धुवा सिद्धा ॥

निरुपममचलमखोहा निरुपमा उपमारहिता । ईदृश पुमान्
कोऽपि नास्ति येन सिद्धा उपमीयते । अचला स्वस्थानादाहुरीको
टितभ भागमपि न परतो गच्छति । अखाहा अक्षाभा न क्षोभ प्राप्नु-
वति । उक्त च सम तमद्रेणा सर्पिणीकाले आगामिनि भविष्यत्तीर्थकर-
परमदवेन—

काले अदपशतेऽपि च गते शिवाना न विप्रिया लक्ष्या ।

उत्पातोऽपि यदि स्यात्त्रैलोक्यसम्राट्तिरुरणरदु ॥ १ ॥

निम्मवियानगमेण रूवेण स्थिररूपेण निर्मापिता ससारात्प-
क्षणेन निष्पादिता एकसमयेन त्रेगाव्यशिश्वर प्राणा धर्मास्तिफायाभा-

१ एक शास्त्र सर्व शास्त्र वा सम्यगत्र जानन्त ।

तीव्रं गुप्यन्ति नरा किं न समस्तार्थतापना ॥ १ ॥

चमिकरकजिमुरेद्रेषु अहमिदे यस्सुख तिकालमय ।

सताऽनन्तगुणिन सिद्धानां क्षणमुत्र भवति ॥ २ ॥

२ सर्वत्र प्रभावतम ॥

चात्परतो न गच्छन्ति, अजंगमेन रूपेण स्थिररूपेण तिष्ठन्ति निश्चय
स्थिरप्रतिमाभिधाना । सिद्धदृष्टाणाम्मि ठिया सिद्धाना मुक्तात्मना
स्थाने त्रिभुवनोभे तनुवात्तख्ये स्थिता—मुक्तिशिलामीपदूनगभूतिमधो
मुक्त्वा आकाशे निराधारा स्थिता । वोमरपडिमा ध्रुवा सिद्धा
व्युत्सर्गप्रतिमाः फायोत्सर्गेण पद्मासनेन वा स्थिता ध्रुवा शाश्वताः
सिद्धाः प्रतिमा भवन्ति । तेऽपि वन्दनीया भवन्ति ।

पडिमा—प्रतिमाधिकारस्तृतीय समाप्त । ३ ।

अयेदानीं गाथाद्वयेन दर्शनाधिकार कथयन्ति श्रीकुन्दकुन्दाचार्या —

दंसेह मोक्षमार्गं सम्मत्तं संयमं सुधर्मं च ।

निर्गन्धं णाणमयं जिणमग्गे दंसणं भणियं ॥ १४ ॥

दर्शयति मोक्षमार्गं सम्यक्त्वं संयमं सुधर्मं च ।

निर्गन्धं ज्ञानमयं जिनमार्गे दर्शनं भणितम् ॥

दंसेह मोक्षमार्गं दर्शयति प्रकटयति मोक्षमार्गं सम्यग्दर्शनज्ञान-
चारित्रलक्षणं यत्तद्दर्शनं । “कृत्ययुतोऽन्यत्रापीति”वचनात्कर्तरि युद्प्रत्यय ।
कोऽसौ मोक्षमार्गो य दर्शनं कर्तृतया दर्शयति, सम्मत्तं सम्यक्त्वं
तत्त्वार्थज्ञानलक्षणं । तथा संयमं चारित्रं पचमहाव्रतपधसमिति-
त्रिगुणिलक्षणं दर्शयति । सुधर्मं चानशनादि द्वादशविधं तपधं
दर्शयति । कथभूतं दर्शनं, निर्गन्धं बाह्याभ्यन्तरपरिहरहितं भूयोऽपि
कथभूतं दर्शनं, णाणमयं सम्यग्ज्ञानेन निर्वृतं । जिणमग्गे दंसणं
भणियं जिनमार्गे सर्वज्ञगीतरागप्रानिपादिते मार्गे दर्शनं सम्यक्त्वरूपं
भणितं यतिश्रावकागारं प्रतिपादितं, अत्रितसद्दृष्टवाधारभूतं च ।

जह फुत्तं गंधमयं मग्गदि हु खीरं म धियमयं चावि ।

तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होह रुक्खं ॥ १५ ॥

यथा पुष्पं गन्धमयं भवति स्फुटं क्षीरं तद्वद्वनमयं चापि ।

तथा दर्शनं हि सम्यग्ज्ञानमयं भवति रूपस्थम् ॥

जह्नुं फुल्लं गन्धमयं यथा पुष्पं गन्धमयं भवति । भगदि हुं क्षीरं
मन्धिमयं चापि भवति हुं-स्फुटं क्षीरं दुग्धं, स-तत् घृतमयं घृतं
युक्तं चापि । अपिशब्दादन्यऽपि कनकपाषाणकाष्ठामिप्रभृतयो ह
प्राप्ता ज्ञातव्या । तह्नुं दंमणं हि सम्मं तथा दर्शनं सम्यक्त्वं हि
निश्चयेन सम्यग्ज्ञानमयं भवति । स्वरूपं यतिश्रान्तकासयतसद्दृष्टिर्भूति-
स्थितं दर्शनं ज्ञातव्यमित्यर्थः ।

दंमणं-दर्शनाधिकारं एकादशाधिकारेषु ग्राह्यप्राभृतं चतुर्थं समाप्तं । ४।

अथदानीं जिनत्रिंशत्स्वरूपं निरूपयन्ति धागृद्धापिच्छाचार्या भगवन्तः -

जिनत्रिंशं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च ।

जं देहं दिक्खसिक्खं कम्मस्सयस्सारेण सुद्धं ॥१६॥

जिनत्रिंशं ज्ञानमयं संजमसुद्धं सुवीतरागं च ।

यद् ददाति दीक्षाशिक्षे कम्मस्सकारणे सुद्धे ।

जिनत्रिंशं णाणमयं जिनस्य त्रिंशद्भाकारो ज्ञानमयं मतिज्ञानं
श्रुतज्ञानयथासंभवावधिज्ञानयथामभयमन एवमज्ञानमयं भवति तृतीय
परमेष्ठी आचार्यसङ्गको जिनत्रिंशं ज्ञातव्यं इत्यर्थः । संजमसुद्धं सुवी-
यरायं च तदुक्तलक्षणं जिनत्रिंशं कथंभूतं भवतीत्याह-संजमसुद्धं
सयमेन निरातिचारचारित्र्येण सुद्धं निर्मलं, सुष्ठु-अतिशयेन वातरागो
नीतं क्षयं गतो रागः प्रीति-लक्षणो यस्मादिति वीतरागः । अत्र क्षयणे
इति धानो प्रयोगात् । “ अजेयी ” इति वचनादजरीते वीरादयः ।
चकारात्तद्गुणाधिकारोपणा निषप्रिका च जिनत्रिंशं भवति । जं देहं
दिक्खसिक्खं यजिनत्रिंशनागार्थं ददाति दीक्षा व्रतारोपणलक्षणां,
पिक्षा च द्वादशानुप्रेक्षा-लक्षणां ददाति । कम्मस्सयस्सारेण सुद्धं

कर्मक्षयकारण शुद्धा निर्मला । जीवन्मुक्तनिवदाचार्यो माननीय इति
भारार्थ । उक्त च सोमदेवेन सूरिणा—

ज्ञानकाण्डे क्रियाकाण्डे चानुर्वर्ण्यपुर सर ।

सूरिर्देव इवाराध्य ससाराब्धितरणद्वक ॥ १ ॥

तस्य य करह पणामं सन्न पुजं च विणय वच्छल्लं ।

जस्य य दंसण णाणं अत्ति धुवं चेयणाभावो ॥ १७ ॥

तस्य च कुरुत प्रणाम सर्वो पूजा विनय वात्सल्य ।

यस्य च दर्शनं ज्ञान, अस्ति ध्रुव चेतनाभाव ॥

तस्य य करह पणामं तस्य च जिनविम्बस्य जिनविम्बमूर्तेराचा-
र्यस्य प्रणाम नमस्कार पचाङ्गमष्टाङ्ग वा कुरुत यूय हे भव्यजीवा !,
चकाराहुपाध्यायस्य सर्वसाक्षे प्रणाम कुरुत तयोरपि जिनविम्बस्य-
रूपत्वात् । सन्नं पुजं च विणय वच्छल्लं सर्वा पूजामष्ट-
निधमर्चन च कुरुत यूयमिति, तथा विनय हस्तपोटन पादपतनं स-मु-
खगमन च कुरुत, वात्सल्य भोजन पान पादमर्दन शुद्धतैलादिनाङ्गा-
भ्यञ्जन तत्प्रक्षालन चेत्यादिक कर्म सर्व तीर्थकरनामकर्मोपार्जनहे-
तुभूत वैशाख्य कुरुत यूय । उक्त च समन्तभद्रेण महामुनिना—

व्यापस्तित्रपनोद पद्मो सवाहन च शुणरागात् ।

वैशाख्य यावानुपग्रहोऽप्योऽपि सयमिना ॥ १ ॥

तथा चकारो पापाणादिघटिनस्य जिनविम्बस्य पचापृष्टै नमन,
अष्टविधै पूजाद्रव्यैश्च पूजनं कुरुत यूय । वदना भाक्तं च कुरुत । यदि
तथाभूत जिनविम्ब न मानयिष्यथ गृहस्था अपि सन्तस्तदा कुर्मापा-
कादिनरकादौ पतिष्यथ यूय । तथा चोक्त सोमदेवेन स्वामिना—

अपूजयित्वा यो देवान् मुनीननुपचर्य च ।

यो भुजीत गृहस्थ सन् स भुजात पर तम ॥ १ ॥

परं तम इति कोऽर्थः कुर्भानरक, सप्तमे नरके पच त्रिलानि
तेषां नामानि यथा-रौरमहारौरवासिपत्रकूटशाल्मलीकुम्भीपाका इति ।
सप्तमनरके यानि चतुर्दिक्षु चत्वारि त्रिलानि वर्तन्ते तान्यर्धरज्जु-
प्रमाणानि सन्ति तेषां मध्ये यत्कुम्भीपाकसंज्ञक पंचम त्रिलमस्ति तदेक-
योजनलक्षप्रमाणं वर्तते, पचभिरपि रज्जुरेका भूमी रक्षा वर्तते । जस्स य
दंसण णाणं यस्य पूर्वोक्तलक्षणस्य जिनिर्मितस्य दर्शनं ज्ञानं च वर्तते ।
अत्थि धुमं चेयणामावो अस्ति विद्यते धुवं निधयेन चेतनाभावं आत्म-
स्वरूप स्थापनान्यासनापीति तात्पर्यम् ।

तत्रययगुणेहि सुद्धो जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं ।

अरहंतमुद्द एमा दायारी दिक्खसिक्खा य ॥ १८ ॥

तपोमतगुणं शुद्धं जानाति पश्यति शुद्धसम्बन्धम् ।

अहमुद्रा एषा दात्री दीक्षाशिक्षाणां च ॥

तत्रययगुणेहि सुद्धो तपोभिर्द्वादशभेदैः, त्रैविंशतिसत्यास्तेय-
स्त्रापरिमहैः पचभिः, गुणं पूर्वोक्तलक्षणैश्चतुरश्रातिलक्षैः शुद्धो निर्गच्छेत् ।
जाणदि पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं जानाति सम्यग्ज्ञानान्, पश्यति स्वस्व-
वेति कस्य शुद्धसम्बन्धस्य पचविंशतिमलहितस्य । अरहंतमुद्द एमा
श्रीमद्भगवद्दर्हत्सर्गहरीतरागस्य मुद्रा आचार एषा धर्माचार्यलक्षणा पादा-
णघटितविनस्यरूपा यत्रमत्राराधनगम्या च जिनिर्मित भवति । दायारी
दिक्खसिक्खा यः कथंभूता मुद्रा, दात्री दायका कक्षा, दाक्षाशि-
क्षाणां । चकारायात्राप्रतिष्ठादिकर्मणा च प्रवर्तिका ।

निणर्विं इति श्रीबोधप्राभृते जिनिर्मितकारि पंचम समाप्त ॥५॥

अधेदानामेकया गायया जिनिमुद्रां निरूपयति श्रीमद्विचार्या —

दृढसंज्ञममुद्दाणं इन्द्रियमुद्दा कर्मायददमुद्दा ।

मुद्दा इह णाणाणं जिनिमुद्दा एरिसा भणिया ॥ १९ ॥

ददसयममुद्रया इन्द्रियमुद्रा कपायददमुद्रा ।
मुद्रा इह ज्ञानेन जिनमुद्रा ईदृशी भणिता ॥

ददसंजममुद्राए ददया वज्रघटितप्रायया सयममुद्रया पङ्जीवनि-
कापरक्षणलक्षणया षडिन्द्रियसकोचस्वरूपया च मुद्रया वेपेण जिनमुद्रा
भवति । इन्द्रियमुद्रा कसायददमुद्रा इन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राण-
चक्षुःश्रोत्राणां द्रव्येन्द्रियाणां यत्र मुद्रणं कूर्मवत्करचरणसकोचनमिन्द्रि-
यमुद्रोप्यते सा जिनमुद्रा भवति । कसायददमुद्रा कपायाणां ददं गाढं
मुद्रणं कपायददमुद्रा । मुद्रा इह णाणाए मुद्रा इह जिनशासने ज्ञानेन
भवति, अर्हनिश पठनपाठनादिना जिनमुद्रा भवति । जिणमुद्रा एरिसा
भणिया जिनमुद्रेशी भणिता । मुनीनामाकारो जिनमुद्रा । ब्रह्म-
चारिणामाकारश्चक्रवर्तिमुद्रा से उभये अपि माननाया (ये) । यदि
कश्चिदुरभिनिवेशेन ता न मानयति स पुमान् जिनमुद्राद्रोही विशिष्टै-
र्दण्डनीय इति भावार्थः । शिरःकूर्चश्मश्रुलोचो मधूरपिच्छधर कम-
ण्डलुकरोऽथ केशरक्षण इति जिनमुद्रा सा मान्यते । तदुक्तमिन्द्रन-
न्दिना प्रतिष्ठाचार्येण—

मुद्रा सर्वत्र मान्या स्यान्निर्मुद्रो नैव मान्यते ।

राजमुद्राधरोऽप्यन्तर्हीनघञ्छास्त्रनिर्णय ॥ १ ॥

जिणमुद्रा—इति श्रीजोधप्राभृते जिनमुद्राधिकार पष्ठ समाप्तः । ६ ।

अथेदानीं ज्ञानाधिकार प्रारम्भते—

संजमसंजुत्तस्स य मुझाणजोयस्स भोक्खमग्गस्स ।

णाणेण लहदि लक्खं तम्हा णाणं च णायव्वं ॥ २० ॥

सकमसयुक्तस्य च गुप्त्वानयोगस्य मोक्षमार्गस्य ।

ज्ञानेन लभते लक्ष्यं तस्मात् ज्ञानं च ज्ञातव्यम् ॥

संजमसंजुत्तस्स य सयमेनेद्रियजयप्राणरक्षणलक्षणेन संयुक्तस्य सहितस्य । सुज्ञाणजोयस्स मोक्खसमग्गस्स सुष्ठु ध्यानयोगस्य आतिरौद्रध्यानद्वयरहितस्य ध्यानस्य धर्म्यध्यानशुक्लध्यानद्वयस्य योगेन सयोगेन सहितस्य, एव विशेषणद्वयनिशिष्टस्य मोक्षमार्गस्य सम्बन्धित्वेन । णाणेण लहदि लक्खं ज्ञानेन कारणभूतेन लभते, किं कर्मतापन्नं लक्ष्यं निज्जामस्सरूपं । तम्हा णाणं च णायव्वं तस्मात्कारणाज्ज्ञानं च ज्ञातव्यं, न केवलमायतनादिपट्क ज्ञातव्यं किन्तु ज्ञानं च ज्ञातव्यं । चशब्दः परस्परसमुच्चयार्थः ।

जह ण वि लहदि हु लक्खं रहिओ कंडस्स वेज्जयविहीणो ।
तह ण वि लक्खदि लक्खं अण्णाणी मोक्खसमग्गस्स ॥२१॥

यथा नापि लक्षयति स्फुटं लक्ष्यं रहितं काण्टस्य वेध्यकविहीनं ।
तथा नापि लक्षयति लक्ष्यं अज्ञानी मोक्षमार्गस्य ॥

जह ण वि लहदि हु लक्खं यथा येन प्रकारेण नापि नेत्रं लभते, हु—स्फुटं, लक्ष्यं वेध्यं । कोऽसौ वेध्यं न लभते, रहिओ कंडस्स वेज्जयविहीणो रहितोऽभ्यासरहितः, काण्टस्य बाणस्य, वेध्यकविहीनोऽनभ्यस्तदेध्यव्यधनं पुमान् । तह ण वि लक्खदि लक्खं तथा तेन प्रकारेण नापि लक्षयति जानाति लक्ष्यं परमात्मानं । अण्णाणी मोक्खसमग्गस्स अज्ञानी ज्ञानरहितः पुमान् मोक्षमार्गस्य सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रलक्षणस्य लक्ष्यं निज्जामस्सरूपं न लक्षयति ।

णाणं पुरिमम्म हवदि लहदि सुपुरिस्सो वि विणयसंजुत्तो ।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खसमग्गस्स ॥ २२ ॥

ज्ञानं पुष्ट्यस्य भवति लभते सुपुरुषोऽपि विप्रमयुक्तः ।
ज्ञानेन लभते लक्ष्यं लक्षयन् मोक्षमार्गस्य ॥

णाणं पुरिसस्स हवदि ज्ञानं श्रुतज्ञानं पुरुषस्यासन्नमव्यजीवस्य भवति सत्तिष्ठते । लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो लभते प्राप्नोति ज्ञानं सुपुरुषोऽप्यासन्नमव्यजीव । अपिशब्दाद्ब्राह्मी मुदरी रात्रिमति-चन्दनादिवत् एकादशाङ्गानि लभन्ते, मृगलोचना अपि स्त्रीणां ठित्वा स्वर्गमुखं भुक्त्वा राजकुलादिपूषथ मोक्षं तृतीयेऽपि भवे लभन्ते । पु-पास्तु सकलं श्रुतं लब्ध्वा तद्वयेऽपि मोक्षं यान्ति । ईदृशं ज्ञानं कः प्राप्नोति ? विणयसंजुत्तो—विनयसंयुक्तो गुरुचरणरेणुरजितभालस्थल इति भागार्थः । णाणेण लहदि लक्खं ज्ञानेन श्रुतज्ञानेन लभते लक्ष्यं निजात्मस्वरूपम् । लक्खंतो मोक्खमग्गस्स लक्षयन् अपायन् लक्ष्यं लभते, कस्य लक्ष्य-मोक्षमार्गस्य रत्नत्रयस्य ।

मइधणुहं जस्स धिरं सुदगुणं वाणां सुअत्थि रयणत्तं ।

परमत्थं बद्धलक्खो ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स ॥ २३ ॥

मतिभनुवंस्य स्थिरं श्रुतगुणो वाणां सुसन्ति रत्नत्रयम् ।

परमार्थं बद्धलक्ष्यं नापि स्खलति मोक्षमार्गस्य ॥

मइधणुहं जस्स धिरं मतिर्मतिज्ञानं यस्य मुनर्थनुश्चाप स्थिरं निश्चलं । सुदगुणं श्रुतज्ञानं गुणं प्रत्यक्षाः । वाणां सुअत्थि रयणत्तं वाणां शरां सुष्ठु अतिशयवत् सत्तिष्ठन्ते, किं रत्नत्रयं भेदाभेद-लक्षणं रत्नत्रयं । परमत्थं बद्धलक्खो परमार्थं निजात्मस्वरूपे बद्धलक्ष्यं निश्चलीकृतात्मस्वरूपो मुनिः । ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स न स्खलति मोक्षमार्गस्य लक्ष्ये इति सम्बन्धः । तथा चोक्तं श्रीशारङ्ग-शिष्येण पद्मनन्दिनाचार्येण—

प्रेरिता श्रुतगुणेन शेषुपीकामुक्तेण शरवद्दृगादयः ।

वाह्यप्रेष्यविषयं कृतश्रमाश्चिद्वर्णे ग्रहणकर्मशत्रवः ॥ १ ॥

तथा च सोमदेवस्नाभिनापि श्रुतज्ञानस्य गुणस्तुतिकृता—

अत्यल्पायतिरक्षजा मतिरिय बोधोऽवधि सावधि ।

साश्चर्यः क्वचिदेव योगिनि स च स्वल्पो मन पर्यय ॥

दुष्प्राप पुनरप्य केवलमिदं ज्योतिःकथागोचर ।

माहात्म्य निखिलार्थगे तु सुलभे किं वर्णयाम श्रुते ॥१॥

णाणं—इति श्रीबोधप्राभृते ज्ञानाधिकार सप्तम समाप्त । ७ ।

अधेदानीं गाथाद्वयन देवस्वरूप निरूपयन्ति श्रीकुन्दकुन्दचार्या.—

सो देवो जो अर्थं धर्मं कामं सुदेह णाणं च ।

सो देह जस्स अत्थि दु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा ॥२४॥

स देवो योऽर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च ।

स ददाति यस्य अस्ति तु अर्थं धर्मं च प्रव्रज्या ॥

सो देवो जो अर्थं स देवो योऽर्थं धन निधिगत्नादिक ददाति ।
धम्मं कामं सुदेह णाणं च धर्मं चारित्रलक्षण दण्डलक्षण अस्तुत्य-
रूपमामोपलब्धिलक्षणमुत्तमक्षमादिदशभेद सुददाति सुष्ठु अतिशयेन
ददाति । कामं-अधमण्डलिकमण्डलिकमहामण्डलिकरत्नलववामुदेवचक्र-
तीन्द्रधरणन्द्रभोग तीर्थकरभोग च यो ददाति स देव । सुष्ठु ददाति ज्ञान
च केवल ज्योति ददाति । सो देह जस्स अत्थि दु स ददाति यस्य
पुरुषस्य यद्वस्तु वर्तते असत्कथं दातुं समर्थ । अत्थो धम्मो य
पव्वज्जा यस्सार्थो वर्तते सोऽर्थं ददाति, यस्य धर्मो वर्तते स धर्मं ददाति,
यस्य प्रव्रज्या दीक्षा वर्तते स केवलज्ञानहेतुभूता प्रव्रज्या ददाति,
यस्य सर्वं सुख वर्तते स सर्वसौख्य ददाति । उक्तं च गुणभद्रेण
गणिना—

सर्वं प्रेप्सति सत्सुखाप्तिमचिरात् सा सर्वकर्मक्षयात्

सदृत्तात् स च तच्च बोधनियत सोऽप्यागमात्स श्रुते ।

सा चाप्तात् स च सर्वदोषरहितो रागादयस्तेऽप्यत
स्त युक्त्या सविचार्य सर्वसुखद सत अथ तु धिय ॥ १ ॥

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता ।
देवो ववगयमोहो उदयकरो भव्वजीवाण ॥ २५ ॥

धर्मो दयाविशुद्ध प्रवज्या सर्वसंगपरिचत्ता ।
देवो व्यपगतमोह उदयकरो भव्यजीवानाम् ॥

धम्मो दयाविसुद्धो धर्मो दयया विशुद्धो निर्मल, यो दया कु-
वन्नपि चर्मजठं पिबति, अजिनतैलमास्वादयति, कुतुपघृत भुक्त, भूत
नाशनमस्ति तस्य पुंसो धर्मो विशुद्धा न भवति स यतिर्येधार्थ्यपि म्ल-
च्छो ज्ञातव्य । पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता प्रवज्या सर्वसंग
परित्यक्ता भवति यो दण्ड करे करोति कम्बलमुपदधाति शस्त्रकरनारी
स्पृष्टमन्नमश्नाति स कथं प्रवज्यागान् भवति । देवो ववगयमोहो
देवो व्यपगतमोह, यो देवोऽग्राह्ये वनिता दधाति, यो देवो हृदयस्थले
लम्बीमुपनशयति, यो दधा दड धरति, यो देवो वेश्या चापमुक्ते, वसिष्ठ
पिता भवति स कथं देव । उदयकरो भव्वजीवाण भव्यजी-
वानामुदयकर उत्कृष्टतार्थकरनामशुभदायक स देवो ज्ञातव्य ।

देव-इति श्रान्नाधप्राभृते दवाधिकारोऽष्टम समाप्त । ८ ।

अथेदानीं गा-ग्राह्येन तीर्थं निरूपयन्ति श्रीशिवनन्दिदेवा —

वयसम्मत्तविसुद्धे पचिंदियसजदे गिरावेक्खे ।
ण्हाएउ मुणी तित्थे दिक्खासिक्खामुण्हाणेण ॥२६॥

व्रतसम्यक्वविशुद्धे पञ्चेन्द्रियसयते निरपक्वे ।
स्नातु मुनि तीर्थं दीक्षाशिक्षामुत्तानेन ॥

ययसम्मत्तविमुद्धे व्रतंरहिंसासत्यास्तेयव्रद्धापग्निहृलक्षणे पचमि
महाते, सम्यक्चन च पचमिंशतिमलरहितं तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षणेन,
विमुद्धे विशेषेण निर्मले चर्मजलाद्यास्वादनरहिततयाऽवश्यमेव तीर्थे ।
पंचिन्द्रियसंजदे गिरावेनसे पचेन्द्रियसयते पचेन्द्रियाणि स्पर्शनरसन-
प्राणचक्षु श्रोत्रलक्षणानि सयतानि वद्धानि स्पर्शरसगन्धस्पर्शद-
लक्षणपचमिपरहितानि यस्मिंस्तीर्थे तत्तथोक्तस्तरिमन् पचेन्द्रियसयते ।
पुन कथभूते तीर्थे, निरपेक्ष बाह्यवस्तुपेक्षारहिते आकांक्षारहित माया-
मिथ्यानिदानशल्यत्रयविरहिते । ण्हाएउ मुणी तिरथे स्नातु स्नान
करोतु—अष्टकर्ममलकद्वयप्रक्षालन करोतु—कलशानाशन-तचतुष्टयसं-
युक्तो भवतु, कोऽसौ मुनि प्रप्यक्षपरोक्षज्ञानसयुक्तो महात्मा महानुभावो
जीव, तीर्थे शुद्धमुद्गैकस्वभावलक्षणे निजामस्वरूपे ससारसमुद्रतारण-
समर्थे तीर्थे स्नातु विमुद्धो भवतु । केन रत्ना स्नातु, दिवसांसिपरा-
मुण्हाणेण दीक्षा पचमहाप्रतपचसमितिपचेन्द्रियरोधलोचयडावदयकत्रि-
यादयोऽष्टाविंशतिमूलगुणा उत्तमश्रुमामार्दगर्जसयशौचसंयमपश्या-
गाविचन्यत्रयचर्याणि दशलक्षणिरो धर्मोऽष्टादशशीलमहन्नाणि चतु-
रशीतिलक्षगुणान्त्रयोदशविधं चारित्र द्वादशविधं तपधेनि सफलसम्पूर्ण
दीक्षा भवति, स्वाप्रसंगवर्त्तन द्वादशानुप्रेभाचिन्तनं शिक्षा जिननाथस्य,
मुस्नानेन कर्मत्रिष्टिकरणक्रिदिनिर्लोपनलक्षणेन स्नानेन स्नातु ।

जं निम्मलं मुधम्मं मम्मनं संजमं तयं णाणं ।

तं तित्थं जिणमग्गे हवेह जदि संतिभावेण ॥२७॥

यन्निमलं मुधर्मं सम्यक्च संयमं तप इव ।

तन्तीर्थं जिनमार्गे भवति यदि संतिभावेण ॥

जं निम्मलं मुधम्मं यन्निर्मलं निरविचारं मुधर्मं मुष्टं शोभनं
चारित्रं तर्त्तार्थं ज्ञातव्यं । मम्मनं संजमं नयं णाणं सम्यक्चं तयार्थं

थद्धानलक्षणं तीर्थं भवति । संयम इन्द्रियाणां मनसश्च संकोचनं पृथि-
व्यस्तेजोमायुवनस्पतिकायस्थावरजीवरक्षणमविराधनं । द्वेन्द्रियादिपचे-
न्द्रियप्रसजीवदयाकरणं कचिप्रमाददोषेण निरावनाया शास्त्रोक्तप्राप-
थित्तकरणं संयम उच्यते सोऽपि संसारसमुद्रतारकत्वातीर्थं भवति ।
तप इच्छानिरोधलक्षणं द्वादशविधं तत्त्वार्थमोक्षशास्त्रनवमाध्याये विस्त-
रेण निरूपितमाज्ञातव्यं । ज्ञानं च तीर्थं भवति । तं तित्थं जिणमग्गे
तज्जगत्प्रसिद्धं निश्चयतीर्थप्राप्तिकारणं मुक्तमुनिपादस्पृष्टं सार्धं ऊर्जेयन्त-
शानुज्जयलाटदेशपावागिरि-आभीरदेशतुंगीगिरिनासिक्यनगरसमीपवर्तिग-
जपञ्जगजयथसिद्धकूटतारापुरकैलासाष्टावदचम्पापुरीपावापुरवाणारसीनग-
रक्षेत्रहस्तिनागपत्तनसम्भेदपर्वतसह्याचलभेदुगिरिहिमाचलरूपोमेरिभयो-
ध्याकौशाम्बीविपुलगिरिवैभारगिरिरूपगिरिसुवर्णगिरिरत्नगिरिशोर्षपुरचू-
लाचलनर्मदातटद्राणीगिरिकुन्धुगिरिकोहिकशिलागिरिजम्बूकयनचलनान-
दीतटतीर्थकरपंचरूपाणस्थानानि चत्वारिमासं यानि तीर्थानि वर्तन्ते
ज्ञानि कर्मक्षयकारणानि वन्दनीयानि ये न वन्दन्ते ते मिषादृष्टयो
ज्ञातव्याः । तीर्थभ्रमणं त्रिनाऽनन्ते ससारे भ्रमिष्यन्ति-अनुमोदनाच्च
तं तरन्ति । उक्तं च पूज्यपादेन भगवता—

इक्षोर्विकाररसवृक्तगुणेन लोके

विष्टोऽधिकं मधुरतामुपयाति यद्वत् ।

तद्वच्च पुण्यपुरुषैरुपितानि नित्यं

जातानि नानि जयतामिह पावनानि ॥ १ ॥

जिनमार्गब्राह्मं यत्तीर्थं जलस्थानादिकं तन्न माननायं तत्किं ? गंगायमु-
नां सरयून् नर्मदातापीमागधीगोमतीकपीवर्तारवस्यागमीराकालतोषाकौशिकी-
कालमहीतोखाऽरणानिमुगालोहित्यसमुद्रकन्धुकाशोणनद्वानामेखलोदु-
म्बरीपनसातनसाभ्रमृशाशुक्तिमतीपपासरच्छत्रनतीचित्रवतीमात्यवतीप्रेणु-

मतीविशालानालिकासि-धुपारानिष्कुन्दरीवहुवज्रास्पासिवतनी यूहासम-
तोयाकजाकर्पावतीनिनिन्ध्याजम्बूमतीवसुमन्यस्त्रिगामिनीशर्करानतीसिप्रा
कृतमालापरिजापनसाऽचन्तिकामाहस्तिपानीकागधुनीव्याघ्रीचर्मवतीश-
तभागानदाकरभवेगिनीक्षुल्लतापीरेवासतपारकौशिकीध्रुवेदशनय । उक्त
घ ब्राह्मणमते—

प्रागुदीर्घ्या विभजते हस क्षीरोदक यथा ।

विदुषा शब्दसिद्धयर्थ सा न पातु शराधती ॥ १ ॥

अथ दक्षिणे—तैला इक्षुमती नक्ररवा चंगा स्वसना धैतरणी मापनती
महिन्द्रा शुष्कनदा सप्तगोदावर गोदावरी मानससर सुप्रयोगा कृष्ण
वर्णा सन्नीरा प्रेणी कुब्जा धैर्या चूर्णा वेल शूकरिका अम्बर्णा ।

अथ पश्चिमे देशे—भैरवी दाक्षैणा नीरा मूला बाणा केता स्वाक-
रीरी प्रहरा मुररा मदना गोदावरी तापी छागला खातिका फारेरी तुंग-
भद्रा साभ्रवती महासागरा सरस्वतीत्यादयो नद्यो न तीर्थं भवति पाप-
हेतुत्वात् तन्मतऽपि विरुद्धत्वात् ।

गगाद्वारे कुशावर्ते बिल्वके नीलपर्यंते ।

स्नात्वा वनखले तीर्थे समवेष्ट पुनर्भवे ॥ १ ॥

किमत्रिरेषः ।—

दुष्टमन्तर्गत चित्त तीर्थस्नानाच्च शुद्ध्यति ।

शतशोऽपि जलघात सुरामाण्डमिवाशुचि ॥ १ ॥

तित्यं—इति आबोधप्राभृते तीर्थाधिकारो नवम समाप्त । ९ ।

अथेदानीं चतुदशभिर्गाथाभिरहत्स्वरूपमहाविकारं प्रारभते श्री
चुन्दकुन्दाचार्या —

णामे ठवणे हि य सद्व्ये भावे हि सगुणपञ्जाया ।

चउणागदि सपदिम भावा भावति अरहत ॥ २८ ॥

नामिन् स्थापनायां हि च सद्व्ये भावे च स्वगुणपञ्जाया ।

प्यवनमागति सपदिम भावा भावयन्ति अर्हन्तम् ॥

णामे नामयासे सति । ठवणे स्थापनान्यासे सति । हि स्पुटे ।

चकार पादपुरणार्थ । सद्व्ये समीचीने द्रव्यन्यास सति । भावे य
भावायासे च सति । सगुणपञ्जाया स्वगुणा अनन्तज्ञानान तदर्शना
नन्तर्धीर्यानि तमुल्लसज्ञा अर्हन्तो भवन्तीत्युपस्कार । स्वपर्याया दिव्य
परमौदारिकशरीराष्टमहाप्रातिहार्यसमन्तरणलक्षणा पर्याया अर्हन्तो भव
न्तीत्युपस्कर्तव्य । चउण स्मर्गान्तरकाद्वा प्यवन । आगदि भरतादिक्षेत्रे
प्यागमन । सपत् गर्भायतारापूर्वमेव पण्मासान् रत्नसुवर्णपुष्पगन्धो
दकवर्षणं मातुरङ्गणे भवति, अन्तरीर्णे सति नमसासपर्यन्त सुवर्ण
रत्नदृष्टिं मातुरङ्गणे सौधर्मेन्द्रादेशा कुबेर कराति धनकमपत्तनं भवति ।
पुत्सर्व महापुराणासम्पद्विररणमर्हतो ज्ञातव्य । इम अर्हन्त । भावा
भव्यजीवा आसन्नतरभव्यपरपुण्डरीका । भावति भावयन्ति निज-
हृदयकमले निश्चल धरति । क, अरहत श्रीमद्भगवत्सर्वज्ञवीतराग ।

स्था चाक्त—

णामजिणा जिणजामा ठवणजिणा तह य साह पडिमाओ ।

धव्यजिणा जिणजीवा भावजिणा समन्तरणत्था ॥ १ ॥

दसण अणत्तणाणे मोसो णट्ठकम्मपधेण ।

णिरुपमगुणमारुढो अरहतो एरिसो होइ ॥ २९ ॥

दग्ने अनन्तज्ञाने मोक्षो नष्टकर्मवधेन ।

निरुपमगुणमारुढ अर्हन् ईदृशो भवति ।

१ नामजिना जिणजामानि स्थापनाजिना तथा च तेषां प्रतिमा ।

द्रव्यजिना जिणजीवा भावजिना समन्तरणत्था ॥ १ ॥

दत्तण अणत्तणाणे अनन्तदशने सत्तावलोक्कनमात्रलक्षणं सति ।
 तथा अनन्तज्ञाने विशेषगोचरसाकारे सति मोक्षो भवतीति तावद्वे-
 दितव्य । केन कृत्वा, णट्टकम्मपधेण नष्टाष्टकर्मपधेन । ननु “मोह-
 क्षया ज्ञानदर्शनावरणात्तरायक्षयाच्च कश्च” इयुमास्वामिचरणात् चत्वा-
 र्येण कर्माण्यर्हन्तो नष्टानि कथं नष्टाष्टकर्मपधेनेषुच्यते । साधूक्तं भवता
 यथा सैन्यनायके पतिते सति जीरत्यपि शत्रुकृन्दे तन्मृतव्यप्रतिभासते
 विहृतिकारकत्वभावाभावत्तया सर्वेषां कर्मणा मुरयभूते मोहनीयकर्मणि
 नष्टे सति वेदनीयायुर्नामगोत्रकर्मचतुष्टये सत्यपि भगवतो त्रिभिधफलो-
 दयामावाद्घातीत्यपि कर्माणि नष्टानीयुच्यते । णिरुवमगुणमारुढो
 निरपम गुणमनत्तचतुष्टयलक्षणमारुढोऽर्हन्नष्टकमरत्ति उच्यते । अर-
 हतो एरिसो होड अर्हन्नीदृशो भवतीति मुक्त एवापचयत इति
 भावार्थः ।

जरवाहिजम्ममरणं चउगडगमणं च पुण्णपाप च ।

हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो ॥ ३० ॥

जराव्याधिनममरणं चतुर्गतिगमनं च पुण्यपापं च ।

हन्वा दोषकर्माणि भूतं ज्ञानमयं अर्हन् ॥

जर जरा हत्वा । वाहि व्याधिं हत्वा, एतन् पदेन य महावीरस्श-
 मिन् पाप्मासिकमतामार गेग कवलज्ञानेन कथयति तं मतं निरस्तं
 भवति । जम्म जन्म गर्भवासं हत्वा, इदमपि पद्मनमूचयनि यद्वन-
 न्दाया ब्राह्मण्या उदराद्वीर निष्काश्य क्षत्रियाया उर्ये प्रशशितगानिद्र-
 स्तदप्ययुक्तं गतिदाता इन्द्र एवेति जीरस्य कमा गन्तुं कृत्वा भवतीति
 दोषसद्भावात् । तथा मरणं हत्वा । चउगडगमणं च चतुर्गतिगमनं
 च हत्वा । पुण्णपापं च पुण्य पापं च हत्वा । हंतूण दोषकम्मे
 हत्वा विनास्य दाशानशदशदोषान् । के त २—

श्रुतिपासाजरातद्वज्जन्मान्तकमयस्मया ।

न रागद्वेषमोहाश्च यस्यास्त स प्रकीर्त्यते ॥ १ ॥

चकाराच्चित्तरतिनिद्रादिपादस्वेदखेदविस्मया गृह्यते । कम्मे—घाति
कर्माणि । हतूण हत्वा । हुउ णाणमय च अरहतो भूत सजात
कीदृश णाणमय—ज्ञानमय केवलज्ञानवान्, अहंन् इन्द्रादिकृतामर्हणां
पूजामनन्यसम्भविनीमर्हतीत्यहंन् सर्वज्ञ बीतराग ।

गुणठाणमग्गणेहि य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहि ।

ठावण पंचविहेहिं पण्यव्वा अरुहपुरिसस्स ॥ ३१ ॥

गुणस्थानमागमनिष्ठ पर्याप्तिप्राणजीवस्थानम् ।

स्थापना पञ्चविधे प्रणेतव्या अर्हत्पुरुषस्य ॥

गुणठाणमग्गणेहि य गुणस्थानेनार्हन् प्रणतपो योजनीय । कानि
तानि गुणस्थानानि १ तन्निर्देशो गाथाद्वयेन क्रियते—

मिच्छा सासण मिस्सो अविरिय सम्मो य देसविरमो य ।

विरया पमत्त इयरो अनुत्थ अनियाहि सुहमो य ॥ ८ ॥

उपसतपीणमोहो सज्जोगकेवलजिणो अज्जोगी य ।

चउत्स गुणठाणाणि य कमेण सिद्धा य णायव्वा ॥ २ ॥

मार्गणाश्चतुर्दश निर्दिशति । पज्जत्ती पङ्क्ति पर्याप्तिभिरहंन् प्रणे-
तव्य । ता अपि निर्दिशति । पाणजीवठाणेहि प्राणैर्दशभिरहंन् प्रणे-
तव्य । तानपि निर्दिशति । जीवस्थानानि चतुर्दशमु गुणस्थानेषु जावा

१ णाणमभो इति पाठांतर ।

२ मिच्छात्वं सासादन मिथ अविरतसम्पत्त्य देशविरतम् ।

विरत प्रमत्त इतरोऽपूर्वोऽनिवृत्ति सूक्ष्मम् ॥ १ ॥

उपशातक्षीणमोह संयोगववलिजिनोऽज्योगी च ।

चतुर्दशगुणस्थानानि च क्रमेण सिद्धाश्च ज्ञातव्या ॥ २ ॥

ये सन्ति तानि जीवस्थानानि । तानि गुणस्थाननिर्देशेन ज्ञातव्यानि ।
ठावण पचत्रिहेर्हि एव गुणस्थानमागणापर्याप्तिप्राणजानस्थानस्थाप
नापचत्रिधै स्थापना योटनापचप्रकारै । पणयन्त्या अरुहपुरिसस्स प्रणे
तव्या योटनाया अर्हत्पुण्यस्य अहज्जीनस्यति ।

तेरहमे गुणठाणे सजोइकेनलिय होइ अरहतो ।

चउत्तीमअइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठपडिहारा ॥३२॥

प्रयोदश गुणस्थाने सयोगकेवलिको भवति अहन् ।

चतुस्त्रिंशदतिशयगुणा भवति त हु तस्य प्रातिहार्याणि ॥

तेरहमे गुणठाणे त्रयादशे गुणस्थाने । सजोइकेनलिय होइ
अरहतो सयोगकेवलिका भवत्यहन् । चउत्तीमअइसयगुणा चतुस्त्रिं
शदतिशयगुणा । होंति हु तस्सट्ठपडिहारा भवन्ति हु सुत्त तस्या
हत्परमेश्वरस्याष्टप्रातिहार्याणि । क त चतुस्त्रिंशदतिशया इति चेदुच्येत—
नित्य नि स्वदच । निर्मलता मलमूत्ररहितता, तपितुस्त मातृश्व मलमूत्र न
भवति । उक्त च—

तित्थयरा तप्पियरा हलहरचक्की य अइचक्की य ।

देवा य भूयभूमा आहारो अस्थि णस्थि नीहारो ॥ १ ॥

तथा तीर्थकराणां श्मश्रुणीं कूर्चश्च न भवति, शिरसि हु तलास्तु
भवति । तथा चाक्त—

देवां वि य नेरइया हलहरचक्की य तह य तित्थयरा ।

सव्वे केसव्व रामा कामा निक्कुचिया होंति । २ ॥

१ पूर्वमप्युक्ता अष्ट विंशतिनमे पृष्ठे अत्र पुनरप्युच्यते ।

२ तीर्थकरा तपितर हलधन्वन्निगन्नाधचक्रिगश्च ।

देवाश्च भोगभूमाश्च (एतथा) आहारोऽस्ति नैव नीहार ॥ १ ॥

३ दवा अवि च नारका हलधरचक्राश्च तथा च तीर्थकरा ।

सर्वे केशवा रामा कामा निकुचिता भवन्ति ॥ २ ॥

४ भोगभुयचक्की इति ख पुस्तक पाठ ।

क्षीरगौररधिरमासत् । समचतुरस्रसस्थान । वज्रपद्मनाराचसंहनन ।
सुगन्धता । सुगन्धता । मुलक्षणत्व । अनन्तरीर्य । प्रियहितवादित्व चेति
दशातिशया जन्मतोऽपि स्यामिन् शरीरस्य ।

गन्धूतिशतचतुष्टयमुभिक्षता । गगनगमन । अप्राणिग्रह । कण्ठाहारो
न भवति भोजन नास्ति । उपसर्गो न भवति, कैवल्यनामुपसर्गं भुक्तिं च
ये कथयन्ति ते प्रत्युक्ता भवन्ति । चतुर्मुखत्व । सर्वविद्यानां परमेश्वरत्व ।
अच्छायात् दर्पणे मुखप्रतिग्रह न भवति शरीरच्छाया च न भवति ।
चक्षुषि मेघो-मेघो न भवति । नखानां केशानां च वृद्धिर्न भवति, एते
दशातिशया वातिकर्मक्षयना भवन्ति ।

सर्वार्धमागर्ध्या भाषा भवति, कौऽर्ध अर्धं मगधद्वापाया मगधदेश-
भाषात्मक, अर्धं च सर्वभाषात्मक, कथमेव देवोपनीतत्वं तदतिशयस्येति
चेत् ? मगधदेवसन्निधाने तथापरिणतया भाषया संस्कृतभाषया
प्रवर्तते । सर्वजनता त्रिपया भेदी भवति सर्वे हि जनसमूहा मागधप्री-
तिकरदेवातिशयवशां मागधभाषया भाषन्तेऽन्यो य मित्रतया च वर्तन्ते
इति द्वातिशयौ । सर्वतूना फलगुच्छा प्रमाला पुष्पाणि च भूमौ तरन्ते
भवन्ति । आदर्शतलसदृशी भूमिर्मनोहरा रत्नमयी भवति । वायु
पृष्ठत आगच्छति शीतो मद मुरभिश्च । सर्वलोकानां परमानन्दो भ-
वति । एक योजनमग्रेऽग्रे त्रयसो भूमिं सम्मार्जयन्ति स्वयं सुगन्धमिश्रा
भूलिकण्टकतृणकीटकान् कर्करान् पापाण्यश्च प्रमार्जन्ति । स्तनित-
कुमारा गधोदकं वर्षन्ति । पादाधोऽम्बुजमेक, अप्रत सप्तकमलानि,
पृष्ठतश्च सप्तपद्मानि योजनैकप्रमाणानि प्रत्येक सहस्रपत्राणि पद्मराग-
मणिकेसराणि अर्धयोजनकानि भवन्ति । सर्वसत्त्वनिष्पत्तियुता भूमि-

भवति । शरत्कालसरोवरसदृशमाकाशं निर्मलं भवति । दिशः सर्वा अपि तिमिरका धूम्रता त्यजन्ति तमो मुञ्चति शलभा अपि दिशो नाच्छादयन्ति धूलिर्नोद्दीयते । ज्योतिष्कान् व्यन्तरान् कल्पवासिदेवान् भवनवासिन आह्वयन्ति महापूजार्थं त्वरितभागच्छन्तु भवन्त इति । अर-सहस्र रत्नमय रचितेजस्तिरस्कारक वर्मचक्र ओष्ठे गगने निराधार गच्छति । अष्ट मंगलानि भवन्ति, तानि कानि १ छत्र—ध्वज—दर्पण—कलश—चामर—भृंगार—ताल—सुप्रतीक इत्यष्ट मंगलानि चतुर्दशोऽतिशय । एते चतुर्दशातिशया देवोपनीता भवन्ति । तथाष्टप्रातिहार्याणि भवन्ति, कानि तानीत्याह १—

अशोरुष्टश्च सुखपुष्पघृष्टिर्दिव्यध्वनिश्चामरमासनं च ।

भामण्डलं दुन्दुभिरातपत्रं सत्प्रातिहार्याणि जिनेश्वराणाम् ॥ १ ॥

गह इंदियं च काए जोए बेए कसाय णाणे य ।

संजम दंसण लेमा भयिया सम्मत्त सण्णि आहारै ॥ ३३ ॥

गती इन्द्रिये च काये योगे वेदे कषाये ज्ञाने च ।

सयमे दर्शने देश्याया भव्यत्वे सम्यक्त्वे सन्निधि आहारै ॥

गह नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतीना मध्येऽर्हतो मनुष्यगति । इंदियं स्पर्शनसनग्राणचक्षु श्रावणचेन्द्रियजातीना मध्येऽर्हन् पचेन्द्रियजाति । पृथिव्यप्तेजाग्रायुग्मस्फुटित्रसकायाना मध्येऽर्हन् त्रसकाय । जोए सत्यमनोयोगासत्यमनोयोगोभयमनोयोगानुभयमनोयोगानामर्हत सत्यानुभयमनोयोगौ, सत्यवचनयोगासत्यवचनयोगोभयवचनयोगानुभयवचनयोगाना मध्येऽर्हत सत्यानुभयवचनयोगौ, औदारिककाययोगौदारिकमिश्रकाययोगवैद्विषिककाययोगनैद्विषिकमिश्रकाययोगाहारककाययोगाहारकमिश्रकाययोगकार्मणकाययोगाना मध्येऽर्हत सप्त (त्रि) योगा, सत्यमनोयोगाऽनुभयमनोयोग सत्यवचनयोगाऽनुभयवचनयोग औदारिककाययोग

औदारिकमिन्नकाययोग कार्मणकाययोगश्चेति सप्तयोगा । वेष्ट स्त्रीपुन-
पुसकवेदत्रयमध्येऽर्हत कोऽपि वेदो नास्ति । कसाय पचविंशति-
कपायाणां मध्येऽर्हत कोऽपि कपायो नास्ति । णाणे य पचज्ञानानां
मध्येऽर्हत केवलज्ञानमेक । संज्ञम सप्तानां सयमानां मध्येऽर्हत
संयम एक एव यथाख्यातचारित्र । दंसण चतुर्णां दर्शनानां मध्ये
दर्शनमेकमेव कथलदर्शन । सेसा पण्णा लेस्यानां मध्येऽर्हतो लेस्या
एकैव शुक्कलेस्या । भविषा भव्यद्वयमध्येऽर्हन् भव्य एव । सम्मत्त
पण्णा सम्यक्तरानामर्हत सम्यक्त्वमेकमेव क्षायिकसम्यक्त्व । सज्जिद्वय
मध्येऽर्हन् सज्जी द्वेक एव । आहारे आहारकद्वयमध्येऽर्हत आहारकानां
हरकद्वय ।

आहारो य सरीरो तंह इदियआणपाणभासा य ।

पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरुहो ॥ ३४ ॥

आहार च शरीरं तथा इन्द्रियमप्राणभासाश्च ।

पर्याप्तिगुणसमृद्ध उत्तमदेवो भवति अरुहः ॥

आहारो य सरीरो आहार समय समय प्रत्यनन्ता परमाणवोऽ-
नन्यजनसाधारणा शरीरस्थितिहेतव पुष्परूपा शरीरे सम्बन्धं पान्ति
नोऽकर्मरूपा अर्हन् आहार उच्यते न वितरमनुष्यमद्भगवति क्वलाहारो
भवति तस्मान्निद्रागलानिरूपयते कथं भगवानर्हन् देवता कथ्यते । क्व
लाहार मुञ्जानो मनुष्य एव । तथा चोक्त समन्तभवेण भगवता—

मानुषीं प्रवृत्तिमभ्यर्त्तितवान् देवतास्तपि च देवता यत ।

तेन नाथ । परमोऽस्ति देवता श्रेयसे जिनवृष । प्रसीद न ॥ १ ॥

क्षुब्धेदनाया क्वलाहार मुञ्जानो भगवान् कथमनन्तसौख्यमनुच्यते
वेदनाया सुखच्छेदत्वादित्यादि प्रमेयकमउमार्तण्डादिषु क्वलाहारस्य

निषिद्धवात्, स्त्रीमुक्तेरपि । शरीरपर्याप्ति । तह इन्द्रियआणपाण-
भासा य तथा इन्द्रियपर्याप्ति, आनप्राणपर्याप्ति कोऽर्थ उच्यते
श्वासपर्याप्ति, भाषापर्याप्ति, चकारा मन पर्याप्ति, एव वायवाह्यनसा
सत्ताया सत्यामपि भगवत कर्मरधो नास्ति जीवमुक्तत्वात्तस्य । तथा
चोक्तं—

कायवाक्यमनसा प्रवृत्तयो नामवस्तव मुनेधिशीर्षया ।

नासमीक्ष्य भवत प्रवृत्तयो धीरः । तावकमचिन्त्यमीक्षितम् ॥१॥

पञ्जतिगुणसमिद्धो पदपर्याप्तिगुणसमृद्ध सशुक्त । उत्तमदेवो
हवइ अरुहो उत्तमदेवो भवयर्हन् न तु हरिहरहिरण्यगर्भादय उत्तम
देवा भवति तेषा दोषसद्भावात् । उक्तं च—

बुद्धिणाधोक्षजेज्ञानशाक्यसूरपुरःसर ।

यदि रागाद्यधिष्ठान कथं तथास्तता भवत् ॥ १ ॥

रागादिदोषसम्भूतिर्ज्ञेयाऽमीषु तदागमात् ।

अस्ततः परदोषस्य गृहीती पातकं महत् ॥ २ ॥

भजस्तिरलोत्तमाचित्त धीरतः धीपति स्मृतः ।

अर्धन्तारीद्वयः शम्भुस्तथाप्येषु किलास्तता ॥ ३ ॥

पंच वि इन्द्रियपाणा मणय्यकाएण तिणिं बलपाणा ।

आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होति दहपाणा ॥ ३५ ॥

पञ्चापि इन्द्रियप्राणा मनोवच कार्यं त्रयो बलप्राणा ।

आनप्राणप्राणा आलुक्प्राणेन भवन्ति द्वाप्राणा ॥

पंच वि इन्द्रियपाणा इन्द्रियप्राणा पंच भवति । मणय्यचिराएण
तिणिं बलपाणा मनोवच कार्यैर्बलप्राणाद्वयो भवति । आणप्पा
णप्पाणा आनप्राणप्राणा उच्यते इति श्वासलक्षण एक प्राण । आउ

गपाणेण होति दहपाणा आयुक्प्राणेन कृत्वा दशप्राणा भवन्ति ।
यथा आयु शब्द सान्तो नपुसकालिगे वर्तते तथा आयु इत्युकारान्तोऽ
पि नपुसके वर्तते । एव दशप्राणा भवन्तीति ज्ञातव्य ।

मणुयभवे पंचिंदिय जीमहाणेसु होइ चउदसमे ।

एदे गुणगणजुत्तो गुणमारुढो हवइ अरुहो ॥ ३६ ॥

मनुजभवे पचेन्द्रियो जीमस्थानेषु भवति चतुर्वर्त्ते ।

एतद्गुणगणयुक्तो गुणमारुढो भवति अर्हन् ॥

मणुयभवे पंचिंदिय मनुजभवेऽर्हन् कथ्यते पचेन्द्रियोऽर्हन्नुच्यते ।
जीमहाणेसु होइ चउदसमे जीमस्थानेषु मध्ये चतुर्दशे स्थानेऽर्हन्
भवति अयोगकेवत्यर्थार्हन् भवतीति भाव । एदे गुणगणजुत्तो एत-
द्गुणगणयुक्त । गुणमारुढो हवइ अरुहो गुणस्थानमारुढोऽर्हन्
भवति गुणस्थानात्परत सिद्ध उच्यते इति भाव ।

जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं ।

सिंहाण खेल सेओ गतिइ दुगंछा य दोसो य ॥ ३७ ॥

जराव्याधिदु खरहित अहारणीहारवर्जित विमल ।

सिंहाण खेल स्वेइ नास्ति दुग्ंधश्च दोषश्च ॥

जरवाहिदुक्खरहियं जरारहितो व्याधिरहित शरीरमानसागन्तु
दु खरहितोऽर्हन् भवति, प्राकृते लिगभदत्तात् जरवाहिदुक्खरहिय इति नपु
सकलिगनिर्देशो ज्ञातव्य एवमुत्तरत्रापि । आहारणिहारवज्जियं
आहारनिहारवर्जित कण्ठाहाररहितोऽर्हन् भवति नीहाररहितो बहिर्भू-
मिबाधारहित । अनेन वाक्येन स्वेतपटमत निराकृत । विमलं
शरीरे मलमर्हतो न भवति । सिंहाण खेल सेओ सिंहाण नासाया

मलो न भवति, खेला निष्ठावनमर्हति नास्ति, स्वेदश्च शरीरे प्रस्येदोऽ-
र्हति न वर्तते । शरित्व दुर्गच्छा य दोसो य अयदपि जुगुप्साहेतु-
भूत किमपि पिटकादिक (कं) अर्हति न वर्तते । दोषश्च वातपित्त-
श्लेष्माणोऽर्हति न वर्तन्ते ।

दशपाणा पञ्जत्ती अष्टसहस्सा य लक्षणा भणिया ।
गोक्षीरसंरुधवलं मंसं रुहिर च सव्यंगे ॥ ३८ ॥

दशपाणा पर्याप्तय अष्टसहस्रानि च लक्षणानि भणितानि ।
गोक्षीरसंरुधवलं मंसं रुहिरं च सर्वाङ्गे ॥

दशपाणा पञ्जत्ती दशपाणा पूर्वोक्तलक्षणा अर्हति भवन्ति, पट्ट-
पर्याप्तयार्हति भवन्ति । अष्टसहस्सा य लक्षणा भणिया अष्टा-
धिक सहस्रमेक लक्षणानां भणित । तत्र नवशतानि तिलमसनादीनि
व्यञ्जनानि भवन्ति, अष्टाधिक शत लक्षणाना भवति । तथा चोक्त—

प्रसिद्धाष्टसहस्रेल्लक्षणं शश गिरा पतिम् ।

नास्त्रामष्टसहस्रेण तोषुमोऽभीष्टसिद्धये ॥ १ ॥

तेषां लक्षणानां मध्ये कानिचिदुच्यन्ते । तथा हि । श्रीवृक्ष , शंख ,
अब्ज , स्वस्तिक , अशुश , तोरण , चामरं , श्वेतच्छत्र , सिंहासनं ,
ध्वज , क्षपी , कुम्भी , कूर्म , चक्र , समुद्र , सरोवर , विमान , भवनं ,
नाग , नरनार्यौ , सिंह , बाण , धनु , मेरु , इन्द्र , गंगा , पुरं , गोपुरं ,
चन्द्रसूर्यौ , जात्यश्व , व्यननं , वेणु , वीणा , मृदग , सृजौ , पट्टाशुकं ,
आपण , कुडलादीनि विचित्राभरणानि , उद्यानं पट्टिन , मुपत्रकलमक्षेत्रं ,
रत्नद्वीप , वज्र , मर्ही , लक्ष्मी , सरस्वती , मुरभि , सौरभेय , चूडागलनं ,
महानिधि , कल्पवृक्ष , हिरण्यं , जम्बूद्वीप , गरुड , नक्षत्राणि , तारका ,
सौध , महा , सिद्धार्थपादपा , प्रातिहार्याणि , भगवानि , एवमादीनि अष्टो-

त्तर शत लक्षणानि । गोक्षीरसंस्पृधलं गोक्षीरवच्छस्त्रद्वयलमुज्ज्वल ।
मंसं रुहिरं च सत्त्वंगे मास गोक्षीरवद्वयल रुधिर गोक्षीरवद्वयल सर्वाङ्गे
सर्वस्मिन् शरीरे ।

एरिसगुणेहि सत्त्वं अद्वयवतं सुपरिमलामोयं ।

ओरालियं च कायं णायव्यं अरुहपुरिसस्स ॥ ३९ ॥

ईदृशगुणै सर्व अतिशयवान् सुपरिमलामोद ।

आदारिकश्च काय ज्ञातव्य अर्हत्पुरुषस्य ॥

एरिसगुणेहि सत्त्वं ईदृशगुणै सयुक्त सर्व कायोऽर्हत्पुरुषस्य
ज्ञातव्य इति सम्बन्ध । अद्वयवतं सुपरिमलामोयं अतिशयवान्
सुष्ठु अतिशयेन परिमृष्टेन विमर्दोत्थगन्धेन कर्पूरादिना सदृश आमोदो
गन्धविशेषो यत्र काये स सुपरिमलामोद । ओरालियं च कायं पर-
मौदारिक काय शरीरमर्हत्पुरुषस्य भवति स्थिर स्थूलरूपधर्मुर्गम्य
औदारिक उच्यते । णायव्यं अरुहपुरिसस्स ज्ञातव्यो वेदितव्य
कायोऽर्हत्पुरुषस्य श्रामज्जगवदहर्त्सर्गज्जीतरागरस्य शरीर ज्ञातव्यमित्यर्थ ।

मयरायदोसरहिओ कमायमलयज्जिओ य सुविमुद्धो ।

चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो ॥ ४० ॥

मदरागदोपरहित कमायमलयज्जितश्च सुविमुद्ध ।

चित्तपरिणामरहित केवलभावे ज्ञातव्य ॥

मयरायदोसरहिओ मदरहिता रागरहितो दोपरहित । कमाय
मलयज्जिओ य सुविमुद्धो यत्राया क्रोधमानमायालाभा, मज्जा
हास्यरत्यरतिशोकभयज्जुगुप्तास्त्रीपुत्रपुसकलक्षणा नाकपायास्तेवैर्नितो र-
हित, सुविमुद्ध ज्ञातमूर्ति । चित्तपरिणामरहिदो मनोव्यापा-
रहित । केवलभावे मुणेयव्वो क्षायिकभावे मुनितव्यो ज्ञातव्यो
ऽर्हन्ति ।

सम्मदंसणि पस्मइ जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया ।

सम्मत्तगुणविमुद्धो भावो अरुहस्स णायव्वो ॥ ४१ ॥

सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानाति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान् ।

सम्यक्त्वगुणविगुह्य भाव अर्हत् इत्यर्थः ॥

सम्मदंसणि पस्सइ सम्यग्दर्शनेन पश्यति सम्यग्निस्तुपतया दर्शनेन सत्तारूपलक्षणेन पश्यति वस्तुस्वरूप गृह्णाति । जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया जानाति ज्ञानेन कैवल्यज्ञानेन विशेषगोचरेण साकाररूपेण सम्यग्जानाति द्रव्याणि जीवपुद्गलधर्मधर्मकालाकाशलक्षणानि । सम्मत्तगुणविमुद्धो सम्यक्त्वगुणेन स्थायिरसम्यक्त्वेन विशुद्धो निर्मल । भावो अरुहस्स णायव्वो मात्र स्वरूप अर्हत् सर्वज्ञस्य ज्ञातव्यो वेदितव्य ।

अरहंतं—इति श्रीबोधप्राभृतेऽर्हदधिकारो दशम समाप्त । १०।

अथेदानीं प्रव्रज्यास्वरूप निरूपयन्ति श्रीबुद्धकुन्दाचार्या सप्तदशगाथाभिरिति—

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणरासे वा ।

गिरिगुहगिरिमिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा ॥ ४२ ॥

शून्यगृहे तरुमूले उद्याने तथा श्मशानवासे वा ।

गिरिगुहगिरिमिशिखरे वा भीमवने अथवा वनती वा ॥

सुण्णहरे तरुहिट्ठे शून्यगृहे निवास कर्तव्य प्रव्रज्यागतेऽपुष्का । तरुहिट्ठे-वृक्षमूले स्थातव्यं । उज्जाणे उद्याने वृत्रिमवने स्थातव्यं । तह मसाणरासे वा तथा श्मशानवासे वा पितृवनस्थाने स्थातव्यं । गिरिगुहगिरिमिहरे वा गिरिगुह गिरिगुहाया स्थातव्यं, गिरिशिखरे वा पर्वतोपरि स्थातव्यं । भीमवणे अहव वसिते वा भीमवने भयानकायाम-

टव्या स्थातव्य । अथवा वसिते वा ग्रामनगरादौ वा स्थातव्य, नगरे पचरात्रे स्थातव्य, ग्रामे विशेषेण न स्थातव्य ।

सवसा सत्तं तित्थं वच चइदालचयं च वुत्तेहि ।

जिणभरणं अह वेज्जं जिणमग्गे जिणवरा विंति ॥४३॥

स्ववशा, सत्त तीर्थं वचचैत्यालय च उक्ते ।

जिनभवनं अथ वेध्य जिनमार्गं जिनवरा विदति ॥

सवसा सत्तं तित्थं एते प्रदेशा स्ववशा पराधीन-वरहिता स्वाध्या यध्यानयोग्या । तत्र स्थित्वा किं कर्तव्यमित्याह सत्त उच्यमाने भिद्य मानेऽपि शतखण्ड क्रियमाणऽपि निजशरारे सवमखडितत्रतत्त्र निश्च- लचारीत्रप्रकचर्यत्त्र रक्षणियमिति सत्त साहस वेध्य भवति, तथा तीर्थं द्वादशाङ्ग ऊर्जय-तादिर्षा वेध्य ध्यानीय ध्यातव्यं ज्ञातव्यं । वच चइदा- लत्तयं च वुत्तेहि वचचै यालयश्च परमागमशब्दागमयुक्त्यागमपुस्तक च वेध्य ध्यातव्य भवति । तथा चोक्तः—

धारहभगगिज्जा वसणतिलया चरित्तवच्छदया ।

चउदसपुव्याहरणा ठावेदव्या य सुभदेवी ॥ १ ॥

उक्तैर्जिनचनप्रमाणतया । जिणभरणं अह वेज्जं जिनभवनं जिन- चैत्यालय, अथ मगलभूत सर्वभयनीवमगलकर कृत्रिममहृत्रिम च वेध्य ध्यातव्य । तथा चोक्त नेमिचन्द्रण चामुण्डरायराजमल्लदवगुण्णा त्रिलोकसारप्रन्थे—

भवर्णी चतरजोहसविमाणणरतिरियलोयजिणभवणे ।

सत्थामरिदनरवइसपूजियवदिण चदे ॥ १ ॥

सर्वाकृत्रिमचत्त्यालयसख्यापरिज्ञानार्थं श्रीगुज्यदवैरार्थं चक्रे—

१ भवनव्यन्तरज्यातिर्विमाननरतिर्यत्रोक्तजिनभवनानि ।

सर्वांगरेन्द्रनरपतिसपूजितवन्दितानि चन्दे ॥ १ ॥

नवनवचतु शतानि च सप्तचनवति सदभ्रगुणिता पट्ट च ।

पचाशत्पचविंशत्प्रहता पुनरत्र कोटयोऽष्टौ प्राप्ता ॥ १ ॥

अकृत्रिमचैत्यालयानां सख्या यथा—एकादशत्यधिकचत्वारि शतानि सप्तनवतिसहस्राणि पट्टपचाशत्लक्षाणि अष्टौ कोटयो भवति । एकैक-
चैत्यालयेऽष्टाधिक शत प्रतिमाना भवति । तासां संख्या यथा—

णवकोटिसया पणवीसा लफळा छप्पण सहस्रसगर्यासा ।

चउंसय तह अडवाला जिणपडिम भकिट्टिम षडे ॥ १ ॥

नवशतकोटय पचविंशतिकाउपथ पैट्टपचाशत्लक्षा सप्तविंशति
सहस्राक्षर्यारि शतानि अष्टचत्वारिंशदधियाणि भवति । ज्योतिषां
व्यन्तराणां च चैत्यालयानां सख्या नास्ति । जिणमग्गे जिणवरा विंति
जिनमार्गे जिनशासने जिनरा त्रिदत्ति जानति । सत्तं, तीर्थं, शास्त्रं,
पुस्तकं, जिनभजनं, प्रतिमाश्च एतं सर्वं वेध्य मुनीनां श्रान्तकाणां च सम्प-
गृहीता वेध्य ध्यानालम्बनीये वस्तुर्ह तं कथयति । तथे न मानयति
ते मिथ्यादृष्टयो भवन्तीति भावार्थः ।

पंचमहव्ययजुत्ता पंचिंदियसजया निरावेरया ।

सज्जायझाणजुत्ता मुणिवरवसहा णिड्छंति ॥ ४४ ॥

पञ्चमहाव्रतयुक्ता पञ्चेन्द्रियसजया निरावेरया ।

स्याध्यायध्यानयुक्ता मुनिवरवृषभा नीच्छति ॥

पञ्चमहव्ययजुत्ता पञ्चमहाव्रतयुक्ता पूर्वोक्तपञ्चमहाव्रतयुक्ता सर्व-
जीवदयाप्रतिपालका ऋषयः सत्यव्रतसाऽर्चयन्व्रतधारिण ब्रह्मचर्यव्रतो-

२ नवकोटिशतानि पचविंशति लक्षा पट्टपचाशत सहस्राणि सप्तविंशति ।

चतु शतानि तथाऽष्टचत्वारिंशत जिनप्रतिमा अकृत्रिमा षडे ॥ २ ॥

३ तेवण ४ णवसय ५ त्रिंशत् ६ नवछत्त ७ हाथेव रूपेण पाटेन
भवितव्यं ।

पेता निष्परिग्रहा अग्रवणप्रायोग्यपरिग्रहपरित्यक्ता रजनिभाजनवर्जिन
एतद्वैष्यं वस्तु निश्चयेनेच्छन्ति मानयन्ति जिनरचनप्रमाणकारित्वात् ।
पञ्चिन्द्रियसंज्ञया निरावेकसा पञ्चेन्द्रियाणि संयतानि बद्धानि निज-
विषयेषु प्रवर्तितुं व्यावृत्तानि निषिद्धानि यैस्ते पञ्चेन्द्रियसंयताः ।
निरपेक्षाः प्रत्युपकारवाञ्छारहिता भव्यव्रीहसम्बोधनपरा एतद्वैष्यं
नीच्छन्ति । सज्ज्ञायज्ञाणजुक्ता स्वाध्यायध्यानयुक्ताः । स्वाध्याय-
पंचप्रकारः, वाचना-शिष्याणां व्युत्पत्तिनिमित्तं शास्त्रार्थकथनं, पृच्छना-
अनुयोगकरणं, अनुप्रेक्षा-पठितस्य व्याकृतस्य च शास्त्रस्य पुनश्चेतसि
चिन्तनं, आम्नायः-शुद्धपठनं, धर्मोपदेशः-महापुराणादिशास्त्रस्य मुनीनां
श्रावकादीनामप्रतो व्याख्यानविधान । ध्यानं-आर्तध्यानरौद्रध्यानद्वयं
परिह्राय धर्मध्यानशुक्लध्यानद्वये प्रवर्तनं विधिनिषेधरूप । मुनिवरस-
हा णिहृच्छन्ति मुनिरवृषभा सर्वपारण्डिम्योऽधिकश्रेष्ठा, सर्वलोक-
प्रशंसनीयाः परमार्थयतय दिगम्बरा नि-अतिशयेनेच्छन्ति वैष्यं
वाञ्छन्ति पुनः पुनरभ्यास कुर्वन्ति ।

गिहगंधमोहमुक्ता वात्रीसपरीसहाजि अकसाया ।

पावारंभविमुक्ता पञ्चजा एरिसा भणिषा ॥ ४५ ॥

गृहप्रन्धमोहमुक्ता द्वाविंशतिपरीषद्विदकथाया ।

पापारम्भविमुक्ता प्रवज्या ईदशी भणिता ॥

गिहगंधमोहमुक्ता गृहस्य निवासस्य, ग्रन्थस्य परिग्रहस्य बाह्यस्य
दशप्रकारस्य मोहेन मुक्ता ममेदं भावरहिता प्रवज्या दीक्षा भवति । के
ते दश बाह्यपरिग्रहाः ! क्षेत्रं सस्याधिकरण । वास्तु गृह । हिरण्यं रूप्य-
द्रुमादि । सुर्यो काचनं । धन गोमहिष्यादि । धान्य व्रीह्यादि । दासी
कर्मकरी । दासः पुंनपुंसकर्गः कर्मकरः । कुप्य क्षौमकर्पासकौशेयच-

न्दनागुरादि । चतुर्दशाभ्यन्तरपरिमहरहिता । के ते चतुर्दशाभ्यन्तरपरिमहा १—

मिथ्यात्ववेदौ हास्यादिपद् वपायचतुष्टय ।

रागद्वेयी च रुगा स्युरन्तरद्वाधचतुर्दश ॥ १ ॥

वार्धमपरीमहाजि अकमाया द्वाविंशतिपरीयहजिप्रत्रया भवति क ते द्वाविंशतिपरीयहा १ क्षुधाजय, पिपासा तृणाजय, शीतजय, उष्णजय, दशमशकसर्वोपघातसहन, नम्रत्वसहन, अरतिजय, स्त्रीपरीयहजय, चर्या-गमन तस्य जय, निषद्या-उपपेशन तस्य नय, शय्या सहन, ओक्रोशनय अनिष्टवचनसहन, वधसहन, याचनसहन न किमपि याचत, अलाभसहनमन्तरायसहन, रोगसहन, तृणस्पर्शसहन, मलसहन लोचसहन च, सकारपुरस्कार पूजाया अकरणस्य समाना प्रासनाज्ञानस्य च सहन सकारपुरस्कारजय, प्रज्ञापरीयहजयो ज्ञानमद्वि-रास अज्ञानोऽयमिति वचनसहनमज्ञानपरीयहजय, अदर्शनपरीयहजयो लब्धभासहन । तथा चोक्तमुमास्वामिना—

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदशमशकनाग्यारतिल्लीचर्या-

निषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्श-

मलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादशनानि ॥

अकसाया—वपायरहिता प्रत्रया भवति । पापारभविमुक्ता पापा-रम्भविमुक्ता सनादृष्टिगणिश्यादि पापारंभसोऽस्मादिमुक्ता । इयन्न किमुक्तं भवति यद्वादिडसंधा जैनाभासा वदति तद्वयुक्तं—

र्यापसु णत्थि जंयो उम्मसण णत्थि कामुग णत्थि ।

सावज्ज ण ह्म मण्णइ ण गणइ गिट्ठक्खिय अट्ठं ॥ १ ॥

१ शीतगु नास्ति ज्ञाव उद्भाजन नाग्नि प्रामुक् नमति ।

सावध न हि मयने न गणयति गृहकस्त्रिज आनं ॥ १ ॥

क-उ क्षेत्र वसते धार्मिक्य कारयिष्या जीवन् ।

रतान् शीतानीरे पारं धनुरं ममर्षयति ॥ २ ॥

कच्छ खेत्त घसहिं वाणिज्जं कारिऊण जीउतो ।

पहतो सीयलनीरे पाव पउर समज्जेदि ॥ २ ॥

पव्वज्जा एरिसा भणिया प्रवज्जा दीक्षा ईदृशी भणिता ।

धणधणवत्थदाणं हिरण्णसयणामणाइ छत्ताइ ।

कुदाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ४६ ॥

धनधा वयसदान हिरण्यशयनासनादि छत्रादि ।

कुदानविरहरहिता प्रवज्जा ईदृशी भणिता ॥

धणधणवत्थदाण धन गवादि, धान्य गोधूमादि, वस्त्र पद्मपत्रादि एतेषा दान विभ्राणन मुनया न कुर्वन्ति । हिरण्णमयणासणाइ छत्ताइ हिरण्य रूप्यघटित नाणक मुवर्णघटित नाणक ताम्ररूप्यमिश्रघटित नाणक केवलताम्रादिघटित नाणक हिरण्यमुच्यते तदान मुनयो न कुर्वन्ति । शयन अष्टशल्या खट्वा पस्यङ्क तदान मुनयो न कुर्वन्ति । आसन पाठ आदिशब्दात् पञ्च, छत्रमातपत्र आदिशब्दाद्भज्राक्षामादिक मुनयो न ददति । कुदाणविरहरहिया कुसितदानस्य विशेषेण रहस्ययागस्तेन रहितः । पव्वज्जा एरिसा भणिया प्रवज्जा दीक्षे ईदृशी भणिता श्रीगौतमस्वामिना वीरेण तीर्धकृता प्रतिपादिता । इदमेव येऽनन्तसरस्वतीनरसिंहभारतायामुदनसरस्वतीप्रभृतय सान्यासिका अपि सन्त कुसितानि दानानि ददति तस्मै निराकृतमिति भार ।

सत्तुमित्ते व समा पसंसणिदाअलद्धिलद्धिममा ।

तणरुणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ४७ ॥

शत्रुमित्रे च समा प्रशंसानिदाऽलद्धिलब्धिममा ।

तणरुणके समभावा प्रवज्जा ईदृशी भणिता ॥

सत्तुमित्ते व समा शत्रौ वैरिणे, मित्र मुहुरि समा यगदेयरहिता । पसंसणिदाअलद्धिलद्धिसमा प्रशंसाया गुणश्रुतौ, निन्दायामवर्णनादे,

लब्धौ निरतरायभोजने, अलब्धौ भोजनाद्यतराय च समा सदृशी प्रव्रज्या भवति । तणकणए समभावा तृणे, कनके सुवर्णे च, समभावा अनादरादसरहिता । पव्वज्जा एरिसा भणिया प्रव्रज्या ईदृशी भणिता चिरतनाचार्ये प्रतिपादिता ।

उत्तममज्झिमगेहे दारिदे ईसरे निरावेक्खा ।

सव्वत्य गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ४८ ॥

उत्तममज्झिमगेहे दारिदे ईसरे निरपेक्षा ।

सर्वत्र गृहीतपिण्डा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥

उत्तममज्झिमगेहे उत्तमगृहे उत्तन्नतोणादिसहिते राजसदनादौ, मज्झिमगेहे नीचैर्गृहे तृणपर्णादिनिर्मिते, निरपेक्षा उच्चैर्गृह भिक्षार्थं गच्छामि नीचैर्गृह अहं न व्रजामि न प्रविशामीत्यपेक्षारहिता प्रव्रज्या भवति । दारिदे ईसरे निरावेक्खा दारिद्र्यस्य निर्धनस्य गृहं न प्रविशामि, ईश्वरस्य धनयुक्ता गृहं प्रविशाम्यहं निवशे इत्यपेक्षारहिता प्रव्रज्या भवति । सव्वत्य गिहिदपिंडा सर्वत्र योग्यगृहे गृहीतपिण्डा स्वीकृताहारा प्रव्रज्या ईदृशी भवति । किं तदयोग्य गृहं यत्र भिक्षा न गृह्यते इत्याह—

गायकस्य तलारस्य, नीचकर्मोपजीविन ।

मालिकस्य विलिंगस्य वेश्यायास्तलिकस्य च ॥ १ ॥

अस्यापमथ —गायकस्य ग धर्मस्य गृहे न भुज्यते । तलारस्य कौटपाटस्य, नीचकर्मोपजीविन धर्मजडशकटादर्शहरादे श्चायकस्यापि गृहे न भुज्यत । मालिकस्य पुण्योपजीविन, विलिंगस्य भरतस्य, वेश्याया गणिकाया, तैलिकस्य घात्रिकस्य ।

दीनस्य द्रुतिवायाश्च छिपकस्य पिशोपत ।

मद्यचिक्रियेणा मद्यपायिससर्गिणश्च न ॥ २ ॥

दीनस्य श्रावकोऽपि सन् यो दानं भाषते । सूतिकाया या बाळ-
कानां जननं कारयति । अयत्तुगम ।

शालिका मालिकाश्चैव कुमकारस्तिलतुद ।

नारिकेलश्चेति विशया पचते पचकारव ॥ ३ ॥

रजकस्तक्षुश्चैव अयं चूर्णकारक ।

हृत्कारादयश्चेति काग्धो बद्धव स्मृता ॥ ४ ॥

क्रियते भाजनं रोहे यतिना मोक्षमिच्छुना ।

पथमादिकमप्यग्नश्चित्तनाय स्युचतसा ॥ ५ ॥

यत् स्वहस्तेन कृतं पाको नान्यत्र दुदशा ।

मन्दिरे भोजनं यस्मात् सौख्यं यद्यसगम ॥ ६ ॥

निर्मग्या निरसगा निम्माणासा अराय निदोसा ।

निर्मम निरहकारा पञ्चज्जा एरिमा भणिया ॥ ७ ॥

निर्मग्या निरसगा निर्मानासा अराया निदोसा ।

निर्ममा निरहकारा पञ्चज्जा ईदशी भणिया ॥

निर्मग्या परिग्रहरहिता अपरा नि आतशयवद्धि मयै शास्त्रै सहिता
निर्मग्या । निरसगा छाप्रमुखसगरहिता, अत्रा निश्चितै शाभने अन्नैर्द्वा-
देशाङ्गै सयुक्ता निरसगा, अथवा निश्चितैरङ्गप्रभि शरारैरुपाङ्गैश्च सहिता ।

प्राप्तेन घातलोकव्यवहृतिमग्निना तेन मोक्षमिच्छतेन

प्राग्निवशात् सुदशो द्विजनृषितिरणिग्वर्णवप्याङ्गपूर्ण ।

भृभुल्लोयः विरुद्ध स्वजनपारेजनाग्ने चितो धीतमाह

श्चित्रापस्माररो ॥ ८ ॥ गत इति च क्षातिसफीर्तनाद्यै ॥ १ ॥

इति धीरनन्दिभक्तत्वात् । अथ कानां सायद्यत्राङ्गानीति चेत्—

मर्त्या षाह य तदा णियवपुर्द्धो उर च सौख्यं च ।

अद्वयं तु अग्नौ इत्यम उच्यते दहस्म ॥ १ ॥

१ कालका यः । २ निःशः । ३ आचारस्य द्वितीयपृष्ठे ।

४ नरकौ बाहू च तथा नितम्बपृष्ठा उरश्च शार्पं च ।

अष्टैव तु अग्नानि क्षेपानि उपाङ्गानि दहस्य ॥ १ ॥

लब्धौ निरतरायभोजने, अलब्धौ भोजनाद्यतराये च समा सदृशी प्रमत्तया भवति । तणकणए समभावा तृण, कनके मुनर्णे च, समभावा अना दरादगरहिता । पव्वज्जा एरिसा भणिया प्रमत्तया ईदृशी भणिता चिरतनाचार्यं प्रतिपादिता ।

उत्तममज्झिमगेहे दारिदे ईसरे निरावेक्खा ।

सव्वत्थ गिहिदपिण्डा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ४८ ॥

उत्तममध्यमगेहे दारिदे ईसरे निरपेक्षा ।

सर्वत्र गृहीतपिण्डा प्रमत्तया ईदृशी भणिता ॥

उत्तममज्झिमगेहे उत्तमगृहे उत्तद्गतोरणादिसहिते राजसदनादौ, मध्यमगेहे नीचगृहे तृणपर्णादिनिर्मिते, निरपेक्षा उच्चगृह भिक्षार्थं गच्छामि नीचगृह अहं न व्रजामि न प्रविशामात्मपक्षारहिता प्रमत्तया भवति । दारिदे ईसरे निरावेक्खा दारिद्र्यस्य निर्धनस्य गृहं न प्रविशामि, ईसरस्य धनवान् गृहं प्रविशाम्यहं निरश इत्यपक्षारहिता प्रमत्तया भवति । सव्वत्थ गिहिदपिण्डा सर्वत्र योग्यगृहे गृहीतपिण्डा ईदृशी तादृशा प्रमत्तया ईदृशी भवति । किं तदयोग्य गृहं यत्र भिक्षा न गृह्णते इत्याह-

गायकस्य तलारस्य, नीचकर्मोपजीविन ।

मालिनस्य तिलिनस्य घट्टयायास्तलिकस्य च ॥ १ ॥

अस्यायमर्थः—गायकस्य गायकस्य गृहे न भुज्यत । तलारस्य कौट-

पालस्य, नीचकर्मोपजीविन धर्मव्रतशून्यदवाहनादे आरकस्यापि गृहे न भुज्यत । मालिकस्य पुण्योपजीविन, तिलिनस्य भरणस्य, घट्टयाया भणिराया, तैलिकस्य घाचिकस्य ।

दीनस्य दत्तिकायाश्च लिपिकस्य विदोषत ।

मद्यपिप्रयेणा मद्यपायिससर्गिणश्च न ॥ २ ॥

सहस्यकार्येभ्यिति कोऽर्थः । मुखादिकार्योत्पादकेषु मंत्रतत्रादिसहकारिकारणेषु मिलित्वा । अथवा गिरहकारा गिरह निरर्थ निष्पापं सर्वसाव-
ययोगरहितत्वं यथा भवत्येवकारा, कस्य ? शुद्धबुद्धैकस्वभावात्म-
स्वरूपस्य । आरात्समीपतो वर्तते कारा, चिच्चमत्कारलक्षणज्ञायकैकस्व-
भाषट्कोत्कीर्णनिजात्मनि तल्लीना प्रव्रज्या भवतीति ज्ञातव्य । “पापक्रिया-
विरमणं धरणं फिलेति” वचनात् । पञ्चज्ञा प्रव्रज्या दीक्षा । एरिसा
ईदृशी उक्तलक्षणा । भगिन्या गौतमस्यामिना प्रतिपादिता ।

णिण्णेहा णिल्लोहा, णिम्मोहा णिच्चियार णिक्कुत्ता ।
णिब्भय निरासभावा पच्चज्ञा एरिमा भगिन्या ॥ ५० ॥

नि स्नेहा निर्दोषा निर्मोहा निर्विकारा निष्कुत्ता ।
निर्भया निरासभावा प्रव्रज्या ईदृशी भगिता ॥

णिण्णेहा नि स्नेहा पुत्रकलत्रमित्रादिस्नेहरहिता, अथवा तैलाद्यभ्यङ्ग-
रहिता नि स्नेहा । णिल्लोहा हे मुने ! हे तपस्विन् ! तवेदं वस्तु वच्चा-
दिक दास्यामि मम गृहे भिक्षा गृह्यता यवतेति लोभरहिता, अथवा सुवर्ण-
रजतताम्रायस्त्रपुनागादिभाजनविर्जिता निर्दोषा । णिम्मोहा दर्शनमोहो
मिथ्यात्वं त्रिविधं चारित्रमोहं पञ्चविंशतिप्रकारस्तद्ग्राभ्यामपि रहिता
निर्मोहा, अथवा निश्चिताया अकल्कदेवसमन्तभद्रविद्यानन्दिप्रभाचंद्रा-
दिभिस्तार्किकैर्निधारिताया माया प्रत्यक्षपरोक्षलक्षणोपलक्षिताया प्रमाण-
द्वयस्य ऊहो नितर्को विचारणा यस्या प्रव्रज्यायां सा निर्मोहा । णिच्चि-
चार निर्विकारा वच्चाभरणादिवेषनिकाररहिता निर्विकारा, अथवा
निश्चितो विचारो विवेको भेदज्ञान यस्या सा निर्विचारा, आत्मा पृथक्
कर्म पृथक् इति विवेकोपेता । उक्तं च—

कुरूपिणो हीनाधिकाङ्गस्य कुष्ठादिरोणिश्च प्रव्रज्या न भवति ।
 णिम्माणासा निर्माणा अष्टमदरहिता, निराशा आशारहिता । उक्तं च—
 आशागतं प्रतिप्राणि यस्मिन् विश्वमणूपम ।
 यस्य किं कियदायाति वृथा यो विषयैपिता ॥ १ ॥

अथवा—

आशा दासीकृता येन तेन दासीकृतं जगत् ।
 आशाया यो भयेदास स दास सर्वदेहिनाम् ॥ १ ॥
 निराशा अदरहिता तदुपलक्षणं गजकृपादीनां । अराय
 रागरहिता, अथवा प्रव्रज्याया राजभि सह स्नेहादिकं न कर्तव्यं,
 तदुपलक्षणं मत्स्यादीना प्रत्यक्षनरकपातवद्वयाद्यात्, येष्विह जिन
 धर्मप्रभारनार्थं मुनीनां सुस्थिर्यर्थं च तन्निषेधं न कुर्यात् श्लेष्ठादिपी
 डानिराकरणहेतुत्वात् । णिहोसा अप्रीतिलक्षणद्वेपरहिता, अथवा दात
 पित्तश्लेष्मादिदोषरहितस्य प्रव्रज्या भवतीति निर्दोषा । णिम्मम निर्ममा
 ममेति शब्दोऽव्यय निर्गते ममेति यस्या प्रव्रज्यायां सा निर्ममा, अथवा
 मथ मा च ममे निर्गते ममे द्वे यस्या सा निर्ममा मयमासमधुमकारणरं-
 हिता लक्ष्मीस्थीकाररहिता चेयर्थ । तथा चोक्त —

अकिंचनोऽहमित्यास्व त्रैलोक्याधिपतिर्भवेः ।

योगिगम्य तत्र प्रोक्तं यदस्य परमात्मनः ॥ १ ॥

णिरहंकारा अहङ्काररहिता कर्मोदयप्रधाना मुरां वा दु तं वा जीवस्य
 कर्मोदयेन भवति मयेदं दृढमित्यहङ्कारो न कर्त्तव्यमित्यर्थ । तथा चोक्तं
 समन्तभद्रेण तार्किकशिरोमणिना—

अल्प्यशक्तिर्मनितव्यतेय हेतुद्वयाधिष्ठितकार्यरहिता ।

अनीद्वयो जतुरहं मियार्तः सदस्यकार्येऽपि साध्ययादि ॥ १ ॥

मानुष्य सत्कुले जन्म लक्ष्मीवृद्धि वृत्तशता ।
विवेकेन चिना सर्वे सदप्येतन्न किंचन ॥ १ ॥

अन्यच्च—

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमन्त्रमभिन्न तयोर्या
प्रत्यासत्तेर्भवति विवृति सापि मित्रा तर्धय ।
कालक्षेत्रप्रमुखमपि यत्तच्च भिन्न मत मे
भिन्न मिन्न निजगुणकलालवृत्त सर्वमेतत् ॥ १ ॥

णिककलुसा निष्कलुषा निष्पाषा । निर्न्मय निर्भया सप्तभयरहिता ।
गिरासमाना निराशमाना आशारहितस्वभावा । पञ्चज्जा एरिमा
भणिया प्रव्रज्या ईदृशी भणिता आकृष्यमनाधेनेति शेष ।

जहजायरूचमरिसा अलंघियभुअ गिराउहा संता ।
परकियनिलयनिगमा पञ्चज्जा एरिसा भणिया ॥ ५१ ॥

यथाजातरूपसदशा अवलम्बितभुजा निरायुषा शांता ।
परकृतनित्यनिवासा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥

जहजायरूचमरिसा यथाजातरूपसदशा नग्नरूपा इत्यर्थः ।
अलंघियभुअ अवलम्बितभुजा प्रापण कायोऽसगस्थिता पद्मासनादि-
स्थिता वा । पद्मासन किं ?—

सन्यस्ताभ्यामधोऽङ्घ्रिभ्यामूर्ध्वोरुपरि युजित ।
भवेच्च समगुल्फाभ्या पद्मनीरसुखासन ॥ १ ॥

तत्र मुखासनस्येदं लक्षण—

गुल्फोक्तानकरागुष्ठेपारोमालिनामिहा ।
समहाष्ट समा कुर्यात्प्रातिस्नग्धो न यामन ॥ १ ॥

गिराउहा निरायुषा दण्डायायुषरहिता, अथवा निरायुषा प्रामुखा

प्रव्रज्या दीक्षा ईदृशी भणिता प्रतिपादिता चतुर्विंशतितमेन तीर्थ-
हृतेति शेषः ।

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंधयणेसु भणिय णिग्गंधा ।

भावंति भव्वपुरिसा कम्मवरयकारणे भणिया ॥ ५४ ॥

जिनमार्गे प्रव्रज्या षट्संहननेषु भणिता निर्ग्रन्था ।

भाषयन्ति भव्यपुरुषा. कर्मक्षयकारणे भणिता ॥

जिणमग्गे पव्वज्जा जिनमार्गे आर्हतशासने प्रव्रज्या दीक्षा ।
छहसंधयणेसु षट्संहननेषु वज्रपभनाराचवज्रनाराचनाचार्यनाराच-
कीलिकाप्राप्तासृपाटिकनामसु षट्सु संहननेषु । भणिय णिग्गंधा
भणिता प्रतिपादिता श्रीन्द्रभूतिनामगणधरदेवेनेति शेष । कथंभूता
भणिता, निर्ग्रन्था यथाज्ञातरूपधरिणी यतोऽस्मिन् क्षेत्रेऽन्त्यो निर्ग्रन्थो
वीराङ्गजो यो भविष्यति पचमकालस्यान्ते स किलाप्राप्तासृपाटिको संह-
ननो भविष्यति तेन षष्ठेऽपि संहनने निर्ग्रन्थप्रव्रज्या ज्ञातव्या । भावंति
भव्वपुरिसा भाषयन्ति मानयन्ति एतद्वचन, के ? भव्यपुरुषा आसन्न-
भव्यजीवाः । कम्मवरयकारणे भणिया पारम्पर्येण कर्मक्षयकारणे
मोक्षप्राप्तिनिमित्तं भणिता प्रतिपादिता ।

तिलओमच्चनिमित्तं समवाहिरगंधसंगहो णत्थि ।

पावज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरिमीहि ॥ ५५ ॥

तिलकोशवमान समवाह्यग्रन्थसंग्रहो नास्ति ।

प्रव्रज्या भवति एषा यथा भणिता सर्वदार्शिकि ॥

तिलओसत्तनिमित्तं तिलस्य पितृप्रियबीजस्य कोशान्वमात्रं
तिलपुष्पमात्रमपि अश्रमणपरिग्रहः । समवाहिरगंधसंगहो णत्थि

३ अत्रस्थले सत्र एतादगेव पाठः ।

विवरीयमूढभावा विपरीतमूढभावा विशेषेण परि समात्तात् इतो गतो नष्टो मूढभावो जडतत्त्वरूप यस्या सा विपरीतमूढभावा । पणह-
कम्मद्व गट्टमिच्छत्ता प्रणयानि कर्माण्यटो यस्या सा प्रणयकर्माणि नष्ट-
मिप्यात्ता पंचमिप्यात्तरहिता । उक्तं च—

एवंत युद्धदरिस्सी विवरीओ यम तापसो विणमो ।

इंदो वि य ससयिदो मक्कज्जियो चेव भण्णार्णो ॥ १ ॥

अस्या अयमर्थ —सर्वथा क्षणविनाशकार्दं युद्ध । मल्लवादी विपरीत-
आत्मानं शाश्वतमेवैका तेन ॥ यते । तापसो वैनायिक-सर्वविनयेन मोक्षो
मन्यते गुणदोषविचारणा समते नास्ति । इन्द्रचन्द्रनागेन्द्रवादी संशय-
मिप्यादृष्टि चतुरपरजैनाभामाध । अक्षयवादी विरै मन्यते—

सेधवरो य आसवरो य युद्धो य तद्द य भण्णो य ।

समभाउभाविप्या एहे मोकम्मं ण अदेदो ॥ १ ॥

मत्करपूरण एवमेवं यदति—

भण्णाणादो मोकम्मं जाण जत्थिस्सि मुक्कज्जियाण ।

पुणरागमण भमण भवे भवे जत्थि जीवाणं ॥ १ ॥

सम्मत्तगुणविमुद्धा सम्यक्त्वमेव गुणस्तेन विमुद्धा निर्मत्ता, अपरा
सम्यक्त्वगुणैर्निर्माणिना क्लिप्तनिर्निधित्तिसताग्दृष्टदुष्पगूढनिरिपती
करणशान्त्यप्रभावेनाऽक्षणीरथभिः सम्यक्त्वगुणैर्विमुद्धा विशेषतः निर्मत्ता
पंचविंशतिदोषरहिता सम्यक्त्वगुणविमुद्धा । पञ्चज्जा एरिमा मणिया

१ एकांस्तो युद्धदर्शी विपरीतो आक्षय तापस विनय ।

इन्द्रोऽदि च सर्वविज मक्कजी चेकान्जरी ॥ १ ॥

२ अस्या छाया पूर्व द्वादशमे वृत्ते गता ।

३ अक्षयतो मोक्षे शानं कारनीनि मुक्कजीवाण ।

पुनरागमन भमणं भवे भवे जत्थि जीवाणम् ॥ १ ॥

ध्यायेन वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशलक्षणेन पञ्चविधेन युक्ता प्र-
प्रज्ञा भवति, ध्यानेन धर्म्यध्यानशुद्धध्यानद्वयेन युक्ता आर्त्तरीद्रदुर्ध्वान-
द्वयरहिता । पञ्चज्ञा एरिसा भणिया प्रप्रज्ञा जैनी दीक्षा ईदशी एत-
ल्लक्षणविराजमाना भणिता प्रतिपादिता अकलङ्कदेवेनेति शेषः ।

तवचयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य ।

सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पञ्चज्ञा एरिसा भणिया ॥ ५८ ॥

तपोमतगुणैः सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य ।

सुद्धा गुणैः सुद्धा प्रप्रज्ञा ईदशी भणिता ॥

तवचयगुणेहिं सुद्धा तपोभिरिच्छानिरोधलक्षणैर्द्वादशभिः, प्रैतरहि-
सादिभिः पञ्चभिः शान्तिभोजनपरिहासव्रतपटैः, गुणैश्चतुरशीतिलक्षलक्षणैः
सुद्धा उज्ज्वला । संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य सयमा इन्द्रियप्राणसे-
यमलक्षणा द्वादश, सम्पत्त्वानि दशप्रकाराणि द्वित्रिप्रकाराणि च, ते च
ते गुणा आत्मोपपारकाः परिणामविशेषास्तैरिंशुद्धा निर्मला प्रप्रज्ञा
भवति । नितार्गजमधिगमज सम्पत्त्वं द्विविधं, उपशमवेदकक्षायिकमे-
दात्मसम्पत्त्वं त्रिविधं ।

“आशामार्गसमुद्भवमुपदेशात्सूत्रबीजसंक्षेपात् ।

विस्तारार्थोभ्यां भगवत्परमाद्यादिगाढं च”

इत्यार्याकथिताः सम्पत्त्वस्य दशप्रकारा ज्ञातव्या । तद्विवरणं वृत्त-
श्रयं यथा—

आंशासम्पत्त्वमुक्तं यदुक्तं विरुचितं बीतरागास्तयैव
त्यक्तप्रग्रन्थप्रपञ्चं शिवममृतपथं श्रद्धधनमोहशान्तेः ।

मार्गश्चद्धानमाहुः पुरुषचरपुराणोपदेशोपज्ञाता-

या सद्ज्ञानागमाधिप्रसूतिमिरुपदेशादिरादेशि वृष्टिः ॥ १ ॥

१ द्वादशमे पृष्ठेऽप्युक्ता । २ एते प्रथम श्लोका त्रयोदशमे पृष्ठेऽप्युक्ताः
सविपरणा ।

तिलतुपमात्रसमोऽपि बाह्यग्रन्थस्य सग्रहो नास्ति न विशते । पावन्न
हवइ एसा प्रमज्या भवत्येवा । जह भणिया सव्वदरिसीहिं यथा
मणिता सर्वदर्शिभि सर्वज्ञदवैरिति ।

उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसे हि णिच अत्थेइ ।

सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ ॥ ५६ ॥

उपसर्गपरीपहासहा निर्जनदेशेहि निर्वं तिष्ठति ।

शिलायां काष्ठे भूमितले सर्वाणि आरोहति सर्वत्र ॥

उवसग्गपरिसहसहा उपसर्गाश्च तिर्यग्मानरदेवाच्चेतनभवाधनु-
प्रकारा, परीपहाश्च पूर्वोक्ता द्वाविंशति उपसर्गपरीपहास्तान् सहते तेषु
या सहा सगर्था उपसर्गपरीपहासहा । णिज्जणदेसे हि णिच अत्थेइ
निर्जनदेशे मनुष्यरोहितप्रदेशे वने रि-सुण्ट नित्यं तिष्ठति । सिल कट्ठे
भूमितले शिलायां दृपदि, काष्ठे दारुजडके, भूमितले भूमौ तृणायां वा ।
सव्वे आरुहइ सव्वत्थ एतानि सर्वाणि, आरोहति उपविशति शेते च
सर्वत्र वने प्रामनगरादौ वा ।

पसुमहिलसंदसंगं कुमीलसंगं ण कुणइ विकहाओ ।

सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५७ ॥

पशुमहिलापञ्चसंगं कुशीलसंगं न करानि विक्रयः ।

स्वाध्यायध्यानयुक्ता प्रमज्या ईंसी भणिता ॥

पसुमहिलसंदसंगं यत्र पशवो भवन्ति तत्र न स्थंयते, यत्र महिला
भवन्ति यत्र पंढा नपुंसकाणि भवन्ति तत्र न स्थंयते । कुशीलसंगं
ण कुणइ विकहाओ कुशीलस्य कुत्सिताचारस्य साधुलोकशिक्षापरा
ह्मुलस्य संगं न करोति-तसंगतो दुष्कृतानमुपजते, न करोति विक्रयाश्च
राजकपार्त्ताकपामोन्ननकथाचोत्कथाश्चेति । मज्झायझाणजुत्ता स्या-

आकर्ण्योचारसूत्र मुनिचरणविधे सूचन श्रद्धधान
 सूक्तसौ सूत्रदृष्टिर्दुरधिगमगतेरर्थसार्थस्य योजै ।
 कैश्चिज्जातोपरलब्धेरसमशमवशाद्दीजदृष्टि पदार्थान्
 सक्षेपेणैव बुद्ध्या रुचिमुपगतवान् साधु सक्षेपदृष्टि ॥ २ ॥
 य श्रुत्वा द्वादशाङ्गी शृतरचिरिह ॥ विद्धि विस्तारदृष्टिं
 सज्ञातार्थात्कुतश्चित्प्रचनयचनान्यन्तरेणार्थदृष्टि ।
 दृष्टि साङ्गाङ्गयाह्यप्रवचनमवगाह्योत्थिता याऽवगाढा
 कैवल्यालोक्षितार्थे रचिरिह परमायादिगाढेति रुढा ॥ ३ ॥
 सुद्धा गुणेहि सुद्धा या प्रव्रज्या गुणै शृत्वा शुद्धा सा शुद्धा कथ्यते
 न तु वेपमात्रेण शुद्धाश्रये । पञ्चज्जा एरिसा भणिया प्रव्रज्या दी-
 क्षेदृशी भणिता प्रतिपादिता शान्तिनाथेननि शेष ।

एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता बहुविमुद्धसम्मत्ते ।
 णिग्गंथे जिणमग्गे संसेवेणं जहारपादं ॥ ५९ ॥

एव आत्मवगुणपयाप्ता बहुविशुद्धसम्यक्त्वे ।

निर्गन्धे जिनमार्गे संज्ञेण यथाह्यस्तम् ॥

एवं पूर्वोक्तप्रकारेण । आयत्तणगुणपज्जत्ता आत्मवगुणपर्याप्ता,
 परिपूर्णा, आत्मभाषनागुणरहितेय प्रव्रज्या परिपूर्णा न भवति, आत्मगुण-
 भावनासहिता तु स्तोकापि प्रव्रज्या-पर्याप्ता सम्पूर्णा भवतीति भावार्थः ।
 बहुविमुद्धसम्मत्ते बहुविशुद्धसम्यक्त्वे मुनौ प्रव्रज्या पर्याप्ता भवति
 मिथ्यावदूषिते तु नग्रेऽपि मुनौ दीक्षा अदीक्षा भवति संसारविच्छेदर-
 हितत्वात् । उक्त्यतया नममग्नैवेयकपद लब्ध्यापि मिथ्यादृष्टस्तपरिम
 पुन संसार पतन्तीति ज्ञात्वा पुन पुन भणामि सम्यक्त्ववता मुनिना
 भवितव्यं । उक्त चानेनैव भगवता कुन्दकुदाचार्येण—

सम्म चेव य भावे मिच्छाभावे तदेव बोद्धव्या ।

चइऊण मिच्छभावे सम्मम्मि उवट्ठिदे धंदे ॥ १ ॥

१ सम्पद्य एव भावा मिथ्यात्वभावा तथैव बाद्धव्या
 त्यक्त्वा मिथ्यात्वभावान् सम्यक्त्वे उपस्थितान् वदे ॥

उद्यानादिहतां छायामपास्य र्थां तपो व्यधात् ।
 यतोऽयमत एवास्य स्यादशोकमहाकुमः ॥ १९ ॥
 स्य स्यापतेयमुचितं त्यक्त्वा निर्ममतामिव ।
 स्वय निधिभिरभ्येत्य सेव्यते हारि दूरत ॥ २० ॥
 गृहशोभां हृत्तारक्षा दुरीटाय तपस्वत ।
 धर्ममण्डपादिशोभ स्य स्वतोऽभ्येति पुणोगता ॥ २१ ॥
 तपोयिगाहनादस्य गहनान्यधितिष्ठतः ।
 भिजगज्जनतास्थानसह स्यादयगाहन ॥ २२ ॥
 शेषपास्तुम्भुस्तर्गशेषस्त्यमुपेयुष ।
 स्वार्थान विजगरे चमदयमस्यापजायते ॥ २३ ॥
 भाशभिमानमुरगुज्य मौनमास्तिगतज्ञानय ।
 प्रामोति परमामाज्ञा सुरासुरदिगोधृता ॥ २४ ॥
 स्वामिष्टमृत्यवध्यादिसमाम् सुष्टयानय ।
 परमात्म्यपदप्राप्तावध्यास्ते भिजगस्तर्भा ॥ २५ ॥
 स्वगुणोत्कीर्तन त्यक्त्वा त्यक्तकामो महातपाः ।
 स्तुतिनिन्दासमो भूपः कार्यते भुयनेश्वरः ॥ २६ ॥
 यन्दिश्या यन्धमर्दन्त यतोऽनुष्ठितयास्तप ।
 ततोऽयं यन्धत यन्धरनिन्धगुणसन्निधः ॥ २७ ॥
 तपोऽयमनुप न कः पादचारी पिथादनः ।
 हृतघान् पद्मगर्भेषु चरण यासमर्दन्ति ॥ २८ ॥
 यागुप्तो हितपाभ्युत्था यतोऽय तपसि स्थितः ।
 ततोऽस्य दिव्यभाषा स्थानमर्णय रश्मिप्रिया सर्भा ॥ २९ ॥
 मनादयान्निदन्त ऽऽहारपारणोऽतसयत्तप ।
 तदस्य दिव्यविजयपरमामृततृप्तय ॥ ३० ॥
 त्यक्तकामगुप्तो भूत्या नपस्यस्थ शिर यतः ।
 ततोऽय कृत्तसाह्वन गरमानन्दधुं भजेत् ॥ ३१ ॥
 किमप्रयदुनोचन यद्यदिष्ट यथाविध ।
 त्यजेन्मानसकल्पस्तत्तत् सूतेऽस्य तत्तप ॥ ३२ ॥

प्राप्तोत्कर्षे तदस्य स्यात्तपश्चिन्तामणेः फलं ।
 यतोऽर्हज्जातिमूर्त्यादिप्राप्तिः सैषानुवर्णिता ॥ ३३ ॥
 जैनेश्वरी परामाज्ञां सूत्रोद्दिष्टां प्रमाणयन् ।
 तपस्यां यदुपादत्ते पारिव्राज्यं तदाग्रसं ॥ ३४ ॥
 अन्यच्च बहुवाग्जाले निषखं युक्तियाधितं ।
 पारिव्राज्य परित्याज्यं ग्राह्यं चेदमनुत्तरं ॥ ३५ ॥

पंचत्रिंशच्छ्लोकैः प्रव्रज्या वर्णिता ।

इति श्रीबोधप्राभृते प्रव्रज्याधिकार एकादशः समाप्तः । ११ ।

अपेदानीं बोधप्राभृतस्य चूलिकां गाथाश्रवेण निरूपयन्ति-

रूपतयं सुद्वयं निमग्ने जिणवरोहिं जह भणियं ।

भन्वजणबोहणतयं छक्कायहियंकरं उत्तं ॥ ६० ॥

रूपतयं सुद्वयं जिनमार्गे जिनवरैर्वंधा भणितम् ।

भन्वजनबोधनार्थं पदकायहितंकरं-उक्तम् ॥

रूपतयं सुद्वयं रूपतयं निग्रन्थरूपस्थितमाचरणं मयोक्तमितिसं-
 म्वन्धः । किमर्थं भणितं, सुद्वयं-सुद्वयं कर्मक्षयनिमित्तं । जिणमग्ने
 जिणवरोहिं जह भणियं जिनमार्गे जिनशासने जिनवरैर्तार्थकरपरमदेवै-
 र्गौतमान्तगणधरदेवैश्च यथा येन प्रकारेण भणितं । भन्वजणबोहणतयं
 आसन्नभन्वजीवसम्बोधनार्थं । छक्कायहियंकरं उत्तं पदकायहितंकरं
 सर्वजीवदयाप्रतिपालनार्थं उक्तं निरूपितम् ।

सद्वियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं ।

सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्वाहुस्स ॥ ६१ ॥

शब्दविकारो भूतः भाषासूत्रेषु यत् जिनेन कथितम् ।

तत् तथा कथितं ज्ञातं शिष्येण च भद्रवाहोः ॥

सद्वियारो हूओ शब्दविकारो मूतोऽर्हद्वनिनिर्गतः । भासासुत्ते-
 सु जं जिणे कहियं सर्वार्थमागधीभाषासूत्रेषु यज्जिनेन कथितं श्री-

वीरेणार्थरूप शास्त्र कथित । सो तद् कहियं णायं तत्तथा कथितं
ज्ञातमवगत । सीसेण य भद्रबाहुस्त केन ज्ञातं ? शिष्येणान्तेवासिना
भद्रबाहुशिष्येण अर्हद्वल्लिगुत्तिगुत्तापरनामद्वयेन विशाखाचार्यनाम्ना दश-
पूर्वधारिणामेकादशानामाचार्याणां मध्ये प्रथमेन ज्ञात ।

वारसअंगवियाणं चउदसपुब्बंगविउलवित्थरणं ।

सुयणाणिभद्रबाहु गमयगुरुभयवओ जयओ ॥६२॥

द्वादशाङ्गविज्ञान चतुर्दशपूर्वाङ्गविपुलविस्तरण ।

श्रुतशानिभद्रबाहु गमकगुरु भगवान् जयतु ॥

वारसअंगवियाणं द्वादशाङ्गविज्ञानयुक्त । चउदसपुब्बंगविउल
वित्थरणं चतुर्दशाना पूर्वाङ्गाना पूर्वाणा विपुल पृथु विस्तरण यस्य स
चतुर्दशपूर्वाङ्गविपुलविस्तरण । सुयणाणिभद्रबाहु पचाना श्रुतकेव-
लिना मध्येऽन्त्यो भद्रबाहु । गमयगुरुभयवओ जयओ यादृश सूत्रेऽ
र्यस्तादृशो वाक्यार्थस्त जानन्तीति गमकास्तेषा गुरुपाच्यायो भगवान्
इन्द्रादीनामाराध्यो जयतु सर्वोत्कर्षेण वर्ततां तस्माप्यस्माक नमस्कार
इत्यर्थ ।

इति श्रीपद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रप्रीवाचार्यैलाचार्यगृहपि-
ण्डाचार्यनामपञ्चकविराजितेन श्रीसीमन्धरस्वामिज्ञानसंबोधितमभ्यजनेन
श्रीजिनचन्द्रसूरिभट्टारकपट्टाभरणभूतेन कलिकालसबद्धेन विरचिते पदप्राप्तप्रण्ये
सवमुनिमण्डलिमण्डितेन वल्लिकालगोतमस्वामिना श्रीमद्विभूषणेन भट्टारके
णानुमतेन सकलविद्वज्जनसमाजसम्मानितेनोभयमापाकविचक्रवर्तिना श्रीविद्या-
नन्दिगुर्वन्तेवासिना सूरिवरश्रीश्रुतसागरेण विरचिता बोधप्राप्तस्य टीका

परिसमाप्ता ।

भावप्राभृतम् ।



अभेदानां भावप्राभृतं कुर्वन्त श्रीगुरुदत्ताचार्या इष्टदेवता नम-
स्कुर्वन्ति—

गमिउण जिणवरिंदे णरसुरभरणिंदवंदिण् मिद्धे ।
वोच्छामि भावपाहुडमयसेसे संजदे मिरमा ॥ १ ॥

नमस्तुभ्यः जिनवरिन्द्रान् नरसुरभवनेन्द्रवन्दितान् सिद्धाः ।
वक्ष्यामि भावप्राभृत-अवशयान् संयतान् शिरसा ॥

गमिउण जिणवरिंदे नमस्तुभ्यः, फारु^१ जिनवरिन्द्रान् सप्तप्रवृत्तिशु-
येण कृत्वैकदशेन जिना सदृश्य श्रान्तादय एकादशगुणस्थानवर्तिन
क्षीणकपायाश्च सयोगकेरलिपर्यता जिना उष्यन्ते गणधरदेवाश्च तेषां
मध्ये षण्ण श्रेष्ठा अपरकेरलिनश्च तेषामिन्द्रा स्वामिनस्तीर्थंकरपरमदेवा
जिनरोद्रा कथ्यन्ते तान् नत्वा । कथभूतान् जिनरोद्रान्, णर-
सुरभरणिंदवंदिण् नेद्रसुरेद्रभायनेद्रवदितार । मिद्धे तादृगिरे^२
पणविशिष्टान् सिद्धाश्च नत्वा । वोच्छामि भावपाहुडं वक्ष्यामि यथ
यिष्यामि, किं तद्भावनप्राभृतं भावसारप्रभं । न केवलमर्हसिद्धारु पदि-
त्वाऽपि तु अपसेसे संजदे अवशयान् संयतान् आचार्योपाध्यायसर्व
साधून् त्रिविधान् गुणीन् नत्वा । वन, मिरमा उत्तमाग्निं जानुरूपं
शिर पचकन प्राणिपयेयर्थं ।

भावो य षड्मलिंगं ण दृव्वलिंगं च जाण परमत्थं ।

भावो कारणभूतो गुणदोमाणं जिणं विवित्तिं ॥२॥

^१ धारमापूर्व ^२ अत्र नम मिद्धं च "इति पाठ टीका पुस्तके २ गुणा य
गुणिन । ३ विवित्ति-व्यवदन्ति य ।

भावश्च प्रथमलिङ्गं न द्रव्यलिङ्गं च जानीहि परमार्थम् ।

भावः कारणभूतः गुणदोषाणां विना विदति ॥

भावो यः पदमलिङ्गं भावश्च प्रथमलिङ्गं प्रथमं दीक्षाचिह्नं भावो भवति । चकाराद्द्रव्यलिङ्गं धृत्वा भावलिङ्गं प्रकटं क्रियते यथाऽपत्योत्पादनेन पुरुषशक्तिः प्रकटीभवति तथा द्रव्यलिङ्गिनो मुनेर्भावलिङ्गं प्रकटं भवति पुरुषशक्तेर्भावस्य च लोचनानामगोचरत्वात् । उक्तं चेन्नन्दिना भङ्गारकेण समयभूषणप्रवचने—

द्रव्यलिङ्गं समास्थाय भावलिङ्गी भवेद्यति ।

विना तेन न वक्ष्यः स्यान्नानाद्यतधरोऽपि सन् ॥१॥

द्रव्यलिङ्गमिदं ज्ञेयं भावलिङ्गस्य कारणम् ।

तद्द्रव्यात्मकं रूपं न नेत्रविषयं यत् ॥२॥

मुद्रा सर्वत्र मान्या स्यान्निर्मुद्रो नैव मान्यते ।

राजमुद्राधरोऽस्त्यस्तहीनयच्छास्त्रनिर्णयः ॥३॥

एष द्रव्यलिङ्गं च ज्ञाणं परमार्थं द्रव्यलिङ्गे सति भावः विना परमार्थसिद्धिर्न भवति तेन कारणेन द्रव्यलिङ्गं परमार्थसिद्धिकरं न भवति मोक्षं न प्रापयति, तेन कारणेन द्रव्यलिङ्गापूर्वकं भावलिङ्गं धर्तव्यमिति भावार्थः । ये तु गृहस्थवेपथ्यारिणोऽपि धयः भावलिङ्गिनो वर्तमानहे दीक्षायामन्तर्भावत्वात्ते मिथ्यादृष्टयो ज्ञातव्या विशिष्टजिनलिङ्गमिद्विपित्वात्, योद्धुमिच्छन् कातरवस्वयं नश्यन्ति, व्यपश्रानपि नाशयन्ति, ते मुख्यव्यवहारधर्मलोपकत्वाद्विशिष्टैर्दण्डनीयाः । भावो कारणभूदो भावः परममुक्तिकारणभूतः । गुणदोषाणां गुणानां केवलज्ञानादानां, दोषाणां नरकपातादीनां च कारणभूतो भाव एव । यदि द्रव्यलिङ्गं धृत्वा रागद्वेषमोहादिषु पतति मुनिस्तदा स तस्य भावः संसारकारणः भवति । यदि द्रव्यलिङ्गं धृत्वा नीरागनिर्द्वेषनिर्मोहभावेना भावयति तदा केवल-

ज्ञानादीन् गुणानुत्पादयति मुक्तिं गच्छति । एतदर्थं जिज्ञा विति केवलिनो जानन्ति ।

भावविमुद्दिनिमित्तं बाहिरगंधस्स कीरणं चाओ ।

बाहिरचाओ विहलो अब्भन्तरंगयजुचस्स ॥३॥

भावविमुद्दिनिमित्तं बाह्यग्रन्थस्य क्रियते त्यागः ।

बाह्यत्यागो विफलः अभ्यन्तरग्रन्थयुक्तस्य ॥

भावविमुद्दिनिमित्तं भावस्यागमो विमुद्दिनिमित्तं कारणं । बाहिरगंधस्स कीरणं चाओ, बाह्यग्रन्थस्य क्रियते त्यागः पन्नादेर्मोचनं विधीयते । बाहिरचाओ विहलो बाह्यत्यागो विफलोऽन्तर्गद्भवति । अब्भन्तरंगयजुचस्स अभ्यन्तरपरिग्रहयुक्तस्य नगस्यापि यस्मादेराकांक्षायुक्तस्येति भावः । तथा चोक्तं—

बाह्यग्रन्थविहीना दरिद्रमनुजाः स्वपापतः सन्ति ।

यः पुनरन्तःसंगत्यागी लोके स दुर्लभः साधुः ॥ १ ॥

भावरहिओ न सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोटिकोटीओ ।

जम्मंतराईं बहुसो लंविहत्थो गलियवत्थो ॥४॥

भावरहितो न सिद्धयति यद्यपि तपधरति करोति कोटी ।

जन्मान्तराणि बहुशः सम्ब्रूहन्ती गन्तव्यः ॥

भावरहिओ न सिज्झइ भवरहित आत्मस्वरूपभावनारहितो विषयरूपायभायनासहितस्तपस्वी अपि न सिद्धयति न सिद्धं प्राप्नोति । जइ वि^१ तवं चरइ कोटिकोटीओ यद्यपि तपधरति करोति कोटीकोटी । जम्मंतराईं जन्मान्तराणि । बहुशोऽनेककोटीकोटीजन्मान्तराणि । कथंभूतः सन्, लंविहत्थो अधोमुक्तबाहुदयः । गलियवत्थो नरमुदाधरोऽपि सन् ।

परिणाममि असुद्धे गंधे मुच्चेद् बाहरे य जई ।

बाहिरगंधचाओ भावविहणस्स किं कुणइ ॥ ५ ॥

परिणामे असुद्धे ग्रन्थान् मुचति बाह्यान् च यदि ।

बाह्यग्रन्थत्यागो भावविहीनस्य किं करोति ॥

परिणाममि असुद्धे परिणामे मनोव्यापारेऽशुद्धेऽपि विषय-
कपायादिभिर्मलिने सति । गंधे मुच्चेद् बाहिरे यं जई ग्रन्थान् मु-
चति परिग्रहान् वस्त्रादीन् त्यजति यतिर्जिनलिंगधारी मुनि । बाहि-
रगंधचाओ बाह्यग्रन्थत्यागो वस्त्रादित्यजन । भावविहणस्स किं कुणइ
भावविहीनस्यात्मभावनारहितस्य बहिरात्मनो जीवस्य किं करोति, न
किमपि कर्म सत्परनिर्जरालक्षण कार्यं करोतीति भावार्थ ।

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिण्ण ।

पंधिय सिवउरिपंधं जिणउवइढं पयत्तेण ॥ ६ ॥

जानीहि भाव प्रथम किं ते लिंगेन भावरहितेन ।

पथिक ! शिवपुरिषय जिनोपदिष्टः प्रयत्नेन ॥

• जाणहि भावं पढमं जानीहि भावमात्मस्वरूपभावना प्रथम
मुख्य । किं ते लिंगेण भावरहिण्ण किं तव लिंगेन भावरहितेन
किं, न किमपि संवरनिर्जरादिलक्षण कार्यं, अपि तु न किमपि कार्यं
भजति लिंगेन वस्त्रादित्यजनलक्षणेनात्मस्वरूपभावनारहितेन । पंधिय
हे पथिक ! मोक्षमार्गमार्गक । सिवउरिपंधं मोक्षनगरीमार्ग । जिण-
उवइढं जिनापदिष्ट । प्रयत्नेन यत कारणादिते शेष ।

भावरहिण्ण सुउरिस्स अणाइकालं अणंतसंसारे ।

गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरनिगंधरूवाइं ॥ ७ ॥

१ विहीनस्म इति मूलगाथापाठ । किन्तु टीकाया क ख ग घ पुस्तके
विहणस्स इति पाठ । तदनुसारेण प्रवर्तित । २ करइ इति मूलगाथापाठ ।
३ इ टी ।

भावरहितेन सत्पुरुष ! अनादिकालं अनन्तसंसारे ।

ग्रहीतोऽग्नितानि बहुश वाहिरनिर्गन्धरूपाणि ॥

भावरहिण सउरिस भावरहितेन सत्पुरुष ! भावविभिर्जितेना-
त्मरूपभावनारहितेन त्वया । अणादिकालं अणंतसंसारे अनादि-
कालमनन्तसंसारे । गहिउज्झयाइं बहुसो गृहीतान्पुञ्जितानि च
बहुशोऽनेकरसान् । वाहिरनिर्गन्धरूपाइं बहिर्निर्मन्थरूपाणि आ-
त्मरूपभावनारहितानीति भाग्यार्थ ।

भीमणणरयगईए तिरियगईए बुदेवमणुगइए ।

पत्तोसि तिव्वदुकरं भावहि जिणभावणा जीने ॥ ८ ॥

भीमणणरयगतौ नियंमती बुदेवमनुष्यगतौ ।

प्राप्तोऽसि तीव्रदु सं भावय जिनभावना जीव । ॥

भीमणणरयगईए भीमणा भयानरा या नरकगतिस्तस्यां भीमण-
नरकगत्या । तिरियगईए तिर्यग्गत्या । बुदेवमणुगइए बुद्धितदेव-
कुप्पितमनुष्यगत्योर्विषये । पत्तोमि तिव्वदुकरं प्राप्तोऽसि तीव्रदु सं
एकान्तेन दु खं । भावहि जिणभावणा जीव यथा विना त्वं तीव्रे
दु खं प्राप्तश्चतुर्गतिषु तां भावय जिनभावनां जिनसम्यक्कमभावनां हे
जीव ! हे आत्मन् ! बहिर्गामय भिष्सादृष्टिं परित्यज्य सम्यग्दृष्टिर्भव
त्वं, । तेन तत्र चतुर्गतिषु एतं विनश्यति स्तोत्रेण काटेनास्पृश्यातरेण
तीर्थकरो भूया मुक्तिं यास्यसि । तथा चोक्तं—

एवापि समर्थेय जिनभक्तिर्दुर्गातिं निवारयितु ।

पुण्यानि च पूरयितु दानु मुक्तिर्भिय दृष्टिनि ॥ १ ॥

कामो जिनभावना । लोकप्रसिद्ध दोषवन्निदम्—

जिण पुज्जहि जिणवरु धुणहि जिणहं म खंडहि भाण ।

जे जिणधम्मिसु रत्तमण ते जाणिज्झइ जाण ॥

एप्फकहि फुल्लहि माटिदेइ जु सुरनररिद्धडी ।

एही करइ कुसाटियणु भोलिम जिणवरतणी ॥

अन्यच्च—

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीच

सुतमिव जमनी मां शुद्धशीला भुनक्तु ।

कुलमिष शुणभूषा कन्यका संपुनीता-

जिनपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १ ॥

एवमर्थं ज्ञात्वा ये जिनपूजनस्तनपनस्तवननयजीर्णचैत्यचैत्यालयोद्धारण-
यात्राप्रतिष्ठादिकं महापुण्यं कर्म कर्मनिध्नसक तीर्थकरनामकर्मदायकं
त्रिशिष्ट निदानरहित प्रभाषनाङ्ग गृहस्था सन्तोऽपि निषेधन्ति ते पापा-
त्मानो मिध्यादृष्टयो नरकादिदुःख चिरकालमनुभवन्ति अनन्तससारिणो
भवन्तीति भावार्थः ।

सत्तमुनरयायासे दारुणभीसाइं असहणीयाइं ।

भुत्ताइं सुइरकालं दुक्खाइं निरंतरं सहियं ॥ ९ ॥

सत्तमुनरकवासे दारुणभीष्माणि असहनीयानि ।

भुत्तानि सुचिरकालं दुःखानि निरन्तरं सहित ॥

सत्तमुनरयायासे सत्ताना सुनरकाणा महानरकाणा वासे निवासे
सति हे जीव ।। दारुणभीसाइं दारुणानि तीव्राणि, भीष्माणि भयान-
कानि । असहणीयाइं असहनीयानि असह्यानि सोढुमशक्यानि ।
भुत्ताइं भुत्तानि अनुभूतानि । सुइरकालं सुष्ठु अतीव चिरकाल दीर्घ-
कालं एकसागरमारभ्य त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमपर्यन्तमुत्कृष्टायुष्कं । दुःखान्य-

१ सहिय क. ख. ग. पुस्तके मूलगद्यापाठ । टीकायां तु सहिय इति
पाठ । तदनुसारेण प्रवर्तित । भविया इति घ. पुस्तके । नाथोऽस्य तत्र दत्त ।

सातानि कष्टानि मुक्तानि निरन्तरमविच्छिन्न । सहिय हे स्वहित ! हे
आत्महित ! किं त्वया आत्मनो हितं कृतमित्याश्लेष ।

खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च ।

पत्तोसि भावरहिओ तिरियगईए चिर कालं ॥ १० ॥

खननोत्तापनज्वालनव्यञ्जनविच्छेदनानिरोध च ।

प्राप्तोऽपि भावरहित तिर्यग्गतौ चिरं कालम् ॥

खणण पृथिवीकायस्त्वं यदा जातस्तदा खननं कुठारादिनाऽवदा
रणदु ख त्वया सोढ । उत्तावण अष्कायस्त्वं यदाभूतस्तदाऽग्न्युपर्युत्ता-
पनदु ख त्वया क्षमित । वालण अग्निकायिको जीवो यदा त्व जातस्तदा
ज्वालनदु ख त्वयानुभूत । वेयण वायुकायिको जीवो यदा त्व जातस्तदा
व्यजनादिनावीजनदु ख त्वया तितिक्षित । विच्छेयणा हे जीव ! वन-
स्पतिकायिको जीवो यदा त्व उत्पन्नस्तदा विच्छेदना कुठारादिना कर्षण
दु ख त्वया मृषित । णिरोहं च शंखशुक्तिवृश्चिकगोमिश्रमरमक्षिकारली
वर्दमहिपादिकस्त्वं समुत्पन्नस्तदा निरोधादि दु ख त्वया भुक्त । इति स्थाव-
रसदु खानि अनुक्रमेण सूचितानि भवन्तीति ज्ञातव्य । पत्तोमि भाव-
रहिओ प्राप्तोऽसि भावरहितो जिनभक्तिभ्रष्ट आममाननादूरीकृतश्च ।
तिरियगईए चिरं काल तिर्यग्गतौ दीर्घ काल असत्त्वात्तत्पर्यन्तं
वनस्पतिकायापेक्ष्यानन्तरकाल चेत्यागमानुसारण ज्ञातव्यम् ।

आगतुक माणसिय महजं सारीरियं च चत्तारि ।

दुवखाइं मणुयजम्मे पत्तोमि अणंतयं कालं ॥ ११ ॥

आगन्तुक मानसिक सहज शारीरिक च चत्वारि ।

दुःखानि मनुजजन्मनि प्राप्तासि अवन्तरु कालम् ॥

आगंतुक आगन्तुकं दुःखं विद्युत्पातादिकं । मानसिकदुःखं स्त्रीक-
टाक्षादिताडने सति तदप्राप्तौ भवति । तथा चोक्तं—

संसारे नरकादिषु स्मृतिपथेऽप्युद्वेगकारीष्यलं
दुःखानि प्रतिसेवितानि भवता तान्येवमेवासताम् ।
तत्तावत्स्मरसि स्मरस्मितशितापाङ्गेनद्रागुधै-
र्वामानां हिमदग्धमुग्धतरुवद्यत्प्राप्तवासिधनः ॥ १ ॥

सहजं व्याधिवेदनोत्पन्नं दुःखं । सारीर्यं छेदनभेदनादिकं दुःखं ।
चकार उक्तसमुच्चयार्थस्तेन खलजनोक्तमिष्यावचनश्रवणे यद्दुःखं भवति
तत् केनापि सोऽदु न शक्यते । तदुक्तं रुद्रटेन महाकविना—

शल्यमपि स्थूलदन्तः सोऽदु शक्येत हालालहलदिग्धं ।
धीरर्त्तं पुनरकारणकुपितज्वलालीकदुर्वचनं ॥ १ ॥

चत्वारि एतानि चत्वारि । दुःखाः दुःखानि । मणुष्यजन्मे मनुज-
जन्मनि मनुष्यभवे । पक्षोऽसि प्रातोऽसि हे जीव ! त्वं प्राप्तमानसि
भवसि । अणंतयं कालं अनन्तकं कुत्सितमनन्त काल समयमिति ।

सुरनिलएसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिष्ठ्यं ।
संपक्षोऽसि महाजस दुःखं मुहभावनारहिओ ॥ १२ ॥

सुरनिलयेऽसु सुराधरावियोगकाले च मानसं तीव्रम् ।
संप्राप्तोऽसि महावशः । दुःखं शुभभावनारहितं ॥

सुरनिलएसु स्वर्गे । सुरच्छरविओयकाले देवीवियोगावसरे
य चकारात्तं देवी जाता तदा देववियोगकाले । माणसं
तिष्ठ्यं इन्द्रभिर्भूतं दृष्ट्वा मानसं मनसि भव दुःखं त्वं प्राप्तः, तद्दुःखं
तीव्रमप्युत्कृष्टं, हा ! मया मनुष्यभवे प्राप्तेऽपि निर्मल चारित्रं न पाळितं
अनेन तु निरतिचारं चारित्रं प्रतिपाळितं तेनायं मम किलिपादेरादेश

श्रवणा जिनधर्मब्राह्मण न वन्दनीया । तेषा कार्ययशात् किमपि देव
जिनधर्मोपकारार्थमिति ।

देवाण गुणविहृई इड्ढी माहण्य बहुविह ददुं ।

होऊण हीणदेवो पत्तो बहुमाणसं दुक्खं ॥ १५ ॥

देवानां गुणविभूतिं कृद्धिं माहात्म्यं बहुविधं दृष्ट्वा ।

भूत्वा हीनदेवः प्राप्तो बहुमानसः दुःखम् ॥

देवाण गुणविहृई देवाना गुणान्—

अणिमा मदिमा लघिमा गरिमान्तर्द्धानकामरूपित्थ ।

प्राप्तिकाम्यचशित्तेशित्त्वाप्रतिहतत्थमिति धैक्रियिकाः ॥ १ ॥

इत्यायाक्तलक्षणान् गुणान् दृष्ट्वा । इड्ढी कृद्धि ईद्वर्णाः प्रमुखपरिवारः ।

उक्तं च—

शची पद्मा शिषा इयामा कालिन्दी सुलसाञ्जुषा ।

मान्वाट्या दक्षिणेन्द्राणा विश्वेषामपि कीर्तिताः ॥ १ ॥

उद्दीचां धीमती रामा सुसीमा च प्रभायती ।

जयसेना सुपेणा च सुमित्रा च यमुन्धरा ॥ २ ॥

पोडशाघे सहस्राणि विक्रियोत्थाः पृथक्च ताः ।

द्विगुणा द्विगुणास्तस्मात्परश्च सममात्मना ॥ ३ ॥

१६०००-३२०००-६४०००-१२८०००

२५६०००-५१२०००-१०२४००० ।

क्रमारद्धाविंशदष्ट द्वे सहस्राः पञ्चशत्यथ ।

अर्धाध्या त्रिपष्टिश्च सप्तस्थानेषु बहुमाः ॥ ४ ॥

सप्तस्थानानि कानि १ सौवर्मेशाना १ सननुमारमाहेन्द्रो २ ब्रह्मनक्षो-

त्तरो ३ लान्तनमापिष्टो, ४ शुक्रमहाशुक्रौ ५ शतारसहस्रारौ ६ आन-

तप्राणतारणाच्युताश्च गार स्वर्गा एक स्थानमिति सप्तस्थानानि,

इत्यादि देव्याङ्गि दृष्ट्वा । माहण्य बहुविहं ददुं इन्द्राचा दीर्घायु-

रपि म्रियते अल्पायुषोऽप्यायुर्न वृथ्यति इत्यादि माहात्म्यं बहुविधं दृष्ट्वा ।
होऊण हीणदेवो हीनदेवो भूत्वा । पत्तो बहुमाणसं दुःखं प्राप्तोऽसि
बहुतरं प्रचुरं मनसि भव मानसं दुःखं हे जीव ! त्वमिति कारणात्
जिनभक्तिं कुर्वीति भावार्थः ।

चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहमाणपयडत्थो ।
होऊण कुदेवत्तं पत्तोसि अणेयवाराओ ॥ १६ ॥

चतुर्विधविकथासक्तं मदमत्तं अशुभभावप्रकटार्थः ।

भूत्वा कुदेवत्वं प्राप्तोऽसि अनेकवारान् ॥

चउविहविकहासत्तो चतुर्विधविकथासक्त आहारकथा—स्त्रीकथा—
राजकथा—चौरकथा—क्षणामु विकथासु चतुर्विधास्यासक्तः । मयमत्तो
अष्टमदैर्मत्तो गर्भितः । असुहमाणपयडत्थो अशुभभावः पापपरिणामः
प्रकटः स्पृगीभूतोऽर्थः प्रयोजनं यस्य स अशुभावप्रकटार्थः । होऊण
कुदेवत्तं अशुभभावप्रकटार्थो भूत्वा कुदेवत्तं—जुसितदेवत्वं । पत्तोसि
प्राप्तोऽसि । हे जीव ! अमुरादिकुदेवगतारनेकवारान् प्राप्तोऽसि ।

असुहीवीहत्थेहि य कलिमलवहुलाहि गम्भवसहीहि ।
वसिओसि चिर काल अणेयजणणीण मुणिपवरं ॥ १७ ॥

अशुचिबीभत्थासु कलिमलबहुलासु गर्भवसतिषु ।

उपितोसि चिर कालं अनेकजननीनां मुनिप्रवरः ॥

असुहीवीहत्थेहि य अशुचिषु अपवित्रासु बाभ सामु, च विरूप-
कामु । कलिमलबहुलाहि पापबहुलासु । गम्भवसहीहि गर्भगृहेषु
उदरवसतिषु । वसिओसि चिर कालं उपितोऽसि स्थितोऽसि चिर

१ ई. ख. ग. घ. पुस्तके । २ पवरा ग. घ. । घ. पुस्तकेऽस्यार्थः प्रचुर-
त्वंमिति ।

दीर्घकालमनन्तकालमनादिकाल । अण्येयज्जणीण मुणिपवर गर्भवस
तिषु अनेका अनन्ता जनन्यो जाता , हे मुनिप्रवर ! हे मुनीनामुत्तम ॥

पीओसि धणच्छीर अणतजम्मतराह् जणीण ।

अण्णणाण महाजस सायरसल्लिहादु अहिययर ॥ १८ ॥

पीतोऽसि स्तनक्षीरं अनन्तजमान्तराणि जननीनाम् ।

अन्यासामन्यासां महायशः । सायरसल्लिहादधिकतरम् ॥

पीओसि धणच्छीर पीतोऽसि पीतवान् धयितवानसि स्तनक्षीरं

अपवित्रं बक्षोदहक्षीरं स्तनदुग्धं । अणतजम्मतराह् अनन्तजमात

राणि अनन्तभवान्तरपु । जणीण जननीनां अनन्तमातृणां । अण्ण

णाण अन्यासामन्यासां । महाजस महत् त्रैलोक्यव्यापकं यशो यस्य

भवति महायशास्तस्य सम्बोधनं त्रियते हे महायशः । सायरसलि

हादु अहिययर सागरसल्लिहादधिकतरं अतिशयेनाधिकतरमनन्त

सागरजलसमानं ।

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झियकेसणहरणालद्धी ।

पुंजेइ जइ को वि जए हवदि य गिरिममधिया रासी ॥२०॥

भवसागरे अनन्ते छिन्नोज्झितकेशनखरनालास्थीनि ।

पुञ्जयति यदि कथित् देवो भवति च गिरिसमधिका राशि ॥

भवसायरे अणंते भावसागरेऽनन्ते ससारसमुद्रेऽन्तरहिते । छिण्णु-
ज्झियकेसणहरणालद्धी छिन्नानि उज्झितानि मुक्तानि क्षुरेण नखलुना
छुरिकया पूर्वं छिन्नानि पश्चादुज्झितानि केशनखरनालास्थीनि । पुंजेइ जइ
को वि जए पुञ्जयति राशीकरोति यदि चेत् कोऽपि शक्रसन्तानागत
कथिरेव । हवदि य गिरिसमधिया रासी भवति च गिरेर्मैरोरपि
समधिका राशि केशादीनां प्रत्येकमनन्तमेवसमा राशयो भवन्तीति
भावार्थः ।

जलथलसिहिपवणंवरगिरिसरिदरिकुरवणाइं सव्वत्तो ।

वसिओसि चिर कालं तिहुवणमज्जे अणप्पवसो ॥२१॥

जलस्थलशिखिपवनावरगिरिसरिदरीतरवनादिषु सर्वत्र ।

वसितोसि चिरं कालं त्रिमुवनमप्येऽनामवशः ॥

हे जीव ! हे चेतनानाथ ! त्वं जले उदके उपितोऽसि निवासं
चकर्थ । थल थले भूम्या । सिहि शिखिनि हुताशने । पवण पवने
सप्तमामरतादौ । अवर अम्बरे विहायसि । गिरि पर्वते । सरि सरिति
मया । दरि दर्या गुहाया । कुरवणाइं देवकस्तुखस्तमभोगभूमि-
कल्पनृक्षयने । आदिशब्दाद्भरत्तहैमवतहरिनिदेहरम्यकहैरण्यतैरायतादयो-
लम्पन्ते । मज्जत्तो किं बहुना सर्वत्र सर्वत्र । वसिओमि चिर कालं
उपितोऽसि चिर दीर्घमनन्त कालमनन्तोत्सर्पिण्यसर्पिणीकालसमय-
पर्यन्त । तिहुवणमज्जे अणप्पवसो त्रिमुवनमप्येऽनामवशः । नि-

जशुद्धयुद्धैकस्वभावाचिच्चमत्कारलक्षणटंकोत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावात्मभावनाना
जिनस्वामिसम्यक्त्वभावनाभ्यष्ट इत्यर्थः ।

गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइं ।
पत्तोसि तो ण तित्तिं पुणरूवं ताइं भुजंतो ॥ २२ ॥

प्रसिता पुद्गला भुवनोदरवर्तिनः सर्वः ।

प्राप्तोसि तच्च तृप्तिं पुनारूपं तान् भुजान् ॥

गसियाइं पुग्गलाइं प्रसिता पुद्गलाः सर्वेऽप्यणयः । भुवणोदर-
वत्तियाइं सव्वाइं भुवनोदरवर्तिनः सर्वेऽपि । पत्तोसि तो ण तित्तिं
प्राप्तोऽसि तदपि न तृप्तिं धृतिं । पुणरूवं ताइं भुजंतो पुनारूपं पुन-
र्भवमिति तान् पुद्गलान् भुजान् । उक्तं च प्रत्ययादेन गणिना—

भुक्तोज्झिता मुहुर्मोहात्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।

उच्छिद्येऽप्ययं तेष्वयं मम विश्वस्य का स्पृहा ॥ १ ॥

तिहुयणसलिलं मयलं पीयं तिण्हाए पीडिण्ण तुमे ।
तो वि ण तिण्हाछेओ जाओ चित्तेह भवमहणं ॥ २३ ॥

त्रिभुवनसलिलं सकलं पीतं तृष्ण्या पीडितेन स्वया ।

तदपि न तृष्णाछेदो जातः चिन्तय भवमयनम् ॥

तिहुयणसलिलं मयलं त्रिभुवनसलिलं सकलं । पीयं पीतं स्वया ।
तिण्हाए तृष्ण्या । पीडिण्ण पीडितेनाग्नादेन । तुमे स्वया भयता ।
“ तुमइ तुमाइ तुमे तुमए तुम त (तु) इ त (तु) ए ते दि दे भे
टया ” इति व्याकरणसूत्रेण टावचनेन सह युष्मद् तुम आदेशः । तो वि

तदपि । ण नैव । तिण्हाछेओ तृष्णाच्छेद । जाओ जात । चित्तेह
भवमहणं हे जीव । त्वं चित्तय अन्वेपस्व भवस्य ससारस्य मथन वि-
नाशनं सम्पददर्शनज्ञानचारित्रयमिति भागार्थ ।

गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं ।
ताणं णत्थि पमाणं अणन्तभवसागरे धीर ॥ २४ ॥

गृहीतोऽज्झितानि मुनिवर । कलेवराणि त्वया अनेकानि ।
तेषा नास्ति प्रमाण अनन्तभवसागरे धीर ॥

गहिउज्झियाइं गृहीतोऽज्झितानि । हे मुनिवर मुनिश्रेष्ठ । कलेवराइं
कलेवराणि शरीराणि । तुमे अणेयाइं त्वयाऽनेकान्यनन्तानि । ताणं
णत्थि पमाणं तेषा कलेवराणा नास्ति न विद्यते प्रमाण गणनमनन्त-
त्वात् । अणन्तभवसागरे धीर अनन्तभवसागरेऽन्तातीतससारसमुद्रे हे
धीर ! ध्येय प्रति धियमांसयतीति धीरस्तस्य सम्बोधन क्रियते हे धीर !
हे योगीश्वर ! भावचारित्र त्रिनेति शेष ।

विसवेयणरत्तमयमयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं ।
आहारस्सासाणं णिरोहणा सिज्जए आऊ ॥ २५ ॥

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशानाम् ।
आहारोच्छ्रामानां निरोधनात् क्षीयते आयु ॥

विसवेयणरत्तमयमयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं विषवेदनारक्त-
क्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशाना । आहारस्सासाणं आहारोच्छ्रामाना ।
णिरोहणा निरोधनात् । सिज्जए आऊ क्षीयते आयु ।

हिमजलणसलिलगुरुयरपव्ययतरुरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्जजोयधारणअणयपसंगेहि विविहेहिं ॥ २६ ॥

हिमचलनसलिलगुल्तरपर्वततरोहणपतनभंगै ।

रसविद्यायोगधारणानयप्रसंगै विविधैः ॥

हिमं केवाचिज्जतूना मानवानां च शीतेनापमृशुर्भजति । जलण
केवाचिचलनेनाग्निनापमृत्युर्भजति । मल्लिल केवाचित्साटिडेन समुद्रा-
दिजलेनापमृत्युर्भजति । शुम्भरपव्ययतरुहणपडणभंगेहिं गुरुतरा
अभ्युन्नतशिखरास्ते च ते पर्यतास्तुंगीगिर्यादयः, तथा तस्यो वृक्षा गुरुतर-
पर्वततररस्तेषां रोहणेन पतनेन च कृत्वा ये भंगा शरीरामर्दनानि ते तथा
तै हिमचलनसलिलगुल्तरतपर्वततरोहणपतनभंगै । रसविज्ञजोयधार-
णअणयपसंगेहि रसस्य विषस्य या विद्या विज्ञानं तस्या योगोऽनेकौयध-
मेलनं तस्य धारणं सैननमास्यादनं अनयप्रसंगश्चाभ्यायकरणं ते रसवि-
द्यायोगधारणानयप्रसंगास्तै रसविद्यायोगधारणानयप्रसंगै । विविहेहिं
विविधैर्नानाप्रकारैः । तथा चाक्तं लक्ष्मीधरेण भगवता—

अघ्नाप दालिद्विदध धरे जिय दुदु मायागु ।

लककडियप रिणु रौडयद मगु सचिक्कालु दुगु ॥ १ ॥

इय तिरियमणुयजम्मे मुहर उवरज्जिउण वहुवार ।

अमिन्नुमहादुकरं तिल्यं पत्तोमि तं मित्र ॥ २७ ॥

इति तिर्यक्षनुष्यजम्भनि मुचिरं उपपद्य बहुवारम् ।

अपमृत्युमहादु रा तीव्र प्रान्तोऽति त्वं मित्र ॥

इय तिरियमणुयजम्मे इति पूर्वोक्तप्रकारेण तिर्यक्षनुष्यजम्भनि ।
मुहर मुचिरं मुक्त दीर्घकाञ्च । उपरज्जिउण बहुवार उपपद्य उपपद्य
जम्भ गृहीतम् । बहुवारम्भनेकवारम् । अमिन्नुमहादुकरं अपमृत्युमहा-
दुकरं । तिल्यं पत्तोमि तीव्रं दुःखममहर्नाप्यप्रसानं प्रान्तोऽमि । तं
मित्र त्वं भवान् मे मित्र । हे वन्द्यो ! हे मुह्यन् ।

छत्तीसं तिणिं सया छावद्विसहस्रवारमरणाणि ।

अंतोमुहुत्तमज्ज्ञे पत्तोसि निगोयवासम्मि ॥ २८ ॥

पट्त्रिंशत् त्रीणि शतानि पट्पष्ठिसहस्रवारमरणानि ।

अन्तर्मुहूर्तमध्ये प्राप्तोऽसि निकोतवासे ॥

छत्तीसं तिणिं सया पट्त्रिंशदधिकत्रिंशतानि । छावद्विस्महस्रवार-
मरणाणि पट्पष्ठिसहस्रवारान् मरणानि ६६३३६ । अंतोमुहुत्तमज्ज्ञे
अन्तर्मुहूर्तमध्ये । पत्तोसि निगोयवासम्मि प्राप्तोऽसि निकोतवासे ।

वियलिंदिए असीदी सही चालीसमेव जाणेह ।

पंचिंदिय चउवीसं सुद्धमवंतोमुहुत्तस्स ॥ २९ ॥

विकलेन्द्रियाणामशीतिं पच्छि चत्वारिंशदेव जानीत ।

पञ्चेन्द्रियाणां चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्तस्य ॥

वियलिंदिए असीदी विकलेन्द्रियाणां द्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतुरिन्द्रियजी-
वेषु अनुक्रमेण मरणसंख्यामन्तर्मुहूर्तस्य करोति । तथाहि । द्वीन्द्रिया जीवा
अन्तर्मुहूर्तेन अशीतिवारान् म्रियन्ते । त्रीन्द्रिया जीवा अन्तर्मुहूर्तेन पष्टि-
वारान् म्रियन्ते । चतुरिन्द्रिया जीवा अन्तर्मुहूर्तेन चत्वारिंशत् वारान् म्रि-
यन्ते । पंचिंदिय चउवीसं पञ्चेन्द्रिया जीवा अन्तर्मुहूर्तेन चतुर्विंशतिं वारान्
म्रियन्ते । सुद्धमवंतोमुहुत्तस्स क्षुद्रभवा अन्तर्मुहूर्तस्य क्रमेण ज्ञातव्याः ।

रयणत्ते सुअलद्धे एवं भमिओसि दीहसंसारे ।

इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तं समायरह ॥ ३० ॥

रत्नत्रये स्वल्पे एवं अमृतोऽसि दीपसमारे ।

इति जिणवरैर्भणितं तत् रत्नत्रयं समाचर ॥

रयणत्ते सुअलद्धे रत्नत्रये सुष्ठु अल्पे समे । एवं भमिओसि
दीहसंसारे एवममुनाप्रकारेण अमृतोऽसि पर्यटितवान् दार्ढ्यममारेऽनादौ

ससारे भवे । इय जिणवरेहि मणियं इयेतद्वचन जिनवरैस्तीर्थकरपरम-
देवैर्भणित प्रतिपादित । तं रयणत्तं समायरह तत्तस्माकारणात्
तज्जगत्प्रसिद्ध वा तत्त्वं वा रत्नत्रयं वा समाचर सम्यगाद्रियस्य वा ।

तं रयणत्तयं केरिसं हवदि । तं जहा । तद्वत्तत्रयं कीदृशं भवति ?
तद्यथा—तदेव निरूपयति—

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइही हवेइ फुडु जीवो ।

जाणइ त सण्णाणं चरदिह चारित्तमग्गुत्तिं ॥ ३१ ॥

आत्मा आत्मनि रत सम्यग्दृष्टिं भवति स्फुटं जीव ।

जानाति तत् सञ्ज्ञानं चरतीह चारित्र्यमगं इति ॥

अप्पा अप्पम्मि रओ आत्मा आत्मनि रत आत्मन धर्मानपर ।
सम्माइही हवेइ फुडु जीवो सम्यग्दृष्टिर्भवति स्फुटं निश्चयनयेन,
व्यवहारनयेन तु तत्त्वार्थश्रद्धान् सम्यग्दर्शनं भवति, जीव आत्मा सम्य-
ग्दृष्टिरिति ज्ञातव्य । जाणइ तं सण्णाणं जानाति तं आत्मानं तत्स
द्विज्ञानं सम्यग्ज्ञानं भवति, व्यवहारेण तु सप्ततत्त्वानि जानाति तत्सम्य-
ग्ज्ञानं भवति । चरदिह चारित्तमग्गुत्तिं तत्तत्मानं जीवो यच्चरति
तत्तमयो भवति आत्मन्येकलोकीभावो भवति, इहास्मिन् ससारे, चारित्र्य-
मार्गं इति, व्यवहारेण तु पापक्रियारिमणं चरणं भवति ।

अण्णे कुमरणमरणं अणेयज्जम्भंतराइं मरिओसि ।

भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव ॥ ३२ ॥

अस्मिन् कुमरणमरणं अनेकज्जमान्तरेषु सृताऽस्ति ।

भावय सुमरणमरणं जन्ममरणविनाशनं जीव । ॥

अण्णे कुमरणमरणं अन्यस्मिन् भवसमूहे कुमरणमरण-कुत्तितमरण-
मरणं यथा भवत्येव । तथा अनेकज्जमातराप्यनन्तमनांतरेषु । “अन्यार्थे

अन्या" इति प्राकृतव्याकरणसूत्रेण सप्तम्यर्थे द्वितीया । मरिओसि मृतोऽसि मरणं प्राप्तोऽसि । भावहि सुमरणमरणं भावय सुमरणमरणं पडितपडितमरणं । कथंभूतं सुमरणमरणं, जरमरणविनाशणं जरामरणविनाशनं परममोक्षदायकं । हे जीव हे चेतनस्वभाव ! आत्मनिति ।

समुद्रादिकद्वोलवत्प्रतिसमयमायुस्त्रुध्यति तदावीचिकामरणं स्थिति-प्रदेशवीचिकाभेदात्तद्विविधमप्येकविधं । भवान्तरप्राप्तिरन्तरोपसृष्टपूर्व-भवविगमनं तद्भवमरणमुच्यते । तत् त्वनन्तशः प्राप्तं जीवेनेति ज्ञातव्यं, तेन तद्भवमरणं न दुर्लभं । अवधिमरणं नाम कथ्यते-यो यादृशं मरणं साम्प्रतमुपैति तादृशमेव यदि मरणं भविष्यति तदवधिमरणं, तद् द्विविधं देशावधिमरणं सर्वावधिमरणं चेति । तत्र सर्वावधिमरणं नाम यदायुर्यथाभूतमुदेति साम्प्रतं प्रकृतिस्थित्यनुभोगप्रदेशैस्तथाभूतमेवायुः प्रकृत्यादिधिशिष्टं पुनर्बध्नात्युदेष्यति च यदि सर्वावधिमरणं । यत्साम्प्र-तमुदेत्यायुर्यथाभूतं भूतमेव बध्नाति देशतो यदि तद्देशावधिमरणं । एतदुक्तं भवति-देशतो सर्वतो वा सादृश्येनावधीकृतेन विशेषितं मरणमवधिमरणमिति । साम्प्रतेन मरणेनासादृश्यभावि यदि मरणमाद्यन्तमरणमुच्यते । आदिशब्देन साम्प्रतं प्राथमिकं मरणमुच्यते, तस्यान्तो विनाशभावो यस्मिन्नुत्तरमरणे तदेतदाद्यन्तमरणमुच्यते । प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशैर्यथाभूतैः साम्प्रतमुपैति मृतिं तथाभूता यदि सर्वतो देशतो वा नोपैति तदाद्यन्तमरणं । बालमरणमुच्यते-स च बालः पञ्चप्रकारोऽव्यक्तबालो व्यग्रहारबालो ज्ञानबालो दर्शनबालश्चारित्रबालः । धर्मार्थकामकार्याणि न वेत्ति न तदाचरणसमर्थशरीरोऽव्यक्तबालः । लोकवेदसमप्यवहारान् न वेत्ति शिशुर्वा व्यग्रहारबालः । मिथ्यादृष्टयो दर्शनबालः । यस्तु याथात्म्यग्राहिज्ञानहीनो ज्ञानबालः । अचारित्राश्चारित्रबालः । दर्श-

नबालमरण द्वित्रिध इच्छाप्रवृत्तमनिच्छाप्रवृत्त चेति । तत्रेच्छाप्रवृत्तमग्निना धूमेन शस्त्रेण विप्रेणोदकन मेरुप्रपातेनोच्छ्वासरोधेन शीतपातनोष्णपातेन रज्ज्वा क्षुधा तृषा जिह्वात्पाटनेन विषदाहारासेनेन च मरणमिच्छामरणं । कालेऽकाले वाऽप्यसानादिना मिना जिजीविषोर्मरणमनिच्छाप्रवृत्त । पंडितमरणमुच्यते पंडितश्चतुर्धा व्यवहारपंडित सम्यक्त्वपंडितो ज्ञान पंडितश्चारित्र्यपंडितश्चेति । लोकत्रेदसमयगतव्यवहारनिपुणो व्यवहार पंडित , अथवानेकशास्त्रज्ञ शुश्रूषादिवुद्धिगुणसमन्वितो व्यवहार पंडित । त्रिभिधान्यतमसम्यक्त्व दर्शनपण्डित । पञ्चविधज्ञान परिणतो ज्ञानपंडित । पञ्चविधचारित्र्यान्यतमचारित्र्यपरिणतश्चारित्र्यपंडित । नरके भवनेषु विमानेषु योतिष्कषु धानव्यन्तरेषु द्वीपसमुद्रेषु च ज्ञानपंडितमरण । मन पर्ययमरण मनुष्यलोक एव मरण । आसन्नमरणमुच्यते-निर्वाणमार्गप्रस्थितसयतसार्थात् प्रच्युत आसन्न उच्यते, तदुपलक्षण पाश्वस्थस्वच्छदकुशालसक्ताना । आदि प्रिया रसेष्वासक्ता दुःखभारव सदा दुःखकातरा कयापपरिणता संज्ञावशगा पापश्रुत्याभ्यासकारिण त्रयोदशक्रियास्वलसा सदा संक्लिष्ट चेतस भक्ते उपकरणे च प्रतिबद्धा निमित्तमत्रौपधयोगोपजीविन गृहस्थवैयावृत्त्यकरा गुणहीना गुतिसमितिष्वनुयता मदसन्ना दशधर्मा अकृतबुद्धय शबलचारित्रा आसन्ना उच्यते । त यद्यते आत्मशुद्धिं कृत्वा- प्रियन्ते तदा प्रशस्तमेव मरण । बालपंडितमरण श्रावकस्य । सशल्य मरण सुगम । पलायमरणमुच्यते-विनयवैयावृत्त्यादायकृतादर प्रशस्त क्रियोद्धहनालस त्रयोदशचारित्र्येषु वीर्यनिगूहनपरो धर्मचि ताया निद्रा घूर्णित इव ध्याननमस्कारादे पलायत पलायमरणं । इन्द्रियवेदनारूपा यनोकपायार्तमरण वशार्तमरणं । अप्रसिद्धऽनञ्ज्ञाते च मरणे विषाण

समरण, विप्राणसमरणमुच्यते—गृध्रपृष्ठमिति सङ्गिते कृते प्रवर्तते ।
दुर्भिक्षे कान्तारे दुरुचरे पूर्वशत्रुभये दुष्टनृपभये स्तेनभये तिर्यगुपसर्गे
एकाकिनः सोढुमशक्ये ब्रह्मव्रतनाशादिचारित्रद्रूपणे च जाते सन्निघ्न पाप
भीरु कर्मणामुदयमुपस्थित ज्ञा वा सोढुमशक्त तन्निस्तरणस्यासत्युपाये
सावयकरणभीरु विराघनमरणभीरुश्च एतस्मिन् करणे जाते कालेऽमु-
ष्मिन् किं भवेत्कुशलमिति गणयता यद्युपसर्गत्रासितोऽहं सयमाद्भ-
व्यामि तत सयमभ्रष्टो दर्शनादपि न वेदनामसङ्गिष्ट सोढु प्रव्रज्या-
मुत्सहे ततो रत्नत्रयाराधनाच्युतिर्ममिति निश्चितमतिनिर्माय चरण-
दर्शनविशुद्ध धृतिमान् ज्ञानसहायोऽनिदानोऽहं दन्तिके आलोचना-
भासाद्य कृतशुद्धिलेख्यप्राणापाननिरोध करोति यत्तद्विष्णोः समरणमुच्यते ।
शस्त्रप्रहणेन यद्वधति तद्गृध्रपृष्ठमित्युच्यते मरणविकल्पसमभवप्रदर्शनमिदं
सर्वत्र कर्तव्यतयोपदिश्यते । भक्तप्रत्याख्यान, प्रायोपगमनमरण, इगिनी-
मरण, केवलमरण चेति । इत्येतान्यवोक्तमानि पूर्वपुरुषैः प्रवर्तितानि
सप्तदशसु मध्ये त्रीण्युत्तमानि सुमरणानि । प्रायोपगमन दर्मासने स्थित
स्वयमुपसर्गं न निवारयति, चेत्कोपि निवारयति तदा नियारयितुं ददाति ।
इगिनीमरणे निवारयितुमपि न ददाति । केवलमरण तीर्थकरणधरा-
नगारकेवलमरण ज्ञातव्यं । एतन्मरणत्रयं सुमरणं हे जीव । त्वं भावय ।

सो णत्थि दब्बसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ ।

जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोपमाणिओ सच्चो ॥ ३३ ॥

स नास्ति द्रव्यधर्मण परमाणुप्रमाणमात्रो निलय ।

यत्र न जातं न मृतं त्रिलोकप्रमाणकं सव ॥

सो णत्थि स नास्ति न विद्यते । णिलओ गृहस्थान । कथ-
भूतो निलय, परमाणुपमाणमेत्तओ परमाणुप्रमाणमात्रं अविभागी

परमाणुर्भावन्त प्रदेश रुणद्धि तन्मात्रोऽपि निव्यो नास्ति । स क
प्रदेश, जत्थ यत्र प्रदेशो । दब्बसवणो द्रव्यदिगम्बर मिध्यादृष्टि
स्तपस्वी । ण जाओ न जातो नोपन्न । ण मओ न मृतो न मरणं
प्राप्त । स निव्य कियान्, तियलोयपमाणो त्रिभुवनेनमपित ।
सब्बो समस्तोऽपि ।

कालमणत्त जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्ख ।

जिणलिंणेण वि पत्तो परपराभावरहिण्ण ॥ ३४ ॥

कालमनन्त जीव जन्मजरामरणपीडित दुःखम् ।

जिनलिङ्गेन अपि प्राप्त परम्पराभावरहितेन ॥

कालमणत्त जीवो काल समयमनहसमिति यावत्, अनन्तमन्त
रहित कर्मतापन्न जीव आत्मा दुःख प्राप्त इति क्रियाकारकसम्बन्ध ।
कालाध्वदशभाषाणां कर्मसङ्गा सिद्धौ वर्तते । कथभूतो जीव, जम्म
जरामरणपीडिओ जन्मजरामरणपीडित चम्पित । जिणलिंणेण
वि अर्हद्रूपविशिष्टोऽपि, अपिशब्दादविशिष्टोऽपि । कथभूतेन
जिनलिंणेन, परपराभावरहिण्ण परम्परा आचार्यप्रवाहस्तदुपदिष्ट
शास्त्रं च परपरा शब्देन लभ्यते तत्र भावरहितेन प्रतीतिवर्जि
तेन मिध्यादृष्टिना जीवतत्पर्य । कासो परपरा ? अस्यामवसर्पिण्यां
तृतीयकालप्रान्त श्रीवृषभनाथेनार्थशास्त्रमुक्त, वृषभसमगणधरेण ग्रन्थ
कृत, तत्परम्परया वीरेण भगवतार्थ प्रकाशित, गौतमेन गणिना
प्रथित, तदनुक्रमण पञ्चमकाले प्रमाणभूतैर्निर्म्बराचार्यारतीरूप-
दिष्ट तच्छास्त्र प्रमाणीकृतव्य विसर्वादिभिर्मिध्यादृष्टिभिः कृत शास्त्रं न
प्रमाणनीय । अथ के त आचार्या य कृतं शास्त्र प्रमाणीक्रियते इत्याह—

श्रीमद्भगवद् श्रीचन्द्रो जिनचन्द्रो महामति ।

गृध्रपिच्छगुरु श्रीमाल्लोहाचार्यो जितेन्द्रियः ॥ १ ॥

एलाचार्यः पूज्यपादः सिंहनन्दी महाकविः ।
 वीरसेनां जिनसेनो गुणनन्दी महातपाः ॥ २ ॥
 समन्तभद्रः श्रीकुम्भः शिवकोटिः शिवकर ।
 शिवायनो विष्णुसेनो गुणभद्रो गुणाधिकः ॥ ३ ॥
 अकलद्भो महाप्राज्ञः सोमदेवो विदांबरः ।
 प्रभाचन्द्रो नेमिचन्द्र इत्यादिमुनिसत्तमैः ॥ ४ ॥
 यच्छास्त्र रचितं नूनं तदेवाश्च्येयमन्यकैः ।
 विस्मयेरचितं नैव प्रमाणं साध्यपि स्फुटं ॥ ५ ॥

पडिदेससमयपुगलआउगपरिणामणामकालट्टं ।
 गहिउज्झियाई बहुसो अणंतभवसायरे जीवं ॥ ३५ ॥

प्रतिदेशसमयपुगलपुगलपरिणामनामकालस्थम् ।

गृहीतोऽज्झितानि बहुश अनन्तभवसायरे जीव । ॥

पडिदेस यानन्त प्रदेशा लोकाकाशस्य वर्तन्ते एकैकं प्रदेशं प्रति
 शरीराणीति पूर्वोक्तमेव प्राप्य गृहीतोऽज्झितानि । तथा प्रतिसमय-समय
 समयं प्रति प्रतिसमयं शरीराणि गृहीतोऽज्झितानि । प्रतिपुद्गलं प्रतिपर-
 माणु-परमाणु परमाणु प्रति प्रतिपरमाणु अनन्तानि शरीराणि
 गृहीतोऽज्झितानि । आउगं प्रत्यायु आयु आयु प्रति प्रत्यायु
 अनन्तानि शरीराणि गृहीतोऽज्झितानि । परिणाम परिणाम
 परिणाम प्रति प्रतिपरिणामं क्रोधमानमायालोभमोहरागद्वेषादिपरि-
 णामान् प्रति प्रतिपरिणामं अनन्तानि शरीराणि गृहीतोऽज्झितानि ।
 णाम नाम नाम प्रति प्रतिनाम प्रतिनाम नपुसकं चेति वचनाद्वाऽदन्तो
 निपातः, यानन्ति नामानि गतिजात्यादीनि वर्तन्ते तावन्ति प्रति अन-
 न्तानि शरीराणि गृहीतोऽज्झितानि । कालट्टं प्रतिकालस्थ उत्सर्पिण्यव-
 सर्पिणीकालस्थं यथा भवत्येव तत्समयाश्च प्रति प्रतिकालस्थं अनन्तानि

शरीराणि गृहीतोऽज्ञितानि । गहिउज्झियाइं बहुसो गृहीतोऽज्ञितानि
बहुशोऽनन्तवारान् । अणंतंभवसायरे जीव अनन्तभवसागरेऽनन्ता-
नन्तसंसारसमुद्रे हे जीव ! हे आत्मनिति । जिनसम्यक्त्वं विनेति भा-
वार्यः जिनसम्यक्त्वभावेन त्वनन्तसंसार उच्छिद्यते स्तोककाटेन मुक्तो
भवति ।

तेयाला तिण्णि सया रज्जुणं लोयखेत्तपरिमाणं ।

मुत्तूणहेपएसा जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो ॥ ३६ ॥

त्रिचत्वारिंशन्प्रीणि क्षतानि रज्जूनां लोकेक्षेत्रपरिमाणं ।

मुक्त्वाऽष्टौ प्रदेशान् यत्र न प्रमितः जीवः ॥

तेयाला तिण्णि सया त्रिचत्वारिंशदधिकत्रिंशतरज्जुचनाकाररज्जूनां
च लोकक्षेत्रपरिमाणं भवति । मुत्तूणहेपएसा मुक्त्वाऽष्टौ प्रदेशान्
भेदकंद गोस्तनाकारेण येऽष्टप्रदेशा वर्तन्ते तन्मध्ये जीवो नोत्पन्नो न मृतः
अन्यत्र सर्वत्र आतो मृतश्चायं जीवः । तेऽष्टौ प्रदेशा निज्जात्मशरीरमध्ये
गृहीतास्तन्मध्ये नोत्पन्न इति वृद्धाः । जत्थ ण दुरुदुल्लिओ जीवो
यनात्मा न पर्वटितः स कोऽपि प्रदेशो नास्ति । “पर परी दुस दुम बुम्
गुम् मुम हंप रूंट तल्यंट भमाड भमड भग्मड चक्कम्म ढंटल्ल
दुदुल्ल टिरिटिल्ल दुरुदुल्ल भवेः” इति प्राकृतव्याकरणसूत्रेण भ्रम्भातोः
दुरुदुल्ल इत्यादिशः । धनपाठकृतदेशीलक्ष्म्यां तु “घोडिय दंदुल्लियाइ
भमियथे” सूत्रं ।

एकेकंगुलियाही छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं ।

अवसेसे य सरीरे रोया मण किन्तिंया मणिया ॥ ३७ ॥

एकेकाङ्गुली व्यापयः पणवतिः भवन्ति जानोहि मनुष्यानाम् ।

अवशेषे च शरीरे रोया मण विद्यन्तो मणिताः ॥

१ पणेष य कोडीओ तह खेव अहमदिलक्षणाणि ।

णपणवदि च सहस्रा पंचमया हानि सुलसीदी ॥ १ ॥

एकेकङ्गुलिवाही एकैकागुलौ व्याधयो रोगाः । छण्णवदी होंति जाण मणुयाणं पण्णवतिर्भवन्ति हे जीव ! त्वं ज्ञानीहि मनुजानां मनुष्याणां शरीरे । अवसेसे य शरीरे अवशेषे च शरीरे एकाङ्गुल्येरुद्धरितादवशिष्टे शरीरे । रोया भण कित्तिया भणिया रोगा व्याधयस्तं भण कथय कियन्तो भणिता इति ।

ते रोया वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्वभवे ।

एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं ॥३८॥

ते रोगा अपि च सकलाः सोढा स्वया परवशेन पूर्वभवे ।

एव सहसे महायशः । किं वा बहुभि लपितं ॥

ते रोया वि य सयला ते रोगा, सकला अपि सर्वेऽपि । सहिया ते परवसेण पुव्वभवे सोढास्वया परवशेन कर्माधीनतया पूर्वभवे पूर्वजन्मान्तरसमूहे । एवं सहसि महाजस एवमुनाप्रकारेण त्व सहसेऽनुभवसि हे महायशः । किं वा बहुएहिं लविएहिं किं वा बहुगिर्लपितैर्जल्पितैः ।

पित्तं तमूत्रफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले ॥

उयरे वसिओसि चिरं नवदसमासेहिं पत्तेहिं ॥ ३९ ॥

पित्तान्त्रमूत्रफेफसकृद्गुधिरखरिसकिमिजाले ।

उदरे वसितोसि चिरं नवदशमन्तैः पूर्णं ॥

पित्तं च मायुः । अत्राणि च परीतति । मूत्रं च प्रस्तावः । फेफसश्च ग्रीहा । कालिज्जय यकृत् “उदर्यो जलाधारो हृदयस्य दक्षिणे यकृत् कालखण्डं ह्योम वामे ग्रीहा पुष्पसन्धेति” वैद्याः । वरहल इति देश्यां । रुहिर रुधिरं च । खरिस खरिसश्च, अपक्वविद्भिन्नरुधिरछेप्मा खरिसः कथ्यते । खउरिय इति देश्यात् । किमि कुम्पयश्च द्वीन्द्रिया जीवास्तेषां जालं समूहो यत्रोदरे तत् पित्तान्त्रमूत्रपुष्पसकालियकरुधिरखरिसयकृमिजालं

तस्मिन् । उदरे वसिओमि चिरं उदरे कुक्षिमय उपितोऽसि निवास
कृतवानसि त्व चिरं दीर्घकाल, अनन्तगर्भप्रहणापेक्षया चिरमिति निशे
पण । नमदसमासेहि पचेहि नमभिर्दशभिर्ना मासे प्राप्ते परिपूर्ण-
जाते तन्मध्ये तदुपरि च कियान् कालो छम्पते प्राप्तशन्देनेति ।

दियसंगद्वियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णंते ।

छदिखरिसाण मज्जे जठरे वमिओसि जणणीण ॥४०॥

द्विजसङ्गस्थितमशनमाह य मानुमुचमप्राप्ते ।

छदिखरिसयोर्मध्ये जठरे उपितोऽसि जन-या ॥

हे जीन ! त्व जनन्या मातु । जठरे उदरे उपितोऽसि निवास चकर्थ ।
कथंभूते जठरे, छदिखरिसाण मज्जे छदिश्च यान्तमन्न, खरिसश्च अप
क दर्दर मलं रुजिरलितं तेषां छदिखरिसाण तयो छदिखरिसयोर्मध्ये
मध्यगिशिष्टे । अथवा जठरे उपितोऽपि कुत्रोपितोऽसि छदिखरिसयो-
र्मध्ये तमुपितोऽसि । किं वृत्त्या पूर्ण, अमणं आहारिय अशनं भोजनं
आहत्य आहार वृत्त्या । कथंभूतमशन, दियसंगद्वियं द्विजानां दन्तानां
अस्थ्यङ्कुराणां संगे स्थित, चरणश्रेण्या मातृमुखे दन्तानां समीपे स्थितं
अस्थिभिः स्पृष्टं उच्छिष्टीकृतं । क उपितोऽसि, मायभुत्तमण्णंते यमात्रा
भुक्तं तस्यान्नस्याते मध्ये उपितोऽसि । अथवा मात्रन्नं भुतं भुक्तं तै-
त्वया । तथा चाक्त—

अन्तर्यामि चदनविचरे क्षुत्तृयात्तं प्रसीच्छन्

कर्मायत्तं सुचिरमुदरावस्थरे वृद्धगृहया ।

निष्पन्दात्मा एमिसहचरो जन्मनि ह्येशमीनो

मन्ये जग्मिन्नपि च मरणात्तन्निमित्ताद्विमेवि ॥ १ ॥

सिमुकाले य अयाणे अमुईमज्झम्मि लोलिओसि तुमं ।

अमुई असिया बहुसो मृणिर वालत्तपत्तेण ॥ ४१ ॥

शिशुकाले च अज्ञाने अशुचिमध्ये लुठितोसि वम् ।

अशुचि अशिता बहुश मुनिवर । बालत्वप्राप्तेन ॥

मिसुकाले य अयाणे गर्भरूपकाळे स्तन धयायसरऽज्ञान निर्निवेक ।
असुई मज्झाम्मि लोलिओसि तुम अशुचिमध्ये त्रिष्टामध्ये मूत्रमध्ये
लोलिता लुठितस्त्व भवान् । असुई असिया बहुसो अशुचिर्विष्टा
अमध्यमशिता भक्षिता बहुशोऽनेकवारान् । मुनिवर बालत्तपत्तेण
ह मुनिवर ! यत्तिवराणां ज्ञानिना मध्य श्रेष्ठ ! परमप्रशस्य ! बालत्वप्राप्तेन
अव्यक्तबालत्व गतन । तथा चाक्त—

बाल्ये यत्ति न किंचिदप्यपरिपूर्णाद्भो दित वाहिन ।

कामान्ध खलु कामिनीदुमघने भ्राश्यन् घने यौघने ।

मध्ये वृद्धतृपाजितु यसु पशु क्लिशासि कृष्णादिभि-

र्वाधेक्येऽर्धमृत क जमफलित धर्मो भवन्निर्मल ॥१॥

मसहिमुक्कसोणियपित्ततसवत्तकुणिमदुग्गध ।

खरिसवमपूयसिब्भिसमरिय चित्तिह देहकुट ॥ ४२ ॥

मांसास्थिशुक्रश्रोणितपित्तान्त्रयवत्कुणिमदुग्धं भम् ।

खरिसवसापूयकिन्विपभरित िन्त्य देहकुटम् ।

हे जीन ! शुद्धबुद्धैकस्वभावा आमन् । त्व देहकुट कायकुट शरीर
घट । चित्तेहि चित्तय विचारय पर्यालोचयस्व । कथभूत देहकुट,
मसेयादि मास च पिशित, अस्थीनि च हड्डानि, शुक्र च सप्तमौ
धातु स्त्रीज वीर्य चति यावत्, शोणित रधिर-रक्तं लहितमिति यावत्,
पित्त च उष्णविकारो मायुरिति, अंत्राणि च पुरीतति, एते त्ववद्भूत
कुणिम शान्तिमृतकं तद्देहदुर्गधमसुरानि । पुन कथभूत देहकुट त्व
चिन्तय, खरिसव अपक्वमलरधिरमिश्रित द्रव्य । वसा च वया भद
इति यावत् शुद्धमासस्वेद इत्यर्थ । पूय च विनष्टरधिर । वूइ इति पाठेऽ-
पवित्र । किलिप च कम्पल एतैर्भरित शूरित ।

भावविमुक्तो मुक्तो ण य मुक्तो बंधवाइमित्तेण ।

इय भाविउण उज्झसु गंधं अब्भन्तर धीर ॥ ४३ ॥

भावविमुक्तो मुक्त न च मुक्त बाधवादिमात्रेण ।

इति भावयित्वा उज्झस्य गन्धमभ्यन्तरं धीर ॥

भावविमुक्तो मुक्तो बाधवादीनां प्रेमलक्षणेन भावेन विमुक्तो रहिता मुनिर्विमुक्त कथ्यते । ण य मुक्तो बंधवाइमित्तेण न च नैव मुक्तो यतिरुच्यते, कीदृशः ? बाधवादिबुद्धिदुष्प्रेण मुक्तस्त्यक्तो मुक्त उच्यते बान्धवादिमात्रेण मुक्तो मुनिर्नोच्यते, किं तर्हि उच्यते—गृहस्थ एवोच्यते इति भाग्यार्थः । इय भाविउण उज्झसु इतीदृशमर्थं भावयित्वा सम्यग्निश्चार्य उज्झसु—परित्यज परिहर । क, गंधं परिमल वासना भावना । कथंभूत गंध, अभ्यन्तरं मनसि स्थित बाधवादिस्नेहः । हे धीर ! हे योगीश्वर ! ध्येयं प्रति धिय बुद्धिमीरयति प्रेरयतीति धीर इति व्युपपत्तेः ।

देहादिचत्तसङ्गो माणकसाएण कलुसिओ धीर ।

अत्तावणेण जादो बाहुवली किच्चियं काल ॥ ४४ ॥

देहादिचत्तसङ्गः मानकसायेन कलुषितो धीरः ।

आतापनेन आतो बाहुवलिं कियत्तं कालम् ॥

देहादिचत्तसङ्गो देह शरीर, आदिशब्दादस्त्यश्वरथपादातिसङ्गः पुत्रकलत्रादिवर्गश्च लभ्यते तस्मात्तत्तसङ्गो निष्परिमहः । माणकसाएण कलुसिओ धीरः सज्जगमानेनेषकपायेण कलुषितो मलिनित हे धीर ! अत्तावणेण जादो आतापनेन योगेन उद्भवायोसर्गेण । बाहुवली किच्चियं कालं श्रीबाहुवलिस्वामी कियत्तं कालं वर्षपर्यन्तं कालं कलुषित इति सम्बन्धः । तथा चोक्तः—

चक्रं विहाय निजद्रक्षिणबाहुसंस्थं

यत्प्राव्रजधनु तदेव स तेन मुंचेत् ।

क्लेशं किलाप स हि बाहुवली चिराय

मानो मनामपि हर्ति महर्तो करोति ॥ १ ॥

महुरपिगो णाम मुणी देहाहारादिचत्तवावारो ।

सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय ॥ ४५ ॥

मधुपिगो नाम मुनिः देहाहारादित्यक्तव्यापार ।

भ्रमणत्वं न प्राप्त निदानमात्रेण भव्यनुम । ॥

महुरपिगो णाम मुणी मधुपिगो नाम मुनि । देहाहारादिचत्त-
वावारो शरीराहारादित्यक्तव्यापारः । सवणत्तणं ण पत्तो श्रवणत्वं
दिगम्बरत्वं न प्राप्तः द्रव्यलिङ्गी बभूवेत्यर्थः । णियाणमित्तेण भविय-
णुय निदानमात्रेण सगर सकुटुम्बं क्षयं नेष्यामीति निदानमात्रेणति हे
भविक्तनुत । भव्यजीरस्तुतमुने । इयं कथा महापुराणादिषु निश्चिता वर्तते ।
तथा हि । अयेह भरतक्षेत्रे चारणयुगलनगरे राजा सुयाधन , राज्ञी
भूतिधि , सुता सुलसा । तस्याः स्वयंवरे सर्वत्र दूता गता । सर्वे
नृपा चारणयुगले पुरे मिलिताः । अयोध्यापतिस्तत्र सगर आगन्तुमुद्यम
चकार । पश्चात्स्नाने सति तैलोपलेपिना सगरेण राज्ञा पलित केश
दृष्ट्वा तत्र गर्भेने निरक्तेन बभूवे । तत्रावसरे मन्दोदरी धात्रा राजान-
मुवाच । देव ! नम्रं पलितमिदं तत्रापूर्वद्रव्यलाभ वदति । तत्रैव विश्वभू-
मन्त्री कथयति । हे राजन् ! सुलसा परनृपान् मुक्त्वा त्वामेव वरयिष्यति
तथाहं कुशलं या करिष्यामि । सच्छ्रुत्वा हर्षेण राजा तत्र चतुरङ्गसैन्येन
चचाळ । तत्र वेपुचिदिरसेषु गतेषु मन्दोदरी सुलसान्तिकं गत्वा हे
पुत्रि ! कुलरूपसौन्दर्यविक्रमनयनिनयविभवधुसम्पदादयो ये गुणा वरे

१ मनसि विरक्तेन इति ख पुस्तके । २ इत्ये, इति ख. पुस्तके । ३ कुल-
रूपं इति क. पुस्तके ।

स्यास्य किं नामकस्य किं कुल को भाग प्राप्ते कस्य का गतिर्भविष्यती-
त्युक्ते एक प्राह—अस्मत्समीपगो वसु, राज्ञ सुत, तीव्ररागादिदूषित,
हिंसाधर्मं विनिश्चिन्य नारको भारी । द्वितीयो मुनि प्राह—मध्यस्थितो
परंत, द्विजपुत्र, दुर्बुद्धि क्रूर, महाकालोपदेशादर्धरण पापशास्त्रं पठित्वा
दुर्मार्गदेशको हिंसेव धर्म इति रौद्रध्यानपरायणो बहून् नरके प्रेक्ष्य
स्थयमपि नरकं यास्यति । तृतीयो मुनिस्त्राच—एष पश्चात्स्थितो नारद,
द्विज, धीमान्, धर्मध्यानपरायणोऽहिंसा लक्षण धर्म श्रितानां व्याकु-
र्वाणो भारी गिरितटाख्यपुरस्य स्वामी भूत्वा दीक्षि वा सर्वार्थसिद्धिं यास्यति ।
तमुनिप्रयोक्त श्रुतधर श्रुत्वा साधु पठित निमित्तं भवद्विरिति तृष्णाव ।
क्षीरकदम्ब उपाध्याय समीपतरतरसमाग्रपस्तदाकर्ण्य तदेतद्विधिचेष्टि-
तमशुभ धिगिति मणित्वा किमत्र मया क्रियते इति विचिंत्य तत्र-
स्थित एव मुनानभिवन्द्य वैमर्शेन शिष्ये सह नगरं प्रविशेत् । तदन-
न्तरमेकत्रयेण शास्त्रेण बालत्वे पूर्णं जाते विश्वामसुरसत्रे राज्यं दत्त्वा
दीक्षां जग्राह । वसुर्निष्कण्टकाय कुर्त्तुमेकदा वनं क्रीडितुं गतः । तत्रा-
काशे उड्डीयमाना पक्षिणः स्खलित्वा पतितान् दृष्ट्वा चिन्तयामास ।
आकाशे उड्डीयमाना यत्पक्षिणः पतन्ति तत्र किमपि कारणं भविष्य-
तीति तस्मिन् प्रदेशे वाणं मुमोच । सोऽपि तत्र स्खलितः,
तत्र स्वयं जगाम सारथिना सह तत्र पस्पर्श । आकाशस्फटि-
कस्तमं विज्ञाय परैरनिदितं तमानयामास । तस्य पादचतुष्टयं पृथु-
निर्माप्य तस्मिन्सिंहासनमाख्या नृपादिभिः सेव्यमानं सत्यमाहाम्यात् खे-
सिंहासने स्थितो वसुरिति तस्मिन्मानेन लोकेन घोषितोऽनेति तस्यौ ।
एवमस्य काले गच्छति परंतनारदानेकदा समित्युग्रार्थं वनं गतौ । तत्र
नदीतटे मयूरा जलं पीत्वा गतास्तमार्गदर्शनान्नागद प्राह—ये मयूरा
पानाय पीत्वा गतास्तेष्वेको मयूरः सप्तमयूर्यो वर्तते । तच्छ्रुत्वा परंत

प्राह—मृपा वार्तासौ । मनस्यसहमानः पणितबन्धनं बबन्ध । तत्र
 किञ्चिदन्तरे गत्वा नारदोक्तं सद्भुतं ज्ञात्वा विस्मित्याग्रे गत्वा करेणुमार्गे
 ददर्श । १ ते दृष्ट्वा नारद उवाच—एषा हस्तिनी गता, सा वामलोचने-
 नान्धा, तामारूढा गर्भिणी स्त्री, पद्मम्बरसहिता, अद्य पुत्रमजीजनत् ।
 अन्धसर्पविलप्रवेशवत् पूर्वोक्तं तव वचनं यादृच्छिकं सत्यमभूत्, इदं तु
 मिथ्या मयाऽभिहितं किमस्तीति स्मित्वा स सासूर्य विस्मयं चित्ते प्राप्य
 तदसत्यं कर्तुं हस्तिनीमनुगतः पुरं प्रविवेश । नारदोक्तं तथैव ददर्श ।
 गृहमेत्य पर्यतो मातुरग्रे जगाद । किं जगाद ? मातः । मे पिता यया
 नारदं शिक्षितवौस्तथा मां नापीपठत्, अस्य चेतसि नारदो वर्तते नाह-
 मिति । तेन वचनेन विप्राया हृदयं विदारितं । पापोदयाद्विपरीतं तथा
 विचारितं । शोकं च ब्राह्मणी चकार । क्षीरकदम्बस्तु स्नात्वा अग्नि-
 होत्रादिकं कृत्वा भुक्त्वा च स्थितः । तं प्रति ब्राह्मण्युवाच—स्वया पुत्रो
 न शिक्षितः, लोको ध्युत्पादितः । क्षीरकदम्ब उवाच—प्रिये !
 अहं निर्विशेषोपदेशः पुरुषं पुरुषं प्रति ददामि मतपस्तु भिन्नाः
 सन्ति । तेन नारदो कुशलो बभूव । प्रिये ! त्वत्पुत्रः स्वभावेन
 मन्दो नारदेऽसूयते किं क्रियते । इत्युक्त्वा स्त्रिया विश्वासमुत्पादयितुं
 पर्वतसमीपे नारदं पप्रच्छ । हे नारद ! त्वं वने आभ्यन् केन
 कारणेन पर्वतस्य बहुत्रिस्मयं कारितवान् । नारद उवाच—स्वाभिन् ।
 पर्वतेन सह वनं गच्छन् नर्मकथापरः पीतनारां मयूरीणां संघो
 नद्या निर्वर्तते सचन्द्रककलापाग्न्युमध्यमजनगौरवात् भीत्या व्यावृण्व
 विमुखं कृतपथापदस्थितिः शिखी च गतयानेकः । शेषास्त्री-
 पञ्जलार्दिताः पत्रभागं निघ्न्य अगुः । तं दृष्ट्वाहमुक्तयान्—पुमानेकः शेषाः

१ तद् क. २ अभूत् ख. । ३ वने. ख. । ४ मयूरीणा ख. । ५ संघो.
 ख. । ६ नद्यातिवर्तते ख. ।

स्त्रिय इत्यनुमानात् । ततो वनान्तरात्कश्चिदागत्य पुरसमीपे करिण्यारूढः
 स्त्रियं नयन् पुरं प्रति पश्चिमपादाम्ना प्रयाणके स्वमूत्रघट्टनात् करिणीं
 मकथय । दक्षिणे भागे तस्वीरुद्धगेन वामलोचनेऽन्धां जगाद । मार्गा-
 त्प्रच्युत्य श्रमादारूढयोपित शीतच्छायाभिलाषेण पुलिनस्थले मुक्ताया
 चदरस्पर्शमार्गेण गुल्मलप्रदशया स्त्रियं त्रिवेदं । करेणुश्रितमार्गे गृहोद्य-
 त्सितकेतुदर्शनेन पुत्रजन्मोक्तवान् । तच्छ्रुत्वा विप्रो निजापराधाभाव
 भार्याया अकथयत् । तदा पर्वतमाता प्रसन्ना जाता । प्रिये ! मुनिना
 भाषितं यत्पर्वतो नरकं यास्यति । तत्प्रतीत्यर्थं भार्या स्वयं च एकान्ते
 गत्वा पिष्टेन द्वौ बस्तौ निर्माय पुत्रच्छात्रभावपरांक्षणार्थं द्विजोत्तम एक
 पुत्राय द्वितीय छात्राय ददौ । परादृश्यप्रदेशे गत्वा गन्धपुष्पमंगलैरर्चित्वा
 कर्णच्छेदं कृत्वा एतावद्यौवानयत युवा । तत्र पर्वतः पापी अस्मिन् बने
 न कोऽपि वर्तते इति कर्णौ छेदयित्वा पितरमागत्य पूजय । यथा स्वयोक्तं
 मया तथैव कृतमित्यवदत् । नारदस्तु वनं गत्वा विचारयति गुरुणोक्त-
 मदृश्यप्रदेशोऽस्य कर्णौ छेदनीयाविति । चन्द्रं पश्यति । रश्मिर्निरीक्षते ।
 मक्षत्राणि त्रिलोकन्ते । प्रहास्तारकाश्च पश्यन्ति । देवता निरीक्षन्ते ।
 सन्निहिता पक्षिणो मृगजातयश्च निपेक्षु न शक्यन्ते इति विचार्य कर्ण-
 योश्छेदमकृत्वा गुरुसमीपमागतो नारदः । यतोऽयं भव्यात्मा बनेऽदृष्टदे-
 शस्यासंभवात्, नामस्थापनाद्रव्यभावानां निचारचतुर पापापहृयाति-
 कारणक्रियाणामकर्तव्यत्वादहमिमं छागं विच्छिन्नावययं माकार्य-
 मित्युवाच । तच्छ्रुत्वा क्षीरकदम्बः स्वपुनस्य जडत्वमात्रं ज्ञात्वा
 विचारयामास । यन्मिथ्यादृष्ट्यैकातेन नुवन्ति कारणात्कार्यसिद्धि-
 रिति तदसत्यं अत्र कारणं गुरु कार्यं शिष्यनुद्धवुत्कर्षं तत्प्रेकान्तेन

न भवति यतो मयि पाठ्यत्यपि मत्पुत्रो जड इति तेन धिगेकात्त मत
तत्त्वमतमेव । कारणानुगत कार्य कचिद्भवत्येव कचिन्न भवत्येवेत्यने-
कात्तमत सत्यमित्यनेकशस्तुष्टाव । नारदस्य योग्यत्व ज्ञात्वा नारद ।
त्वमेव सूक्ष्मबुद्धिर्व्यर्थार्थज्ञाता । अद्यप्रभृत्युपाध्यायपदे त्वं मया स्थापित ।
सर्वशास्त्राणि त्वया व्याकर्तव्यानि इति त प्रपूज्य प्रार्थयत् । धीमता
सर्वत्र गुणैरेव प्रीति । निजस-मुखं स्थित पुत्र जगाद—त्वं विवेकमत
रणैव एतद्विरूपक चरन्, शास्त्रादपि तव कार्याकार्यविवेको नास्ति,
मच्चक्षु परोक्षे त्व अरे कथ जीविष्यसि मूर्ख ।। एव शौकेन दत्तशिक्षो
नारदे बद्धवैरो बभूव । कुधियामीदृशी गतिर्भवति । उपाध्यायस्त्वेकदा
गृहादिक त्यजन् वसु गत्वोवाच—पर्वतस्तमाता च द्वावपि म दवियौ
तथापि मत्परोक्षे त्वया सर्वथा भद्र । पालनीपाविति । वसुरुवाच—हे
पूज्यपाद ! भवदनुग्रहादह प्रीतोऽस्मि । एतदनुक्तमेव सिद्ध । अस्मिन्
कार्ये ममेदं किं वक्तव्य । अत्र सन्देहो न कर्तव्य । यथोचित पर-
लोकं कर्तुमर्हति भवान् । इति मनोहरकथाम्भानमालया द्विजोत्तमं नृप
भानर्च । क्षीरकदम्ब उपाध्यायस्तु सम्बन्धनयम प्राप्य स यास कृत्वो
त्तमं स्वर्गलोकमराप । पर्वतस्तु पितृस्थानमप्यास्य विश्वदिक्शिक्षाणा
व्याकर्तुं रतिं चकार । तस्मिन्नेव नगरे नारदो विद्वज्जनान्वित सूक्ष्म
बुद्धिर्विहितस्थाने व्याख्याया यज्ञो बभार । एव तयो काले गच्छति
सत्येकदा निद्रासभाया “अर्जैर्यष्टव्यमिति” वाक्यस्यार्थप्ररूपणे महान् वि
वादो बभूव । नारद प्राह—अकुरशक्तिरहितं यवबीज त्रिवर्षस्थ अज
मिति कथ्यते तद्विकारेण बहिमुखे देवार्चन निद्रासो यज्ञ वदति ।
पर्वत उप यसति स्म—अजशब्देन यशुभेदस्तद्विकारेण हिरण्यरेतसि
होत्र यज्ञो विधीयते । इति तयो सुधाप्रण्योरप-यास श्रुत्वा ब्राह्मण
मुल्या साधव प्राहु प्राणिभवाद्धर्मो न भवति । नारदे मसरि-

त्वात् पर्वतोऽवन्यामघर्मे प्रवर्तयितुं दुरामोपन्यास्यत् । पतितोऽ-
यमयोग्य सहसंभाषणादिषु, इयुक्त्वा चपेटाभिस्ताडित निर्भ-
सितोऽयं पापात्मा लोके घोषितः । दुर्बुद्धे फलमत्रैवदशं भवति ।
एवं सर्वरूपि बहिष्कृतो मानभंगाद्धनं जगाम । तत्र ब्राह्मणवेषण-
कृता तारोहणासन्नसोपानपदवीभिः बलीरद्रहता अधचभुषेव
मुहुः स्वलता विरलेन सितेन मूर्धजेन तप्तं राजतं शिरस्त्राणं समीपयम-
जाङ्गयादिव दधता जराङ्गनासमासन्नमुखनेत्र मीलचभुषा चलच्छिन्नकोण-
करिणैश्च कुपितसर्पेणैव तर्ष्यद्गासिना राजरत्नभेनेवाऽप्रतो ह्युत्तं पश्यता
भग्नपृष्ठेन अपटुजल्पितेन असमेन योग्यदण्डेन राजश्च त्रिगुणीकृतमुपवीनं
धारयता विश्वमूढपमुलसासु निजं बद्धक्रोधं यत्कुमित्र स्वाभिमतारंभसिद्धि-
गर्भेपिणा पर्यत ययन् पर्यतो महाकाळामुरेण दृष्ट सन् तमभिगम्यानस्य
चाभिशादनमस्यधात् । महाकाळस्तं समादरास्य सादरं तत्र रसस्पर्शितु-
याच । तमविज्ञातपूर्वत्वाप्राह त्वं कुतस्या वने पर्यटनं कस्मादिति । पर्यतस्तु
निजवृत्तान्तमादित प्राह । तच्छ्रुत्वा महाकाळश्चित्तयामास । मम शत्रु-
सगरं निर्बन्दीकर्तुं समर्थ एव स्यात् । भो पर्यत ! तत्र पिता स्थण्डिल-
अह निष्पुरुषमस्यु । एतौ द्वारपि भोमोपाध्यायाशीश्वौ शास्त्राभ्यासम-
कारिपाता । त्वपिता मम धर्मभाता तमहं दृष्टुमागत ममागमनं
त्यक्तर्गदुजातं । पुत्र पर्यत ! मा त्वं भैषी तत्र शत्रुप्रेष्यसेऽहं सहायो
भविष्यामि । इति क्षीरवदम्बपुत्रार्थस्यानुगता अपर्ययनना पाटि-
सहस्रप्रमिता पृथग् ऋचो वेदरहस्यानति स्वमुपाय परतमप्याय-
शान्तिपुण्यभिचारा मयिष्या श्रुतमन्त्रपौर्णिगता पयनापेताम्रिगता-
समा इष्टे ऋमुपादयिष्यन्ति, पशुहिसात्रयुगा मय इति । तत्र

साकेतपुरमध्यास्य शान्तिकादिफलप्रदं हिंसायागं समारम्भ्य प्रभावं वयं
कुर्महे । इति पर्वतमुक्त्वा वैरिविनाशार्थं निजतीव्रदैत्यान् सगरराष्ट्रस्य बाधां
ज्वरादिभिर्व्यूयं कुरुष्वमिति शंप्रेष्य पर्वतेन युतः साकेत महाकालासुरो
गतः । पर्वतो मंत्रगर्भिताशीव्रदिनालोक्य सगरस्य स्वप्रभावं प्रकाशितवान् ।
हे राजन् ! त्वदेशप्राप्तं विषममशिव अहं मुमित्रेण यज्ञेन लघु
शोषयिष्यामि ।

“ यक्षार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयंभुवा ।

पक्षो हि दृष्ट्यै सर्वेषां तस्माद्यज्ञे चघ्नोऽघघ्नः ॥”

इति कारणात् स्वर्गमहासुखसाधनं पुण्यमेव भविष्यतीति पापी
प्रत्याप्य तं जगाद । हे राजन् ! यागसिद्धयर्थं पशूनां पष्टिसहस्राणि
तद्योग्यमन्यद्दग्न्य च संगृहाण । सगरोऽपि सर्वं मेळयित्वा तस्मै समर्पि-
तवान् । पर्वतो याग प्रारभ्य पशून्भिमंत्रयामास । महाकालासुरस्तान्
यपट्कृतान् शरीरेण सह स्वर्गं गतोऽयं स्वर्गं गतोऽयमिति विमानारुढा-
नाकाशे नीयमानान् दर्शयामास । देशस्याशिवोपसर्गं तदैव निराचकार ।
तद् दृष्ट्वा मुग्धाः प्राणिनस्तद्रचनया मोहिताः सन्तः स्वर्गगतये स्पृहयन्तो
यागमृतिं भृशमाचकाक्षुः । सुमित्रयज्ञानसाने जात्यश्वमेकं विधिपूर्वकं
हुतवान्, राजाज्ञया सुलसा च खलो वपट्चकार । प्रियकान्तावियोग-
दुःखदावानलज्वालाभिः प्लुष्टकायो राजा नगरं प्रविष्टः, शय्योपरि शरीरं
निचिक्षेप । प्राणिर्हिसन महदिदं वृत्तं किमयं धर्मः किमधर्मः इति संश-
यानः स्थितः । अन्यस्मिन्नहनि यतिवरनामानं मुनिमाभिवन्द्य विज्ञप्तवान् ।
भट्टारक ! मयारब्धं कर्म पुण्यं पापं वा सम्पक्कथय । यतिवरः प्राह—
धर्मशास्त्रबाधमिदं कर्म कर्तारं सप्तमं नरकं प्रापयेत् । स्वामिन्नस्ति

तत्राभिज्ञानं । मुनिराह—राजन् सप्तमे दिने तव मस्तकेऽशनि पति-
 ष्यति इत्यभिज्ञानेन त्वं सप्तमे नरकं यास्यसि । तदाकर्ण्य राजा भीत्या
 पर्यताप निवेदयामास । परंतु ग्राह—राजन्सौ नम्र क्षणाय किं
 वेत्ति तथापि यदि तव शका वर्तते तदत्र शांतिर्विधीयते इति वचनैस्तस्य
 मनः सन्धार्य शिथिलीचकार । पुनः मुनिर्ममैव यज्ञं प्रारब्धवान् । सप्त
 सप्तमे दिने पापामुरस्य मायया मुलसा आकाशे स्थिता दग्धं प्राप्ता
 पूर्वपथेप्रेसरी यागमृत्युफलैर्नैवा मया देवगतिर्लब्धा । तं प्रमोदं तर निम्न-
 पयितुमहं विमानेनागता । तत्र यज्ञेन देवाः पितरश्च प्रीणिता इत्यभाषत ।
 तद्वचनात्प्रत्यक्षं यागमृत्युफलं दृष्टं, जैनमुनेर्गोत्रमसंयं जातं । तदनु
 राजा तीव्रेण हिसानुरागेण सद्धर्मद्वयेण संघातदुष्परिणामेन मूलोत्तरि
 कस्वितान् संप्राप्योभयसमुत्कृष्टदुष्टसंश्लेषसाधनात् नरकायुराचष्टकर्मस्थो-
 चितस्थिते अनुभागवधनिकाचितरचने सति भीषणाशानिर्मयेण
 कालामुरे तमस्तके पतिते सति यागकर्मासतनिषिन्नप्राणिभिः सह
 सगरः सप्तमे नरके पपात । स कालामुरस्तद्वशेन महाक्रोधस्तं दण्ड-
 यितुं तृतीयनरकपर्यंतं पृष्ठतो जगाम । तमदृष्ट्वा साकेतमागतः । विश्व-
 भूषभृतिरैरिवर्गमारणार्थं निशूकं मुलसासंयुक्तं सगरं विमानमागच्छं
 व्योमि दर्शयामास । परंतुप्रसादेन यज्ञपुण्येनाहं स्वर्गं गतं मुग्धं प्राप्त-
 वानिति प्रसादीतः । सगरपरोक्षे विश्वभूषभिवो राजा जायते । महामेये
 उद्यमं चकार । महाकालामुरेण विमानगता दवाः पितरश्चाकाशे सर्वेणो-
 व्यक्तं दर्शिताः । ते उचुः—भो विश्वभूषय महामेव ह्यत्र पुत्रपत्न्या
 त्वत्प्रसादेन ययं सर्वेऽपि वपुर्हताः स्वर्गमुपे प्रणा इति स्तुतिं चमू ।
 नरदस्तापसाश्च तच्छ्रुत्वा नेन दुःखमना एव दुर्भागोऽपिहो लोभस्य

वधाद्धर्मो वर्तते नान्यत्रेति चेन्न वधस्य दुःखप्रत्यपत्वे उभयत्र सादृश्यात्
 फलेनापि सदृशेन मान्य । अथ त्वं एवं वक्षि, पशूनां सृष्टिः स्वयमुवा-
 यज्ञार्थं कृता तन्न, अन्यथा विनियोगस्यागच्छमानत्वात् । अयमागमोऽ-
 तिमुग्धाभिलापः विदुषा गर्हितः । यद्यदर्शं सृष्टं ततोऽन्यत्र विनियोगेऽ-
 र्थकृत् कथं स्यात् । स्वेष्मादिशमनौषधं ततोऽन्यत्र वधमुपयोगि-
 स्यात् । क्रयविक्रयादौ हलानोभारवाहनादौ महादोषः स्यात् । दुर्बलं त्वां
 वादिनं दृष्ट्वा सः सुखमागत्य ब्रूमः । यथा शस्त्रादिभिः प्राणिघाती पा-
 पेन बध्यते तथा मन्त्रादिनापि घातदृष्ट्यापेन बध्यते एवाविशयत्वात् ।
 ईहो परितः ! पद्मादिलक्षणाः सृष्टिर्न्यस्यतेऽथवा क्रियते ? चेन्नियते
 तर्हि लघुपुण्यादिकमप्यभिद्यमानं कथं न क्रियते । अथ विद्यमानेन सृष्टि-
 र्यज्ञार्थं न्यस्यते तर्हि पूर्ववचनं फलप्रतिपादकमनर्थकं स्यात् प्रदीप-
 ज्वलनमेव घटादेः पूर्वमन्धकारप्रगल्भकं यत् । अनाकृतस्यैव व्यक्ति-
 क्रियते इति चेत्तर्हि सृष्टिवाशे भवद्भिः पूर्वं त्रियतां । इति नारदेन
 कृतमुपन्यासमाकर्ष्य सर्वेऽपि ममास्तारास्तं तुष्टुः । अथ सम्पा ऊचुः -
 इयोरिवादो यमुना चेष्टेयते तर्हि त एव अभिगम्यतां । इति
 श्रुत्वा ताम्यां नारदपर्वताभ्यां सर्वापि संसत् स्वस्तिपावतीमुद्यच्छात ।
 तत्र पर्वतः सर्ववृत्तान्तं स्वमात्रे निवेदयामास । सा तन मुता यमु ददर्श ।
 पुत्रं पत्नी । परितोऽपरिणीतः । सपोयता गुग्गुणापि तवायमर्पिणः ।
 नारदेन सह तव प्रयत्ने वादो भविष्यति, तत्र यद्यस्य भोगो भविष्यति
 तदास्य यमगृहप्रवेशो भविष्यतीति निधिनु । अस्य शरणमपो न वर्तते ।
 यमुखाच । मातः ! गुरुशुश्रूषकोऽहं वर्ते । “गुरुवद्गुरुपुत्रं गुरुफलं
 च पश्यन्” इत्यहं नीतिज्ञोऽस्य जयं करिष्यामि । त्वं मेदीर्मा । अथान्ये-
 युक्ते तथापि सिंहासनमागच्छ यमु ददद्गुः । तत्र विश्वभूप्रभृतयः

संप्रपद्युः । हे राजन् ! त्वत्तः पूर्वमपि अहिंसाधर्मरक्षणे तत्परा अत्र
चत्वारो राजानो हिमगिरिमहागिरिसमगिरिवमुगिरिनामानो हरिवंशजाः
पुरा च संजाताः । तत्रैव वंशे विश्वावसुमहाराजः संजातः । ततश्च
भवान् संबभूव । तत्राहिंसाधर्मरक्षित्वे किमुच्यते । त्वमेव सात्यवादीति
प्रघोषस्त्रिभुवने वर्तते । वस्तुसंदेहे त्वं विषवत् बन्धवत् तुलावत् वर्तसे ।
प्रत्ययोपादी त्वमेव तेनात्माकं प्रभो ! संशयं छिद्धि । नारदः खल्व-
हिंसालक्षणं धर्मं पक्षं कक्षीचकार । पर्वतस्तु तद्विपरीतमाचिक्षेप । तत्क-
थयतु भवानुपध्यायस्योपदेशमित्यभ्यर्थितः । गुरुपत्न्या पुरा प्रार्थित उपा-
ध्यायोपदेशं जानन्नपि राजा महाकालोत्पादितमहोमोहो दुःपमकालनि-
कटवर्तिवात् विषयसरक्षणानन्दनामरोद्रध्यानतत्परः पर्वतोक्तं तत्त्वं
वर्तते । प्रत्यक्षे वस्तुन्यनुपपन्नता का । पर्वतोक्तयागेन सर्व्वीकः
सगरः स्वर्गमवाप । अवलन्ते प्रदीपं कोऽन्यो दीपो यस्ते प्रकाशयेत् ।
तेन पर्वतोक्तं यज्ञं स्वर्गसाधनं भवेत्यक्त्वा मूषं कुरुष्व । इति
हिंसावृत्तानन्दबद्धनारकासुर्मिध्यापापादपवादाच्चाभीरुर्जगाद । तदा ब्र-
ह्माण्डं स्फुटितमिवाकाशे ध्वनिः संजातः, आकाशं खल्वित्याक्रोशं
चकार च । किमाक्रोशयदाकाशं अहो नारद ! अहो तापसाः ! पृथिवी-
पतेर्मुखादीदृशमपूर्वं घोरं वचनं संजातमिति । नद्यः प्रतिकूलजलस्तवः
संजाताः । सरासि सद्यः शुष्काणि । रधिरवर्षणमनारतं बभूव । सूर्याशयो
मन्दाः संजाताः । सर्वा दिशो मलीमसाः सम्पद्यन्ते स्म । मयविह्वलाः
प्राणिनः कम्पं दधुः । तदा भूमिर्द्विधा मार्त्तं गता । तस्मिन् महारन्ध्रे
वसोः सिंहासनं ममज्ज । आकाशे स्थिता देवविद्याधरेशा इत्युचुः—अहो
वस्तुनरेन्द्र महाबुद्धे ! धर्मविघ्नसने मार्गे मा त्वमीदृशं वादीरित्यघोषयन् ।
सिंहासने निमग्नो सति पर्वतो वसुधं परिम्लानमुखौ बभूवतुः । तौ

तादृशौ निरीक्ष्य महाकालस्य किंकरास्तापसाकारं गृहीत्वा समूचु - हे
 पर्वत ! हे वसो ! युवा भीतिं मा कार्षामित्युक्त्वा स्वयमुत्थापित सिंहा-
 सनं दर्शयामासु । तत्र स्थितो वसुर्वाच । अह तत्प्रभित् कथं त्रिभेभि
 पर्वतस्य सत्यवचने जानन्निति व्रणाण कण्ठपर्यन्त निमग्नवान् । तद् दृष्ट्वा
 साधनो जगदु । अनेन मिथ्यावादेन भूपतेरियमवस्था सजाता । हे
 राजन् ! अद्यापि मिथ्यामार्गं त्यजेति साधुभि प्रार्थितोऽपि तथापि
 मूर्खो यज्ञमेव सन्मार्गं कथितवान् । भूम्या कुपितया सर्वाङ्गोऽपि निगूर्ण
 सप्तमं नरक जगाम । तदा कालासुरो लोकप्रत्ययनिमित्त गगने स्थितं
 सगरवसुर्लपद्वय दिव्य दर्शयामास । आवा यागश्रद्धया दिवमनापोव
 यूय नारदस्य वचनं मा मानयतेति प्रोच्य अन्तर्दधौ कालासुर । अप
 शौकाध्वर्ययुक्तेन जनेन वसु स्वर्गं गतो न हि न हि नरक गत इति विसं-
 वदमानेन सह विश्वभू प्रयागं गत्वा राजसूयविधिं विदधे । महापुराधि-
 पप्रमुखा लोकस्य मूढस्य निन्दन्त परमेश्वरनिर्दिष्टमार्गं मनाक् स्थिता
 स्तस्थु । नारदेन धर्ममर्यादां रक्षितेति त प्रशस्य गिरितटनान्नीं पुर तस्य
 ददु । तापसास्तु दयाधर्मनाशस्य कारणं कलिकाल कलयन्तो यथारिथति
 विधुराशया जग्मु । अथान्यद्युर्नारदो दिनकरदेव त्रिधाधर निजमभीष्टं प्रत्यु-
 याच-पर्वतस्य विरुद्धाचरणं त्वया निवार्यतामिति । सोऽपि तथा करिष्यामीति
 नागात्त गत्वा निजविद्यया धारपञ्चगानाहूय तत्प्रपच निवेदयामास । धारप-
 ञ्चगास्तु सप्तामे कालासुरं भक्त्वा यागविघ्नं चक्रु । विश्वभूपर्वतौ तद् दृष्ट्वा
 शरणावेपणौ यात्रदासाता तात्र महाकालमप्रत स्थितं ददशतु । तदग्रे
 त वृत्तान्तं निवेदयाञ्चक्रतु । कालासुर उवाच-अस्मद्देविणो नागास्तै-
 रयमुपद्रवो विहित । त्रिधानुप्रवादोक्ता नागविद्यास्तासां त्रिजृभण त्रिन
 बिम्बानामुपरि न भवति तत सुरूपां जिनाकारान् चतुर्षु दिक्षु निवेद्य

पूजयित्वा च यज्ञविधिं युवां कुरुतमिति । तमुपायं श्रुत्वा तौ तथा चक्रतुः ।
 पुनर्विद्याधराधिपो यागविघ्नं कर्तुमागतः । जिनमिम्बानि दृष्ट्वा नारादाय
 कथयति स्म । यन्मे विद्या अत्र न क्रामन्तीति स्वस्थानं जगाम । तद-
 नन्तरं यज्ञो निर्विघ्नो बभूव । तदनु विश्वभूः पर्वतश्च सप्तमं नरकं गतौ ।
 दीर्घकालं महादुःखमनुबभूवतुः । अथ महाकालोऽभिप्रेतं साधयित्वा
 निजस्वरूपं धृत्वा लोकान् प्रत्याह—पोदनापुरे पूर्वभवेऽहं मधुपिगलो नाम
 राजा आसं । सुखसानिमित्तं मया महत्पापमुपाजितं । अहिंसालक्षणो
 धर्मो जिनेन्द्रैः कथितः स भगद्विः कर्तव्यो धर्मिष्ठैरिति संप्रोच्य अन्त-
 र्द्वी । पुनर्दयार्द्रधीः सन् सुदुःखेष्टा पापस्य प्रायश्चित्तं स्वयं चकार । किं
 प्रायश्चित्तं ? सम्मोहाच्छतस्य पापस्य निवृत्तिरेव प्रायश्चित्तं तौमसौ चकार ।
 अथ दिव्यबोधैर्मुनिभिरियुक्त-विश्वभूपमुखा हिंसाप्रवर्तका नारका बभूवुः ।
 तच्छ्रुत्वा पर्वतोद्दिष्टं दुमार्गं केचित् पापभीरवो नाशिश्रियुः । केचित्तु
 दीर्घसंसारिणस्तस्मिन्नेव दुर्मर्गे स्थिता इति ।

इति श्रीभानप्राभृते मधुपिगलद्रव्यलिङ्गिन कथा समाप्ता ।

अण्णं च वसिष्ठमुणी पत्तो दुक्खं नियाणदोसेण ।

सो णत्थि वासठाणो जत्थ न दुरुदुल्लिओ जीवं ॥ ४६ ॥

अन्यच्च वसिष्ठमुनिः प्रातः दुःखं निदानदोषेण ।

तस्मास्ति वासठ्यान् अत्र न भ्रान्तो जीव ॥

अण्णं च वसिष्ठमुणी अन्यच्च यावदहितद्रव्यमुनिदृष्टान्तकथानकं
 वर्तते । तत्किं वसिष्ठमुनिः । पत्तो दुक्खं नियाणदोसेण प्रातो दुःखं
 निदानदोषेण शत्रुवधप्रार्थननिदानदोषेण नवमेन विष्णुना यः कंसनामा
 नृपो मारितः स वसिष्ठमुनिचरो मल्लयुद्धे मरणदुःखं प्रातः । सो णत्थि

वासठाणो तन्नास्ति वासस्थान जन्ममरणस्थान । जत्थ न दुरुदुल्लिओ
जीव हे जीव ! हे आमन् ! यत्र त्वं न जातो नोत्पन्नश्च दुरुदुल्लि
ओ भ्रात इति । वसिष्ठस्य कथा यथा—भगवन्वक्तव्योर्नद्यो सगमे जठर
कौशिक नाम तापसान्ना पट्टी बभूव । तत्र वसिष्ठो नायक पद्माग्नि
व्रत चरन्नास्ते स्म । तत्र गुणभद्रवीरभद्रनामचारणमुनिवरौ जगदतु—
अज्ञानकृतमिदं तप इति । तच्छ्रुत्वा वसिष्ठं कुर्वी सक्त्रोधं तपो पुरत
स्थित्वा पप्रच्छ—कस्मात्मेऽज्ञानतेति । तत्र गुणभद्रो भगवानाह—यत्
सत्पुरुषा हि हितभाषिणो भवन्ति । जटाकलापसजातयूकालिक्षाभिध
हृन् सततं स्नानेन जटामध्यलग्नधृतमीनकान् दक्ष्यमानकाष्ठमध्यस्थित-
वीटकान् प्रदश्य इदं तवाज्ञानमिति प्राबोधयत् । काललब्धिमाश्रित्य स
वसिष्ठ सुधीर्भूत्वा गुणभद्रचरणान्ते तपो निग्रन्थं गृहीत्वा सोपवास
मातापनयोगं जग्राह । तत्तपोमाहात्म्यात् सत्सन्त्यन्तरदेनता अप्रत
स्थित्वा ब्रुवति स्म—मुने ! आदेशं देहीति । मुनिरुह—इदानीं मम
प्रयोजन नास्ति गच्छत यूय । जन्मान्तरे मच्छिष्टं करिष्यथ । एवं तप
कुर्वन् वसिष्ठ क्रमेण मधुरापुरीमात्रगाम । तत्र मासोपवासी सत्राताप-
नयोगे स्थितवान् । स उपसेनेन राज्ञा दृष्टः । भक्तिदर्शनेन पुर्यां ध्यायणा
कारयामास—अयं मुनिर्मद्वृहे एव भिक्षा गृह्णातु नायत्रेति । सोऽपि
पारणादिने मधुरा जगाम । तत्राग्निमुत्थितं दृष्ट्वा व्याघुष्य वनमाजगाम ।
पुनर्मासोपवासं जग्राह । पुनः पारणार्थं मासोपवासावसाने पुरं गतः ।
तत्र यागहस्तिन क्षीभं दृष्ट्वा वनमागतः । पुनर्मासोपवासपारणाया नगरं
गतः । तदा जरासन्धपत्रकं दृष्ट्वा राजानि व्यग्रचित्ते सति पुनर्वर्धितः ।
तदा क्षीणशरीरं वसिष्ठमुनिं दृष्ट्वा लोको जगाद—अनेन राज्ञा मुनि-
र्मरितं स्वयं भिक्षा न ददाति परान् वारयतीति न ज्ञायते कोभिप्रायो
नृपस्येति । तच्छ्रुत्वा वसिष्ठो मुनिं पापोदयान्निदानं चकार । मम दुष्क-

रतपःफलादस्य राज्ञः पुत्रो भूत्वा अमुं निगृह्य अस्य राज्यं गृह्णात-
महमित्यनेन दुष्परिणामेन मृत्वा पद्मावतीगर्भे पुत्रतया स्थितः ।
सा गर्भार्भकक्रौर्येण दोहदं चकार—राज्ञो हृदयमासमन्वीति । तदप्राप्नु-
वन्ती दुर्वला बभूव । तज्ज्ञात्वा मंत्रिणः प्रयोगेण विहितं दोहदं
पूरयन्ति स्म । पिद्वांसः किञ्च कुर्युः । तदा सा पूर्णमनोरथा सुतपातक-
मसूत । मातापितरौ दद्युष्टं सभ्रभंगं बद्धमुष्टितं दृष्ट्वा न पोषणे योग्योऽय-
मिति विचिन्त्य तद्विसर्जनोपायं चक्रतुः । कंसमयीं मंजूषामानीय सवृत्तकं
कंस तस्यां निधाय यमुनाप्रवाहे मुमुचतुः । कोशाम्ब्रीपुरे मन्दोदरी नाम
कल्पपात्री, तया प्रवाहे मंजूषामध्ये स दृष्टः पुत्रतया पालितश्च । तप-
स्विना हीनान्यपि पुण्यानि किं न कुर्युः । कैश्चिदिनैर्लभनादिसहं वयः
प्राप । आक्रीडमानो निष्कारण सफलबालकान् चपेटया मुष्टिना दण्डा-
दिना च प्रहारं ददाति वधपापं बध्नाति । तदुराचारोपलभान् असह-
माना मन्दोदरी त तत्याज पुत्रे । सोऽपि शौर्यपुर गत्वा वसुदेवपदाति-
भूत्वा तत्सेवा करोति यावत् । अत्रान्तरे जरासन्धो राजा त्रिखण्डमेदिनी-
पतिरपि कार्यशेषवान् बध्नुते । मुरम्यदेशे पौदनापुराधीशं सिंहरथं युद्धे
बद्ध्वा य आनयति तस्मै देशार्थं मत्मुता कालिदसेनासंज्ञातां जीवयशो-
नामान ददामीति पत्रमाला राज्ञा समूहान् प्रति प्रेषयामास । तत्पत्रं
वसुदेवो गृहीत्वा प्रयौचितयान् । निजाश्वान् सिंहमूत्रेण भावयित्वा तै-
र्वाणं रथमारुह्य संप्राप्ते तं जित्वा कंसेन निजभृत्येन बन्धयित्वा सिंहरथं
राज्ञे अर्पयामास । जरासन्धस्तु तुष्ट्वा निजमुतां देशार्थं च ददौ । वसु-
देवस्तु तां कन्यां दुष्टलक्षणां दृष्ट्वाच—देव ! नाहं सिंहरथं बद्धवान्,
कर्मेदं धंसः कृतवान्, भवत्प्रेषणकारिणेऽस्मै कन्या प्रदीयतां । तच्छ्रुत्वा
जरासन्धः कंसस्य कुलं विज्ञातुं मन्दोदरीं प्रति दूतं प्रजिवाय । तं दृष्ट्वा

वासठाणो तन्नास्ति वासस्थानं जन्ममरणस्थानं । जत्य न दुरुदुष्टिओ
जीव हे जीव ! हे आत्मन् ! यत्र त्वं न जातो नोत्पन्नश्च दुरुदुष्टि-
ओ-भ्रान्त इति । वसिष्ठस्य कथा यथा-गंगागन्धवत्योर्नद्योः संगमे जटर-
कौशिकं नाम तापसानां पट्टं बभूव । तत्र वसिष्ठो नायकः पंचाम्नि-
व्रतं चरन्नास्ते स्म । तत्र गुणभद्रवीरभद्रनामचारणमुनिवरो जगदतुः-
अज्ञानकृतमिदं तप इति । तच्छ्रुत्वा वसिष्ठः कुर्वाः सक्रोधं तपोः पुरतः
स्थित्वा पप्रच्छ-कस्मान्मेऽज्ञानतेति । तत्र गुणभद्रो भगवानाह-यतः
सत्पुरुषा हि हितभाषिणो भवन्ति । जटाकटापसंजातयूकादिधामिघ-
ट्टनं सततं स्नानेन जटामध्यतममृतमीनकान् दद्यामानकाष्ठमप्यस्थित-
कीटकान् प्रदर्श्य इदं तवाज्ञानमिति प्राबोधयत् । काललब्धिमाश्रित्य स
वसिष्ठः सुधीर्भूत्वा गुणभद्रचरणान्ते तपो निग्रन्थं गृहीत्वा सोपवास-
मातापनयोगं जग्राह । तत्तपोमाहात्म्यान् सप्तव्यन्तरदेवताः अमृतः
स्थित्वा ब्रुवन्ति स्म-मुने ! आदेशं देहीति । मुनिराह-इदानीं मम
प्रयोजनं नास्ति गच्छत यूयं । जन्मान्तरे मच्छिष्टं करिष्यथ । एवं तपः
कुर्वन् वसिष्ठः क्रमेण मधुरापुरीमाजगाम । तत्र मासोपवासी सन्नानाप-
नयोगे स्थितवान् । स उग्रसेनेन राज्ञा दृष्टः । भक्तिवशेन पुर्यां घोषणां
कारयामास-अथ मुनिर्मदृढे एव भिक्षां गृह्णातु नान्यत्रेति । सोऽपि
पारणादिने मधुरां जगाम । तत्राग्निमुत्थितं दृष्ट्वा व्याघ्रस्य वनमाजगाम ।
पुनर्मासोपवासं जग्राह । पुनः पारणार्थं मामोपवासावसाने पुरं गतः ।
तत्र यागहस्तिनः क्षोभं दृष्ट्वा वनमागतः । पुनर्मासोपवासपारणायां नगरं
गतः । तदा जरासन्धपत्रकं दृष्ट्वा राज्ञि व्यप्रविष्टे सति पुनर्वर्द्धितः ।
तदा क्षीणशरीरं वसिष्ठमुनिं दृष्ट्वा लोको जगाद-अनेन राज्ञा मुनि-
मोरितः स्वयं भिक्षां न ददाति परान् वारयतीति न ज्ञायते कोभिप्रायो
नृपस्येति । तच्छ्रुत्वा वसिष्ठो मुनिः पापोदयान्निदानं चकार । मम दुष्क-

रतप फलादस्य राज्ञ पुत्रो भूत्वा अमुं निगृह्य अस्य राज्यं गृह्णास-
महमित्यनेन दुष्परिणामेन भूत्वा पद्मावतीगर्भे पुनस्तथा स्थितः ।
सा गर्भाभक्त्यौरेयं दोहदं चकार-राज्ञो हृदयमासमन्वीति । तदप्राप्तु-
वन्ती दुर्बला बभूव । तज्ज्ञात्वा मत्रिण प्रयोगेण विहितं दोहदं
पूरयति स्म । निद्रासं किञ्च कुर्युः । तदा सा पूर्णमन्त्रेण सुतपातक-
मसूत । मातापितरौ दृष्टोष्ट सन्भूयैव वदन्मुष्टिं स दृष्ट्वा न पोषणे योग्योऽय-
मिति विचिन्त्य तद्विसर्जनोपायं चकतुः । कसमयीं मज्जामानीय सवृतक-
कसं तस्या निधाय यमुनाप्रवाहे मुमुचतुः । कौशाम्बीपुरे मन्दोदरी नाम
कल्पपाली, तया प्रवाहे मज्जामध्ये स दृष्टः पुत्रतया पालितश्च । तप-
स्विना हीनान्यपि पुण्यानि किं न कुर्युः । कैथिदिनेर्धननादिसह यय-
प्राप । आक्रोडमानो निष्कारणं सकलबालकान् चपेटया मुष्टिना दण्डा-
दिना च प्रहारं ददाति बधपापं बध्नाति । तदुराचारोपलभान् असह-
माना मन्दोदरी तं सत्पाज्यं पुत्रः । सौऽपि शौर्यपुरं गत्वा वसुदेवपदाति-
भूत्वा तत्सत्त्वा करोति यावत् । अनन्तरे जरासन्धो राजा त्रिलण्डमेदिनी-
यतिरपि कार्यशेषवान् ममृतः । मुरम्पदेशे पौदनापुराधीशः सिंहस्थं युद्धे
बद्ध्वा य आनयति तस्मै देशार्थं मसुता कार्लिदसेनासञ्ज्ञाता जयंशो-
नामान् ददामीति पत्रमालां राज्ञा समूहान् प्रति प्रेषयामास । तत्पत्र-
वसुदेवो गृहीत्वा प्रवर्चितवान् । निजराजान् सिंहमूत्रेण भागयित्वा तै-
र्बाह्यं रथमारुह्य सग्रामे स जिघां कसेन निजभृत्येन बधयित्वा सिंहस्थं
राज्ञ अर्पयामास । जरासन्धस्तु तुष्ट्वा निजमुता देशार्थं च ददौ । वसु-
देवस्तु तां कया दुष्टलज्जया दृष्ट्वा रात्रि-देव ! नाहं सिंहस्थं वदमान्,
कर्मेदं कसं कृतवान्, भवलोपणकारिणेऽस्मै कन्या प्रदीयता । तच्छ्रुत्वा
जरासन्धः कसस्य कुलं विज्ञातु मन्दोदरीं प्रति दूतं प्रजिगाम । तच्छ्रुत्वा

मदोदरी मम पुत्र किं तत्रापि कृतापराध इति भत्त्वा समंजूषा तत्र
जगाम । जरासन्धो मजूषा निक्षिप्य इयमस्य मातेयुवाच । देव !
कसेमजूषामधिष्ठायाऽर्भक आगतो यमुनाजले मया लब्ध प्रतिपाल्य
वर्धितश्च तत एव नाम्ना कंस कृत । अथ स्वभावेन शौर्यदर्पिष्ठ
शिशुत्वेऽपि निरर्गल पश्चादुपालम्भशतैर्लोकानां मया वर्धित ।
तच्छ्रुत्वा मजूषाया एव गृहीत्वा उच्चैर्वाचयामास । वप्रसेन-
पद्मावस्थो मुत निज्ञाय मुतामर्धराज्यं च तस्मै विततार । कसोऽपि
जातमात्रोऽहं नद्या प्रवाहित इति क्रोधेन मधुरापुरं स्वयमादाय मातर
पितरौ बन्धस्थौ कृत्वा गोपुरे धृतवान् । विचारविकला पापीयांस
कुपिता किं किं न कुर्युरिति । अथ वसुदेवं महीपतिं पुरमानीय निजा-
नुजा देवकीं दत्वा तत्र तं स्थापितवान् महाविभूतिम तं त्र्यम्बकम् ।
एवं सुखेन कसस्य काले गच्छति सत्येकदाऽतिमुक्तको मुनिर्भिक्षार्थं
राजमन्दिरं प्रविष्टः । तद्दृष्ट्वा जीवशशा हर्षमाणा तं हास्येनोवाच—
हे मुने ! देवकी तत्र लघुभगिनी पुष्पजानन्दवस्त्रं तत्रैतदर्शयति वस्त्रेण
स्थचेष्टितं प्रकाशयतीति । तच्छ्रुत्वा मुनिः कोपं कृत्वा बाणमुनिं भित्त्वा
जगाद—मुग्धे ! किं दृष्यसि देवक्या यो भविष्यति पुत्रः स तव
भर्तारमनस्यं हनिष्यति । तच्छ्रुत्वा जीवशशा कोपेन तद्वस्त्रं द्विधा चत्र ।
मुनिराह—मुग्धे ! न केवलं तत्र पतिमेव हनिष्यत्यनेन पितरमपि तव
हनिष्यति । इत्युक्तं सा कुपितो तद्वस्त्रं पादाम्ब्याममर्दयत् । तद्दृष्ट्वा मुनि-
र्जगाद—मुग्धे ! अनेन सागरानपि पृथ्वा नारीभिः पादपिष्यति ।
जीवशशास्तच्छ्रुत्वा गणैका तं भर्त्रे निवेदयामास । कसो भीरा हास्ये
नापि प्रोक्तं मुने सफलं भविष्यतीति वसुदेवं राजानं गत्वा सखेहमिद-

मयाचत देवकी मम गृहात्तेर प्रसूतिं कुर्यामतीदृति । वसुदेवस्तेनोपरुद्धः
 सेस्तथास्त्विति जगाद । अवश्यभानिकार्येषु मुनिरपि मुञ्चति । अथैकदा
 स मुनिर्देवकीगेहं भिक्षार्थं प्रविशति । वसुदेवो देवकी च तं प्रतिगृह्य
 भोजयित्वा आनयोर्दक्षिणं भविष्यतीति छान्ना जगदतु । मुनिस्त-
 दिङ्गितं ज्ञात्वा उवाच—युवयोः सप्त पुत्रा भविष्यन्ति तेषु पट् पुत्रा परस्थाने
 वृद्धिभित्ता मोक्षं यास्यन्ति सप्तमस्तु पुत्रो निजच्छत्रच्छायया पृथ्वीं निर्धाय
 चक्रवर्ती दीर्घकालं पालयिष्यति । देवकी ततस्त्रिर्यमांश्च लेभे ।
 तान् ज्ञानवान् शक्रधरमाङ्गान् ज्ञात्वा नैगम्य देव प्रोवाच—
 एतास्त्वं रक्ष । स च भद्रिलपुरं अलकाया वणिकपुत्र्या पुरो निक्षिप्य
 तत्पुत्रास्तदा तदा भूतान् गृहीत्वा मृतान् यमान् देवक्यग्रे निचिक्षेप ।
 कसस्तान् मृतान् यमान् दृष्ट्वा किममी मे मृता करिष्यतीति मुने
 र्वाक्यमसत्यममूदिति प्राप्य साशंक शिलायामास्फलयामास । पश्चादे-
 वकी सप्तमं पुत्रं सप्तमं एव मासे जनिष्वती निजगृहे एव महाशुक्रा-
 ष्युतं निर्नामिकपुत्रं मुनिर । वसुदेवो बलभद्रश्च नीतिमत्तौ, देवकी
 ज्ञापयित्वा गृहीतवन्तौ, बलेन बाल उद्धृतं, पित्रा धृतं उग्रो रात्रावेव
 निष्कासितः । तत्पुण्येन पुरदेवता वृषभरूपेणाग्रेऽग्रे निजशृङ्गमणिदी-
 पिकाकृताद्योता मार्गं दर्शयामास । तद्बालपादस्पर्शाद्रोपरमुद्राटितोररं
 सद्यो जातः । तत्र बन्धनस्थित उग्रसेन उवाच कवाटोद्घाटनं कं करोति ॥
 बलदेव उवाच—यस्त्वा वधामोचयिष्यतीति तूष्णीं तिष्ठेति । उग्रसेन
 एवं भद्रित्याशीर्गिरिभिनयं स्थितः । तौ तु यमुनामितौ । सा भविष्य-
 चक्रिप्रभावनं द्विधा भूत्वा मार्गं ददौ । सर्वर्णं को वा बहुता सार्द्रो न
 कुर्यात् । तौ विस्मितौ यमुना व्यतिक्रम्य बालिकामुद्धृत्यागच्छत न द-
 गोपतिं ददृशतु । तं दृष्ट्वा तावूचतु—भद्र ! त्वमसहायो राजानन कि-

मित्यागत । स प्रणम्योवाच—मम प्रिया युष्मप्रचारिका पुत्रार्थं गन्त्रा-
 दिभिः पूजयित्वा देवतां याचितवती—देवि । पुत्र मे देहीति । सौम रात्रौ
 पुत्री लेभे । सोमाचेति स्यपत्य ताम्य एव देहि । तस्या सशोराया
 यचनादिदं स्यपत्यं देवताम्यो दातुं मम प्रयासोऽयं स्वामिन्निति जगाद ।
 तद्वचनं सौ श्रुत्वाऽस्मकार्यं सिद्धमिति प्रहृष्य तमूचतु—त्वमस्माकमभी-
 षस्तेन तव गुह्यं कथ्यते, अथ बालधक्री भविष्यति त्वं पालयेति । इयं
 तु बालिकाऽस्मभ्यं दीयतामिति । सा गृहीत्वा गूढतया पुरं गतौ । नन्द-
 गोपस्तु गृहं गत्वा प्रियां प्राह—प्रिये ! देवतां तुष्टा महापुण्यं पुत्रं
 तुभ्यं ददुः प्रसन्ना इति प्रोच्य तं पुत्रं तस्यै समर्पयामास ।
 कंसस्तु देवकी पुत्रीं प्रसूतवतीति श्रुत्वा तत्र गत्वा तां मुतां भग्ननासां
 चकार । मात्रा तु सा बालिकां भूमिगेहे बधितां प्रौढयौवना नामादि-
 कृतिं विलोक्य आर्थिकापाद्वे मुवतां दीक्षां जगाह शाकेनोते । विन्ध्य-
 पर्वते स्नानयोगं गृहीत्वा स्थिता । वनवासिषु देवतेति पूजयित्वा गतेषु
 रात्रौ व्याघ्रेण भक्षिता स्वर्गलोकं जगाम । अथापरस्मिन् दिने व्याधै-
 र्हस्ताङ्गुलित्रयं दृष्टं । क्षीरकुमादिभिः पूजितं देशवासिभिर्मूढा-
 मिरसामार्या विन्ध्यवासिनी देवतेति प्रमाणिता । अथ तस्मिन् पुरं महो-
 त्पाता प्रसूता । तान् दृष्ट्वा कसेन वदणं पृष्ठं किमया फलमिति । ॥
 आह—तत्र शत्रु समुत्पन्नो महान् इनि । नैमित्तिकवचने श्रुत्वा रामा
 चिन्तामर्थो बभूव । तदा पूर्वोक्ता देवता समागता किं कर्तव्यमिति
 पप्रच्छुः । स आह—मम शत्रु पापिष्ठं वचिदुःपन्नमन्विष्य मारयत यूयं ।
 तच्छ्रुत्वा सप्तापि गतास्तथास्त्रिति । तत्र पूतना विमंगान् ज्ञात्वा पापु-
 देवं मारयितुं यशोदानमात्मस्य गृहीत्वा निषग्नपानोपायेन दुष्टा
 मारणं चिकीर्षीकृता । तद्बालपाठनायुक्ता काचिदन्या देवता स्तनदा-

नावसरे बलवत्पीडां चकार । तपीडा सोढुमसमर्था मृताहमियाक्रोशं कृत्वा
 पलायिता (१) । द्वितीया देवता शकटाकार गृहीत्वा शिशुरपरि धावन्ती
 तेन पादाम्बा ताडिता नष्टा (२) । अपरेद्युर्न दगोपी कत्र्यामुदूखल बद्ध्या
 जलमानेतु गता तथापि शिशुरवगमत् । तदा तं बाल मारयितुं द्व देवते
 अजुनतरु भूत्वा तदुपरि पतन्यौ मूलादु मूलयामास (३-४) । मिष्णो-
 श्वक्रमणजेलायामेका सालतरुभूत्वा त मस्तके फलानि द्रुपदोऽपि निष्ठुराणि
 पातयितुमुद्यता (५) । अपरा रासभी भूत्वा तं दण्डुमागता । ता रासभी
 चरणे पृत्वा तयैव तं वृक्षमताडयत् (६) । अन्यस्मिन् दिनेऽन्या देवता
 तुरगमो भूत्वा त मारयितुमागता । तस्य घटनं मुष्टिना जघान (७) ।
 एव सतैन देवता कसमागयोचु - ययं तव शत्रुमाह तु न समर्था स्म
 इति । विद्युत इव तिलीना । देवतानामपि शक्तय पुण्यवज्जने न समर्था
 शक्रत्रशरिशस्त्राणीव । अन्यस्मिन् दिनेऽरिष्टनामा देवस्त पराक्रम द्रु-
 तपुरमागत कृष्णवृषाकार , तस्य प्रीराभजने स उद्यम चकार । त माता
 यशोदापि तं तर्जयति स्म-पुत्र । एवमादित एवाफलचेष्टितात् कृशांतर
 सम्पादकाद्विरमेति पुन पुनर्निगदितोऽपि मदो कटस्तच्चेष्टित चकार ।
 महौजसोऽपदाने निगदयितु न शक्यन्ते । तपौरुपे ख्यात लोकमचनादा
 कर्ण्य देवकीनमुदेयो तद्दर्शन उ फण्ठितौ । गोमुखीनामोपवासमिवेण
 सीरिणा सह महर्ष्यो विभूया गोदावन गाष्ट परिवारण सह गतौ ।
 तस्मिन्नेव दर्पवद्रूपमेद्रप्रीवाभंगानसरे कृष्णं महाबलं समालम्ब्य स्थितं
 दृष्ट्वा गन्धमात्यादिस मानान तरं भूपयामासतु । तदन तरं प्रदक्षिणं
 कुर्वत्या देवक्या शातकुमकुमसदृशयो स्तनयो क्षीरं मुस्त्राव
 कृष्णस्याभिपेक कुर्वत्या इव । बलस्तद्रीक्ष्य मन्मथेदभयादुपनासप

१ महौजसोपदानि ख । २ शुद्धकर्मणि इत्यर्थः । ३ बलभेदेन । ४ महावि
 भूत्या ख । ५ शुभाव ख । ६ बलदेव ।

रिश्रान्ता माता मूर्छितेति जल्पन् मुधीः कुम्भपूर्णपयोमिस्तां समन्ततोऽ-
 म्युक्षितवान् । ततो गोष्ठवृक्षोदीनामपि तद्योग्यं पूजनं कृत्वा गोपाल-
 कुमारेः सह कृष्णं भोजयित्वा स्वयं च भुक्त्वा माता पिता च विक्रु-
 र्बाणौ पुरं प्रविविशतुः । कदाचिन्महावर्षपाते जाते गोवर्धनाख्यं पर्वत-
 मुद्धृत्य हरिर्गङ्गामावरणं चकार । तेन ज्योत्स्नेव तत्कीर्तिरखिलं जगत्
 व्याप्नोति स्म शत्रुमुखकमलसंकोचकारिणी । सन्नगरस्थापनाहेतुभूतजि-
 नालयसमीपे पूर्वदिशि देवतागृहे हरिपुण्यातिरेकात् नागशय्या धनुः
 शङ्खश्च ग्रीणि रत्नानि देवतारक्षितानि नारायणस्य भविष्यद्भस्मीसूच-
 कानि समुत्पन्नानि । तानि दृष्ट्वा कंसो वदणं समयः पप्रच्छ—एतेषां
 प्रादुर्भूतेः किं फलमिति । स प्राह—हे राजन् । एतानि ग्रीणि रत्नानि
 शास्त्रोक्तविधिना यः साधयति स चक्रवर्ती भविष्यतीति । तच्छ्रुत्वा कंसः
 स्वयं तद्वितर्षं साधयितुमिच्छुरपि साधयितुमशक्तो मनाक् रिक्तः साध-
 नाद्विरराम । उक्तवांश्च धो नागशय्यामारौद्रेकेन हस्तेन शरैः पूरयति द्विती-
 येन फरेण धनुरारोपयति युगपत्कार्यत्रयं करोति तस्मै निम्नपुत्री दास्या-
 मीति स्वशत्रुं परिहर्तुं सार्शकः पुरे धोपणामभीकृत् । तद्वार्तां श्रुत्वा
 सर्वे राजान आगताः । राजगृहान् कंसद्व्यालकः स्वर्भानुनामा भानुना-
 मानं स्वपुत्रं भानुसदृशमादायाजगाम । निवेशं चिकीर्षुर्गोदावनसमीपे
 महासर्पनिवाससरोवरतटे निवासं कर्तुमना गोपालकुमारेभ्यः श्रुत्वा कृष्णं
 विनाऽस्य सरसो जलमानेतुं परेन शक्यमिति तमादूय पथारथानं
 स्कन्धाधारं निवेशयामास । कृष्ण उवाच—राजन् । त्वया कुत्र गम्यते इति ।
 स्वर्भानुर्मथुरागमनप्रयोजनं तस्योक्तवान् । कृष्ण उवाच—राजन् । एत-
 त्कर्म किमस्मद्विधैरपि कर्तुं भवेत् । तच्छ्रुत्वा स्वर्भानुभिन्तयामास-

असौ शिशुः पुण्याधिकः केवलो न वर्तते इति । तस्य कर्मणः शक्त-
 श्वेदागच्छेति निजपुत्रमिव तं गृहीत्वा सुमान्वपरनामा स्वभानुर्मुधुरां
 जगाम । यथार्हं कंसं ददर्श । तत्कर्मकरणे बहून् मग्नमानान् दृष्ट्वा कृष्णः
 स्वभानुमुतं भानुं समीपगे कृत्वा कर्मत्रय समकालं चकार । ततः सु-
 भानुना दिष्टपादिष्टः कृष्णो गोष्ठं जगाम । कैश्चित्पुरुषैः कंसो भणितः
 “तत्कर्म भानुना कृतं” । कैश्चित्द्रक्षकैरुक्तं “न भानुना तत्कर्म कृतं
 अन्येन कुमारेणेति” । तच्छ्रुत्वा कंसः प्राह—सोऽन्योऽन्विष्यानीपतां
 तस्मै कन्या प्रदीयते इति । स कस्य, किं कुलं, कस्मिन्निति । तावन्न-
 न्दगोपेन सम्यग्निश्चातं अनेन मत्पुत्रेण तत्कर्म सम्यक्कृतमिति भीत्वा
 गोमण्डलं नीत्वा पठार्यावभूये । शिलास्तम्भमुद्धर्तुं तत्र सर्वे जनाः प्रा-
 स्तास्ते नाशक्तवन् । कृष्णेन केवलेनैव समुद्धृतः । तत्साहसात् सर्वे
 जना विस्मित्य जह्वन् । परार्धाशुकाभरणादिदानेन पूजयामासुः ।
 नन्दगोपस्तु ममास्य पुत्रप्रभावेन कुतोऽपि भवं नास्तीति प्राक्तनमेव
 स्थानं गोकुलं निनाय । अन्येपकेस्तु नन्दगोपमुतेनैतत्कर्म कृतमिति
 राज्ञे निवेद्यते स्म । तथापि तदनिधये सहस्रदल कमलमहीशर-
 क्षितं प्रेष्यतामिति राज्ञा नन्दगोप आज्ञापितः शत्रोर्निज्ञाशया ।
 तच्छ्रुत्वा नन्दगोपः शोकादाकुलो बभूव “राजानः किल प्रजानां
 पालका भवन्ति कष्टमेतत् तेऽद्य मारकाः संजाता इति ।” निर्विधं पुत्र !
 त्वं याहि राज्ञैर्विष्टिरीदृशी वर्तते इति । त्वयैवोपसर्परक्षितानि कमलानि
 राज्ञः प्रदातव्यानीति जगाद । कृष्णः प्राह—कोऽपि पदार्थः किं दुष्करो
 मम वर्तते इत्यपूर्वसेजा नागसरो जगाम । त्वरितं तत्र निःशंकं प्रविशे-
 च । तं ज्ञात्वा कोपेन वेपमानो लेलिहानः स्वनिःश्वाससमुद्धृतम्बल-

ज्ज्वालाकणान् किरन् फणारत्नप्रभामासिफणाप्रकटाद्योपभयानक प्रचल-
 द्रसनायुगलो विस्फुरद्दीक्षणाऽत्युग्रनीक्षेण प्रत्युत्थाय कृतान्ताकारस्त निग-
 रितुमुद्यत । कृष्णस्तु मम वसनमिदमस्य ताडने शुद्धशिला भवत्विति
 जलार्द्रं पीतवस्त्रं मुक्त्वा फटाया तं निष्ठुर ताडयामास । तस्माद्वस्त्रपाता-
 द्द्वस्त्रपातादपि दुर्धरात् पूर्वपुष्पोदयाञ्च भीत कालियाहि फणीद्रोऽदृश्यता
 जगाम । हरिर्यथेष्टं कमलानि गृहीत्वा शत्रो समीपं प्रापयामास ।
 तानि दृष्ट्वा कसो निजशत्रु दृष्टवानिव नन्दगोपसमीपे मम शत्रुर्नर्तते
 इति निश्चिकाय । एकदा नन्दगोपालमादिष्टवान् मल्लयुद्धमीक्षितुं निज-
 महैः सहाऽऽगच्छेरिति । स च तत्स देशं श्रुत्वा कृष्णादिभिर्महैः
 सह प्रविवेश । तत्र मत्तगज बीतप्रघन कृतांताकार मन्दगधाकृष्ट-
 वक्त्रमरसेवित नियमच्युतराजकुमारवत् निरकुशं दन्तमुशलाघातनिर्भिन्न
 सुधामन्दिरमाधाय तं विलोक्य कश्चित् समुखं प्रदंक्ष्य दत्तमेकमुत्पात्र्य
 तेनैव तं ताडयामास । गजोऽपि भीतो दूरं जगाम । तद्दृष्ट्वा हरिर्भृशं तुष्ट
 सन्नुवाच-भनेन निमित्तेन कुटुम्बप्रकटीकृतो जयोऽस्माकं भविष्यतीति
 गोपान् समुत्साह्य कसससदं विवेश । वसुदेवोऽपि राज्ञा कसाभिप्रायं
 विदित्वा निजसेना सन्नाद्धैकत्र स्थितः । बलभद्रोऽपि कृष्णेन सह रग
 प्रविष्ट इव दोर्दण्डास्फालनध्वनिं कृत्वा समन्तात् परिभ्रमन् कसप्रिनाशेऽद्य
 तव समय इति समारयाय निर्जगाम । तदा कसादेशेन त्रिण्युविवेया
 गोपकुमारा प्रदर्पवन्तः मुजानास्फाल्य गृहीतमल्लपरिच्छदा कर्णानन्द-
 कारिवादित्रचटुलध्वनिभिरेकर्त्रीभूत्वा चरणोक्षेपप्रतिक्षेपा प्रोजतमुज-
 द्वयोत्कटा पर्यायनर्तितप्रेक्षणीयभूभगभयानकशब्दानिवर्तनशतार्तनसं-
 भ्रमणवल्लनप्लवनसम्भवाभयानैरपरैश्च स्फुटैः करणैः रगसमीपमलंकृत्य नयन-

मनोहरास्तस्थिवांसः । कंसमह्यश्च प्रोद्वृत्ताश्वाणूरप्रमुखा विक्रमैकरसा रंगा-
 म्पर्ण समाक्रम्य स्थितवन्तः । विष्णुश्च रंगस्य मध्ये समुदात्तमनः प्रसरो
 रीर उरुमह्यप्रणीः प्रतिमल्लयुद्धप्रियं प्रागेव प्राप्त इव दीप्ततेजा देवोऽ-
 वर्तारोऽधुना महत्त्वं प्राप्तो भास्वानिर अहं जेष्यामीति प्रवृद्धपराक्रमै-
 फरसः स्वयं संभावयन् निगिडपरिगृहीतपरिधानः प्रबद्धकोशः स्वभावेन
 मसृणाङ्गो विकूर्चश्चित्तवृत्तिविच्छेदप्रतिभैर्लैर्निरन्तराम्यस्तनियुद्धत्वाद-
 निकललब्धजयलाभः सर्वैरपि संभारितोत्साह स्थिरतरपादनिवेशो वज्र-
 सारास्थिवन्धो भुजार्गलपरविबाधी मुष्टिसंमायिमध्यप्रदेशः कृतानेककर-
 णसमूहो लघुसंचरणप्रवीणोऽतिकठिनविस्तीर्णवक्षःस्थलो बृहन्नीलपर्वतो-
 त्तुङ्गो दर्पप्रवृद्धिप्रिगुणितनिजमूर्तिर्ज्वलितबलितनेत्रत्वादुर्निरीक्ष्यसांमुख्यो-
 तिशयेनाशनिपातबद्धो नन्दनन्दनः स्थितः सन् यमस्याप्युच्चैर्भयमसहनी-
 यमुत्पादयन् धरमखिलं शौर्यं मूर्तिमन्मिलितमिव समस्तं रहो मनुष्या-
 कारमागतमिव सिंहाकार सहस्राकृतसिंहध्वनि रंगादंगणमिव नभोज्ज-
 णमलघत पुनराकाशादशनिबद्धनिमापत्य आत्मपादपाताभिघातचलि-
 ताचलसन्धिबन्धो मुहूर्वलान् परिसरश्च प्रतिजृम्भमाणसिंदूररंजितभुज-
 दण्डौ समुद्रप्रौ क्रुद्धः प्रवलयन् श्रोणीद्वितयभागविलंबिपीतवस्त्रो नियु-
 द्धकुशलं परंतशिखरोन्नतं प्रतिमल्लं चाणूरगाहस्य सहसा सिंहवदाव-
 भासे । तं दृष्ट्वा रथिरोद्गमोऽप्रलोचनः कसं स्वयं मह्यता प्राप्यागच्छ-
 ति स्म । तमुग्रसेनतनयं जन्मान्तरद्वेपात् करेण चरणे संगृह्णाकाशे
 आमयन्नल्पाण्डमिव यमराजस्य समीप उपायनीकृर्तुमिर स कृष्णो
 भूमावास्फलयामास । तदा कृष्णमस्तके व्योम्नः कुसुमानि प्रपेतुः
 देवदुंदुभयो ध्वनिं चक्रुः । वसुदेवसेना समुद्रे प्रशोभणात् कोलाहलध्व-

निरुत्तस्थे । मुशलीवीरवरो विरुद्धनृपतीनाक्रम्य रगे स्थितः । स्वानुजं स्वीकृत्य गर्जिते चकार । विष्णुस्त्रिखण्डलक्ष्म्या कटाक्षितः ।

इति श्रीभावप्राभूते द्रव्यलिङ्गिनो वसिष्ठमुनेः कथा परिसमाप्ता ।

सो णत्थि तं एएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि ।

भावविरओ वि सवणो जत्थ ण डुरुडुल्लिओ जीरे ॥४७॥

स नास्ति त्व प्रदेश चतुरशीतिलक्षयोनिवासे ।

भावविरतोऽपि श्रवणो यत्र न भ्रान्त जीवः ॥

पदखण्डनारूपेण व्याख्यानं क्रियते । हे जीव ! हे चैतनस्वरूपात्मन् ! । जत्थ यत्र प्रदेशे । तं त्व भवान् । ण डुरुडुल्लिओ न भ्रान्त स प्रदेश ससारे नास्ति । कस्मिन्, चउरासीलक्खजोणिवासम्मि चतुरशीतिलक्षयोनिवासे स्थाने । कथंभूतस्त्व, भावविरओ वि सवणो श्रवणो दिगम्बरोऽपि सन् भावविरतो जिनसम्पत्त्वरहित । उक्तं च शुम्भटसारग्रन्थे नेमिचन्द्रेण गणिना—

णिग्धिदरघावु सत्तय तरु दस वियलिदिप्पसु छधेय ।

सुरनरयतिरियधदुरो चउदस मणुप सदसदस्सा ॥ १ ॥

अस्या अपमर्थ —नित्यनिकोतर्जीवानां सप्तलक्षा जातय ७००००० । इतरनिगोदजीवानां जातय सप्तलक्षा ७००००० । धातूनां पृथिवीकायजीवानां अप्कायजीवानां तेज कायजीवानां वायुकायजीवानां जातय. चतुर्णां प्रत्येक सप्तलक्षा । पृथ्वी ७००००० । अग् ७००००० । तेज ७००००० । वायु ७००००० । तरु दह—वनस्पतिकायजीवानां जातयो दशलक्षा १०००००० । वियलिदिप्पसु छधेव—दीन्द्रियजीन्द्रियधतुरिन्द्रियजीवानां जातय समुदायेन षड्लक्षा । दीन्द्रिय

२०००००। त्रीन्द्रिय २०००००। चतुरिन्द्रिय २०००००। सुरनर-
यतिरियचदुरो—सुराणां जातयश्चतस्रो लक्षा ४०००००। नारकाणां
जातयश्चतस्रो लक्षा ४०००००। तिरश्चां जातयश्चतस्रो लक्षा
४०००००। चोदस मणुए—चतुर्दश लक्षा जातयो मनुजे मनुष्यजीवानां
१४०००००। सदसहस्रा—शतसहस्रा ।

भावेण होइ लिंगी ण हु लिंगी होइ दब्बमित्तेण ।

तम्हा कुणिज्ज भाव किं कीरइ दब्बलिंगेण ॥ ४८ ॥

भावेन भवति लिङ्गी न हु भवति द्रव्यमात्रेण ।

तस्मात् कुर्या भाव किं क्रियते द्रव्यलिङ्गेन ॥

भावेण होइ लिंगी भावेन निदानादिरहिततया जिनसम्यक्त्वस-
हिततया लिंगी सन् लिंगी भवति निदानादिसहितो जिनसम्यक्स्वरहितो
लिंगी मुनिलिंगी जिनलिंगी सत्यलिंगी न भवति । ण हु लिंगी होइ
दब्बमित्तेण न हु-सुट्ठे लिंगी सन्नपि लिङ्गा न भवति द्रव्यमात्रेण
शिरोलोचमयूरपिच्छकमण्डदुग्धप्रहणरक्षत्यजनमात्रेण लिंगी सन्नपि लिङ्गी
न भवति पुन ससारपतनहेतुवात् । तम्हा कुणिज्ज भाव तस्मात्का-
रणात् कुर्यात्त्वं । क, भाव—जिनसम्यक्त्वनिर्मलपरिणामं । किं कीरइ
दब्बलिंगेण पूर्वोक्तद्रव्यलिङ्गेन किं क्रियते ॥ किमपि मोक्षमुखं क्रियत
इति भाव ।

दडयणयर सयल डहिउ अब्भतरेण दोसेण ।

जिणलिंगेण वि बाह पडिओ सो रउरवं नरय ॥ ४९ ॥

दण्डकनगरं सकृत् दग्धा अभ्यन्तरेण दोषेण ।

जिनलिङ्गेनापि बाहु पतितं स रौरवं नरकम् ॥

दंडयणेरं सयलं दण्डकस्य राज्ञो नगरं सकलं । डहिउं अन्म-
 तरेण दोसेण दग्ग्य अम्यन्तरेण दोयेण क्रोधेन कृत्वा । जिणलिंगेण
 वि वाहू जिणलिंगेनापि जिणलिंगसहितोऽपि बाहुर्नाममुनिः । पडि-
 ओ सो रउरवं नरयं पतितो गतः रौरवं नाम नरकं । अस्य कथा-
 दक्षिणापथे भरतदेशे कुम्भकारकटनगरे दण्डको नाम राजा । तन्म-
 हादेवी मुवता । बालको नाम मंत्री । तत्र अभिनन्दनादयः पंचश-
 तमुनयः समागताः । खण्डकेन मुनिना बालको मंत्री धादं जितः ।
 सतो रुष्टेन तेन भंडो मुनिरूपं कारयित्वा मुनतया समं रममाणो दर्शितः ।
 भणितं च तेन देव । दिग्मध्येषु भक्त्यातिमुल्योऽसि येन भार्यामपि
 तेभ्यो दातुमिच्छसि । ततो रुष्टेन राज्ञा मुनयो यत्रे निष्पीडिताः । ते
 समुपसर्गं प्राप्य परमसमाधिना सिद्धिं गताः । पश्चात्तन्नगरं बाहुर्नाम
 मुनिरागतः । स लोकैर्धारितः । अत्र नगरे राजा दुष्टो वर्तते तेन पंच-
 शतमुनयो यत्र पीडिता भवन्तमपि तथा करिष्यति । तद्वचनेन बाहू
 रुष्टः । तेजोऽशुभसमुदात्तेन राज्ञा मंत्रिणा च सह सर्वं नगरं भार्मीच-
 कार । स्वयमपि मृतः । रौरवे नरके पतितं राजानं मंत्रिणं श्वानवेष्टु-
 मिय तत्र गतः । को नाम रौरवो नरक इति चेत् ? सप्तमे नरके पंच
 विद्यानि वर्तन्ते तेषु पूर्वदिशि रौरवः । दक्षिणेऽतिगौरवः । पश्चिमेऽसि
 पत्रः । उत्तरे कूटशाल्मलिः । मध्ये कुर्भापाक इति ।

अवरोत्तिं दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपन्महो ।

दीवापणुत्ति णामो अणंतसंमारिओ जाओ ॥ ५० ॥

अपर इति इव्य भ्रमणो दर्शनवरणानचरणप्रवृत्तः ।

दीपादन इति नामा अनन्तघंसारिघो जालः ॥

अवरोत्ति द्रव्यसवणो अपर इति द्रव्यश्रवणो मानरहितो मुनि
जिनयचनप्रतीतिरहित । दसणवरणाणचरणपम्भट्टो दर्शनेन जिनसम्य-
क्त्वेन वर श्रष्टे यज्ज्ञान चरण च चारित्रं तेम्यस्त्रिम्योऽपि प्रभृष्ट पतित
सम्यग्दृष्टीना मुनीनामपाङ्क्त्ये । दीवायणुत्ति णामो द्वीपायन इति नामा ।
अणतससारिओ जादो अनन्तससारिक अनन्ते संसारे नियुक्त नियो
गवान् कर्मपरयश इत्यर्थे , जातो भजति स्म । द्वीपायनस्य कथा यथा—श्रीने
मिनाथो बलभद्रेण पृष्ट स्मामिन् । इय द्वारवती पुरी किं काला तरे समुद्रे
निमक्ष्यति कारणात्तरण या निमक्ष्यति ? भगवानाह—रोहिणीभ्राता द्वीपाय-
नकुमारस्तथ मातुलोऽस्या पुर्वा रूपा दाहको भरिष्यति द्वादशे वर्षे
मथहेतुत्वात् । तच्छ्रुत्वा द्वीपायनकुमार इदं जैनवचनमसत्यं चिकीर्षु
र्दोक्षा गृहीत्वा पूर्वदेशं गत । द्वादशाभिपूरणार्थं तप कर्तुमारम्भवान् ।
जर कुमारेण कृष्णमरणमाकर्ष्य बलभद्रादयो नेमिनाथ नमस्कृत्य सर्वेऽपि
यादवा द्वारवतीं विविशु । ततः कृष्णो बलभद्रश्च पुर्वा घोषणां मघनि
वेधिनीं कारयामासतु । ततो मथपैर्मघाङ्गानि पिष्टविण्णादानि मघानि च
कदम्बवने गिरिगन्धरे शिलाभाण्डानि आस्फालितानि । सा मदिरा
कदम्बवनकुण्डेषु गता । कर्मविपाकहतुनेनावस्थिता । श्रीनेमिनाथ
पल्लवदेश गत । जिनन सह भव्यलोक उत्तरापथमुच्चलित । द्वीपाय-
नस्तु द्वादशे वर्षे भ्रात्याऽतीत मन्वानो जिनादशा व्यतिक्रांत इति
ध्यावा सम्यक्त्वहीनो द्वारवतीमागत्य गिरेर्निकटनगरबाह्यमार्गे आता-
पनयोगे स्थित । वनक्रीडापरिश्रान्तास्तृष्ण्या व्याकुलाभूता काद-
म्बकुण्डेषु जलमिति ज्ञावा शंभवादयस्ता सुरा पिबन्ति स्म । कदम्बव-
नस्थिता कदम्बकतया स्थितां विसृष्टा कादम्बवीं पीत्वा कुमारं निका-
राध प्रापु । सा पुराणापि वारुणी परिपाकवशात् तरुणीवत्तरुणान्
वशेऽकरोत् । ते कुमारं असबद्ध गाय तो नृत्यन्तश्च स्खलितपादा

प्रमुक्तनुन्तला पुष्पकृतावतसाः कण्ठालम्बितपुष्पमाला. सर्वे पुरं
 समागच्छन्तः सूर्यप्रतिमास्थित द्वीपायनमुनिं दृष्ट्वा धूर्णमाननयना इत्युचु-
 सोऽयं द्वीपायनो यतियौ द्वारवतीं धक्ष्यति सोऽस्माकमप्रत क
 यास्पति वराक इति प्रोच्य सर्वतोऽप्येभ्यः पापानैश्च तावत्प्रजन्तु-
 र्यायद्भूमौ पपात । एवं तैर्निर्मुक्तैस्ताडित उत्पन्नाधिकक्रोधो दष्टोष्टो
 यद्गुना स्वतपसश्च विनाशाय भ्रुकुटिं चकार । कुमारास्तु पुरीं प्रति गमनं चक्रुः
 कैश्चित्तदुराचारो विष्णोर्वलस्य लघु निवेदित । तच्छ्रुत्वा द्वारवत्या
 प्रलयं गिनोक्त प्राप्तं तदापि मेनाते परिच्छदरहितौ मुनिर्समीपं गतौ ।
 भग्निमिव ज्वलन्तं क्रोधेन संक्रिष्टधियं भभेग निपमवक्त्रं दुर्निरीक्ष्येक्षणं
 क्षीणकण्ठगतप्राण विभीषणस्वरूप ददृशतु । कृताञ्जलिपुटौ महाद-
 रात्प्रणिपत्य याचनां वन्द्यां जानन्तावपि मोहाद्याचितवन्तौ । हे साधो !
 चिर परिरक्षितस्तपोभार. क्षमामूल क्रोधाग्निना धक्ष्यते मोक्षसाधनं परि-
 रक्ष्यता परिरक्ष्यता । मूढे प्रमादबहुलैर्दुर्बिचेष्टितं भवत कृतं क्षम्यतां
 क्षम्यतां । क्रोधध्वतुर्गणानु, क्रोध स्वपरनाशन, अस्मभ्यं प्रसाद-
 क्रियतां मुने ! इति प्रियनादिनौ तौ पादयोर्लग्नः प्रार्थितवन्तौ तथापि
 सोऽनिरर्तक संजातः । सर्वप्राणिसंयुक्तद्वारवतीदाहे पापधीः कृत-
 निधय युगमेव न धक्ष्यामीत्यङ्गुलिद्वयेन संज्ञां चकार । अनिरर्तक-
 क्रोधं ज्ञात्वा विषण्णो व्याघ्रश्च किं कर्तव्यतामूढौ पुरीं प्रविष्टौ । तदा
 शम्भवाद्याधरमाङ्गका यादवाः पुर्या निष्क्रम्य दीक्षां गृहीत्वा गिरिगुहा-
 दिषु तस्थिनांसः । द्वीपायनस्तु क्रोधशक्त्येन मृत्वा भयनामो बभूव ।
 सोऽग्निकुमारनामा विर्मणेन पूर्वैर स्मृत्वा द्वारवतीं बालदृष्ट्वापशुस-
 मेनां विष्णुवली मुक्त्वा ददाह । तौ दक्षिणापये वनं प्रविष्टौ । तत्र

सरोवरं शालिवनं निर्धूमानल प्रचलज्ज्वाल स्वर्गकुमारसमानीयमाननम्बू-
फलाणि च स्वप्ने दर्शयित्वा महायुतिर्जम्बूनामाऽनामृतदेवाप्तपूजोऽतिप्रि-
रयातो विनीत सुतो भविष्यति । यौवनारम्भेऽपि निर्विक्रियो भावी ।
तस्मिन् जम्बूस्वामियौवनकाले श्रीवीरभञ्जारक पागपुरे मुक्तिं यास्यति
तस्मिन्नेव समये भम केवलज्ञानमुत्पत्स्यते । सुधर्मगणधरेण सह ससारामित
ज्ञाना भव्यप्राणिना धर्मामृतोदकेनाल्हाद करिष्यन्निदमेव राजगृहपत्तनमा
गत्वास्मिन्नेव विपुलाचलेऽहं स्थास्यामि । तत्समाकर्ण्य चेलनीमुत कुणिको
नृप सर्व परिवारेण समागत्य मा मुधर्मं च पूजयित्वा दानशीलोपवासादिक
स्वर्गमोक्षसाधक धर्मं ग्रहीष्यति । तेन सहागतो जम्बूनामा निर्वेद प्राप्य
दीक्षाग्रहणोत्सुको भविष्यति । स कुटुम्बं वदिष्यति स्तोकेषु वर्षेषु गतेषु
त्वया सह वयं सर्वेऽपि दीक्षां ग्रहीष्याम इति । तेन प्राप्तं सोढुमश
क्नुनन्निराकर्तुं च तदक्षमं पुरमायास्यति । तस्य मोहमुत्पादयितुं सुखर
न्धने विवाह आरभ्यते तेन कुटुम्बवर्गेण । बाधवा हि श्रेयसो विज्ञा ।
सागरदत्तपद्मावत्यो मुता त्रियोक्त्या मुलक्षणा पद्मश्री, कुबेरदत्तकन
कमालयो मुता मुलोचना कनकश्री, वैश्रवणदत्तविनयवत्योर्ध्वदा
मृगलोचनाबलोकनीया विनयश्री तस्यैव वैश्रवणदत्तस्य धनश्रिया मुता
रूपश्री एताश्चतस्रो विधिपूर्वकं परिणीय सौभाग्ये समीचीनरत्नदीप
दीप्तिभिर्निरस्ताधकारे नानारत्नसमीचीनचूर्णरगवल्लीसशोभिते विचित्र
पुष्पोपहारसहिते जगतीतले स्थास्यति । एतस्य माता अयं मे सुतो
रामेण प्ररित स्मितहासकटाक्षेक्षणादिना प्रीतिं भजन् किं भवेन्न वा
भवेदित्यात्मानं तिरोधाय पश्यन्ती स्थास्यति । तस्मिन्नवसरे मुरम्पदेश
पोदनापुरेशत्रिगुञ्जाजमिलवत्यो सुत पापिष्ठाना धुरि स्मर्यो दुरात्मना

वन्दनीयोऽगुणवानुत्सुकश्च तीक्ष्णो विद्युत्प्रभनामा केनापि कारणेन
 निजज्येष्ठभ्रात्रे कुपित्वा पचशतसुभटैर्निर्गतो विद्युच्चोरनामानमात्मानं
 कृत्वा चौरशास्त्रोपदेशेन मंत्रतत्रविधानाददृश्यशरीरत्वकपाटोद्घाटनादिकं
 जानन्नहंदासगृहाम्बन्तरत्नघनादिकं चौरवितुं प्रविश्य जिनदासीं नष्ट
 निद्रा विलोक्यात्मानं नित्रेद्य किमर्थं विनिद्रा त्वमवमिति प्रक्षयति । मम
 एक एव पुत्र प्राप्तेरेवाहं तपोवनं गमिष्यामीति सकल्पस्थितो वर्तते
 तेनाह शोकिनी सती जागर्मि । त्वं बुद्धिमान् दृश्यसे यदि त्वमिममाप्र-
 हादुपायैर्नारयसि तत्त्वदभीप्सितं धनं सर्वमहं दास्यामीति वदिष्यति । सोऽ-
 पि तत्प्रतिपद्यैव सम्पन्नभोगोऽयं किल विरेरस्पति, इह धनमाहर्तुं प्रविष्टं
 मां धिगिति स्तनिन्दनं कुर्वन्नि शंक तदन्तिकं प्राप्य तं तासां कन्य-
 कानां साध्यतपाधिष्ठितं कुमारं प्रसरत्सद्गुह्यं पञ्जरगतं पक्षिणमिव, जाल-
 लम् मृगबालकमिव, अपारकर्दमे मम भद्रजातिगजाधिपतिमिव, लोहपं-
 जरैर्निरुद्धं सिंहमिव प्रत्यासन्नससारक्षयं सम्प्राप्तनिर्वेदं समीक्ष्य विद्युच्चोर
 सुधीरघाट्यानकं वदिष्यति । हे कुमार ! त्वया श्रूयता—कश्चित्कर्मलोक
 स्वच्छया चरन्नेकदा गिरेरुन्नतप्रदेशात् तृणं खादन्नेतमधुरसोमिश्रं सह-
 दास्वाद्योत्सुकस्तादृशमेवाहमाहरिष्यामीति मधुपानाभिराञ्छया तृणान्तर-
 चरणातिपराङ्मुखस्तस्थी मन्त्रे च तथा त्वमप्येतानुपस्थितान् भोगान-
 निच्छन् स्वर्गभोगार्थं बुद्धिरहितं क्रमलकानस्थां प्राप्स्यसि (१) । इति
 चौरप्रतिपादितं श्रुत्वा कुमारं प्रयुत्तरं दास्यति—कश्चिपुमान् महादाह-
 करेण रविणा परिपीडितो नदीसरोवरतडागादिपानीयं पुन पुन पीत्वा
 तथापि न विनष्टतृष्णस्तृणाग्रस्थितजलकणं पिवन् किं तृप्तिं याति
 तथापि जीवोऽपि चिरकालं दिव्यमुखं भुक्त्वाप्यतृप्तोऽनेन मनुष्यभव-

जातेन स्वरूपेन गजकर्णास्थिरेणास्वादुना तृप्तिं यायात्—अपि तु न यायात्
 (२) । इति तद्वाचं श्रुत्वा स एकागारिक कथयिष्यति कथा—एकस्मिन् वने
 किरातश्चण्डो महातरुमाधारं कृत्वा गण्डात् घनुरावृष्य बाणेन वारण
 जघान । तरुकोटरस्थितसर्पदण्डस्तं सर्पं मारयित्वा स्वयं च मृतः । अथ
 तान् ब्रीन् किरातसर्पगजान् मृतान् दृष्ट्वा क्रोष्टाऽतिलुब्धस्ताऽदेतौ ह्री
 आश्चि पूर्व धनुर्मौर्ध्वं प्रातस्थिता च खसां भक्षयामीति कृतोद्यमस्तच्छेद
 वैधेयैश्चकार । सद्यो धनुरप्रनिर्भिन्नगलः सोऽपि मृतः । ततोऽतिगृध्नुता
 त्वया त्पाया (३) । इति श्रुत्वा कुमारश्चित्तपित्वा सूक्तं प्रवक्ष्यति—
 चतुर्मूर्गसमायोगदेशमध्ये सुग्रहं रनराशिं प्राप्य पथिको मूर्खस्तदात्मना
 दायकेनापि कारणेन गतः पुनर्वनादागत्य स देशः तं रनपुत्रं किं पुनः
 लभते तथा गुणमाणिक्यसचयं दुष्प्रापमगृह्यन् ससारसमुद्रे कथं पुनः
 प्राप्नुयात् (४) । तदा मल्लिच्छोऽन्यदन्त्यायसूचनमुपाख्याय ब्रुविष्यति—
 कश्चिच्छृगालो मुखस्थितं मांसपिण्डं मुक्त्या संकीडमानं मीनं भक्षितुं
 जले पपात । जलवेगबह्वप्रवाहेण प्रेर्यमाणो मृतः । मीनस्तु दीर्घायुः
 जलमध्ये सुखं तस्थौ । एवं शृगालवदतिलुब्धो मरिष्यति (५) । एवं
 मुह्यतस्करवाचं श्रुत्वा प्रत्यासन्नमुक्तिं कुमारो ब्रुविष्यति—कश्चिन्निद्रा
 लुको वणिक् निद्रामुखरतः परार्धरनगर्भनिजकच्छपुटं सुप्तः । चौरैः
 पङ्कते माणिक्यसचये तद्द्रुखेन दुर्मूर्तिर्मूर्तिं प्राप । तथापि जीवो विप्र
 यात्पमुखासक्तो रागचौरकैर्दर्शनज्ञानचारित्रत्नेष्वपङ्कतेषु निमूलं नश्यति
 (६) । दस्युरथ गदिष्यति—स्वमातुलानी दुर्वचनकोपेन वाचिकया
 तरुतले सर्वाभरणमण्डिता स्थिता । मरणोपायमजानती व्याकुलमना
 सुवर्णदारकेण पापिना मार्दङ्गिकेण दृष्टा । तदाभरणानि जिघृक्षुणा तस्या

लम्बनोपायं दर्शयामास । स्वकीयं मर्दले वृक्षतले समुद्रं संस्थापया-
 वभूव । तस्या गल्पाशदानशिक्षणार्थं मर्दलोपरि पादौ धृत्वा गले पाशं
 चकार । केनापि कारणेन मर्दले पतिते मार्दङ्गिकस्य गले पाशो लग्न-
 स्तेनायिडीभूतकण्ठः प्रोद्धतलोचनः शमैनमन्दिरं प्राप । कन्या तद्दृष्ट्वा
 मरणभयात् गृहमागता तथा कुमार ! त्वया लोमो हेयः (७) । इति
 तस्य धारजालमाकर्ण्य जम्बूनामा कुमारोऽसहमानस्तं प्रति भणिष्यति—
 कस्यचिद्राज्ञो महादेवी ललिताङ्गनामधेयं घूर्तविटं दृष्ट्वा मदनविह्वला
 संजाता । तस्य विटस्यानयननिरन्तरोपायनियुक्ता तद्भात्री तं गुप्तमानी-
 तयती । सा महादेवी यथा भर्ता न जानाति तथैकान्तप्रदेशे यथेष्टं तं
 रममाणा स्थिता । बहुभिर्दिनैः शुद्धान्तरिक्षकैः ज्ञाता राज्ञो ज्ञापिता च ।
 उपपत्यपनयनोपायमजानतः परिसारिकास्तं खलं नीत्वा वस्करगृहे निक्षि-
 तवत्यः । स तत्रातिदुर्गन्धेन ताकीटैश्च दुःखं प्राप । पापोदयेनात्रैव नर-
 कायासं प्राप्तः । तद्दृष्ट्वा सुखाभिलाषिणो जीवस्यातिघोरनरकादिषु महापदो
 भवन्ति (८) । कुमारः पुनरप्येकं प्रपञ्चं कथयिष्यति येन ध्रुतेन सतां
 लघु संसारनिर्वेगो भवति । जीवोऽयं पथिकः संसारकान्तारे भ्राम्यन्
 मृत्युमत्तगजेन जिघांसुना रूपानुयातोऽतिभीरुः पलायमानो मनुष्यत्व-
 तत्त्वान्तराहितस्तम्बे कुलगोत्रादिविचित्रब्रह्मीसमाकुले जन्मकूपे पतित
 आयुर्वह्नीलग्नकायः सितासितदिवसानेकमूपिकोन्विद्यमानतद्ब्रह्मीकः सत-
 नरकप्रसारितमुखसप्तसर्पनिकटः तद्दृष्टेष्टार्थपुष्पोत्पन्नमुखमधुरसलालस-
 स्तद्ग्रहणोत्पापितसमुप्रापन्मक्षिकामक्षितः तत्सेवासुखं ह्यात्वा सर्वोऽपि
 विषयलपटो दुर्बुद्धिर्जीवति तथा धीमान् दुर्बहं तपोऽनुर्वजत्यक्तसग कथं
 वर्तते । इति तस्य वचनमाकर्ण्य माता कन्याश्चौरश्च संसारशरीरभोगेभ्य-

तिरिरागत्वं यास्यन्ति । तदान्वकार निराकृत्य कोक प्रियया कुमार दाक्षयेव
 योजयन् निजकरै समाक्रम्य कुमारस्य मन कमलमिव रजयन्नुदयाद्रे
 शिखरे रविस्तपसि कुमार इवोदप्यति । सर्पसन्तापकारी तीक्ष्णकरोऽ-
 नवस्थित क्रूरो दिवानुबलयन्वसी तदा सूर्य कुनृपस्योपमा धरिष्यति ।
 नित्योदयो बुधाधीशोऽखण्डविशुद्धमण्डल प्रवृद्ध पद्मालादी सुराजन
 वार्ज्यमाजेष्यति । अस्य कुमारस्य बान्धवा भवैमुख्य निज्जाय कुणिपमहा-
 राजश्रेणयोऽष्टादशापि देवोऽनामृतश्च सर्वे सगम्य मगलजलैरभिषेक
 करिष्यन्ति । अथ कास्ता अष्टादशश्रेणय—सेनापतिर्गणको राज-
 श्रेष्ठी दण्डाधिपो मन्त्री महत्तरो बलवत्तर चन्वारो वर्ण चतुरङ्ग बलं
 पुरोहितोऽमात्यो महामान्य इति । असौ कुमारस्तत्कालोचितवेषो देवनि-
 मिता शिविकामारुध भूरि भूत्या उच्चैरिपुलाचलशिखरे स्थित मा महा-
 मुनिभिर्निषेधित समम्पत्य भक्त्या त्रि परीत्य यथानिधि प्रणम्य वर्ण-
 व्रजसमुत्पन्नैर्भूयोभिर्विनयैर्विधुञ्जीरेण तत्पचशतसेवकैश्च सम सुधर्म-
 गणधरपादमूले समचित्त सयम ग्रहीष्यति । द्वादशवर्षान्ते मयि मोक्षं
 गते मुधर्मा केवली भविष्यति जम्बूनामा श्रुतकेवली भविष्यति । ततो
 द्वादशवर्षपर्यन्ते सुधर्मणि निर्माण गते जम्बूनाम्न कैरलज्ञानमुत्पत्स्यते ।
 जम्बूनाम्न, शिष्यो भवो नाम चत्वारिंशद्वर्षाणीह भरतक्षेत्र निहरिष्यति ।
 तदाकर्ण्य श्रेणिके स्थितेऽनामृता देवो मदीयप्रशस्येद् माहात्म्यमुद्धृतमी-
 दृशमयत्र न दृष्टमित्युच्चैरानन्दनाटक दृष्ट्वा श्रेणिक उवाच कस्मादनेन-
 वधुत्वमस्य देवस्येति ? भगवान् गौतमो वमाण जम्बूनाम्नो वशे पूर्व धर्म-
 प्रियश्रेष्ठी गुणदेवी श्रंष्टिनी । तयोरहंदास सुतो धनयौवनमदेन पितु
 शिक्षामगणयन् कर्मशशात् सतव्यसनेषु निरकुशो जम्बू । निजदुरा-

चारेण दरिद्री सजात । पश्चादुत्पन्नपश्चात्तापो भपितु शिक्षा मया न
 धृता, उत्पन्नशमभाव किञ्चिपुण्यमुपाज्यनावृतनामा व्यन्तरो जात,
 तत्र समुत्पन्नसम्पत्त्वसम्पदिति बधुता प्रीतिरस्य । अथ श्रेणिक
 प्राह—स्वामिनयं विद्यु-माळी देव कस्मादागत, किं पुण्यं पूर्वभवे कृत-
 वान्, अस्य प्रभा आयुरन्तेऽप्यनाहतेति । तदनुग्रहबुद्धयैव भगवान्
 गीतम प्राह—अत्र जम्बूद्वीपे पूर्विदेहे पुष्कलावतीविषये वीतशोकपत्तने
 महापद्मो राजा । तमहादेवी वनमाला । तयो सुत शिवकुमार नव-
 यौवनसम्पन्न सनयोभिर्वने निहत्य पुनरागच्छन् गन्धपुष्पादिमंगलद्र-
 व्योत्तमपूजया सह जनानागच्छतो दृष्ट्वा समुत्पन्नविस्मयो बुद्धिसागरमेत्रिण
 पुत्रं किमेतदिति पप्रच्छ । सप्राह—कुमार ! शृणु—सागरदत्तनामा मुनीन्द्र-
 धृतकेरली दीप्ततपोमण्डिता मासोपवासपात्रार्थं पुत्रं प्रविष्ट । कामसमुद्रो
 नाम श्रेष्ठी विविर्पूर्वक भतया दान दत्वा पचाश्वर्यं प्रार्थ्य तेनोपन्न
 कौतुका पौरास्तं मनोहरोद्यानवासिनं पूजयित्वा यदिदं परमभक्त्या
 यान्तीति । शिवकुमार प्राह—अयं सागरदत्तारूपां सश्रुतां निविधर्द्धीक्ष कथं
 प्राप । मत्रिपुत्रोऽपि यथा श्रुतं तथा प्राह पुष्कलावतीविषये पुण्डरीकिणी
 नगरी, तस्या पतिश्चक्री वज्रदत्त । तस्य महादेवी यशोधरा गर्भिणी
 समुत्पन्नदौहदा । सा सीतासागरसगमे महाविभूत्या गत्वा महाद्वारेण समुद्रं
 प्रविष्टा । जटकेलीविधाने जलजानना वासननिर्वृतिं पुत्रं प्राप । तेन
 हेतुनास्य सर्वाभय सागरदत्तारया चक्रुः । अथ सागरदत्त परिप्राप्त-
 यौवन स्वपरिवारमण्डितो हर्म्यलले स्थितो नाटकं पदपन्ननुकूला-
 द्यनाम्ना चेतकनोक्त । हे कुमार ! त्वमाश्वर्यं पश्य मेर्वाकारोऽयं

१ य पुस्तकेऽस्य स्थाने प्राप्तेनेति पाठ सोऽप्यशुद्धोऽवभाति । अतो
 स्य स्थाने प्राप्त इति प्राप इति वा पाठेन भवितव्यम् । २ पुत्रयिदु इति ख.
 पुस्तके । एतदेव सम्यग्भाति । ३ नोत्रिण ।

मेघस्तिष्ठति । त मेघ लोचनप्रियं सोऽमुखो निरीक्षितुमैहिष्ट । त मेघ-
स्तत्काल एव नष्ट । सागरदत्तश्चिन्तयामास यौवन धन शरीरं
जीवितमन्यच्च सर्वं वस्तु विनश्यत् वर्तते यथाय मेघ इति निर्वेग गत ।
अपरेऽधुर्मनोहरोद्याने धर्मतीर्थनायकममृतसागर नाम तीर्थं कर वज्रदत्तेन
निजवप्रा सह वन्दितुमित । तत्र धर्मं श्रुत्वा निश्चितसर्वस्थिति-
सर्वबन्धुविसर्जनं कृत्वा बहुभी राजभि सम सयम जग्राह । मन पर्य-
यद्विसम्पदं प्राप्य धर्मोपदेशेन देशान् विहृत्यात्र धीतशोकपुरमागत ।
इति मन्त्रिपुत्रवचनानि श्रुत्वा शिवकुमार प्रीतमना स्वयं च
गत्वा मुनिवरं स्तुत्वा धर्माभृतं ततः पीत्वा जगाद । भगवन् !
भयं तं दृष्ट्वा मम महान् क्रोधः सजातः । तत्र कः प्रत्यय इत्यपृच्छत् ।
भगवान् सागरदत्तं प्राह—अत्र जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे मगध-
देशे वृद्धग्रामे राष्ट्रकूटो नाम धणिकः । तस्य भार्या रेवती । तयोर्द्वौ
पुत्रौ भगदत्तभवदेवौ । तयोर्मध्ये भगदत्तः सुस्थितनामगुरुं नत्वा दीक्षां
जग्राह । विनयात्प्रितो गुरोणा सह नानादेशान् विहृत्य स्वजन्मग्राम-
माजगाम । तदा तद्वान्धवा सर्वेऽपि हर्षमाणा समेत्य मुनिं सुस्थितं
प्रदक्षिणीकृत्य संपूज्य चागन्तुमुद्यताः । तत्रैव ग्रामे दुर्मर्षणो नाम
गृहपतिः । तस्य नागवसुभार्या । तयोः पुत्री नामध्री । सा विदि-
पूर्वकं भवदेवाय ताम्पाददे । भगदत्तागमनं श्रुत्वा भवदेवोऽपि त्रिबु-
र्वाणोऽत्रागत्य भगदत्तं विनयात्प्रणम्य तद्वत्ताशीर्वादिनाद्रितमनास्तस्थि-
वान् । भगदत्तो धर्मस्वरूपं ससारवैरूप्यं व्याख्याय गृहीतकर एकांते
भ्रातः । त्वया सयमो गृहीतव्य इत्याह । भवदेव उवाच—नागध्रीमोक्षण
विधाय भयं तं उदितं करिष्यामि । भगदत्त उवाच—हे भ्रातः । ससारे
जायादिपाशबद्धो जीव कथमात्महितं करोति परित्यज मोहमेतमिति ।
तदा भवदेव उत्तरमपश्यन् ज्येष्ठानुरोधेन दीक्षायां गतिं निदधौ । भग-

दत्त स्वगुरुसुरितसमीप त नीत्वा ससारच्छेदनार्थं मोक्षीं दीक्षां मेक्षु
 ग्राहयावभूय । सत्ता सौंदर्यमीदृग्भवति । भवदेवो द्रव्यसयमी मूत्वा
 गुरुभि सम द्वादशवर्षाणि विद्वत्पापरेषुविधौरसहायो निज वृद्धमाम गत्वा
 सुव्रता गणिभीं समीक्ष्य ता ग्राह-हेऽम्ब ! काचिन्नागश्रीर्नाम काचि-
 दस्ति । सा तस्येद्वित स्नात्वा जगाद-मुने ! तद्बुद्धतमह सप्यम वेदेति ।
 तदौदासीन्य प्राप्त ॥ सयमे स्थिरीकर्तुं गुणवृत्त्यार्यिका प्रलि अर्धा-
 ख्यानक जगात् । सर्वसगृह्यनामा वैश्य , तदासीमुतोऽशुचिर्दारुकाभिधेय
 स्वमात्रा प्रोचे-अस्मच्छ्रेष्ठपुच्छिष्ठभोजन तु त्वयाऽशनीयमिति । निर्बन्धा-
 द्भोजित । स शुगुप्तया वा तवान् । तत् कसपात्रेण धृत्वाऽऽप्यथ
 धृत । दातक पुनर्धुमुशु स्वमानर भोजन यथावे । तथा तत्क
 सपात्रे वातभृतमुपहौकित । क्षुत्पीडितोऽपि ॥ आत्मवान्त न
 जग्राह । सोऽशुचिरपि चेत्तादृशस्तर्हि साधु कथं त्यक्तमभीप्सतांति (१) ।
 गुणवति ! पुनरेकमर्थाख्यानक निज मनो निश्चल कृत्वा एव शृणु ।
 भरपालनामा नरेन्द्र एक श्वान कुतूहलेन मृष्टान्नेन सपोष्य कनकामरण-
 भूपितं सदा वनक्रीडादौ सुवर्णरचिता शिविकाप्रासेष्यैव मन्दमतिस्तम-
 पाळयत् । एकदा शिविकारूढ सरमासुतो गच्छन् बालविष्टामालोक्य
 तामालेदुमापपात । तद्दृष्ट्वा राजा लज्जुटीताडनेन तमपाचकार । तथा
 पुत्रि ! साधु सर्वेषां श्वनीय पूर्वत्यक्त पुनर्वाञ्छन् परामन प्राप्नोति
 (२) । हे गुणवति ! पुनरेका कथा शृणु-कचित्कोपि पथिकस्तद्वनान्तरे
 सुगन्धिफलपुष्पादिसेवया युतस्त तरु त्यक्त्वा स-भार्गं विहाय महाटवी-
 सकटे पतित । तत्र जिघामुक जगूरं दृष्ट्वा ततो भीत्वा धायन्नेकस्मिन्
 भीमे कूपे विभ्यत् पपात । तत्र पापाञ्छीतादिभिर्दोषत्रयसमवे बाणदृष्टि-

श्रुतिगतिप्रभृतिहीन सर्पादिग्राधानिकट तस्मान्निर्गमनोपायमजानन्त स
 कोऽपि भिषगरो यदृच्छया गच्छन् दृष्ट्वा दयार्द्रचित्त केनाप्युपायेन
 महादराभिष्काश्य मत्रौपधिप्रयोगेण विहितचरणप्रसारण सूक्ष्मरूपसमा-
 छोकनोर्माडितनेत्र स्फुटाकर्णन निज्ञाननिजशक्तिरुर्णयुगल व्यक्त-
 वाक्प्रसरसयुक्तजिह्व स चकार । पुन सर्वरमणीय पुर तन्मार्गदर्शनेन
 प्रस्थापयामास । निर्मलहृदया कस्योपकार न निदधु । पुन स विप-
 यासक्तमति पथिकदुर्मति प्रकटीकृतदिग्भागमोह प्राक्तनकूपकसंग्राह्य
 तस्मिन् पुन पतित तथा कचित्ससारे मिथ्यात्वादिकपचोप्रव्याधयो
 दीप्युपागता जन्मकूपे क्षुधादाहाचार्त्तमङ्गिन वीक्ष्य गुरु स-मतिर्न्यो
 दयालुत्वाद्धर्माख्यानोपायपण्डितस्तस्मान्निर्गमय्य जिनरागौपधिनिषेवना
 (णा) त् सम्यक्त्वलोचनमुमीक्ष्य सम्यग्ज्ञानश्रुतियुगलमुद्घाटय्य
 सद्वृत्तपादौ प्रसारितौ विधाय दयामयी जिह्वा व्यक्तां विधाय
 विधिपूर्वं पञ्चप्रकारस्वाध्यायवचनानि ॥ वादयित्वा स्वर्गापवर्गयोर्मार्गं
 सुधी साध्वगमयत् । तत्र केचिदीर्घससारा स्वपापोदयात् भ्रमरा इव
 सुगन्धिवधुरोद्विन्नचम्पकसर्मापवर्तिनस्तस्तौगन्ध्यामवोचरहिता पार्श्व-
 स्थाख्या सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रसमीपवर्तनात्, क्रोधादिकपायस्पर्शा-
 दिविषयलौकिकज्ञानचिकित्सादिकुञ्जाना जिह्वायामष्टधा स्पर्शेषु च
 लम्पना दुराशया कुशीलनामान, निषिद्धेषु द्रव्येषु भावेषु च लोलुपा
 संसक्ताब्धया, हीयमानज्ञानादिका अपसानसज्ञा, समाचारवहिर्भूता मृग-
 चर्पानामवेयका महामोहा निवृत्त्या कृत्वा आजनजवाऽस्तावकूपे पेतुर्निप-
 तन्ति च (३) । भवदव इति श्रुत्वा सम्प्राप्तशान्तभावो बभूव । मुद्रता
 गणिनी सर्वार्पणिसरी तद्विज्ञाय दारिद्र्योत्पादितदौस्थ्यत्या नागश्रियमा-
 नाय्य त दर्शयामास । भवदेवोऽपि तां दृष्ट्वा संसारस्थितिं स्मृत्वा धि-

गिति निन्दित्वा पुनः संयमं गृहीत्वाऽऽयुःप्रान्ते भ्रात्रा भगदत्तेन सह
 आराधनां शिष्याय । समाधिना मृत्वा माहेन्द्रकल्पे बलभद्रविगाने सामा-
 निको देवः सप्तसागरोपमायुर्वभूव । अहं भगदत्तचरः सागरदत्तश्चक्रिसुतः
 संजातः । त्वं भवदेवचरः शिवकुमारोऽत्र बभूविष्य । स इति श्रुत्वा संता-
 राद्विरक्तो दीक्षां गृहीतुमुद्यक्तो बभूव । वनमालया मात्रा महापद्मेन पित्रा
 च वारितो धीतशोकं नगरं प्रविश्य संजातसंवित् अप्राप्तुकाहारं नाहरिष्या-
 मीति व्रतं गृहीत्वा स्थितः । एतावतीदीक्षां विना प्राप्तुकाहारः कुतः ?
 भूपस्तद्वार्तां श्रुत्वा प्राह—यः कोऽपि शिवकुमारं भोजयति तस्मै संप्रा-
 र्थितमहं दास्यामीति सभायां घोषयामास । तद्विज्ञाय सप्तस्थानसमाश्रयो
 दृढधर्मनामा श्रावकः समागत्य शिवकुमारं प्राह । अथ कानि तानि सप्त-
 स्थानानीति चेत्—

सञ्जातिः सद्गृहस्थत्वं पारिव्राज्यं सुरेन्द्रता ।

साम्राज्यं परमार्हन्त्यं निर्वाणं चेति सप्तधा ॥ १ ॥

अथ दृढधर्मा किं प्राहेति चेत् ? हे कुमार ! तत्र ज्ञातयः तत्र
 शत्रवः पापस्य कारणं स्वपरघातका वर्तन्ते । तेन त्वं भावसंयममघा-
 तमकृत्वा तत्र प्रामुक्ताशनं संपाद्य पर्युपासनमहं कुर्वे । बन्धुवियोगं
 विना सयने प्रवृत्तिस्तथापि दुर्लभेति हितं वचनं जगाद च । सोऽपि
 तद्विदित्वा आचाम्लनिर्विकृतिरसरहितभोजनं सन् दिव्यस्त्रीसन्निधौ
 स्थित्वापि सदा विकाररहितमना स्त्रियस्तृणाय मन्यमानः खड्गतीक्ष्ण-
 धारायां संवर्तमानो द्वादशसंवत्सरांस्तपः कृत्वा सन्यासं गृहीत्वा जीवि-
 तान्ते ब्रह्मेन्द्रनीधि कल्पे विष्णुमाली देहदीप्तिव्यासदिक्कटो देवो
 बभूव । विष्णुमालिन एवाष्टदेव्योऽत्रागत्य जम्बूनाम्नः तत्र चतस्रो

भार्या पद्मवनकमिनिरूपश्रियो भूत्वा निजमर्त्रा सह दीक्षित्वाऽच्युत-
कल्प गत्वा स्त्रीलिङ्गच्युता देवा भूत्वा पद्मादत्रागत्य मोक्षं यास्यन्ति ।
सागरदत्तनामा स्वर्गं गत्वात्रागत्य निर्वाणं यास्यति । इति जम्बूस्वामि-
चरित्रं श्रुत्वा श्रेणिको जहर्ष ।

इति श्रीभार्याप्राभृते शिरकुमारकथा समाप्ता ।

अगाहं दस य दुष्णि य चउदसपुब्बाहं सयलमुयणाणं ।
पडिओ' अ भव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥ ५२ ॥

अङ्गानि दश च द्वे च चतुर्दशपूर्वाणि सकलश्रुतज्ञानम् ।

पठितं भव्यसेन न भावश्रवणत्वं प्राप्तं ॥

अगाहं दस य दुष्णि य अङ्गानि दश च द्वे च अङ्गे । चउदस-
पुब्बाहं चतुर्दशपूर्वाणि सकलश्रुतज्ञान । पडिओ अ पठितं । भव्व-
सेणो भव्यसेननामा मुनि । ण भावसवणत्तणं पत्तो भावश्रवणत्वं न
प्राप्तं । जैनसम्यक्त्वं विनाऽनन्तससारी यमूवेति भावार्थः । अत्र भव्य-
सेनो मुनिरेकादशाङ्गानि शब्दतोऽर्थतश्च पठितं तद्बलेनैव द्वादशस्या-
ङ्गस्य चतुर्दशपूर्वाणां चार्थपरिज्ञायकत्वात् श्रीकुन्दकुन्दाचार्येण सकल-
श्रुतमधीतं प्रोक्तमिति ज्ञातव्यं सकलश्रुतेऽधीती ससारे न पततीत्या-
गमः । भव्यसेनस्य कथा यथा—निजयार्द्धगिरौ दक्षिणश्रेणौ मेघवूटपत्तने
राजा च द्रुप्रभः सुमतिमहादेवीकातध्वन्द्रशेखराय राज्यं दत्त्वा
परोपकारार्थं जिनमुनिवन्दनाभक्त्यर्थं च काश्चन विद्या दधानो दक्षिण-
मथुरामागत्य मुनिगुप्ताचार्यसमीपे क्षुल्लको जातः । स एकदा जिनमु-
निवन्दनाभक्त्यर्थमुत्तरमथुरां चलिता सन् श्रीमुनिगुप्तमाचार्यं पप्रच्छ—
किं कस्य वध्यत इति । गुप्त उवाच—मुत्रतमुनेर्नमोऽस्तु वरुणमहा-

१ यो मूलगाथापाठः । २ यः पुस्तके तु पूर्वत एव अभव्यसेन इति नाम
कृतं, रत्नकरणकटीकायामत्र च पठ्यात् ।

राजमहादेव्या रेवत्या धर्मवृद्धिरिति वक्तव्यं त्वया । एव त्रीन् वारान्
 पृष्टो मुनिस्तदेवोवाच । क्षुल्लुक स्वगत एकादशाङ्गधारिणो भव्यसेना-
 चार्यस्यान्येषा च नामापि भगवान् नादत्ते तत्र प्रत्ययेन भवितव्यमिति
 विचार्य तत्र गत । सुव्रतमुनेर्महारकीया वन्दना कथयित्वा तदीय
 विशिष्ट वात्सल्यं च दृष्ट्वा भव्यसेनवसतिं जगाम । तत्र भव्यसेनेन
 संभाषणमपि न कृतं । कुण्डिका गृहीत्या भव्यसेनेन सह बहिर्भूमिं
 गत्वा त्रिकुर्बणा कृत्वा हरितकोमलतृणाङ्कुरच्छत्रो मार्गं दर्शित । त
 मार्गं दृष्ट्वा भव्यसेन आगमे किलैते जीरा कथ्यन्ते इति भणित्वा
 आगमेऽर्चि कृत्वा तृणानामुपरि गत । शौचसमये कुण्डिकाजलं शोष-
 यित्वा क्षुल्लुक उवाच—भगवन् ! कुण्डिकायामुदकं नास्ति तथा विठ्ठलि-
 श्लेष्टिकादिका कापि नाहमीक्षे । अतोऽत्र निर्मलसरोजरे मृत्स्रया शौचं
 कुरु । ततस्तत्रापि तथैव भणित्वा शौचं चकार । ततस्तं मिथ्यादृष्टिं
 द्रव्यलिङ्गिनं ज्ञात्वा भव्यसेनस्याभव्यसेनोऽयमिति नापातरं चकार ।
 ततोऽन्यदिने पूर्वस्या दिशि पद्मासनस्थ चतुर्वक्त्रमुपवीतदर्भमुजीदण्ड-
 कमण्डलुप्रभृतिसहित देवदानवबन्धमानं ब्रह्मरूपं दर्शयामास । तत्र राजा-
 दयो भव्यसेनादयश्च गता । रेवती कोऽयं ब्रह्मनाम देव इति भणित्वा
 लोकैः प्रेरितापि तत्र न गता । अन्यास्मिन् दक्षिणस्या दिशि गरुडारूढं
 चतुर्भुजं चक्रशङ्खगदादिधारकं वामुदेवरूपं दर्शयामास । पश्चिमदिशि
 वृषभारूढं सार्वभौमजटाजूटगौरीगणोपेतं शंकररूपं, उत्तरस्या दिशि
 समवशरणमध्ये प्रातिहार्याष्टकसहितं सुरनरविद्याधरमुनिवृन्दबन्धमानं
 पर्यंकस्थं तीर्थंकररूपं दर्शयति स्म । तत्र सर्वे लोका गच्छन्ति स्म ।
 रेवती तु लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता । नैव वासुदेवा, एकादशैव
 रुद्रा, चतुर्विंशतिरेव तीर्थंकरा निनागमे प्रतिपादितास्ते तु सर्वेऽ-

प्यतीता । कोऽप्यय मायावी वर्तते इति विचिन्त्य स्थिता । ब्रह्मा तु कोऽपि नास्ति । उक्तं च—

आत्मनि मोक्षे ज्ञाने वृत्ते ताते च भरतराजस्य ।

ग्रहोति गी प्रगीता न चापरो विद्यते ब्रह्मा ॥ १ ॥

अन्यस्मिन् दिन चर्यानेलाया व्याधिपीडितक्षुल्लकरूपेण रेवतीगृहसमीप-
प्रतोलीमार्गे मायामूर्च्छया पतित । रेवती तदाकर्ण्य भक्त्योत्थाय
नीत्वोपचारं कृत्वा पथ्य विधापयितुमारेभे । स च सर्वमाहार भुक्त्वा
दुर्गवचनं चकार । तदपनीय हा ! विरूपक पथ्य मया दत्तमिति
रेवतीवचनमाकर्ण्य प्रतोपा-मायामुपसहस्य ता देवीं वदित्वा गुरोराशी-
र्षाद पूर्ववृत्तान्तं च कथयित्वा लोकमध्ये तस्या अमूढदृष्टिमुच्चैः प्रशस्य
स्वस्थानं चद्रप्रभो जगाम । वरुणमहाराजस्तु शिवकीर्तये निजपुत्राय
राज्यं दत्त्वा दीक्षामादाय माहेन्द्रकल्पे देवो बभूव । रेवती तु तप कृत्वा
ब्रह्मकल्पे देवो बभूव ।

इति श्रीभानुप्राभृते भव्यसेनमुनिकथा समाप्ता ।

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुमानो य ।

णामेण य सिग्भूर्ध्वं केवलणाणीं फुडं जाओ ॥ ५३ ॥

तुपमाय घोषयन् भावविगुद्धो महानुभावश्च ।

नाम्ना च शिवभूति केवलज्ञानी स्पृष्ट जात ॥

तुसमासं घोसंतो तुपमायशब्द घोषयन् पुन पुनरुच्चारयन् मा वि-
स्मृतिं यासीदिति कारणात् । भावविसुद्धो भावविशुद्ध । महाणुमानो
य महानुभावश्च महाप्रभाययुक्तश्च । णामेण य सिग्भूर्ध्वं नाम्ना च शिव-
भूति चकारादर्थेन च शिवभूति शिवाना सिद्धाना भूतिरैश्वर्य अनन्तचतु-
ष्टयलक्षण त्रैलोक्यनायकत्व यस्य स भवति शिवभूति । केवलणाणीं
फुडं जाओ केवलज्ञानी केवलज्ञानवान् लोकप्रकाशकपञ्चमज्ञानवान्

सुट शक्रादिदेवै प्रकटीकृतघातिक्षयजातिशयदशक सर्वप्रसिद्ध सजात इति । अस्य कथा यथा—कश्चिच्छिन्नभूतिनामासनभव्यजीव परमनैराग्य यान् कस्यचिद्गुरो पादमूले दीक्षा गृहीत्वा महातपश्चरण करोति पट्ट-प्रवचनमात्रमात्र जानाति पर वैदुष्य किमपि तस्य नास्ति । आमानं शरीरकर्मचयाद्भिन्न जानाति । तेदप्रथ नायाति गुरणा प्रोक्त दृष्टान्त पुन पुनस्तीक्ष्णी करोति तुपाभासो भिन्न इति यथा तथा शरीरादात्मा भिन्न इति । त शब्द घोषयन्नपि कदाचिद्विस्मृतवान् । अर्थ जानन्नपि शब्दं न जानाति । एकाकी विहरति च । शब्दविस्मरणकृशावर्ती काचि-द्युवति पटकादिफपचनार्थ मापान् तूपीकृतान् जलमध्येऽपवितास्तुपेभ्यो भिन्नान् पुर्व्वर्ती दृष्ट्वा पृष्ठवान्—किं कुरूपे भवति ! इति । सा प्राह—तुप-मापान् भिन्नान् करोमि । स आह मया प्राप्तमिति कचिद्गत । ताव न्मात्रद्रव्यभावध्रुतेनात्मन्येकलोलीभावं प्राप्तोऽतमुद्धर्तेन केवलज्ञानं प्राप्य नवकेवललब्धिमान् देशान् निहृत्य भव्यजीवाना मोक्षमार्गं प्रदर्श्य मोक्षं गत इति ।

इति आभाषप्राभूते शिवभूतिमु-पुपारयानं समाप्त ।

भावेण होइ णगो बाहिरलिगेण किं च नग्गेण ।

कम्मपयडीण णियर णासइ भावेण दब्बेण ॥ ५४ ॥

भावेन भवति नग्नं बहिरलिगेन किं च नग्गेन ।

कर्मप्रकृतीनां निरुद्धं नश्यति भावेन दब्बेण ॥

भावेण जिनराजसम्यक्त्वेन । होइ णगो भवति नग्नो निप्रथ-स्वरूप । बाहिरलिगेण किं च नग्गेण बहिरलिगेन किं च बाह्यन प्रतया न किमपि मोक्षलक्षणं कार्यं सिद्धयति पश्यामि । कम्मपय-

डीण णियेर कर्मप्रवृत्तीना निकर समूह अष्टचत्वारिंशदधिकशतसं-
ख्याना वृन्द । णासइ भावेण दब्बेण नश्यति भावेन द्रव्येण चेति ।
ये मिथ्यादृष्टयो गृहस्था अपि सतोऽस्माक भावो निचते इति वदन्ति
स्त्रीभि सह ब्रह्मचर्यं च भजति ते लोलीका चार्वाकसदृशा नास्तिकास्त-
न्मतनिरासार्थमिदं वचनमुक्तं श्रावु दकुन्दाचार्यस्वामिभि “ णासइ
भावेण दब्बेण” भावेणै-कर्मक्षयो भवति भावपूर्वकद्रव्यलिङ्गेन गृहीतेन
द्वान्या भावद्रव्यलिङ्गाम्या कर्मप्रवृत्तिनिकरो नश्यति न त्वेकेन भाव-
मात्रेण द्रव्यमात्रेण वा कर्मक्षयो भवति । इति व्याख्यानबलेन ते
नास्तिका पूर्ववच्छिक्षणीया इति भागार्थः ।

णग्गत्तण अकज्जं भावणरहिय जिणेहि पण्णत्तं ।

इय णाउण य णिच्च भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥ ५५ ॥

नग्नत्वं अकार्यं भावरहितं जिनैः प्रशस्तम् ।

इति ज्ञात्वा च नित्यं भावयेत् आत्मानं धीरः ॥

णग्गत्तण अकज्जं नग्नत्वं सर्वग्राह्यपरिग्रहरहितत्वं अकार्यं सर्वकर्म-
क्षयलक्षणमोक्षकार्यरहितं । कथभूतं नग्नत्वं, भावणरहियं जिणेहि
पण्णत्तं भावनारहितं पञ्चपरमेष्ठिबाह्यभावनारहितं निजशुद्धबुद्धै-
कस्वभावात्मातरङ्गभावनारहितं च जिनेस्तीर्थंकरपरमद्वैतनगरके-
वलिभिर्गणधरदेवैश्च प्रशस्तं प्रणीतं प्रतिपादितं कथितं भणितमिति
यावत् । इय णाउण य णिच्च इति ज्ञात्वा विज्ञाय नित्यं
सर्वकालं । भाविज्जहि अप्पयं धीरं भावयेत्स्व आत्मानं वहिस्तस्य च
हे धीरः ! योगीश्वरः ! इति सम्बोधनपदनं धेयं प्रति धियमीरयति प्रेर-
यति इति धीरा योगीश्वरा एव प्राह्या न तु गृहस्थवेषधारिणः पापिष्ठ-

१ नियट् टीकापाठः । २ नासइ टीकापाठः । ३ भावेणेति पाठः स पुस्तके
नास्ति ।

लौका । गृहस्थानां सम्पत्त्वपूर्वकमणुवतेषु दानपूजादिलक्ष्णेषु गुरुणा
वैपाकृत्यसफलेषु नियोगो ज्ञातव्य इति । तथा चोक्तं लक्ष्मीचन्द्रेण गुरुणा—

वैयोवधे विरहिउ वयनियरो वि ण जाइ ।

सुखसरहो किह हसउ लुजतउ धरणाइ जाइ ॥ १ ॥

तं भावलिंगं केरिसं हवदि तं जहा—

तद्भावलिङ्गं कीदृशं भवति तद्यथा—तदेव निरूपयन्ति भगवन्तः—

देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो ।

अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साह ॥ ५६ ॥

देहादिसंगरहितं मानकसार्थं सकलपमित्यक्तं ।

आत्मा आत्मनि रतः स भावलिंगी भवेत् साधु ॥

देहादिसंगरहिओ देह शरीरं स आदिर्येषां पुस्तकमण्डलुपि-ठ-
पदशिष्यशिष्याछात्रादीनां कर्मनोकर्मद्रव्यकर्मभारकर्मदीनां संगानां
चेतनाचेतनरहिरगन्तरंगपरिग्रहाणां ते देहादिसंगाः । अथवाऽऽत्म-
भाषया—

क्षेत्रं वास्तु धन धान्यं द्विपदं च चतुष्पदं ।

द्विरण्यं च सुवर्णं च कुप्यं भाउं वादिदंश ॥ १ ॥

मिथ्यात्ववेदहास्यादिषट् कथायचतुष्टयं ।

रागद्वेषी च सगाऽस्युरन्तरङ्गाश्चतुर्दश ॥ २ ॥

इति श्लोकद्वयकथितक्रमेण चतुर्विंशतिपरिग्रहास्तेभ्यो रहितो देहा-
दिसंगरहितः । माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो मानकसार्थं सकल-

परित्यक्त मनोवचनकायै रहित । अप्या अप्पम्मि रओ आत्मा आत्मनि
रत । य एव निघ स भागलिङ्गी हवे साहू स साधुर्भागलिङ्गी भवेत् ।

ममत्तिं परिवज्जामि निम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।

आलंरणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ॥ ५७ ॥

ममत्व परिवर्जामि निममत्वमुपस्थित ।

आलम्बन च मे आरमा अवशेषाणि व्युत्सृजामि ॥

ममत्तिं परिवज्जामि ममत्व ममता ममेदमहमस्येति भाव परिव-
र्जामि परिहरामि । निम्ममत्तिमुवट्ठिदो निर्ममत्वमिति भावमुपस्थित
आश्रित । आलंरणं च मे आदा यथेव ममत्व परिहरसि निषेधं
करोषि तर्हि क विधिं श्रयसि “एकस्य निषेधोऽपरस्य विधिः” इति वच-
नात् द्वयमत्रेति पृष्टे उत्तरं ददाति आलम्बनं चाश्रयो मे मम आदा
आत्मा निजशुद्ध्युद्भैकजीवपदार्थ इति विधिः । अवसेसाइं वोसरे
अवशेषाणि आत्मन उद्धरितानि रागद्वेषमोहादीनि व्युत्सृजामि
परिहरामि ।

आदा सु मज्झणाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।

आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥ ५८ ॥

आत्मा खलु मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चरित्ते च ।

आत्मा प्रत्याप्याने आत्मा मे संवरे योगे ॥

आदा सु मज्झणाणे आत्मा निजचैतन्यस्वरूपो जीवपदार्थः सु-
स्पष्ट मम ज्ञाने ज्ञानकार्ये, ज्ञाननिमित्त ममात्मैव वर्तते नान्यत्किमपि
ज्ञानोपकरणादिकं पुस्तकपट्टिकादिकमिति भावः । आदा मे दंसणे
चरित्ते य आत्मा मे दर्शने सम्यक्त्वे सम्यग्दर्शनकार्ये नान्यत्किमपि

तीर्थयात्राजिनप्रतिष्ठाशास्त्रश्रवणवन्दनस्तवनादिक, इत्यादि सम्यक्त्वोप-
त्तिकारण । चरित्रे च ममात्मैव चारित्रकार्ये ममात्मैव वर्तते न तु
नानाविकल्परूप व्रतसमितिगुप्तिधर्मानुप्रेक्षापरीपहजयादिकमाद्यवनिरोध-
लक्षणभावसवरनिमित्त । आदा पञ्चस्याणे आगामिदोषनिराकरणलक्षण
प्रत्याख्यानं प्रत्याख्याननिमित्त ममात्मैव वर्तते । आदा मे संजरे जोगे
आत्मा मे मम सवरे सजरनिमित्त कर्मोत्पत्तिनिरोधलक्षणसंजरकार्ये ममात्मैव
वर्तते । योगस्य ध्यानस्य कार्ये ममात्मैव वर्तते इति भाव ।

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो ।

सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥ ५९ ॥

एको मे शाश्वत आत्मा ज्ञानदर्शनलक्षण ॥

शेषा मे बाह्य भावा सर्वे संयोगलक्षणा ॥

एगो मे सस्सदो अप्पा एको मे शाश्वत आत्मा अयत्सर्वं त्रि-
श्वरमित्यर्थ । स आत्मा कथभूत, णाणदंसणलक्खणो निधयेन केव
लज्ञानकेवलदर्शनलक्षण, व्यवहारेणाधनिधज्ञानचतुर्विधदर्शनचिह्न,
मतिश्रुताबाधिमन पर्ययकेवलानि सम्यग्ज्ञाने पञ्चविध कुमतिकुश्रुतविभ-
गलक्षण मिथ्याज्ञान त्रिविध, इत्यष्टभेदा ज्ञानस्य । चक्षुर्दर्शनमचक्षुर्दर्शन-
मवधिदर्शनं केवलदर्शनं चेति चतुर्विध दर्शन, इति द्वादशभेद उपयोगौ
जीवस्य व्यवहारभूत लक्षण । सेसा मे बाहिरा भावा शेषा ज्ञानदर्श-
नद्वयाद्वहिर्भूता पुत्रकलत्रमित्रादय पदार्थावाद्या भावा पदार्था भवन्ति ।
सव्वे संजोगलक्खणा सर्वे संयोगलक्षणा संयोगेन कर्मोदयेन मिलिता
इत्यर्थ ।

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धनिम्मलं चेय ।

लहु चउगइ चइउणं जइ इच्छह सासयं सुखं ॥ ६० ॥

भावयत भावशुद्ध आत्मानं सुविशुद्धनिर्मलं चैव ।

लघु चतुर्गतिं त्यक्त्वा यदि इच्छत शास्वतं सुखम् ॥

भावेह भावसुद्धं भावयत यूय कथं ? यथा भवति भावसुद्धं—
भावशुद्ध परिणामस्य निष्कृष्टित्वं मायामिथ्यानिदानशून्यत्रयरहितत्वं
यथा भवत्येवं आत्मानमर्हत्सिद्धादिकं च हे भव्या ! भावयत ।
“हजित्वा मध्यमस्य” इति सूत्रेण तस्थाने ह । अप्या सुविशुद्धनि-
र्मलं चैव आत्मानं सुविशुद्धनिर्मलं चैव । आत्मानं कथंभूतं, सुविशु-
द्धनिर्मलं सुष्ठु अतिशयेन विशुद्धं कर्ममलकलंकरहितं निर्मलं रागद्वेषमो-
हमलरहितं । लघु चउगइ चइऊणं लघु शीघ्रं चतुर्गतिं त्यक्त्वा प्रमुच्य ।
जइ इच्छह सासयं सुखं यदि चेत्, इच्छत यूय शाश्वतमविनश्वर
सौख्यं परमानन्दलक्षणमिति ।

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो ।

सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ॥६१॥

यो जीवो भावयन् जीवस्वभाव सुभावसयुक्तः ।

स जरामरणविनाशं करोति स्फुटं लभते निर्वाणम् ॥

जो जीवो भावंतो यो जीव आसन्नभव्यः भावतो-भावयन्
भवति । क भावयन् भवति ? जीवसहावं जीवस्वभावमात्मस्वरूपं
अनन्तज्ञानानन्तदर्शनानन्तरीर्यानन्तसुखस्वरूपं केवलं केवलज्ञानमयं
वा आत्मानं । कथंभूतः सन्, सुभावसंजुत्तो शोभनपरिणाम-
सयुक्तो रागद्वेषमोहादिविमानपरिणामरहितः । सो जरमरणविणासं
कुणइ फुडं स जीवोऽन्तरात्मा भेदज्ञानरलेन जरामरणविनाशं करोति
पुनर्जराजीर्णो न भवति न च म्रियते, कथं ? फुट्ट-स्फुट निश्चयेन
तीर्थकरो भवति । लहइ णिव्वाणं लभते किं निर्वाणं सर्वकर्मक्षय-
लक्षणं मोक्षं अनन्तसुखं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

जीवो जिणपणत्तो णाणसहाओ य चेयणासाहिओ ॥
सो जीवो णायव्वो कम्मकसयकारणणिमित्ते ॥ ६२ ॥

जीवो जिनप्रज्ञप्त ज्ञानस्वभाव चेतनासहित ।
स जीवो ज्ञातव्य कर्मक्षयकारणनिमित्ते ॥

जीवो जिणपणत्तो जीव आत्मा जिनप्रज्ञप्त श्रीमद्भगवद्दर्शितवर्ज-
वीतरागेण प्रणीत. कथित. । जीवो नास्तीति ये चूर्वाककुशिष्या वदन्ति
तन्मतमनेन पदेन निरस्तं भवतीति ज्ञातव्य । तथा चोक्त—

तदर्हजस्तनेहातो रक्षोदृष्टेर्भयस्मृतेः ।
भूतानन्वयनाज्जीवः प्रकृतिज्ञः सनातनः ॥ १ ॥

कथभूत प्रणीत, णाणसहाओ य ज्ञानस्वभावो ज्ञानस्वरूप. ।
तथा चोक्त—

विभायसीरिषोणत्वं घट्पयोरिव चापल ।
शशाङ्कस्येव शीतत्वं स्वरूप ज्ञानमारमनः ॥ १ ॥

इत्यनेन ये साख्या, कापिला सत्कार्यापरनामानो मिथ्यादृष्टयो
वदन्ति "जीव. खलु मुक्तः सन् बाह्यप्राप्तरहितो भवति" तन्मतं
निराकृतं भवतीति वेदितव्य । तथा चोक्त—

कपिलो यदि बाष्पञ्छति वित्तिमचिति सुरगुरुगौर्गुक्तेष्वेव पतति ।
क्षितन्यं बाह्यप्राप्तरहितमुपयोगि कस्य वद तत्र विदित ॥ १ ॥

चेयणासाहिओ चेतनासहित प्रतिपद्विराजमान इत्यनेन
लोकायतगत निरस्तमिति ज्ञातव्य । एवं गुणविशिष्टेन जीवेन किं कार्यं
भवतीति पर्यनुयोगे सतीदं प्राहुः—सो जीवो णायव्वो स जीवः

स आत्मा ज्ञातव्य । कम्मवस्यकारणणिसित्ते कर्मक्षयकारणनिमित्ते कर्मणा ज्ञानानरणदर्शनानरणवेदनीयमोहनीयायुर्नाभगोत्रान्तरायाणां समूलकाप वपणे जीवपदार्थ एव समर्थ इति ज्ञातव्यं । अनन्तसौख्यदानहेतुरात्मेति भाव ।

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य मव्वहा तत्थ ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमतीदा ॥ ६३ ॥

येषां जीवत्वभावो नास्ति अभावश्च सर्वथा तत्र ।

ते भवन्ति भिन्नदेहा सिद्धा वचोगोचरातीता ॥

जेसिं जीवसहावो येषामासन्नभव्याना जीवत्वभाव आत्मत्वभाव आत्मनोऽस्तित्वमस्ति । णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ नास्त्यभावश्च सर्वथा तत्र । तत्रात्मनि अभावश्च नास्ति “अस्त्यात्मानादियद्ध ” इति वचनात् । ते होंति भिण्णदेहा ते पुरुषा भवन्ति भिन्नदेहा शरीरहिता । सिद्धा वचिगोयरमतीदा ते पुरुषा किं भवन्ति सिद्धा सिद्धिस्वात्मोपलब्धिर्निघते येषां ते सिद्धा प्रज्ञादित्वादस्त्यर्थेऽणूप्रत्यय । कथभूता सिद्धा, वचोगोचरातीता याचा गोचरत्वे गम्यत्वेऽतीता अगम्या वक्तुं न शक्यन्ते—तसदृशानां केवलज्ञानिनां गम्या इत्यर्थः ।

अरममरुममगंधं अव्वत्तं चेयणागुणसमदं ।

जाणमलिगमहणं जीवमणिदिट्ठसंठाणं ॥ ६४ ॥

अरममरूपमण-धमव्यक्त चेतनागुणसमार्द्र ।

जानीहि अष्टिद्वप्रहण जीवमनिर्दिष्टसंस्थानं ॥

अरसं मधुसाम्लकटुतिक्तकषायपचरसरहितं हे जीव । त्वं जीवं जानीहि ।
अरुचं श्वेतर्पातहरितारुणकृष्णलज्जणपचम्परहितं जीवमात्मानं जानी-

हीति दोषकं सम्बन्धनीयं । अगंधं सुरभिदुरभिलक्षणगन्धद्वयवर्जितं जीव-
पदार्थं जानीहि । अव्यक्तं अव्यक्त इन्द्रियानिन्द्रियाणामगोचरत्वाद-
स्पुटं, केवलज्ञानिना व्यक्तं स्पुटं जीवतत्त्वं हे जीव ! भेदज्ञानसमृद्धा-
न्तरात्मन् ! जानीहि । निषेधं कृत्वा विधिं दर्शयन्ति—चेयणागुण-
समृद्धं चेतनागुणेन ज्ञप्तिमात्रेण सम्यक्प्रकारेणार्द्रं परिणतं । समिद्धमिति
पाठे चेतनागुणेन ज्ञानगुणेन समृद्धमिति व्याख्येयं । जाणमेलिगगहणं
जाण जानीहि त्वं हे जीव ! अलिगप्रहणं स्त्रीपुंनपुंसकलिगत्रयप्रहणं
स्वीकारस्तेन रहितं जीवमात्मानं विदाकुरु । न्यवहारनयेन यद्यपीयं स्त्री
अयं पुमान् इदं नपुंसकमिति भण्यते तथापि निश्चयनयेनात्मा शुद्धबुद्धै-
कत्वभावो न लिगत्रयवानिति । जीवमणिदिष्टसंठाणं जीवमात्मानं,
अनिर्दिष्टसंस्थानं न निर्दिष्टानि जिनागमे प्रतिपादितानि संस्थानानि
पडाकृतयो यस्येति अनिर्दिष्टसंस्थानस्त जानीहि । अथ कानि तानि,
संस्थानानि यान्यात्मनो निश्चयनयेन नैव वर्तन्ते इति चेत् ? तन्नाम-
निर्देशः क्रियते—समचतुरस्रसंस्थानं (१) न्यग्रोधपरिमण्डलसंस्थानं (२)
स्वात्पपरनामवाल्मिकसंस्थानं (३) कुञ्जकसंस्थानं (४) वामनसंस्थानं
(५) हुंडकसंस्थानं चेति (६) नामानुसारेण शरीराकारो ज्ञातव्य इति
सात्पर्यं ।

भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं ।

भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहमायणो होइ ॥ ६५ ॥

भावय पञ्चप्रकारे ज्ञानं अज्ञाननाशनं शीघ्रम् ।

भावानाभावितसहितः दिवसिवसुहमाजनं भवति ॥

भावहि पंचषयारं भावय त्व हे जीव । पचप्रकारं पंचरिधं । किं ?
 णरणं सम्यग्ज्ञानं । कथभूते ज्ञाने, अज्ञाननाशनं अज्ञानस्याविवेकस्य
 नाशनं विघ्नसकं । कथ भावय, मिथं शीघ्रं लघुतया । भावण-
 भावियसहिओ भावना रुचिः तस्या भावित वासित तेन सहितः संहितः
 पुमान् सयुक्तो जीवः । दिवसिवसुहभायणो होइ दिवः स्वर्गस्य, शिव-
 स्य मोक्षस्य, सुखस्य परमानन्दलक्षणस्य, भाजनममत्र, भवति सजायते ।
 पंचज्ञाननिरतरतत्त्वार्थतात्पर्यवृत्तौ प्रथमाध्याये ज्ञातव्यः । मतिध्रुताव-
 धिमन पर्ययनेष्वलानि ज्ञानमिति नामनिर्देश ।

पट्टिण वि किं कीरइ किं वा सुणिण भावरहिण ।

भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ॥ ६६ ॥

पठितेनापि किं क्रियते किं वा श्रुतेन भावरहितेन ।

भावः कारणभूत सागारानगारभूतानाम् ॥

पट्टिण वि किं कीरइ पठितेन ज्ञानेन किं क्रियते-किं स्वर्गमोक्षं
 विधीयते-अपि तु न क्रियते इत्यर्थः । अपिशब्दादपठितेनापि अनम्य-
 स्तेनापि जिह्वाप्रेऽकृतेनापि ज्ञानेन स्वर्गो मोक्षश्च क्रियते इत्यर्थः । किं वा
 सुणिण वा-अथवा श्रुतेनाकर्णितेन ज्ञानेन किं ? न किमपि, स्वर्गश्च
 मोक्षश्च न भवतीत्यर्थः । कथभूतेन पठितेन श्रुतेन च, भावरहिण
 भावरहितेन । भावो कारणभूदो भाव आत्मरुचिः जिनसम्यक्त्वकारण-
 भूतो हेतुभूतः । सायारणयारभूदाणं सागारानगारभूतानां श्रावकाणां
 यतीनां चेति तात्पर्यम् ।

दब्बेण सयलनग्गा नारयतिरिया य सयलसंधाया ।

परिणामेण असुद्धा ण भावसणत्तणं पत्ता ॥ ६७ ॥

द्रव्येण सकलनग्ना नारकतिर्यञ्चच्च सकलसंघाता ।

परिणामेन असुद्धा न भावव्यवणत्व प्राप्ता ॥

द्रव्येण सयलनग्ना द्रव्येण बाह्यकारणन सकला सर्वे जीवा नग्ना वज्रादिरहिता । के ते, नारय नारका संसाधोभूमिस्थितचतुरशीति-
शतसहस्रविलसजातसत्त्वा । तिरिया य तिर्यचश्च पशवो जाया नग्ना
एव भवन्ति । तथा सयलसंघाया नारकाणां तिरश्चा च सर्वे समूहा ।
अथवा सकलसंघाता स्त्रीभि सह मिलिता कमनायकामिनीभिरालि-
गिता सर्वे पुरुषसमूहा अपि द्रव्येण नग्ना निर्वह्यसदिका भवन्ति । कथं
भूतास्ते, परिणामेण असुद्धा परिणामेन मनोव्यापारेणाशुद्धा रागद्वेष-
मोहादिकदमलिता । न भावव्यवणत्तत्वं पन्था भावव्यवणत्व परिणाम-
दिगम्यत्व न प्राप्ता न कर्मक्षयलक्षणमोक्षनिरीक्षा यभूवुरिति पूर्वसम्बन्ध ।

नग्नो पावइ दुक्खं नग्नो संसारसागरे भमइ ।

नग्नो न लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइर ॥ ६८ ॥

नग्नं प्राप्नोति दुःखं नग्नं संसारसागरे भ्रमति ।

नग्नो न लभते बोधिं जिनिभावणावर्जित ॥

नग्नो पावइ दुक्खं नग्नं पुमान् प्राप्नोति लभते, किं ? दुःखं छे-
दनभेदनशूलारोपणयत्रपीठनक्ककचनिदारणभ्राष्ट्रक्षेपणतमलोहपुत्तलिका
लिगनवैतरणीनिदीविशेषमज्जनकूटशाल्मलिघर्षणासिपत्रवनच्छायाविनेशन-
शारीरमानसागम्यत्वात् नरकेषु तिर्यक्षु कुमनुष्येषु कुदेवेषु च दुःखं
प्राप्नोतीत्यभिप्रायः श्रीकुन्दकुन्दाचार्याणां । नग्नो संसारसागरे भमइ
(नग्नं संसारसागरे भ्रम्यति) मज्जनोन्मज्जनं करोति । नग्नो न लहइ
बोहिं नग्नो जीवो बोधिं रत्नत्रयप्राप्तिं न लभते—अनन्तानन्तसंसारे पर्य-
टितोऽपि जन्मशतसहस्रकोटिभिरपि सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षका-
रणानि न प्राप्नोतीत्यर्थः । कथंभूतो नग्नः, जिणभावणवज्जिओ सुइरं

जिनस्य श्रीमद्भगवदहर्त्सर्गब्रवीतरागस्य सम्प्रधिनी या भावना सम्यक्त्वं
तथा यज्जिओ-वर्जित । कथं, सुइर-सुचिरमतिदीर्घकाळ । तथा चोक्तं—

कांलु अणाइ अणाइ जिउ भवसायरु वि अणतु ।

जीवे चेण्णि न पत्ताइ जिणुसामिउसमत्तु ॥ १ ॥

इति व्याख्यानं ज्ञात्वा सम्यग्दर्शने दृढभावेन कर्तव्येति भागार्थः ।

अयमाण भायणेण य किं ते णग्गेण पायमलिणेण ।

पेसुण्णहासमच्छरमायावहुलेण सवणेण ॥ ६९ ॥

अयशसां भावेन च किं ते नग्गेन पायमलिनेन ।

पैशून्यहास्यमन्तरमायावहुलेन धवणेन ॥

अयसाण भायणेण य अयशसामपकीर्तिना भाननेनामत्रेणाधार-
पात्रेण । किं ते णग्गेण पायमलिणेण हे जीव ! ते तत्र नाग्न्येन
नम्रत्वेन किं—न किमपि, स्वर्गमोक्षकार्यरहितेन वृथत्यभिप्रायः । कथंभू-
तेन नाग्न्येन, पायमलिनेन पापमलिनेन कश्मलिना । अथवा पापेति
पृथक्पदं तेनायमर्थः रे पाप ! पापमूर्ते दिग्भ्रमरवेणानीयक ! मलिनेन
अतिचारानाचारातिश्रमव्यतिश्रमसहितेन नाग्न्येन किं न किमपि । तथा
चोक्तं समासीकिना गुणभद्रेण भगवता—

हे चन्द्रम ! किमिति एण्णुनघानभूस्स

तद्धान् भवे किमिति तम्मय एव नाभू ।

किं उयोत्तनया मण्णमल्ल तव घोपयन्त्या

स्सर्मानुपन्ननु तथा सति नासि एहस्य ॥ १ ॥

कथंभूतेन तत्र नाग्न्येन, पेसुण्णहासमच्छरमायावहुलेण सवणेण
पैशून्यहास्यमन्तरमायावहुलेन । पैशून्यं परदोषप्रदर्शनं । उक्तं च—

१ कालाऽनादि अनादिः जीव भवमागरोऽपि च अवमत्तः ।

जीवेन हे न मासं जिनस्त्वामिसम्यक्त्वम् ॥

२ म टी

मा भवतु तस्य पापं परहितनिरतस्य पुरुषसिंहस्य ।
यस्य परदोषकथने जिह्वा मौनघटं चरति ॥ १ ॥

हास्यं च वर्करः । मत्सरश्च परोपां शुभद्वेषः । उक्तं च—

उद्युक्तस्थं तपस्विन्नधिकमभिभवं त्वय्येगच्छन् कृपायाः
प्राभूद्दोषोऽप्यगाधो जलमिव जलघौ किं तु दुर्लभ्यमन्यैः ।
निर्व्यूढेऽपि प्रधाहे सलिलमिव मनाग्निमन्देशेष्यवश्यं
मात्सर्यं ते स्वतुल्ये भवति परवशाद्भुज्यं तज्जहीहि ॥ १ ॥

माया च परवचना । उक्तं च—

यशो मारीचीयं फलकभृगमायामलिनितं
दूतोऽश्चर्यामोक्षया प्रणयिलघुरासीद्यमसुतः ।
सकृष्णः कृष्णोऽभूत्कपट्यद्भुवेपेण नितरा—
मपि कृच्छ्राख्यं तद्विषमिष हि दुग्धस्य महतः ॥ १ ॥

पैशून्पहास्यमात्सर्यापावहुलं तेन तद्योक्तेन । पुन कथंभूतेन नाग्नेन,
श्रवणेन निरन्तरसम्बन्धिना नानाधर्ममिषोपार्जितद्रव्येण । अथवा सवनेन
धनवाससहितेन । तथा चोक्तं—

यनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां
गृहेऽपि पंचेन्द्रियनिप्रदस्तपः ।
अकुत्सिते वरमनि यः प्रवर्तते
विमुक्तरागस्य गृहं तपोधन ॥ १ ॥

पयडर्हि जिणवरलिंगं अन्मतरभावदोषपरिसुद्धो ।
भावमलेण य जीवो बाहिरसंगमि मयलियद् ॥ ७० ॥

प्रवटय जिणवरलिंगं अभ्यन्तरभावदोषपरिसुद्धः ।
भावमलेन च जीवो बाह्यमद्रे मलिनः ॥

पयडहिं जिणवरलिङ्गं हे जीव ! हे आत्मन ! प्रकटय जिनवरलिङ्गं
 पूर्वं जिनवरलिङ्गं त्वं घर नमो भव । पथात्कथंभूतो भव, अर्द्धिभतर-
 भावदोसपरिसुद्धो अभ्यन्तरभावेन जिनसम्यक्त्वपरिणामेन कृत्वा दोष-
 परिशुद्धो दोषरहितो भव । अयमत्र सात्पर्यं द्रव्यलिङ्गं विना भावलिङ्गी-
 सन्नपि मोक्षं न लभत इत्यर्थः, शिवकुमारो भावलिङ्गी भूत्वापि स्वर्गं गतो
 न तु मोक्षं, जम्बूस्वामिभवे द्रव्यलिङ्गी अतिकष्टेन संजातस्तस्मिन्
 सति भावलिङ्गेन मोक्षं प्राप । भावमलेण य जीवो भावमलेनाप-
 रिशुद्धपरिणामेन जिनसम्यक्त्वरहिततया । बाहिरसंगमि मयंलियइ
 बाह्यसंगे सति मइलियइ—मलिनो भवति सम्यक्त्वं विना निग्रन्थोऽपि
 सप्रन्थो भवतीति भावार्थः । स्याद्भावेन मोक्षो द्रव्यलिङ्गापेक्षत्वात्,
 स्याद्द्रव्यलिङ्गेन मोक्षो भावलिङ्गापेक्षत्वात्, स्यादुभयं क्रमार्पितोभयत्वात्,
 स्यादवाच्यं युगपद्भक्तुमशक्यत्वात्, स्याद्भावलिङ्गं चावक्तव्यं च, स्याद्द्रव्य-
 लिङ्गं चावक्तव्यं च, स्यादुभयं चावक्तव्यं चेति सप्तभंगी योजनीया ।
 तथा चेत्—

पयोयतो न दध्यत्ति न पयोत्ति दधिघृतः ।

अगोरसघृतो नोमे तस्मात्तत्त्वं त्रयात्मकं ॥ १ ॥

धम्मम्मि निप्पवासो दोसावासो य उच्छुक्कुलसमो ।

निष्फलनिग्गुणयारो नटसवणो नगरूवेण ॥ ७१ ॥

धर्मे निग्रवासो दोषावासश्च इक्षुपुष्पसमः ।

निष्फलनिर्गुणकारो नटश्रवणो नगरूपेण ॥

धम्मम्मि निप्पवासो धर्मे दयालक्षणे चारित्रलक्षणे आत्मस्वरूपे
 उत्तमक्षमादिदशलक्षणे च । तदुक्तं—

धम्मो यत्थुसहावो यमादिभावो य दसविहो धम्मो ।

चारित्तं खलु धम्मो जीवाण य रक्खणो धम्मो ॥ १ ॥

एवमुक्तलक्षणे धर्मे निष्पवासो—निरतिशयेन प्रयासः प्रगतवाप्तः उद्वस इत्यर्थः । दोसावासो य दोषाणा मयातिचाराणामावासो निवासः । उच्छुक्लसमो इक्षुपुष्पसमः इक्षुपुष्पसदृशः । निष्कलनिगुणयारो निष्कलो मोक्षरहितः, निर्गुणो ज्ञानरहितः । यथा इक्षुपुष्पं निष्कलं फलरहितं भवति सत्यविवर्जितं स्यात् तथा निर्गुणं गन्धहीनं भवति तथा परमार्थरहितो दिग्भरो ज्ञातव्यः । तथा निर्गुणकारः परेषा गुणकारको न भवति सम्बोधको न स्यात् । नडसवणो नमगरूपेण नम्ररूपेण कृत्वा नटश्रवणः नर्मसचिवसदृशः । स लोकरजनार्थं नम्रो भवति तथा-यमपि । इति व्याख्यानं ज्ञात्वा सम्यक्त्वे ज्ञाने चारित्र्ये तपसि च दृढतया स्यात्तव्यः ।

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वनिगंथा ।

न लहंति ते समाहिं वोहिं जिणसासणे विमले ॥ ७२ ॥

ये राजसंगयुक्ता जिनभावनरहितद्रव्यनिर्ग्रन्थाः ।

न छिन्वन्ते ते समाधिं वोधिं जिनसासने विमले ॥

जे रायसंगजुत्ता ये मुनयो रागेण स्त्रीप्रीतिलक्षणेन, सगेन परिग्रहेण युक्ता भवन्ति । अथवा रागेण संग स्त्रीगमनं कुर्वन्ति । अथवा राजसंगः बर्हद्वायनां त्यक्त्वा राजसेवां कुर्वन्ति राजमेवायुक्ता भवन्ति जिणभावणरहियदव्वनिगंथा जिनभावनारहितद्रव्यनिग्रन्थाः, जिते भावना रुचिर्येषां नास्ति ते जिनभावनारहितास्ते च ते निग्रन्था नम्ररूपधारिणो जिनभावनारहितद्रव्यनिग्रन्थाः । अथवा जिनस्य भावना तीर्थकरनामकर्मोपाजनप्रत्ययभूता दर्शनविशुद्ध्यादयो भावनाः षोडश ताभ्यो रहिताः । जिनसम्यक्त्वसहिता व्यस्ताः समस्ता वा भावनास्तीर्थ-

करनामकर्मदायिका भवति । दर्शननिशुद्धिरहिता अपरा पञ्चदशापि
भावनान्स्तीर्णकरनामकर्म नार्पयति । तथा चोक्त—

एषापि समर्थेय जिनमक्तिर्दुर्गतिं निवारयितु ।

पुण्यानि च पूरयितु दातु मुक्तिर्धिय हृतिन ॥ १ ॥

अथवा द्रव्यनिग्रहा—बहुनिघघर्मभिषेण द्रव्यमुपार्नयति ये ते
द्रव्यनिग्रहा कथ्यन्ते । न लहन्ति ते समाहिं ते मुनय समाधि
रत्नत्रयपरिपूर्णानां धर्म्यशुद्ध्यान्त्यद्वयं वा न लभन्ते न प्राप्नुवन्ति । बोद्धिं
जिणसासणे विमले बोधि सम्पददर्शनज्ञानचारित्र्यलक्षणां न लभन्ते न
प्राप्नुवन्ति जिनशासने श्रीमद्भगवद्दर्शनसंज्ञनीतरागमते । कथंभूते, विमले
पूर्वापरविरोधविनर्जिते कर्ममलकलङ्कक्षयहेतुभूते वा ।

भावेण होइ नगो मिच्छत्ताइं य दोस चइउणं ।

पच्छा दब्बेण मुणी पयडदि लिगं जिणाणाए ॥ ७३ ॥

भावेन भवति नग्न मिष्यात्वादीध दोषान् त्यक्त्वा ।

पश्चाद्द्रव्येण मुनिः प्रकटयति लिङ्ग जिनाज्ञया ॥

भावेण होइ नगो भावेन परमधर्मानुरागलक्षणजिनसम्यक्त्वेन
भवति, कीदृशो भवति ? नग्न वस्त्रादिपरिग्रहरहित । किं कृत्वा पूर्वं,
मिच्छत्ताइं य दोस चइउणं मिष्यात्वादीध दोषोऽस्त्यक्त्वा मिष्यात्वा-
विरतिप्रमादकपाययोगलक्षणास्त्रयद्वाराणि त्यक्त्वा । पच्छा दब्बेण मुणी
पश्चात् भावलिङ्गधारणादनन्तरं मुनिर्दिगम्बर । पयडदि लिगं जिणा-
णाए प्रकटयति सुनीकरोति, किं तत् ? लिङ्ग—जिनमुद्रा, कथा ।
जिणाणाए—विनस्याज्ञया जिनसम्यक्त्वेन सम्यक्त्वध्वान्त्वेणति धीर्ज्ञा-
पुरन्त्यायेनोभय सलभं ज्ञानम् । भावलिङ्गो द्रव्यालिङ्गं द्रव्यालिङ्गेन
भावलिङ्ग भवतीत्युभयमेव प्रमाणीकर्तव्यं । एकान्तमनेन तेन सर्वं नष्टं
भवतीति वेदितव्यं । अलं दुराग्रहणेनि ।

भावो वि दिव्यसिवसुखभायणो भाववज्जिओ सवणो ।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो ॥ ७४ ॥

भावोपि दिव्यशिवसुखभाजन भाववर्जित श्रवण ।

कर्ममलमलिनचित्त तिर्यंगालयभाजन पाप ॥

भावो वि दिव्यसिवसुखभायणो इति विपुलनाम—गाथालक्षण ।
भावोऽपि, अपिशब्दाद्द्रव्यलिंगमपि । दिव्य दिवि भवं दिव्य सौधर्मेशान-
देवीरतिक्रम्यान्यतरमर्हद्विफदेवसुखं सौधर्माद्युत्तस्वर्गपर्यन्तं मुख द्रव्य-
लिंगमनन्तरेण भावनीय । तद्युक्तद्रव्यलिंगेन सर्वार्थसिद्धिपर्यन्तं सुखं
ज्ञातव्य । कस्यचिद्भव्यस्य भागलिंगमन्तरेण द्रव्यलिंगेन नवप्रैवे
यकपर्यन्तं पुन पुनर्भेषपातहेतुभूतं सुखं ज्ञातव्य । तेनास्य पादस्य
पुनरर्थं प्रकाश्यते । भावोऽपि दिव्यशिवसौख्यभाजन स्वर्गमोक्षसौख्य
भाजनं । भाववज्जिओ सवणो भाववर्जित श्रवणा जिन-
सम्यक्त्वरहितो दिग्गम्बर । कम्ममलमलिणचित्तो कर्ममलन अतिचा-
रानाचारातिक्रमव्यतिक्रमचेष्टितोपार्जितपापेन दोषेण मलिनचित्तं मलिनं
मलदूषितं चित्तगंगा यस्य स भवति कर्ममलमलिनचित्त । तिरि-
यालयभायणो पावो तिर्यंगालयभाजन तिर्यंगातिस्थान भवति, पाप
पापात्मा विचित्रमतिनाममन्त्रिपुत्रवत् ।

सयरासरमणुयकरजलिमालाहिं च संथुया विडला ।

चक्कररायलच्छी लब्धेइ बोही ण भव्वणुआं ॥ ७५ ॥

१ सयरासरमणुयाण अजलिमात्राहि च पुस्तके पाठ ।

२ सुभावेणेति पाठांतरं । च पुस्तके च ।

३ अस्माद्गायाम्नाइम च पुस्तके इमे गायाम्नाइ सगुणलभ्येते । मुद्रित
पुस्तके च । न चोपलभ्येते च न इति प्राचीनलिखितमूलपुस्तके । क ख इति
टीका पुस्तके च न स्त एव । टीकापत्रयोर्नास्ति । ते च च पुस्तकोक्तटीका-
सहिते अत्र लिख्येते । (अग्रतनपृष्ठे)

खचरामरमनुजानाम् कञ्जलिमालाभिः सस्तुता विपुला ।

चक्रधरराजलक्ष्मी लभ्यते बोधि न भव्यनुतां ॥

खयरामरमणुयकरजलिमालाहि च इयमपि विपुला गाथा ज्ञातव्या । अस्या अयमर्थः—खचरामरमनुजकराञ्जलिमालाभिश्च खे चरन्त्याकाशे गच्छन्तीति खचरा त्रियाधरा उभयश्रेणिसम्बन्धिनः, न त्रियते बहुकालेन प्रच्यवन्तेऽमरा न्य तरदेया, मणुय—प्रतिश्रुत्यादिभ्यो जाता मनुजा, खचरामरमनुजास्तेषां कराञ्जलयः करकुञ्जलानि तेषां मालाभिः श्रेणिभिश्च । संश्रुया—सस्तुता । चक्रवर्तिना च तथा मण्डले-
श्चरमहामण्डलेश्चरार्धमण्डलेश्चराणां राज्ञा लक्ष्मी चक्रधरराजलक्ष्मी ।
लक्ष्मेर्ह बोही ण भव्यनुता एतादृशी लक्ष्मीर्निभूतिर्लभ्यते प्राप्यते जीवनेति, बोही ण—पर बोधिर्नलभ्यते । कथभूता बोधि, भव्यनुता

भाव त्रिविधप्रकार सुहासुह सुदमेव ज्ञातव्यः ।

असुह अहरउह सुह धम्म जिनवरिदेहि ॥ १ ॥

भाव त्रिविधप्रकार शुभोऽशुभ शुद्ध एव ज्ञातव्यः ।

अशुभ आर्तरीह शुभ धम्म जिनवरेन्द्रे ॥

टीका—भाव त्रिविधप्रकार शुभ अशुभ शुद्ध एव निश्चयेन ज्ञातव्यः । अशुभ आर्तरीह । शुभ धर्मध्यान जिनवरेन्द्रे वक्षितम् ।

शुद्ध शुद्धसहाय अप्पा अप्पमि त च ज्ञातव्यः ।

इदि जिनवरेहि मणिष १ सेय त समाचरह ॥ २ ॥

शुद्ध शुद्धस्वभाव आत्मा आत्मनि स च ज्ञातव्यः ।

इति निनवरै मणित यच्छेय तत् समाचर ॥

टीका—हे मुने ! शुद्ध निर्मल शुद्धस्वभाव त आत्मान आत्मनि ज्ञातव्यः । इति जिनवरैमणित वक्षितः । यच्छेय कल्याणकारि तत् समाचर कुर्विति ।

१ अस्य स्थाने मनुष्या इति ख पुस्तक पाठ । २ या टी ?

भव्यरपुण्डरीकै स्तुता प्रशसनीया । अथवा हे भव्यनुत ! आसन-
भव्यजीव ! त्वमिदं जानीह्यंति शेष ।

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो ।
पावइ तिहुयणसार बोही जिणसासणे जीवो ॥ ७६ ॥

प्रगलितमानकपाय प्रगलितमिथ्यात्वमोहसमचित्त ।
प्राप्नोति त्रिभुवनसारां बोधिं जिनशासने जीव ॥

पयलियमाणकसाओ प्रगलितमानकपायो मानकपापरहित ।
पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो प्रगलितमिथ्यात्वमोहसमचित्तो यद्वि-
परीत तमिमिथ्यात्वं, मोहो वैधित्य निर्णिवेकता पुत्रमित्रकलत्रादिजह ,
प्रगतौ विनाश प्राप्तौ मिथ्यात्वमोहौ यस्य स प्रगलितमिथ्यात्वमोह , सम
सर्वत्र तृणसुवर्ण—सर्पसृक्—शत्रुमित्र—सुखदुःख—वनभजन—पुरारण्यादिषु
समान चित्त मनो यस्य स समचित्त । पावइ तिहुयणसार प्राप्नोति
लभते । का, बोही बोधिं रत्नत्रयप्राप्तिं । कथभूता बोधि, तिहुयण
सार—त्रैलोक्योत्तमा । जिणसासणे जीवो जिनशासने सर्वज्ञवी
तरागस्वामिनो मते । मानमिथ्या वमाहरहितो जीवो बोधिं प्राप्नोतीति
जिनरचनं ज्ञातव्यमिति ।

विसयविरत्तो समणो छद्दसवरकारणां भाउणं ।
तित्थयरनामकम्भ उंघइ अइरेण कालेण ॥ ७७ ॥

विषयविरक्त भ्रमण षोडशवरकारणानि भावयित्वा ।
तीर्थवरनामकर्म संप्राप्तिं भविरेण कालेन ॥

विसयविरत्तो समणो विषयेभ्यः स्पर्शरसगन्धस्पर्शशब्देभ्यः
पञ्चेन्द्रियार्थेभ्यो विरक्तः पराङ्मुखः भ्रमणो दिग्भ्रमः, न तु

श्वेताम्बरादिक प्रयास्यानादिहान, तप इशसह श्रमण सव्यते
न तु बहुशरं जलस्य पाता भोजनस्य भोक्ता च । छद्सपर
कारणाद् भाऊण षोडशरकारणानि भावयिवा । तित्ययरनाम
कम्म घघद् तीर्थकरनामकर्म वध्नाति त्रिनवतितमीं प्रकृतिं स्वी
कराति यया त्रैलोक्य सचल्यति पादाध करोति । अहरेण कालेण
अचिरेण कालेन अतमुहूर्तसमयन, यया पचकल्याणलक्ष्मीं प्राप्नाति,
अनन्तकालमनन्तमुखमनुभवति, अनायासेन मोक्ष प्राप्नोति । अथ कानि
तानि षोडशकारणानि यैस्तीर्थकरनामकर्म वध्यत इति चदुध्यत—

‘ दर्शनविशुद्धिधिनयसम्पन्नता शीलप्रतेष्वनतिचारोऽभीक्षण
ज्ञानोपयोगसधेगौ शक्तितस्त्यागतपत्नी साधुसमाधिर्वैयाघ्र्य
करणमहदाचाययहुश्रुतप्रयचनभक्तिरायश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रमाथ
ना प्रयचनयसलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य

इयुमास्यामिसूरिणा प्रोक्त सूत्र । अस्यायमर्थ—इहलोकभय-परलो
कभय-वैदनाभय मरणभय आभरणक्षणीयैर्यदुर्गादिभावागुप्तिभय-अत्राणभ
यारक्षणभय विद्युपाताद्याकस्मिकभय इति सप्तभयरहितत्व नि शक्तित्वं
निग्रथलक्षणो मोक्षमार्ग इति जिनमत तथेति वा नि शक्तित्वं
(१) इहलोकपरलोकभोगोपभोगाकाक्षानिवृत्तिर्निष्काक्षित्वं (२)
शरीरादौ शुचाति मिथ्यासंकल्परहितत्वं निर्विचिकित्ता, मुनीना
रनत्रयमदितशरीरमलदर्शनादौ निशुक्लत्वं तत्र समादौभ्य वैयाघ्र्यविधानं
वाविचिकित्ता (३) परतन्त्रेषु मोहोऽज्ञकत्वममूढदृष्टित्वं (४)
उत्तमक्षमादिभिरामनो धर्मवृद्धिकरणं सधदोषाच्छादन चोपवृण
मुपगूहनं (५) कषायनिषयादिभिर्धर्मविष्वसकारणेषु सस्वपि धर्मप्रप्य
वनरक्षण स्थितिकरण (६) जिनशासने सदानुगता वा सत्यं (७)

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतपोभिरात्मप्रकाशनं शासनोद्योतकरणं वा प्रभा-
वना (८) एतैरष्टभिर्गुणैर्युक्तत्वं चर्मजलतेलघृतभूतनाशनाऽप्रयोग-
त्वं मूलकगर्जरसूरणकन्दगृजनपलाण्डुनिशदौग्धिककर्मलिगपचपुष्पसधान-
ककौसुभपत्रपत्रशाकमासादिभक्षकभाजनभोजनादिपरिहरणं च दर्शनवि-
शुद्धि (१) ज्ञानदर्शनचारित्र्येषु तद्वत्सु चादरोऽकपायता वा
विनयसम्पन्नता (२) निरवद्यावृत्तिः शीलव्रतेष्वनतिचार (३) सन्तत
ज्ञानस्योपयोगोऽभ्यास अभीक्ष्णज्ञानोपयोग (४) संसारान्नीराखं
सवेग (५) स्थशक्त्यनुरूप दान (६) मार्गाविरुद्ध कायक्लेश-
स्तप (७) मुनिगणतप सन्धारण साधुसमाधि (८) गुणवता
दुःखोपनिपाति निरवद्यावृत्त्या तदपनयनं वैयावृत्य (९) अर्हत्सु केव-
लिषु अनुरागो भक्ति (१०) आचार्येष्वनुरागो भक्ति (११)
बहुश्रुतेष्वनुरागो भक्ति (१२) प्रवचने जिनसूत्रेऽनुरागो भक्ति (१३)
सामायिक सर्वजीवेषु समत्व, चतुर्विंशतिजिनानां स्तुति स्तव कथ्यते,
एकजिनस्य स्तुतिर्नन्दनाभिधीयते, कृतदोषनिराकरणं प्रतिक्रमणं,
आगामिदोषनिराकरणं प्रत्याख्यानं । एकमुद्भृतादिषु शरीरव्युत्सर्जनं
कायोत्सर्गं एतेषां पण्णामावश्यकानामपरिहाणिरका चतुर्दशी
भावना (१४) ज्ञानादिना धर्मप्रकाशनं मार्गप्रभावना (१५) सध-
र्मणि स्नेहं प्रवचनवत्सलत्वं (१६) एतां षोडशभावनां समस्ता-
स्तीर्थकरनामकारणं दर्शनविशुद्धिसहिता व्यस्ता अपि तीर्थकरनामकारणं
भवतीति ज्ञातव्यं ।

चारसविहृतवयरणं तेरसकिरियाओ भाव तिविहेण ।

धरहि मणमत्तंदुरियं णाणांकुसएण मुणिर्यवर ॥ ७८ ॥

द्वादशविधतपश्चरण त्रयोदशक्रिया भावय त्रिविधेन ।

परमनोमतदुरित हानाद्भुजेन मुनिप्रवर । ॥

वारसविहतवयरण द्वादशविध तपश्चरण अनशनमुपवास , अवमो
दर्यमेकप्रासादिरल्पाहार , वृत्तिपरिसरयान गणितगृह्य भाजनं वस्तु
सरया वा, रसपरियाग पडसविवर्जनं, विविक्तपु जंतुस्त्रापशुनपु
सकरहितेषु स्थानपु शून्यागारादिषु आसन उपवशन शय्या निद्रा
स्थानं अरस्थानं वा विविक्तशय्यामन, कथंश जलीदनभोजनादि ।
इदं पङ्क्तिं वाह्य तप । वाह्य कस्मादिति चत् ? वाह्य भोजनादिकमपेक्ष्य
प्रवर्तते, परप्रत्यक्ष वा प्रवर्तते, परदशन पापङ्गिगृहस्थैश्च क्रियते
ततो वाह्यमुच्यते । एतस्मात्तपस कर्मदहन इन्द्रियतापकारि च
भवति । सयमो रागोच्छेद कर्मनाशो ध्यानादि आशानिवृत्ति शरीरते
जाहानि ब्रह्मचर्यं दुःखसहन सुखानभिष्वङ्ग आगमप्रभावनादिकं
च फल ज्ञातव्यं । पडविधमभ्यन्तरं तप , यत परतीर्थैरनालीढ स्वसंवेद्य
वाह्यद्रव्यानपेक्ष्य ततोऽभ्यन्तरं तप उच्यते । तर्हि ? प्रायश्चित्तविनय
वैयावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानलक्षण । तत्र नवविध प्रायश्चित्तं, चतुर्विधा
विनय , दशविध वैयावृत्य, पञ्चविध स्वाध्याय , द्विविधो व्युत्सर्ग ,
चतुर्विध ध्यान चेति पडविधमभ्यन्तरं तप इति द्वादशविध तप ।
किं तन्नवविध प्रायश्चित्तमिति चत् ? गुरास्त्रे स्वप्रमादनिषेदन दशदोष
रहितमालोचनं । के ते दशदाया आलोचनाया इति चेत् ?—

आकपिञ्च अनुमानिञ्च ज दिष्ट वाञ्छर च सुहृन् च ।

छन्नं सद्वाउलभ बहुजनमञ्चत्त तस्सेवी ॥ १ ॥

पुरुषस्यैव ते ह्याश्रयमालोचन, खियास्तु प्रकाशे व्याश्रयमालोचन,
महदपि तपश्चरणमालोचनरहित तप्रायश्चित्तमकुर्वतो वा अभीष्टफलद
न भवतीति ज्ञातव्य । द्रोपमुच्चार्योच्चार्य मिथ्या मे दुष्कृतमस्तु इत्ये-
वमादिरभिप्रेत प्रतीकार प्रतिक्रमण । एतत्प्रतिक्रमणमाचार्यानुहया
शिष्येणैव कर्तव्य । आलोचन प्रदाय प्रतिक्रमणमार्येणैव कर्तव्यं तत्त-
द्भुमयमुच्यते । शुद्धस्वाप्पशुद्धत्वेन यत्र सन्देहविपर्ययौ भवत, अशु-
द्धस्य शुद्धत्वेन निश्चयो या यत्र, प्रत्याख्यात यत्तद्वस्तु भाजने मुखे
वा प्राप्तं, यस्मिन् भस्तुनि गृह्णाति कपायादिकमुत्पद्यते तस्य सर्वस्य
स्पागो विवेक । नियतकालकायनाञ्जनसा त्यागो व्युत्सर्ग ।
तपो बाह्यं कथितमेव । दिनपक्षमासादिविभागेन दीक्षाहापन
छेद । दिनसादिविभागो नैव दूरत परिवर्जन परिहार । महाव्रतानां
मूलच्छेदन कृत्या पुनर्दीक्षाप्रापणमुपस्थापना । आचार्यमपृष्ट्वा आता-
पनादिकरणे पुस्तकपिच्छादिपरोपकरणग्रहणे परपरोक्षे प्रमादत
आचार्यादिप्रचनाकरणे सवनाथमपृष्ट्वा स्वसघगमने देशकालनिय-
मेनावश्यकर्तव्यव्रतविशेषस्य धर्मकथादिब्यासगेन निस्मरणे सति पुन
करणे अन्यप्रापि चैत्रविधे आलोचनमेव प्रायश्चित्त । षडिन्द्रियवागादि-
दुष्परिणामे, आचार्यादिषु हस्तपादादिसघट्टने, व्रतसमितिगुतिषु स्वल्पा-
तिचारे, पैशून्यकलहादिकरणे, वैयाकृत्यस्वाध्यायादिप्रमादे, गोचरगतस्य
लिंगोत्थाने, अन्यसङ्केशकरणादौ च प्रतिक्रमण प्रायश्चित्त भवति । दिव-

१ आकपिञ्च अनुमानित यद्दिष्ट वाञ्छर, च सुहृन् च ।

छन्नं सद्वाउलभ बहुजनमञ्चत्त तस्सेवी ॥

अस्यार्थो नवमे पृष्ठे दर्शनीय ।

सान्ते रात्र्यन्ते भोजनगमनादौ च प्रतिक्रमणं प्रायश्चित्तं । लोचनखच्छे-
दस्वप्नेन्द्रियातिचाररात्रिभोजनेषु पक्षमाससव सरादिदोषादौ च उभयं
आलोचनप्रतिक्रमणप्रायश्चित्तं । मौनोदिना लोचकरणे, उदरकृमिनिर्गमे,
हिममशकादिमहानातादिसहर्षातिचारे, स्निग्धभूहरिततृणपेकोपरिगमने,
जानुमात्रजलप्रवेशकरणे, अन्यनिमित्तवस्तुस्वोपयोगकरणे, नागादिनदी-
तरणे, पुस्तकप्रतिमापातने, पचस्थावरनिघाते, अदृष्टदेशतनुमलनिस-
र्गादौ, पक्षादिप्रतिक्रमणक्रियाया, अन्तर्व्याख्यानप्रवृत्त्यन्तादिषु कापो-
त्सर्ग एव प्रायश्चित्तं । उच्चारप्रस्रवणादौ च कापोत्सर्गं प्रसिद्ध एव ।
अनशनादिकरणस्थानमागमाद्बोद्धव्यं । ननविधप्रायश्चित्ते किं फलं ?
भायप्रमादोऽनवस्था शल्यामानदाढ्यादिक फलं वेदितव्यं ।

अनलसेन देशकालादिनिशुद्धिविधानज्ञेन सबहुमानो यथाशक्ति क्रिय-
माणो मोक्षार्थं ज्ञानग्रहणाम्यासस्मरणादि ज्ञानविनयः । तत्त्वश्रद्धाने नि श-
कितत्वादिरदर्शनविनयः । ज्ञानदर्शनरतौ दुश्चरेण तद्वति च ज्ञानेऽति
भक्तिर्भावतश्चरणानुष्ठानं चरणविनयः । प्रत्यक्षेष्वाचार्यादिष्वभ्युत्थान-
वर्धनानुगमनादिरामानुरूप परोक्षेष्वपि तेष्वङ्गलिक्रियागुणकीर्तन-
स्मरणानुष्ठानादित्वादिक्ष कायवाङ्मनोभिरुपचारविनयः । विनयस्य
किं फलं ? ज्ञानलाभ आचारशुद्धिः सम्यगाराधनादिश्च विनयस्य फलं
वेदितव्यं । इति चतुर्विधो विनयः ।

दशविधं वैयावृत्य । तथा हि । आचार्यस्य वैयावृत्य, उपाध्यायस्य
वैयावृत्य, महोपमासावनुष्ठायितपस्विनो वैयावृत्य, शास्त्राम्यासी शैश्व
स्तस्य वैयावृत्य, रुनादिक्लिष्टशरीरो ग्लानस्तस्य वैयावृत्य, स्थिररसन्ताति-
गीणस्तस्य वैयावृत्य, दीक्षकाचार्यशिष्यसंघं कुलं तस्य वैयावृत्य, क्रापे

१ पुस्तकद्वयेऽपीत्येव पाठः, अनगरधर्माभृते तु मौनादिना विनालोचनकरणे
इति । २ वताः । ३ दुश्चरचरणे पाठान्तरं ।

मुनित्यनगरनिग्रह सध, अथवा ऋष्यार्षिकाश्रमकश्राविकानिवह-
संघस्तस्य वैयावृत्य, चिरप्रवर्जित साधुस्तस्य वैयावृत्य, निद्वत्तावृत्त्या-
दिलोकसम्मतोऽसंयतसम्यग्दृष्टिर्वा मनोज्ञस्तस्य वैयावृत्य । किं तद्वैया-
वृत्य ? एतेषा दशनिधानामाचार्यादीना व्याधिपरीषहमिध्यानादे प्राप्नु-
कौपधभक्तादिप्रतिश्रयसस्तरादिभिर्धर्मोपकरणैः स्वकृत्यप्रतिस्थापनं च
प्रतीकारो वैयावृत्य । बाह्यद्रव्याभावे स्वकाये (न) संभवाद्यन्तर्महाप-
र्कणदिस्तदानुकूलानुष्ठानं च वैयावृत्य । वैयावृत्यकरणे किं फलं ?
समा (ध्या) धान ।

वाचना—सशयच्छेदाय निश्चितबलाधानाय वा प्रथार्थोभयस्य पर-
प्रत्यनुयोग । आ-मोक्षतिपरानिसन्धानोपहासादिवर्जित पृच्छना ।
अधिगतार्थस्यैकाग्र्येण मनसाभ्यासोऽनुपेक्षा । गोपशुद्ध परिवर्तनमात्राय ।
दृष्टादृष्टप्रयोजनानपेक्षमु-मार्गनिवर्तनसन्देहच्छेदापूर्वार्थप्रकाशनाद्यर्थो धर्म-
कथानुष्ठान धर्मोपदेश । पञ्चविधस्य स्वाध्यायस्य किं फलं ? प्रज्ञाति-
शयप्रज्ञस्ताप्यवसायप्रयचनस्थितिसयोच्छेदपर्यादिशकायभावसवेगतादृ-
क्ष्यतिचारविशुद्ध्यर्थं पञ्चविध स्वाध्याय ।

नियतकालो यावज्जीव वा कायस्य त्यागोऽभ्यन्तरापधिव्युत्सर्ग ।
बाह्यस्त्वनेकप्रायो व्युत्सर्ग । नि संगत्यनिर्भयत्वजीविताशाश्रयुदासदोषो-
च्छेदमोक्षमार्गभायनापरत्वादि व्युत्सर्गफलम् ।

अथ ध्यानं नाम द्वादश तप उच्यते तदर्थमिदं सूत्रमुमास्वामिभि-
कृत—

“उत्तमसहनस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तान् ।”

अस्यापमर्थ — वज्ररूपमनाराचसहनन, वज्रनाराचसहननं, नाराच-
सहनन सहननत्रयमुत्तम सहनन मोक्षादिकारणवात् । प्रथम सहननं
मोक्षस्य हेतु । ध्यानस्य हेतुस्त्रितयमपि भवति । अर्धनाराचस्य कीलि-

काया अप्राप्तासृपाटिकायाश्च संहननत्रयस्यान्तर्मुहूर्तकाल यावच्चित्तानि
 रोधधारणायामसमर्थत्वात् । गमनभोजनादिक्रियाविशेषेभ्यनियमेन प्रवर्त
 मानस्यात्मन एकस्या क्रियाया कर्तृत्वेनावस्थान निरोध-क्रियान्तर-
 व्यवधानाभावेन एकक्रियाया सातत्येन प्रवृत्तिर्निरोध इत्यर्थः । एकाम्रे
 एकार्थे एकस्मिन्नग्रे प्रधाने वा वस्तुनि चित्तानिरोध-एकस्मिन् द्रव्ये
 पर्याये तदुभयात्मके स्पृष्टे सूक्ष्मे वा चित्तानिरोध इत्यर्थः । अथवा
 सद्धयान्, अग्र मुख, एकमग्र यस्य स एकाम्र स चासौ चिन्तानिरोधश्चै-
 काग्रचिन्तानिरोध एकस्मिन्नर्थे वर्तमानचित्तानिरोध एकमुख सद्धयान्,
 अनेकत्राक्षसूत्रादौ अनेकमुख सद्धयान् न भवति यथा प्रदीपशिखा
 अनिरात्राधेन परिस्पन्दते तथाऽनिराकुलताया ध्यानं न स्यात् । गुति-
 समितिधर्मानुप्रेक्षापरीपहज्यचारित्रादिकं यत्सर्वकारण तदेव ध्यानका
 रणमिति ज्ञातव्यम् । आन्तर्मुहूर्तात् मुहूर्तमध्ये ध्यानं भवति । ॥
 चाधिकं कालो ध्यानस्यास्ति, कस्मात् ? चिन्तानां दुर्धरत्वात् अतिवप
 लत्वाच्च । एतावत्पि काले ज्वलदचलं ध्यानं कर्मण्यसायं भवति
 प्रलयकालमारुतवत् समुद्रजलशोषणवत् । तद्धयानं हेयमुयादेयं
 च । तत्र हेयमार्त्तं रौद्रं च । उपादेयं धर्म्यं शुक्लं च । शर्तो दुःखे
 भवमार्त्तं । रुद्रा क्रूराशय प्राणी तत्कर्म रौद्रं । धर्मो यस्तुस्वरूपं तस्मा
 दनपेत आश्रित धर्म्यं । मलरहितात्मपरिणामोद्भवं शुक्लं । तत्र धर्म्यं
 शुक्लं च द्वयं मोक्षकारणं । ससारकारणमयद्द्वयमार्त्तरौद्रमिति ज्ञातव्यम् ।
 आर्त्तममोनश्चस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारो वारं वारं चिन्तनं ।
 मनोश्चस्य विपरीतं चित्तनं तद्विपरीतं वेदनाचित्तनं तद्विपरीतं
 निदानस्य चिन्तनं । हिसानृतस्तेयश्रियसंरक्षणेभ्यो रौद्रं ध्यानमुपपद्यते ।
 आर्त्तं अविरतदेशविरतप्रमत्तस्यतेषु सम्भवति । रौद्रं अविरतदेशविरतेषु
 सम्भवति । आज्ञापायविषाणसंस्थानविचयेर्मध्यध्यानमुत्पद्यते । तत्पूर्व-

विदो मुने श्रेण्यारोहणापूर्व भवति । श्रेण्योरपूर्वकरणानुपशान्ता ताना
प्रथम शुक्ल भवति । क्षाण्णपायस्य द्वितीय शुक्ल । तृतीय शुक्ल चतुर्थ च
शुक्ल केवलिन भवति । तत्र सयोगस्य तृतीय, चतुर्थमयोगस्येति । पृथ
क्त्ववितर्कवीचार प्रथम शुक्ल । एकत्ववितर्कवीचार तृतीय शुक्ल । सूक्ष्म
क्रियाप्रतिपातिनामक तृतीय शुक्ल । म्युपरत्वक्रियानिर्गतिनामधेय चतुर्थ
शुक्ल । तत्र पृथक्त्ववितर्कवीचार त्रियोगस्य भवति मनागक्कायागच्छमै
रात्मप्रदेशपरिस्पदान् त्रीन् योगानुलम्ब्य अगच्छम्य उत्पद्यत इत्यर्थ ।
एकत्ववितर्कवीचार त्रिषु योगेषु मध्ये एकस्य चलनद्वाराणा मपरिस्पन्दे
सति समुत्पद्यत इत्यर्थ । काययोगस्य केवलिन सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति
शुक्ल भवति । अत्र कायागच्छम्येनैरात्मनश्चलन । अयोगकेरिणी म्युपर
तक्रियानिर्गति शुक्लध्यान यतोऽत्र कायागच्छम्येनात्मप्रदेशचलन न
भवति । पृथक्त्ववितर्कवीचारमेकत्ववितर्कवीचार ध्यानद्वय पुरोष्वधीतिन
एव । नितर्कवीचारसहितं पूर्वं । द्वितीय तु वीचाररहित । वाचार किं
अर्थव्यञ्जनयोगसक्रातिवीचार परिवर्तनमित्यर्थ । अर्थसक्राति का
द्रव्य विमुच्य पर्यायं गच्छति पर्याय त्रिहाय द्रव्य समुपती यथसक्रान्ति ।
एक वचन त्यक्त्वा वचना तन्मवलम्बते तदपि त्यक्त्वाऽप्यद्वचनमवल
म्बते इति व्यञ्जनसक्रान्ति । काययोग त्यक्त्वा योगान्तर गच्छति
तदपि त्यक्त्वा काययोग व्रजतीति योगसक्राति । एव श्रुतज्ञानेन
वितर्क्य समूह्य द्रव्य त पर्याये पर्यायान् नितर्क्य ततो द्रव्ये परिवर्तने
वीचारे सति पृथक्त्वेन भेदेन अर्थपर्यायैर्वचनयोगयोर्वा श्रुतज्ञान
पर्यालोचनेन सक्राति पृथक्त्ववितर्कवीचार शुक्लध्यान भवति । यद्यप्य
र्थव्यञ्जनादिसक्रातिरूपतया चलन वर्तते तथापि इदं ध्यान । यस्मात्
एवविधस्यैवास्य निवक्षितत्वात् । विजातीयानरुविकल्परहितस्य अर्था-
दिसंक्रमेण चित्ताप्रबन्धस्यैव एतद्ध्यानत्वेनेष्टत्वात् । अथवा द्रव्यपर्या-

यात्मनो वस्तुन एकत्वात् सामान्यरूपतया व्यञ्जनस्य योगाना चैकीकर-
णादेकार्थचिन्तानिरोधोऽपि घटते । द्रव्यात्पर्याय व्यञ्जनाद्व्यञ्जनान्तरं
योगायोगान्तरं विहाय अन्यत्र चिन्तावृत्तौ अनेकार्थता न द्रव्यादे पर्या-
यादौ प्रवृत्तौ । तथा श्रुतज्ञानेन एकार्थ रितर्कयत्रविचलितचित्त
प्रवृत्त क्षीणकपाय एकत्ववितर्कवान् भवति । बाह्यनोयोग बाह्यरक-
पाययोग च परिहाप्य सूक्ष्मकर्पाययोगालम्बनोऽन्तर्मुहूर्तशीषायुर्वेद्यनाम
गौत्र सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिभाभभवति । यदा पुनरायुषोऽधिक वेद्यादि-
त्रितय तदा दण्डकपाटादिक चतु समयै कृत्वा पुनस्तावत्समयै समु-
पहृत्य सर्माकृतकर्मचतुष्टय सूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिध्यान प्प्रायति । ततोऽ
योगिन समुच्छिन्नक्रियानिवृत्तिव्युपरतक्रियानिवृत्त्यपरनामक ध्यान
भवति । तस्मिन् स्थाने स्थितस्य सर्वास्रवनिरोधात् सर्वशेषकर्मविध्व-
सनसमर्थ सम्पूर्ण यथाख्यातचारित्र साक्षान्मोक्षकारण सजायते । अन्ये
शुद्धध्यानद्वये चिन्तानिरोधाभावेऽपि ध्यानव्यवहार ध्यानकार्यस्य योगा
पहारस्य अधातिघातस्य चोपचारनिमित्तस्य सद्भारात् । तथा साक्षात्कृ-
तसमस्तनस्तावर्हति न किञ्चिद्वेष्यमस्ति । ध्यान तु तत्र असमानकर्मणा
समानावकरणार्थं या चेष्टा, कर्मसाम्ये तत्क्षययोग्यसमया या अलौकिका
मनीषा तदेव सौख्य मोहक्षयाज्ज्ञानावरणदर्शनावरणक्षयाच्चात्मनो
दर्शनं ज्ञानं च भवति । अन्तरायविनाशादनन्तर्धीर्म जीवस्य स्यात् ।
आयुर्कर्मविध्वंसनाच्चतनस्य जन्ममरणामानो भवति । नामकर्मनिर्मूलना-
नरस्यामूर्तत्वं जायते । नीचोच्चगोत्रत्रासनात्सुलूढयविनाशो भवति ।
वेदनोयकर्मनिर्मूलकाय कपणात् जीवस्येन्द्रियोत्पन्नमुखाभास संजायते ।

१-२ पुस्तकद्वयेऽपि ईदृगेव पाठ किन्तु कपायस्थानं कायेनेति पाठिन भवि-
तस्य आगमाविद्वत्त्वात् । कपायानां तत्राभावाच्च न तेषां ह्रासनं सूक्ष्मीकरणत्वं
च संयोगिगुणस्थाने घटते । ३ समीपकृतं क । ४ ज्ञानावरणक्षयत्वं स ।

एकस्मिन्निष्टे वस्तुनि निश्चला मतिर्ध्यानं । आर्तरौद्रधर्मापेक्षया तु मति-
 श्वंचला अशुभा शुभा वा सा भावना कथ्यते, चित्तं चिन्तनं अनेकन-
 ययुक्तानुपेक्षणं स्थापनं श्रुतज्ञानपदालोचनं वा कथ्यते न तु ध्यानं ।
 अत्र संहननलक्षणं यथा यदुदयादस्थिवन्धनविशेषस्तत्संहननं पदप्रकारं ।
 वज्राकारोभयास्थिमध्ये सबलयबन्धनं सनाराचं वज्रवृषभनाराचसंहननं ।
 तदेव बलपरहितं वज्रनाराचसंहननं । वज्राकारयलयव्यपेक्षं सनाराचं
 नाराचसंहननं । एकमस्थि सनाराचं अपरमनाराचं अर्द्धनाराचसंहननं ।
 उभयास्थिप्रान्ते सकीलकं कौलिकासंहननं । अन्तरप्राप्तपरस्परस्थिसन्धि-
 बहिःशिरास्नायुर्मांसयेष्टितं असंप्राप्तासृपाटिकासंहननं चेति । अष्टसप्तति-
 तम्या गाथायां वारसविहृतवयरणं इत्यस्य पादस्य व्याख्यानं समाप्तं ।
 तेरसकिरियाओ भावि त्रिविहेण त्रयोदशक्रिया भावय त्व त्रिविधेन
 त्रिकरणशुद्धया पचनमस्काराः, पडावश्यकानि, चैत्यालयमध्ये प्रविशता
 निसिही निसिही निसिही इति वारत्रये ह्युच्चार्यते, जिनप्रतिमावन्द-
 नाभक्तिं कृत्वा बहिर्निर्गच्छता भव्यजीवेन असिही असिही असिही इति
 वारत्रयं ह्युच्चार्यत इति त्रयोदशक्रिया हे भव्य । त्वं भावय । तथा
 चोक्तं—

निःसर्गोऽहं जिनानां सदनमनुपमं त्रिःपरीत्येस्य भक्त्या

स्थित्वा गत्वा निषिद्धशुचरणपरिणतोऽन्तः शनैर्हस्तयुग्मं ।

भाले संस्थाप्य शुद्धया मम दुरितहरं कीर्तये शक्ररन्ध्रं

निन्दादूरं सदासं क्षयरहितममुं ज्ञानमानुं जिनेन्द्रं ॥ १ ॥

अरे लौका दुरात्मानो । यदि भवद्विजिनप्रतिमा चैत्यालयश्च ॥

मान्यते तदेदं वृत्तं पूज्यपादैर्जिनवन्दनाविधिः कथमुक्तः । तेन दुराग्रहं
 विमुच्यास्तिकत्वं भावनीयं भगद्धिः । अथवा पंचमहाव्रतानि पंचसमितय-
 स्तिस्त्री गुप्तयथेति त्रयोदशक्रियास्त्रयोदशविधं चारित्र्यं हे भव्यवरपुण्ड-

राकमुने ! त्व भाग्य । घरहि मणमत्तदुरयं त्रिपयकयायान् गच्छते
मनोमत्ताद्वरद मतगन त्व धर रक्ष । णाणंकुसएण मुणिप्रवर ज्ञाना-
ङ्कुशेन निष्ठुरमस्तकप्रहारेण हे मुनिप्रवर ! महामुनिमतल्लिक !
इति शेष ।

पंचविहचेलचायं सिदिसयणं दुविहसंजम भिक्खू ।

भारं भाविय पुच्चं जिणलिंगं निम्मलं सुद्धं ॥ ७९ ॥

पञ्चविधचेलचायं क्षितिशयनं द्विविधसंयमं भिक्षो ! ।

भ व भावयित्वा पूर्वं जिनिर्लिङ्गं निर्मलं शुद्धम् ॥

पंचविहचेलचायं पंचविधानि पचप्रकाराणि चेलानि वद्याणि तेषां
स्याग परिहारो यस्मिन् जिनिर्लिङ्गे जिनमुद्राया तपचविधचेलत्यागं ।
उक्ते च गौतमन गणिना प्रतिक्रमणसूत्रे-

“अङ्गं वा-कोशज तसरिचीरं (१) षोडशं वा कर्पासवर्द्धं
(२) रोमजं वा उर्णामयं उल्ल एडकोष्ठादिरोमवर्द्धं (३) वक्कजं वा
वल्क वृक्षादिवग्भगादिछल्लिवर्द्धं तेषादिकं चापि (४) चर्मजं वा
मृगचर्मव्याघ्रचर्मचित्रकचर्मगजचर्मादिकं न परिधानीये (५)”

सिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू क्षितिशयनं भूमिशयनं तृण-
काष्ठशिलास्थलिलशयनं, द्विविधं सयमो यस्मिन् जिनिर्लिङ्गे तद्द्विविध-
संयमः । इन्द्रियसंयमः पचेन्द्रियसंकाचो मनः सकोचश्चेति पञ्चविधः स-
यमः । प्राणसंयमः पृथिव्यस्तेजोरायुवनस्पतिलक्षणपचस्यावररक्षणं
क्षीन्द्रियत्रयं त्रिपचतुर्द्रियपंचेन्द्रियचतुः प्रकाररसजीवरक्षणलक्षणं प-
ञ्चविधं प्राणसंयमः । भिक्खू-हे भिक्षो ! अहो तपस्विन् ! अथवा

भिक्षाभोजनं कुर्वन् उदण्डचर्यायां पर्यटन् भिक्षुजिनलिङ्गमुच्यते । सा-
भिक्षा पञ्चविधा—अश्वप्रक्षरणं, गर्तापूरणं, भ्रामरी, गोचारी, उदराग्निवि-
ध्यापनं चेति । भावं भावियं पुण्यं भावं आत्मरूपं भावयित्वा जिन-
सम्पत्तयश्च भगवत्पित्रा पूर्वं जिनलिङ्गं भवति । जिणलिङ्गं जिम्मलं
सुद्धं जिनलिङ्गं नम्ररूपमर्हन्मुद्रामयूरपिच्छकमण्डलसहितं निर्मलं
कथ्यते तद्द्वयरहितं लिङ्गं कदम्बमिति युच्यते । अन्यत्र सीर्षकरपरमदेवा-
स्तत्तद्देविना अप्रविज्ञानादृते चेत्पर्यं, शुद्धं चर्मजलतैलघृतभूतनाशना-
श्वादरहितमुदण्डचर्यमन्तरायमलरहितं शुद्धमित्यभिप्रायः ।

जहरयणाणं पवरं वज्रं जह तरुगणाण गोसीरं ।

तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं भावि भवमहणं ॥ ८० ॥

यथा रत्नानां प्रवरं वज्रं यथा तरुगणानां गोसीरम् ।

तथा धर्माणां प्रवरं जिनधर्मं भावय भवमवयनम् ॥

जह रयणाणं पवरं यथा येन प्रकारेण रत्नानां मध्ये प्रवरं उत्तमं रत्नं
किं वज्रं हीरकं पद्मकोणं मौक्तिकगोमेदपुष्परामपुलकप्रवालचन्द्रका-
न्तरयिकान्तजलकान्तहसगर्भमसारगर्भरुचकपद्मरागेन्द्रनीलमहानीलनील-
मरकतवैदूर्यलघुनकर्णेतनेत्यादीनां रत्नानां मध्ये वज्रं हीरकं हि
सर्वोत्तमं तस्य देवाधिष्ठितत्वात् । जह तरुगणाण गोसीरं तरुगणानां
मध्ये यथा गोशर्पि तैलपर्णिकं परमोत्तमचन्दनं प्रवरं । तह धम्माणं
पवरं तथा धर्माणां मध्ये जिनधर्मं प्रवरं । हे मुने ! त्वं भावि
भवमहणं भावय रोचय भवमयने संसारविच्छेदकम् ।

तं धम्मं केरितं ह्यदि तं तथा—

॥ धर्मः कीदृशो भवति तद्यथा-तमेव निरूपयन्ति श्रीकुन्-
कुन्दाचार्याः—

पूयादिसु वयसहियं पुण्यं हि जिणेहि सासणे भणियं ।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो घम्मो ॥ ८१ ॥

पूजादिषु व्रतसहित पुण्यं हि जिनैः शासने भणितम् ।
मोहक्षोभविहीन परिणाम आत्मनो धर्म ॥

पूयादिसु वयसहियं पूजादिषु व्रतसहित पूजा आदिर्येषां कर्मणा तानि
पूजादानि तेषु पूजादिषु व्रतसहित श्रावकव्रतसहित । पुण्यं हि जिणेहि
सासणे भणियं पुण्यं स्वर्गसौख्यदायकं कर्म जिनैस्तीर्थकरपरमदेवैः
परिकेषलिभिश्च हि स्फुटं शासने आर्हतमते उपासकाभ्ययननाम्यङ्गे
भणितं वर्तुतया प्रतिपादित—इदं कर्म करणीयमित्यादिष्ट । तथा चाक्तं
जिनसेनपादै —

पुण्यं जिनेन्द्रचरणार्चनसाध्यमाद्य
पुण्यं सुपात्रगतदानसमुत्थमेतत् ।
पुण्यं व्रतानुचरणादुपघासयोगात्
पुण्याधिनामिति चतुष्टयमर्जनीयम् ॥ १ ॥

तथा समन्तभद्रस्वाभ्याचार्यैरप्यभिहित—

देवाधिदेवचरणे परिचरणं सर्वदुःखनिर्हरणं ।
कामदुहि कामदादिनि परिचिनुयादादतो नित्य ॥ १ ॥
अर्हचरणसंपर्का महानुभाव महात्मनामवदत् ।
भेरु प्रमादमत्तं कुसुमेनैकेन राजगृहे ॥ २ ॥

यदीदं सर्वज्ञवीतरागपूजालक्षणं तीर्थकरनामगोत्रबन्धकारणं विशिष्टं
निर्निदानं पुण्यं पारम्पर्येण मोक्षकारणं गृहस्थानां श्रीमद्विभणितं तर्हि
साक्षात्मोक्षहनुभूतो धर्मः क इत्याह—मोहक्खोहविहीणो परिणामो
अप्पणो घम्मो भाह पुत्रकलत्रभिषयनादिषु ममेदमिति भावः, क्षोभः
परीपहोपसर्गनिपाते चित्तस्य चलनं ताभ्यां विहीनो रहितं मोहक्षोभ-

विहीन एव गुणविशिष्ट आत्मन शुद्धबुद्धेकस्वभावस्य विचित्रमत्कारलक्षणश्चिदानन्दरूप परिणामो धर्म इत्युच्यते । स परिणामो गृहस्थानां न भवति पचसूनासहितत्वात् । तथा चोक्त—

यण्डनी पेयणी चुल्ली उदकुम्भः प्रमाजनी ।

पचसूना गृहस्थस्य तेन मोक्ष न गच्छति ॥ १ ॥

यदि मोक्ष न गच्छति तदा जिनसम्पत्त्यपूर्वकं दानपूजादिलक्षण विशिष्टगुणमुपाजन् गृहस्थ स्वर्गं गच्छति परंपरया जिनलिङ्गेन मोक्षमपि प्राप्नोति ।

इति पुण्यधर्मयो स्वरूपमुक्त्वेदानीं निर्विकल्पसमाधिलक्षण कर्मक्षयकारणं कथयन्ति भगवतः —

सहृदि य पत्तेदि य रोचेदि य तह पुणो वि फासेदि ।

पुणं भोयनिमित्तं ण हु सो कम्मवरुणनिमित्तं ॥ ८२ ॥

भ्रष्टधाति च प्रत्येति च रोचते च तथा पुनरपि स्पृशति ।

पुण्यं भोगनिमित्तं न हु तन् कर्मक्षयनिमित्तम् ॥

सहृदि य भ्रष्टधाति च तत्र विपरीताभिनिवेशरहितो भवति । पत्तेदि य प्रत्येति च मोक्षहेतुभूतत्वेन यथावत् प्रतिपद्यते । रोचेदि य रोचते च मोक्षकारणतया तत्रैव रुचिं करोति । तह पुणो वि फासेदि मोक्षार्थिनात्तसाधनतया स्पृशति अग्राहयति । पुणं भोयनिमित्तं एतपूजादिलक्षण पुण्य मोक्षार्थितया क्रियमाण साक्षाद्भोगकारण स्वर्गस्त्रीणामालिङ्गनादिकारण तृतीयादिभवे मोक्षकारण निमग्नलिङ्गेन । ण हु सो कम्मवरुणनिमित्तं न भवति हु—स्फुट निश्चयेन साक्षात्तद्भवे गृहस्थलिङ्गेन कर्मक्षयनिमित्तं—तद्भवे केवलज्ञानपूर्वकमोक्षनिमित्तं पुण्यं न भवतीति ज्ञातव्यं ।

अप्या अप्पम्मि रओ रायादिमु सयलदोसपरिचत्तो ।
संसारतरणहेदुं धम्मोत्ति जिणेहि णिदिद्वं ॥ ८३ ॥

आत्मा आत्मनि रत रागादिषु सकलदोषपरित्यक्त ।

संसारतरणहेतु धर्म इति जिनै निर्दिष्ट ॥

अप्या अप्पम्मि रओ आत्मा अत सातत्यगमने अतत्पूर्व व्रज्या-
स्वभावेनोर्ध्वमेव गच्छतीत्यात्मा शुद्धबुद्धैकस्वभावा आत्मनि रतो निज-
शुद्धबुद्धैकस्वभावे एकलोलीभावभूत । रायादिषु सयलदोसपरिचत्तो
रागादिषु रागादिभ्य सकलदोषपरित्यक्त रागद्वेषमोहलोभादिसकलदो-
परहित इत्यर्थ । संसारतरणहेदुं संसारस्य तरणहेतु कारणभूत ।
धम्मोत्ति जिणेहि णिदिद्वं धर्म इति जिनैर्निर्दिष्ट प्रतिपादित जिनपू-
जादिक पुण्यमिति शेष । तेन कारणेन जिनपूजादिषु द्वेषो न कर्तव्य ।
उक्त च योगीन्द्रद्वये —

देवंह सारथदं मुणियरह जो विदेसु करेइ ।

नियमिं पाठ हवेइ तमु जे ससारे भमेइ ॥ १ ॥

अस्य दोहकस्याय भाव—देवशास्त्रगुरूणा प्रतिमासु निषेधिकादि-
षु च पुष्पादिभि पुजादिषु च लौका द्वेष कुर्वन्ति तेषा पापं भवति तेन
पापेन ते नरकादौ पतन्तीति ज्ञातव्य ।

अह पुण अप्या णिच्छदि पुण्णाइं करेदि निरवसेसाइं ।

तह चि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥ ८४ ॥

अथ पुन आत्मान नेच्छति पुण्यानि करोति निरवशेषाणि ।

तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्य पुनर्भणित ॥

अह पुण अप्या णिच्छदि अथ पुनरात्मान नेच्छति न भावयति ।
पुण्णाइं करेदि निरवसेसाइं पुण्यानि करोति निरवशेषाणि पूजादाना-

१ देवेभ्य शास्त्रेभ्य मुनिवरेभ्य यो विद्वेष करोति ।

नियमेन पाप भवति तस्य येन ससारे भ्राम्यति ॥ १ ॥

दीनि सर्वाणि भागाकाक्षानिदानख्यातिपूजादाभादिकमभिलाषुकतया
करोति विदधाति पर जिनसम्पत्त्वेनान्त शूया निर्निषेक बहिरात्मा
जीव । तद् वि ण पापदि सिद्धिं तथापि नानापुण्यानि कुर्वन्नापि
जीवो न प्राप्नोति न लभते, का ? सिद्धिं आत्मोपलब्धिलक्षणां मुक्ति-
मिति—जिनसम्पत्त्वरहितो दूरभण्योऽभण्यो वा स ज्ञानव्य इत्यर्थः ।
यदि सिद्धिं न प्राप्नोति तर्हि कीदृशो भवति ? संसारत्यो पुणो भणिदो
संसारस्योऽनन्तससारी पुनर्भणित आगमे प्रतिपादित ।

एएण कारणेण य त अप्पा सदहेह तिविहेण ।

जेण य लहेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ॥ ८५ ॥

एतेन कारणेन च तमात्मान धृष्टत त्रिविधेन ।

येन च लभ्य मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥

एएण कारणेण य एतेन कारणेन चात्मनो मोक्षइत्युक्तेन । तं
अप्पा सदहेह तिविहेण तमात्मान धृष्टत तत्र विपरीताभिनिवेश-
रहिता भवत यूय त्रिविधन मनीषचनकाययागप्रकारेण । जेण य लहेह
मोक्खं येन च कारणनात्मधृष्टानहेतुना लभ्यं मोक्षं सर्वकर्मप्रक्षय-
लक्षण मोक्षं प्राप्नुत यूय । तं जाणिज्जह पयत्तेण तमात्मान जानीत
ज्ञानगुणेन भेदज्ञानेन दृष्ट्यय यूय, प्रयत्नेन चारित्रगुणनैकग्राहीभावे
तया तत्र तिष्ठत यूय ।

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महानरय ।

इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणा णिचं ॥ ८६ ॥

मत्स्योपि शालिसिक्खोऽशुद्धभावो गत महानरकम् ।

इति ज्ञात्वा आत्मान भावय जिनभावनां नित्यम् ॥

मच्छो वि सालिसित्थो मत्स्योऽपि मीनजातिरल्पजाव तद्गुड
सिक्खप्रमाणशरीरत्वाच्चाप्ता शालिसिक्ख । असुद्धभावो गओ महा-

नरयं अशुद्धभाव सन् गत प्राप्त महानरक सप्तम नरक गत ।
इयं यातुं अप्याणं इति ज्ञात्वात्मानं शुद्धबुद्धैकस्वभावरूपं टंकार्त्कार्ण-
स्फटिकविशेषम चिच्चमत्कारलक्षणं मुक्तिगतसिद्धसमानं शुद्धनिश्चयनयेन
सिद्धं ज्ञायकैकस्वभावं हे जीव । हे आमन् । भावहि जिण-
भावणां जिञ्च भावय त्वं भावनाविषयं कुरु इयं जिनभावनाति ज्ञात्वा,
अथवा । जनभावनया जीमदिसत्तवथद्वान च नित्यं सयकालं भावय
रोचस्व तस्मादिति अपध्यानं परिहृत्य अन्तस्तत्त्वं बहिस्तत्त्वं चाश्रयेति
भावाधे । किं तदपध्यानं ?—

यधयं यच्छेदादे रागाद्वेषाच्च परकलत्रादेः ।

आध्यानमपध्यानं शासति जिनशासने विशदाः ॥ १ ॥

“यदस्थं मन्त्रवाक्यस्थं विण्मस्थं स्वात्मचिन्तनं ।

रूपस्थं सर्वचिद्रूपरूपातीतं निरञ्जनं ॥”

इति पद्योक्तं चतुर्विधं ध्यानं भावय हे जीव । ।

अथ शालिसिक्खमत्स्यकथा यथा—श्रीपुण्यदन्तजिनजन्मभूमौ काकन्दी-
पुरे श्रावककुलजमा सौरसेनो राजा बभूव । सकलधर्मानुरोधेन मासव्रत
जप्राह । पुनर्देवद्वारद्वारमतमोहितमति मासभक्षणमतिं सजात् , अङ्गी-
कृतवस्तुनिर्वाहनकारणाद्वैकापवादाच्च मासं जुगुप्समानं मनोविश्राम
हेतुं कर्मप्रियनामकेतुं सूपकारं स्वाहूयैकाते निजाभिलाषं तमजिज्ञपत् ।
त्रिलोचनं स्थलचरं जलचरं नीरानां मासमानाययत्रपि अनेकराजकार्या-
कुलचित्ततया मासभक्षणान्नसंनयं न प्राप । कर्मप्रियोऽपि नृपादेशं अहं
निशं कुर्वन्नेकदा सर्पवालकं दृष्ट्वा मृतं स्वयमूरमणसमुद्रे महामस्यो
बभूव । भूप सौरसेनोऽपि चिरकालेन मृत्वा मासभक्षणादायानुबधा

तस्मिन्नेव समुद्रे तस्यैव महामत्स्यस्य कर्णबिलमलाशनशीलः शालि-
सिक्थप्रमाणशरीरो मत्स्यो बभूव । तदन्वेयं पर्याप्तद्वयभावेन्द्रियः तस्य
महामत्स्यस्य मुख व्यादाय निद्रायतो वेलानदीप्रवाहे इव गलगुहानेक-
जलचरसमूहं प्रविश्य निष्क्रामन्तं निरीक्ष्य शालिसिक्थयिन्तयति—अयं
पापकर्मा महामत्स्यो निर्भाग्यो यन्मुखे पतन्त्यपि यादासि भक्षितुं न
शक्नोति । मम दैवेनैतापच्छरीरं यदि भवति तदा सकलमपि समुद्रं
सत्त्वसंचाररहितं करोमीति चेतश्चिन्ताबलात्क्षुद्रमत्स्यो निखिलनक्रचक्र-
भक्षणपापाच्च महामत्स्योऽपि द्वावपि मृत्वा सप्तमनरके संजातौ । ततस्तप-
स्त्रिशत्सागरोपमायुयौ सौ द्वावपि परस्परगालापं चकतुः । अहो क्षुद्र-
मत्स्य ! महापापकर्मणो ममात्रागमनं सगच्छत एव । त्वं ■ मत्कर्ण-
मलाजीवनः कथमत्रागतः । शालिसिक्थचरनारकः प्राह—महामत्स्यचे-
ष्टितादपि दुरन्तदुःखं (ख) सवन्धनाद्दुर्भाग्यनावशात् ।

इति श्रीभावप्राभृते शालिसिक्थमत्स्योपाख्यान समाप्त ।

बाहिरसंगच्छाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो ।

सयलो णाणज्झयणो निरत्थओ भावरहियाणं ॥ ८७ ॥

बाह्यसङ्गत्यागः गिरिसरिदरीकन्दरादावासः ।

सङ्कलं ज्ञानाध्ययनं निरर्थकं भावरहितानाम् ॥

बाहिरसंगच्छाओ बाह्यसङ्गत्यागः निरर्थक इति सम्बन्धः । गिरि-
सरिदरिकंदराइ आवासो गिरि आवासः पर्वतोपरि आतापनयोगः
पर्वते स्थितिर्वा, सरित्—नदीतटे तपश्चरणं भोगीरथवत्, दरी गुहाया-
मावासः, कन्दरो गिर्यादिविवरं तत्रावासः, आदिशब्दात् श्मशानौद्यानादौ
आवासः स्थितिः । सयलो णाणज्झयणो सकलं वाचनापृच्छनानुप्रेक्षा-
म्नायधर्मोपदेशलक्षणं ज्ञानाध्ययनं शास्त्रपठनं । निरत्थओ भावरहि-

याणं भाररहितानां जिनसम्पत्त्वनिर्गितानां निनशुद्धबुद्धैकस्वभावा-
त्मभायनाऽप्रच्युतानां यतीनां (निरर्थक) । उक्तं च—

वाह्यग्रन्थविहीना दारिद्रमनुज्जा* स्वभावतः सन्ति ।

यः पुनरन्तःसमत्यागी लोके स दुर्लभो जीवः ॥ १ ॥

भंजसु इंदियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण ।

मा जणरजणकरणं बाहिरवयवेम तं कुणसु ॥ ८८ ॥

भङ्गिण इन्द्रियसेनां भङ्गिण मनोमर्कट प्रयत्नेन ।

मा जन्मजनकरणं बहिर्नतवेप ! त्वं कार्पा ॥

भंजसु इंदियसेणं त्वं भङ्गि, का ? इन्द्रियसेना । भंजसु मणमक्कडं
पयत्तेण भजसु त्वं भङ्गि आमर्दय त्रिपयकपायेभ्यो गच्छन्तं निरुणद्धि,
क ? मणमक्कड—मनोमर्कट चपलस्वभावरामन एव मर्कटस्तं मनोधानर
प्रयत्नेन स्त्रीसंगपरित्यागात् । मा जणरजणकरणं मा नैव जनानां
लोकानां रजनकरणं अनुरागोत्पादकं कार्यं । हे बाहिरवयवेस बहिर्न-
तवेप ! हे बाह्याकारदीक्षाविहोद्वाहक ! । तं त्वं । मा कुणसु मा कार्पा ।

णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए ।

चेदयपयणगुरणं करेहि भत्ति जिणाणाए ॥ ८९ ॥

नवनोकसायवर्गं मिथ्यात्वं त्यज भावशुद्धया ।

चेत्यप्रवचनगुरुणां कुरु भक्तिं जिनाण्या ।

णवणोकसायवग्गं * नवनोकसायवर्गं हास्यस्वरतिशोकभयजुगुप्सा-
स्त्रीपुनपुसकनेदलक्षणान् नोकपायान् ईषत्कपायान् ग्याय्यातचारित्रधा-
सकान् । चयसु त्यजेति सन्नद्धः । तथा मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए
मिथ्यात्वं पंचप्रकारं चयसु-त्यज—

पर्यंत धुद्धदरिसी विचरीयो वंम तावसो चिणमो ।

इदो वि य संसयिदो मफकडिओ चेय अण्णाणी ॥ १ ॥

एकान्तेन क्षणिकैकान्तेन मोक्षं बौद्धो वदति । निपरीतेन हिंसया मोक्षं वंम-आहणो वदति । तापसो विनयेन मोक्षं वदति । इन्द्र इन्द्रचन्द्रनागेन्द्रगच्छः संशयेन मोक्षं मन्यते । अपिचशब्दाद्गोपुच्छिको द्राविडो यापनीयाभिधेः निष्पिच्छश्च संशयमोक्षो ज्ञातव्यः । मस्करपूरणो मार्कटिकोऽज्ञानामोक्षं मन्यते । एतन्महापातकं मिथ्यातत्त्वचकं चयसु-त्यज हे जीव । त्वं । तथा च समन्तभद्रः प्राह—

न सम्यक्त्वसमं किंचित् त्रैकाल्ये भिजगमयपि ।

धेयोऽध्वेयश्च मिथ्यात्वसमं नान्यत्तन्भृताम् ॥ १ ॥

भावसुद्धीए—तत्त्वार्थभ्रदानलक्षणया भावशुद्धया जिनसम्पत्त्येन लौकपापसमापणसंगमपरिहारेण शुद्धबुद्धैकस्य भाव्यात्मरुचिपरिणामेनेति भावार्थः । चेद्वयपवयणगुरुणं चैत्यानां अर्हत्सिद्धप्रभृतिप्रतिमानां प्रवचनस्य जिननाथसूत्रस्य तथेति मस्तकोपर्यारोपणेन सरस्वतीप्रतिमापूजनेन गुरुणा निर्गन्धदिगम्बराणां भव्यनीवभक्तजनविनेयमातृपितृसदृश-हितोपदेशकानां । करेहिं भक्तिं जिष्वाणाए कुरु त्वं भक्तिं पंचामृत-जलेक्षुरसिपयगवीनगोमहिषीक्षीरगन्धोदककलशस्नपनेन जलचन्द्रनाक्षत-पुष्पचन्द्रीपधूपफलार्घदानेन स्तवनेन जपेन ध्यानेन श्रुतदेवताराधनेन नित्यं प्रातरुत्थाय सर्वज्ञवीतरागप्रतिभासर्गाङ्गावलोकने भक्तिं कुरु, तथा श्रुतमक्तिं श्रुतोक्तप्रकारेण कुरु, तथा गुरुणां पादमर्दनेन वैयाहृत्यपया-संभयाहारदानश्रुतसमर्पणौषधप्रदानवसत्यर्पणामयदानादिभिर्यथायोग्यं भक्तिं कुरु । एतत्सर्वं भक्तिलक्षणं कर्म जिनाज्ञया महापुराणभ्रमणेन त्वं कुरु हे जीव । स्वर्गं मोक्षं च प्राप्स्यसि । लौकानां महापातकिना वचनं मा मानयस्व ।

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।

भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं ॥ ९० ॥

तीर्थंकरभाषितार्थं गणहरदेवैः ग्रन्थितं सम्यक् ।

भावय अनुदिनं अतुलं विसुद्धभावेन श्रुतज्ञानम् ॥

तित्थयरभासियत्थं तीर्थकरेण श्रीमद्भगवद्देहत्सर्वज्ञवीतरागेण भा-
षितः कथितोऽर्थो यस्य श्रुतज्ञानस्य तत्तीर्थंकरभाषितार्थं । गणहरदे-
वेहिं गंथियं सम्मं गणहरदेवैर्गौतमस्वाम्यादिभिर्ग्रन्थितं द्वादशा-
धिकशतकोटिस्पर्शशीतिलक्षाष्टापंचाशत्सहस्रपंचाधिकपदैरार्नातमिति प्र-
न्थितं । चतुर्दशप्रकीर्णकैरप्यानीतं श्रुतज्ञानं । सम्मं सम्यक्प्रकारेण
पूर्वापरविरोधरहितं । भावहि भावय । अणुदिणु अनुदिनमहर्निशं ।
अतुलं अनुपमं । विसुद्धभावेण सुयणाणं चलमलिनपरिणामरहिततया ।
एकस्य पदस्य श्लोका यथा—५१०८८४६२१ अक्षर १६ । उक्तं च
श्रुतस्कन्धशास्त्रे—

एकौयनकोडीभो लब्ध्वा भट्टेय सहस्रचुलसीदी ।

सयच्छब्दं णायब्धं सद्दाहगवीसपयगंधा ॥ १ ॥

पाऊण णाणसलिलं निम्महत्तिसडाहसोसउम्मुका ।

होति सिवालयावासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥ ९१ ॥

प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मयतृपादाहसोपोन्मुक्ताः ।

भवन्ति सिवालयावासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥

पाऊण णाणसलिलं प्राप्य लब्ध्वा, किं ? ज्ञानसलिले सम्यग्ज्ञानपा-
नीयं सिद्धा भवन्तीति सम्बन्धः । कथंयूताः सिद्धाः, निम्महत्तिसडा-
हसोसउम्मुका निर्मय्या मथयितुमशक्या स चासौ तृपा त्रिपयाभिलाषः
दाहश्च शरीरपरिसन्तापः शोषश्च रसादिहानिः निर्मयतृपादाहशोषाः तैरु-

मुक्ता परित्यक्ता निर्मथतृदाहशोपोन्मुक्ता । निम्मलसुविसुद्धभावसंयुक्ता इति च कचित्पाठ तत्रायमर्थ — निर्मलो द्रव्यकर्मभात्रकर्मनो कर्मरहित योऽसौ सुविशुद्धभाव कर्ममलकलङ्कारहित क्षायिको भाव परिणाम निर्भेदल आत्मा वा तेन संयुक्ता संहिता निर्मलसुविशुद्धभावसंयुक्ता । होति शिवालयवासी भवन्ति संजायन्ते, के त ? आसन्नमध्यजीया , कीदृशा संजायन्ते ? शिवालयवासिन ईष्यप्राग्भारनाम्न्या शिखाया वसन्तीति मुक्तिशिखोपरि तिष्ठन्तीत्येवं शीला शिवालयवासिन , अथवा शिवाना सिद्धानामालय शिवालय पञ्चचत्वारिंशद्व्ययोजनविस्तारमुक्तिशिखाया उपरि तनुवातनामवातवलये निरागारा आकाशे तिष्ठन्तीतिभाव । पुन कथंभूता सिद्धा , तिहुर्वणचूडामणी त्रैलोक्यशिरोरत्नसदृशा ।

दस दस दो सुपरीसह सहहि मुणी सयलकाल काएण ।

सुत्तेण अप्पमत्ता संजमघादं पमोत्तुण ॥ ९२ ॥

दश दश द्वौ सुपरीषहान् सहस्व मुने । सकलकाल कायेन ।

सूत्रेण अप्रमत्ता समयघात प्रमुच्य ॥

दस दस दो दश च पुनर्दश च द्वौ च द्वारिंशतिरित्यर्थ । के ते, सुपरीसह मुष्टुभतिशयन परिसमन्तात् सद्यन्ते ये ते सुपरापहा “मार्गा ध्ववननिर्जरार्थ परिसादव्या परीपहा ” ते तु पूर्वोक्तवर्णना ज्ञातव्या । सहहि सहस्व । मुणी हे मुने ! रहो तपस्विन् ! । सयलकाल सकलकाल सर्वकाल, कायेन—शरीरेण वाग्मनश्चात्मनि स्थाप्यते इति भाव । सुत्तेण सूत्रेण जिनप्रचनेन कृत्वा । किं तज्जिनवचन —

१ न केवल इति ख । २ व टी । ३ दसदस दो सुपरीसह सहहि ख ।

४ हले क ।

५६० १६

“मार्गाध्यवहननिर्जरार्थं परिसोढव्याः परीपहाः”

इति । अप्पमत्ता अप्रमत्ताः प्रमादरहिता. इत्यर्थः । संजमघादं
पमोत्तूण समयस्य घात प्रमुच्य ।

जह पत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुदण्ण ।

तह साहू ण विभिज्जइ उवसग्गपरीसहेहिंतो ॥ ९३ ॥

यथा प्रस्तरौ नु भिद्यते परिस्थितौ दीर्घकालं उदकेन ।

तथा साधुर्न विभिद्यते उपसर्गपरीपहेभ्यः ॥

जह पत्थरो ण भिज्जइ यथा प्रस्तर पापाणो न विभिद्यते न
परिणमति अन्तराद्रौ न भवति । परिट्ठिओ दीहकालमुदण्ण
पापणं कथंभूतं, परिस्थित मुडित उदके इति सौत्रसम्बन्धात् ।
कथं परिस्थितः, दीर्घकालं प्रचुरकालं, केन न विभिद्यते ! उदकेन
वारिणा । तह साहू ण विभिज्जइ तथा साधुर्मुनी रत्नत्रयसाधक
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमण्डितो न विभिद्यते नान्तःक्षुभितो भवति ।
उवसग्गपरीसहेहिंतो देवमानवतिर्यग्चेतनोपद्रवेभ्य उपसर्गेभ्यः परी-
पहेभ्यः क्षुधापिपासादिभ्यो द्वाविंशतेरपि । “सुन्तो हिन्तो हि दु दो
त्तो भ्यसः” इति प्राकृतव्याकरणसूत्रेण पचमीबहुवचनभ्यसः स्थाने
हिंतो आदेशः । ङसिस्थाने च “लुक्च हिंतो हि दु दो त्तो ङसेः”
इति सूत्रेण भवति । “व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तिर्न हि सन्देहादलक्षणं”
इति परिभाषयाऽत्र बहुवचनस्य भ्यसो हिन्तो आदेशो ज्ञातव्य इति ।

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे णवीसमाग्गणा भावि ।

भानरहिण्ण किं पुण वाहिरलिंणेण कायज्जं ॥ ९४ ॥

“१ “सीवसहोऽडेऽहो” इति छाकटायनीयेन “छोटः” इति जैनेन्द्रीयेन
पाणिनीयेन च सूत्रेण पत्वनिषेधः ।

भावय अनुप्रेक्षा अपराः पञ्चविंशतिभावना भावय ।

भावरहितेन किं पुनः बहिरलिङ्गेन कार्यम् ॥

भावहि अणुवेवस्वाओ भावय पुनः पुनश्चिन्तय अनुप्रेक्षा अनि-
ह्यादीः । अग्रे षण्णवीसभावना भावि अपराः पञ्चविंशतिभावना
भावय । भावरहिण्य किं पुनः भावरहितेन पुनः किं-न किमपि
इत्याक्षेपः । बाहिरलिङ्गेन कार्यम् बहिरलिङ्गेन मप्रवेपेण किं सार्थं
कर्मक्षयशून्यमिदं ।

सर्वविरओ वि भावहि णवयपयत्याइं सत्तत्त्वाइं ।

जीवसमासाइं सुणी चउदसगुणठाणणामाइं ॥ ९५ ॥

सर्वविरतोपि भावय नववपदार्थान् सत्तत्त्वानि ।

जीवसमासान् सुने । चतुर्दशगुणस्वाननामानि ॥

सर्वविरओ वि भावहि सर्वविरतोऽपि हे जीव । त्वं महाव्रत्यपि
सन् भावय । णवयपयत्याइं सत्तत्त्वाइं नववपदार्थान् जीवाजीवा-
स्त्रवबन्धसंवरनिर्जसामोक्षपुण्यपापपदार्थान् । चेतनालक्षणो जीवः । पुत्र-
लधर्मधर्मकालाकाशा अजीवाः । आत्मप्रदेशेषु कर्मपरमाणव आगच्छन्ति
संआस्रयो मिथ्यात्वाभिरतिप्रमादकपापयोगरूपः । आत्मप्रदेशेषु आस्र-
वानन्तरं द्वितीयसमये कर्मपरमाणवः स्त्रिष्यन्ति ॥ बन्धः प्रकृतिस्थित्यनु-
भागप्रदेशभेदाच्चतुर्विधः । आस्रवस्य निरोधः संवर उच्यते । स संवरः
सं गुतिसमितिदशधर्मानुप्रेक्षापरीषद्द्वयचरित्रैर्भवति । तपसा निर्जरा च
भवति संवरश्च भवति । सर्वकर्मक्षयो मोक्षः कथ्यते । एते नववपदार्थाः, एतेषां
विस्तर आगमाद्वेदितव्यः । सत्तत्त्वानि पुण्यपापरहितानि ज्ञातव्यानि ।

१ पुस्तकद्वयेऽपि सशब्दो वर्तते ।

२ पुस्तकद्वयेऽपि पुण्यपापयोर्लक्षणं नास्ति तद्वेन प्रकारेण ज्ञेयं ।

पुनास्यात्मानं क्षणाय । पाति रक्षति अमादात्मानं क्षणाय ।

जीवसमासाईं मुणी हे मुने ! जीवसमासान् चतुर्दशसङ्ख्यान् त्वं
भाषय । अथ के ते चतुर्दशजीवसमासा इति चेत्—

धांदरसुहमेगिंदिय त्रित्तिचउरिंदिय असाणेण सण्णी य ।

पज्जत्त पज्जत्ता मूदा इय चोदसा होंति ॥ १ ॥

विस्तरभदैर्जीवसमासा अष्टानवतिर्भवन्ति । तत्रेय गाथा—

धायर येयालीसा दो सुर दो गरय तिरिय चउतीसा ।

नव यिउले नव मणुए मडणउदी जीवडाणाणि ॥ १ ॥

अस्या विवरणे—पृथ्वीकायिकसूक्ष्म बादर पर्याप्त-अपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त
६ । तथा अप् ६ । तेज ६ । वायु ६ । एव २४ । वनस्पतिकायिकभेद
२ प्रत्येक-साधारण । साधारणभेद १२ नित्यनिगोद सूक्ष्म बादर पर्याप्त-
अपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त ६ तथा इतरनिगोद-सूक्ष्म बादर पर्याप्त-अपर्याप्त-
लब्ध्यपर्याप्त ६ एव १२ । प्रत्येकभेद ६ सुप्रतिष्ठितप्रत्येक वाटिकादी,
अप्रतिष्ठिता स्वयमेव ते च पर्याप्त-अपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त । एवं धाव-
रवेयालीसा । सुरभेद २ पर्याप्त-अपर्याप्त । नारकभेद २ पर्याप्त-अप-
र्याप्त । पंचेन्द्रियतिर्यग्भेद ३४ । जलचरभेद २ गर्भज-सम्पूर्ष्टन । गर्भ-
जभेद २ पर्याप्त-अपर्याप्त । सम्पूर्ष्टनभेद पर्याप्त-अपर्याप्त-लब्ध्य-
पर्याप्त ५ । तथा नमध्वर ५ । स्थलचर ५ । एवं १५ संज्ञिभेदा ।
तथा १५ असंज्ञिभेदा । भोगभूमिजतिर्यग्भेद ४ जलचर पर्याप्त-अपर्याप्त ।
नमध्वर पर्याप्त-अपर्याप्त । एव ४ । एवं पंचेन्द्रियतिर्यग्भेद ३४ । विकलज-
येभद ९ । द्वीन्द्रियपर्याप्त-अपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त, त्रिन्द्रियपर्याप्त अपर्याप्त-
लब्ध्यपर्याप्त, चतुरिन्द्रियपर्याप्त-अपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त । एवं ९ । मनुष्य

१ बादरसूक्ष्मैकेन्द्रियद्वित्रिचतुरिन्द्रियामक्षिमपिन ।

पर्याप्तापर्याप्ता मूता इति चतुर्दशं भवन्ति ॥ १ ॥

२ विवरणमिदं पुस्तकानुसारि ।

भेद ० भोगभूमिजभेद २ पर्याप्त-अपर्याप्त, कुभोगभूमिजमनुष्य पर्याप्त-
अपर्याप्त, म्लेच्छखण्डमनुष्य पर्याप्त-अपर्याप्त, आयखण्डमनुष्य पर्याप्त-
अपर्याप्त-लब्ध्यपर्याप्त । एव भेद ९ । एवं जीवसमासा अष्टानवति ।
चउदसगुणठाणामाहं चतुर्दशगुणस्थाननामानि । यथा—

मिच्छेता सासण मिस्सो अविरदसम्मो य देसविरदो य ।

धिरदा पमत्त डयरो अपुट्ठ अनियट्ठि सुहमो य ॥ १ ॥

उवसत खीणमोहो सजोगकेवल्लिजिणो अजोगी य ।

चउदसगुणठाणाणि प कमेण सिद्धा मुणेअव्या ॥ २ ॥

मिध्यात्वगुणस्थानं (१) सासादनगुणस्थान (२) मिश्रगुण-
स्थान (३) अविरतसम्पन्दिगुणस्थान (४) देशविरतगुणस्थान
(५) प्रमत्तसयतगुणस्थान (६) अप्रमत्तसयतगुणस्थान (७)
अपूर्वकरणगुणस्थान (८) अनिवृत्तिकरणगुणस्थान (९) सूक्ष्म-
सापरायगुणस्थान (१०) उपशान्तकपायगुणस्थान (११) क्षीणकपाय-
गुणस्थान (१२) सयोगकेवल्लिगुणस्थान (१३) अयोगकेवल्लिगुणस्थान
(१४) चेति । चतुर्दशगुणस्थानानां विवरणमागमाद्वेदितव्य । तानि त्वं
हे जीव ! भाष्य-रुचिमानय-श्रद्धान कुर्विति ।

णवविहवंभं पयडहि अब्बंभ दसविहं पमोत्तूण ।

मेहुणसण्णासत्तो ममिओसि भण्णवे मीमे ॥ ९६ ॥

नवविधब्रह्मचर्यं प्रकटय अवद्व दशविध प्रमुच्य ।

मेघुनसञ्ज्ञासक भ्रमितोसि मवार्णवे मीमे ॥

णवविहवंभं पयडहि नवविधं नवप्रकार ब्रह्मचर्यं हे जीव । त्वं
प्रकटय सर्वकालमागमप्रत्यक्षं कुरु । मनोवचनकायानां प्रत्येकं कृतकारि-
तानुमतानि त्रीणि त्रीणीति नवविधं ब्रह्मोच्यते । अथवा—

इत्थिविसयाहिलासो अंगविमोक्षो य पणिदरससेवा ।

संसत्तदव्यसेवा तर्हिदियालोयणं चैव ॥ १ ॥

सफकारपुरस्कारो अतीदमुमरणमणागदहिलामो ।

इद्विसयसेवा वि य नवभेदमिदं अवमं तु ॥ २ ॥

इति नवभेदमब्रह्म तद्वर्जनं नवभेदं ब्रह्मचर्यं ज्ञातव्यमित्यर्थः । अव्यं-
भं दसविहं पमोत्तूण अब्रह्मचर्यं दशविधं प्रमुष्य परिहृत्य । किं तदश-
विधमब्रह्मेति चेत् !—

चिन्ता दिदक्षा निःस्पयासो ज्वरो दाहो रुचिस्तथा ।

मूच्छोऽन्मत्तोऽसुसन्वेहो मरणं दशधा स्मरः ॥ १ ॥

मैद्युणसण्णासत्तो मैद्युनस्य कमनीयकामिन्या आलिङ्गनचुम्बनचूप-
णादिसंज्ञायामासत्तो लपटो हे जीव ! । भमिओसि भवण्णवे भीमे
भमितोऽसि भान्तोऽसि पर्यटितोऽसि ष्छेदनभेदनादिदुःखानि भुञ्जानो
भवण्णवे संसारसमुद्रे चतुर्गतिलक्षणे भीमे भयानके रौद्रस्वभावे, अन-
न्तकालं दुःखी बभूविथेति ।

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च ।

भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥ ९७ ॥

भावसहितश्च मुनीनः प्राप्नोति अरापनानकुप्पं च ।

भावरहितश्च मुनिवर । भ्रमति चिरं दीर्घसंसारे ॥

भावसहिदो य मुणिणो भावेन जिनसम्पत्त्वलक्षणेन सहिदो-
सहितः सहितः संयुक्तः श्रीमद्भगवद्देहसर्वज्ञवीतरागचरणकमलचंचरीकः,
अथवा भावः पूर्वोक्तलक्षणः स्वः शुद्धबुद्धैकस्वभाव आत्मा हितो यस्य

१ स्त्रीविषयाभिलाषः अंगविमोक्षश्च प्रणीतरसमेवा ।

संसत्तद्व्यसेवा तथेन्द्रियालोकनं चैव ॥ १ ॥

सफकारपुरस्कारः अतीतस्मरणं अनागतभिलाषः ।

इद्विषयसेवापि च नवभेदमिदमब्रह्म तु ॥ २ ॥

यस्मै ॥ स भावस(स्व)हित । चकारान्ते मुनिरयेषामपि भव्यजीवाना
हित त्रैलोक्यलोकतारणसमर्थत्वात् । यो भावसहित स पुमान्
मुणिगो-मुनीनामिन स्वामी मुनीन ॥ मुनिर्मुनिचक्रवर्ती । पावइ
आराहणाचउक्कं च प्राप्नोति लभते, किं तत् ? आराधनाचतुष्क
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यतपसामाराधकत्वं प्राप्नोति । भावरहिदो य मुणि-
वर भावरहितश्च जिनसम्यक्स्थातीतो वेपथारी मुनि हे मुनिर ! हे
मुनिश्रेष्ठ ॥ भमइ भ्राम्यति पर्यटति । चिर दीर्घकाल अनन्तकाल-याव
त्काल सिद्धत्वाभिनो मुक्तौ तिष्ठन्ति तावपर्यन्तं स मिष्यादृष्टिर्मुनि
भ्रमति । कः दीहसंसारे दीर्घसंसारेऽनन्तभवसकटे ससारसमुद्रे
मज्जनोमज्जन करोतीति भावार्थः ।

पार्वन्ति भावसवणा कल्लाणपरपराइ सोक्खाइ ।

दुक्खाइ दब्बसवणा नरतिरियकुदेवजोणीए ॥९८॥

प्राप्नुवन्ति भावश्रवणा कल्याणपरम्पराणि सुखानि ।

दुःखानि द्रव्यश्रवणा नरतिरियकुदेवयोनी ॥

पार्वन्ति भावसवणा प्राप्नुवन्ति लभते, के ते ? भावश्रवणा सम्य
गृह्यो दिगम्बरा । कल्लाणपरपराइ सोक्खाइ कल्याणानां गर्भावा
रजन्माभिषेकनिष्क्रमणज्ञाननिर्माणलक्षणा (ना) परपरा श्रणियेषु सौरयेषु
तानि कल्याणपरपराणि एवविधानि सौख्यानि भावश्रवणा प्राप्नुवन्ति
तीर्थंकरपरमदेवा भवन्ति । दुक्खाइ दब्बसवणा दुःखानि प्राप्नुवन्ति,
के ते ? दब्बसवणा-द्रव्यश्रवणा जिनसम्यक्त्वरहिता नाना पशुमयाना
दिगम्बरा इति भावार्थः । क दुःखानि द्रव्यश्रवणा प्राप्नुवन्तीति
चेत् ? नरतिरियकुदेवजोणीए नराश्च मनुष्या, तिर्यक्च पशवः, कुत्सि-
ता देवाश्च भावनामरा व्यतरा ज्योतिष्काश्च तेषां योनौ उत्पत्तिस्थाने ।

१ चकारात् न मुनर- इत्यादि स पाठ । पुत्रद्वयेऽपि नकारो वर्तते
स च शल्यति ।

इत्थिचिसयाहिलासो अगविमोक्खो य पणिदरससेवा ।

ससत्तद्व्यसवा तहिदियालोयण चेव ॥ १ ॥

सफकारपुरस्कारो अतीदसुमरणमणागदहिलासो ।

इट्ठिसियसेवा वि य नवभेदमिदं अवम तु ॥ २ ॥

इति नवभदमव्रह्म तद्वर्जन नवभेद ब्रह्मचर्यं ज्ञातव्यमित्यर्थ । अवर्-
भं दसविहं पमोत्तूण अत्रह्मचर्यं दशविध प्रमुष्य परिहृत्य । किं तदश-
विधमव्रह्मति चेत् ?—

चिन्ता दिदक्षा नि.श्यासो ज्यरो दाहो यचिस्तथा ।

मूच्छोमत्तोऽसुसन्वेहो मरण दशधा स्मर ॥ १ ॥

मेहुणसण्णासत्तो मैथुनस्य कमनीयकामिन्या आलिङ्गनचुम्बनचूप-
णादिसंज्ञायामासक्ता लपटो हे जीव ।। भमिओसि भयण्णवे मीमे
भमितोऽसि भ्रातोऽसि पर्यटितोऽसि छेदनभेदनादिदु खानि भुजानो
भयार्णवे ससारसमुद्रे चतुर्गतिलक्षणे मीमे भयानके रौद्रस्वभावे, अन-
न्तकालं दु खी बभूविथेति ।

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउष्कं च ।

भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिर दीहसंसारे ॥ ९७ ॥

भावसहितश्च मुनीन प्राप्नोति अराधनाचतुष्कं च ।

भावरहितश्च मुनिवर । भ्रमति चिरं दीपसंसारे ॥

भावमहिदो य मुणिणो भावेन जिनसम्यक्कलक्षणेन सहिदो-
सहितं संहितं संयुक्तं श्रामद्वगवदहंत्सर्पज्जवीतरागचरणकमलचचरीकं,
अथवा भावः पूर्वोक्तलक्षणः स्य शुद्धबुद्धैकस्वभाव आत्मा हितो यस्य

१ स्त्रीविषयाभिलाष अगविमोक्षश्च प्रणीतरससेवा ।

संसत्तद्व्यसवेवा तथेन्द्रियालोकनं चेव ॥ १ ॥

सस्कारपुरस्कार अतीतस्मरण अनागतभिलाषः ।

इष्टविषयसेवापि च नवभेदमिदमव्रह्म तु ॥ २ ॥

यस्मै ॥ स भावसः (२३) हित । चकारान्नं मुनिरन्येषामपि भव्यजीवानां
हितं त्रैलोक्यलोक्तारणसमर्थत्वात् । यो भावसहितः स पुमान्
मुनिर्गो—मुनीनामिनः स्वामी मुनीनः ॥ मुनिर्मुनिचक्रवर्ती । पावइ
आराहणाचउक्कं च प्राप्नोति लभते, किं तत् ॥ आराधनाचतुष्क
सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्यतपसामाराधकत्वं प्राप्नोति । भावरहिदो य मुनि-
वर भावरहितश्च जिनसम्यक्त्वातीतो वेषधारी मुनिः हे मुनिर । हे
मुनिश्रेष्ठ । भमइ भ्राम्यति पर्यटति । चिर दीर्घकालं अनन्तकालं—याव-
त्कालं सिद्धस्वामिनो मुक्तौ तिष्ठन्ति तावत्पर्यन्तं स मिथ्यादृष्टिर्मुनि-
भ्रमति । कः दीहसंसारे दीर्घसंसारेऽनन्तभवसकटे ससारसमुद्रे
मज्जनोमज्जने करोतीति भावार्थः ।

पावंति भावसवणा कल्लाणपरपराइं सोक्खाइं ।

दुक्खाइं दब्बसवणा नरतिरियकुदेवजोणीए ॥९८॥

प्राप्नुवन्ति भावश्रवणा कल्याणपरम्पराणि सुखानि ।

दुःखानि द्रव्यश्रवणा नरतिर्येककुदेवयोनी ॥

पावंति भावसवणा प्राप्नुवन्ति लभन्ते, के ते ॥ भावश्रवणा सम्प-
गृह्यो दिगम्बरा । कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं कल्याणानां गर्भानता-
रजन्माभिप्रेक्ष्य निष्क्रमणज्ञाननिर्माणलक्षणा (ना) परपरा श्रेणियेषु सौख्येषु
तानि कल्याणपरंपराणि एव विधानि सौख्यानि भावश्रवणा प्राप्नुवन्ति
तीर्थकरपरमदेवा भवति । दुक्खाइं दब्बसवणा दुःखानि प्राप्नुवन्ति,
के ते ॥ दब्बसवणा—द्रव्यश्रवणा जिनसम्यक्त्वरहिता नग्ना पशुसमाना
दिगम्बरा इति भावार्थः । क दुःखानि द्रव्यश्रवणा प्राप्नुवन्तीति
चेत् नरतिरियकुदेवजोणीए नराश्च मनुष्या, तिर्यचश्च पशवः, कुत्सि-
ता देवाश्च भावनामरा व्यतरा ज्योतिष्काश्च तेषां योनी उत्पत्तिस्थाने ।

१ चकारात् न मुनिर- इत्यादि. ख पाठ । पुस्तकद्वयेऽपि नकारो वर्तते
स च शक्यति ।

दास्यामि, अस्यामृतौ दास्यामि, अस्मिन् वर्षादौ दास्यामीति नियमेन यदन्न मुनिभ्यो दीयते तत्प्रामृत कथ्यते (७) भगवन्निदं मदीयं गृहं वर्तते यत्रैव गृहप्रकाशकरणं भवति निजगृहस्य गृहिणा प्रकटनं क्रियते, अथवा भाजनादीनां संस्कारं भाजनादीनां स्थाना-न्तरणं वा प्राविष्कृतमुच्यते (८) विद्यया क्रीतं द्रव्यसूत्रभाजनादिना वा यत्क्रीतं तत्क्रीतं कथ्यते (९) कालान्तरेणाव्याजेन वा स्तोकमृणं कृत्वा यतीनां दानार्थं यदर्जितं तत्प्रामृत्य मुच्यते (१०) कस्यचिद्गृहस्थस्य ब्रीहान् दत्त्वा शालयो गृह्यन्ते, अथवा निजं कूरं दत्त्वा परकूरं गृह्यते निजाम्यूपान् दत्त्वा परेषामभ्यूपा गृह्यन्ते एवं यपरिवर्त्यत यतिभ्यो दीयते दास्यते वा स परिवर्तं कथ्यते (११) ग्रामात् पाटकात् गृहान्तराद्यदायात् तदमिहितं कथ्यते तद्योग्यं न भवति । कुतोऽप्यायातं योग्यं भवतीति चेत् : भवति योग्यं यदि श्रजुत आसन्नादासत्ताद्गृहादायात् तत् योग्यं । पंक्तिबद्धात् पट्टाद्गृहाद्यदायात् तत्कल्पते सप्तमाद्गृहात् षट्पदौकितं तन्न कल्पते इत्यर्थः (१२) त्रिमुद्रादिकं यदन्नादिकं भवति तदुद्भिन्नमुच्यते—उद्धाटितं न भुज्यते इत्यर्थः (१३) मालिकादिसमारोहणेन यदानीतं तन्मालिकारोहणमुच्यते—उपरितनभूमेर्यद्घृतादिकमधस्तनभूमौ समानीतं तन्न कल्पते इत्यर्थः (१४) राजभयाच्चौरमयाद्यदीयत तदाच्छेद्यमुच्यते (१५) ईशानीशानभिमतेन स्वाम्यस्वाम्यनभिमतेन यदीयते तदनिष्टं कथ्यते (१६) इत्येते षोडशोद्गमदोषा भवन्ति ।

अथोत्पादनदोषा षोडश उच्यन्ते—तन्नामनिर्देशो यथा । धात्रीवृत्ति (१) दूतव (२) भियगृत्ति (३) निमित्त (४) इच्छाप्रिभाषण (५) पूर्वस्तुति (६) पश्चात्स्तुति (७) क्रायचतुष्कं (८-९-१०-११) यक्षकर्म (१२) स्वगुणस्तवनं (१३) विद्योपजीवनं (१४) मन्त्रोपजीवनं (१५) चूर्णोपजीवनं (१६) । बाह्यलक्षणशिक्षादि-

धीत्रीत्व (१) दूरव घुजनाना वचनाना नयनमानयन च दूतत्वं (२)
गजचिकि सा विपचिकि सा जागुल्यपरनामा बालचिकि सा तादृशान्यचि-
किसामिरशनाजन भिषगृत्ति (३) स्वरातरिक्षभौमाद्भव्यजनच्छिन्न-
लक्षणस्वप्राद्याह्ननिमित्तैरशनार्जनं निमित्त (४) कश्चिपृच्छति हे मुने !
दीनहानादीनामन्नादिदानेन पुण्य भवेन्न वा भवेत् ? मुनिरनार्थं वदति
पुण्य भनदेधेत्यभ्युपगम इच्छानिभाषणमुच्यते (५) अहो जिनदत्त ! त्व
जगति विद्यातो दाता वर्तसे इत्यादिभिर्वचनैर्गृहस्यस्यान-दजनन भुक्ते
पूर्वं तत्पूर्वस्तवन (६) एव भुक्ते पश्चात् स्तवनविधान पश्चा स्तुति (७)
क्रोध कृवाऽन्नोपार्जन क्रोध (८) मानेनान्नाजन मान (९) माययाऽ-
न्नार्जन माया (१०) लोभेनान्नाजन लाभ (११) वशीकरणमन्त्र-
तत्रायुपदशेन यदन्नापाजन तद्वश्यकर्म (१२) स्वकीयतप श्रुतजा-
तिकुलादिवर्णमं स्वगुणस्तपन (१३) सिद्धविद्यासाधितविद्यादीना प्रद-
र्शन विद्योपजीवन (१४) अङ्गशृङ्गारकारिण पुरुषस्य पाठसिद्धादि
मन्त्राणामुपदेशनं मन्त्रोपजीवन (१५) एव चूर्णादिवपदशन चूर्णोप-
जीवन (१६) एते षोडशो पादनदाया वदितव्या ।

अथैषणादशदोषा वक्ष्यन्ते । तेषामप्य नामनिर्देशः । शक्ति (१)
अक्षित (२) निक्षित (३) पिहित (४) उज्जित (५) व्यवहार
(६) दातृ (७) मिश्र (८) अपक्व (९) लिप्त (१०) चेति ।
एतदन्नं सेव्यमसेव्यं वेति शक्तिं (१) सस्नेहहस्तपात्रादिना यदन्नं
तन्प्रक्षित (२) सचित्तपद्मपात्रादौ यक्षिप्तं तन्निक्षिप्त (३) सचित्तेन
पद्मपात्रादिना यपिहितं तदन्नं पिहित (४) यच्चूतफलादि बहु त्यक्त्वा
ल्पसेवनं तदुज्जितं, अथवा येषानादिक दीयमानं बहुतरेण गलननाल्पसेवनं
तदुज्जितं (५) यद्यतीना सम्भ्रमादादरतया चैवपात्रादेरसमीक्ष्याकार्यं स

आगमे व्यवहार उच्यते (६) दातृदोषाः कथ्यन्ते—निर्वस्त्रः शौण्डः
पिशाचः अन्धः पतितः मृतकानुगः तीव्ररोगी व्रणी लिङ्गी नीवस्थानस्थितः
उच्चस्थानस्थित आसन्नगर्भिणी कोऽर्थः ? निकटजनितापत्या वंश्या दासी
काण्डपट्टादिनान्तरिता अशुचिः किमपि भक्षयन्ती इत्यादयो दोषा दातृगा
ज्ञातव्याः (७) पङ्जीवसम्भिन्नं मिश्रः (८) पावकादिद्रव्यैरपरित्यक्त-
पूर्वस्वकीयवर्णगन्धरसमपक्वं (९) लिप्तैर्दर्वाकरार्द्यदीयमानमशनादिकं
लिप्तं तथाऽप्राप्तमुक्तजलमृत्तिकोल्मुकादिभिलिप्तैर्वदीयते तल्लिप्तं (१०) ।

स्वादिनिमित्तं यसंयोजनं शान्तिं उष्णं उष्णे शान्तिमित्वादिभेदं
तदनेकरोगाणामसंयमस्य च कारणं ज्ञातव्यं (१) कुक्षैर्धर्मशमनेन
पूरयेत् तृतीयमंशं कुक्षेः पानेन पूरयेत् कुक्षेऽधतुर्थमंशं वायोः मुखप्रचा-
रार्थमवशेषयेत् रिक्तं रक्षेत् अस्मात्प्रमाणादतिरेकोऽधिकप्रहणं प्रमाण-
दोषः । प्रमाणातिक्रमेण किं भवति ? ध्यानभगः, अध्ययनविनाशः,
अर्थ्युत्पत्तिः, निद्रात्पत्तिः, आलस्यादिकं च स्यात् (२) इष्टान्नपानादि-
प्राप्तौ रागेण सेवनं भंगारदोषः (३) अनिष्टान्नपानादिप्राप्तौ द्वेषेण
सेवा धूमदोषः (४) । अथ किमर्थमाहारो गृह्यते इति चेत् ? आहार-
प्रहणे मुनीनां गुणाः सन्ति । उक्तं च वीरनंदिभट्टारकेण—

क्षुब्धान्त्याद्यद्यकप्राण-रक्षार्थमयमा मुनेः
ध्यायित्वं च पद्भुक्तेः कारणानीति यन्मतम् ॥ १ ॥
ततः शरीरसंवृद्धय तत्तेजोबलवृद्धये ।
स्वाद्यार्थमायुसंवृद्धयै नैव भुञ्जीत संयतः ॥ २ ॥
महोपसर्गात्तद्भुक्ता ह्यसन्त्यासाद्विदयातपो-
ब्रह्मचर्याणि भिक्षोः पदकारणान्यशनोऽश्नने ॥ ३ ॥
एतद्दोषविहीनाश्च भुक्तेरन्तरकारिणः ।
अन्तरायाः कियन्तोऽत्र वप्यन्ते घर्णिनामिमे ॥ ४ ॥

कन्दं मूलं बीजं पुष्पं पत्रादि निश्चितं सचितम् ।

अशित्वा मानगर्वे भ्रमितोसि अनन्तसंसारे ॥

कंदं मूलं बीजं पुष्पं पत्रादि निश्चितं सचितम् ।
वेरं आर्द्रवरवर्णिनीं आर्द्रहरिदित्यर्थः । मूलं हस्तिदन्तकं मूलकमित्यर्थः ।
नारंगकंदकं गाजरमित्यर्थः । बीजं चणकादिकं । पुष्पं पुष्पं सेननांपुष्पं
करणबीजपूरपुष्पं । पत्रादि नागवल्लीदलं । किंचि सच्चितं किमपि
देर्वादिदिक् । असिऊण माणमन्वे अशित्वा भक्षयित्वा मानेन मान्य-
तया गर्वे सति । भ्रमिओसि अणंतसंसारे भ्रमितस्त्य हे जीव ! अन-
न्तसंसारे अपर्यन्तभयसकटे इति भावः ।

विणयं पंचपयारं पालहि मणवयणकायजोएण ।

अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावन्ति ॥ १०२ ॥

विनय पंचप्रकारं पालय मनोवचनकाययोगेन ।

अविनयनरा सुविहितां ततो मुक्तिं न प्राप्नुवन्ति ॥

विणयं पंचपयारं विनय यथायोग्यं करयोदन-पादपतन-अभ्युत्थान-
स्वागत-भाषणादिक पंचप्रकारं ज्ञानस्य, दर्शनस्य, चारित्रस्य, तपसश्च
विनयं विनीतत्वं, उपचारलक्षणं पंचमं विनयः । हे आत्मन् ! हे मुने !
हे जीव ! हे आसन्नभक्ष्य ! सर्वोपकारित्तवं । पालहि प्रतिपालय कुर्विति ।
मणवयणकायजोएण मनोवचनकाययोगेन आत्मव्यापारेण । अविणय-
णरा सुविहियं अविनयनरा अविनयनरा वा सुविहिता तीर्थपूजनाम-
कर्मपूर्वकत्र घनिशित्य । तत्तो मुत्तिं न पावन्ति ततः कारणान्मुक्तिं सर्व-
कर्मक्षयलक्षणोपलक्षिता न प्राप्नुवन्ति नैव लभन्ते ।

णियसत्तीणं महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि ।

तं कुण जिणभत्तिपरं निज्जावच्चं दसरियणं ॥ १०३ ॥

निजशक्त्या महायश । भक्तिरागेण नित्यकाले ।

तत्र कुरु जिनभक्तिपरं वैयाघृत्य दशविकल्पम् ॥

णियसत्तीए महाजम एकारस्योच्चारणवादन पादे द्वादशैव मात्रा
पदितव्या । अथवा त्रयोदशमात्रासङ्ख्यावाद्वाथाऽदोभंग स्यात् ।

तदुक्तं प्राकृतव्याकरणे—

“उच्चारणघृत्यमेदोतोऽर्थजनस्ययोः”

निजशक्त्या हे महायश । । भक्तीराएण निश्चकालमिमं भक्तिरागेण
नियकाले । तं कुरु त्वं कुरु । जिनभक्तिपरं जिनभक्तौ परमुत्कृष्टं ।
विज्ञाय च वैयाघृत्य । दशविकल्प दशविकल्प दशभेद आचार्यादीनां
पूर्वोक्तानाम् ।

जं किंचि कयं दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेण ।

तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ॥ १०४ ॥

य कश्चिन् कृतो दोषः मनवचनकार्ये अशुभभावेन ।

■ गर्हं गुरुशकासे गारव मायां च मुक्त्वा ॥

जं किंचि कयं दोसं यं कश्चित्कृतो दोषः वृत्तादिष्वतीचारः ।
मणवयकाएहिं असुहभावेण मनवचनकार्यैरशुभभावेन रागद्वेषमोहा
दिदुष्परिणामेन । तं—दोषमतीचारादिकं, गर्हं प्रकाशय । गुरुसयासे गुरु
शकासे गुरुपार्श्वे आचार्यगालाचार्यपादमूले । गारव मायं च मोत्तूण
गारवं रसद्विशब्दसातगर्भं मुक्त्वा, मायां च मुक्त्वा कपटं परिहृत्य ।
आलोचनादशदोषान् भगवत्पराधनाकथितान् निहाय । तदुक्तं—

आकपिय अशुमानिय, जं दिट्ठं यादरं सुहमं च ।

उत्तं सहाउत्तं, घट्टजणमव्वच्च तस्सेवी ॥ १ ॥

“तुमंशुभाणत्तूणाअत्तुष्कं फत्ताया ”

१ शयनेन मोत्तूण इत्यत्र गत्वाया द्वादेशः ।

दुज्जणवयणचडक्कं निहुरकडुयं सहंति सप्पुरिमा ।

कम्ममलणामणहं भावेण य णिम्ममा सवणा ॥ १०५ ॥

दुज्जनवचनचपटा निष्ठुरकटुका सहंते सत्पुरुषा ।

कर्ममलनाशनार्थं भावेन च निर्मेमा धवणा ॥

दुज्जणवयणचडक्कं दुर्जनानां गुन्दवनिन्दकानां मिथ्यादृष्टीनां नामधाराकाणां च वचनमेव चपटा तां । कथंभूता, निष्ठुरकटुयं निष्ठुरा निर्दया, कटुफा-वर्णशूलप्राया निष्ठुरकटुका तां निष्ठुरकटुकां । सहंति सप्पुरिमा सह ते सत्पुरुषा महामुनयो दिग्गजरा, सद्दृष्टयो गृहस्थाश्च । किमर्थं सहंते ? कम्ममलणासणहं कर्माणि-ज्ञानावरणादीनि, मलानि-अतिचाराश्च तेषां नाशनार्थं क्षयार्थं परमनिर्माणप्राप्त्यर्थं च । भावेण य णिम्ममा सवणा भावेन जिनसम्यक्त्वज्ञासनया निर्मेमा ममत्यकारात्तमव्ययशब्द, ममत्वरहिता धवणा दिग्गजरा महामुनय ।

पावं खवड् असेसं रत्ताण् परिमंडिओ य मुणिपवरो ।

खेयरअमरनराणं पसंमणीओ धुवं होइ ॥ १०६ ॥

पाप क्षिपति अशेष क्षमया परिमण्डितश्च मुनिप्रवर ।

खेचरामरनराणां प्रशसनीयो ध्रुवं भवति ॥

पावं खवड् असेसं पाप त्रिपिष्टिप्रवृत्तिलक्षणं क्षिपते, अशेषं द्वास्त-सत्तित्रयोदशप्रवृत्तिरूपमघातिकर्मलक्षणं च प्रवृत्तिसमुदायं च क्षिपते । कथा, रत्ताण् क्षमया पार्श्वनाथवत् उत्तमश्चमाच्छरणपरिणामेन । परिमंडिओ य परि समन्तामनोपचनकापप्रकारेण मण्डितः शोभितश्च । मुणिपवरो मुनिप्ररो मुनीनां श्रेष्ठ । चकार उक्तसमुच्चयार्थं । तेनान्योऽपि काऽपि गृहस्थोऽपि क्षमापरिणामेन स्वर्गं गत्वा पारंपर्येण मोक्षं याति इति ज्ञातव्यं । खेयरअमरनराणं खेचराणां विद्याधराणां, अम-

राणां भावनव्यन्तरज्योतिष्ककल्पवासिना कल्पातीताना च, नराणां भूमिगोचरनृपादीना च । पर्ससणीओ प्रशसनीयः स्तवनीयः स्तोतव्यः सस्कृत-प्राकृत अपभ्रंश सौरसेनी भागधी—पैशाची चूलिकापैशाचीवद्भग-वत्पदानुदस्तुतिभिर्विशेषेणाभिवादनीयः । ध्रुवं होइ ध्रुवं निश्चयेन भवति । अत्र सदेहो नास्ति । क्षमावान् मुनिस्तोर्थकरो भवतीति भावार्थः ।

इय पाउण खमागुण खमेहि तिविहेण सयलजीवाणं ।
चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह ॥ १०७ ॥

इति श्रुत्वा क्षमागुण ! क्षमस्व तिविहेन सकलजीवान् ।

चिरसंचितक्रोधशिखिन वरक्षमासलिलेन सिंच ॥

इय पाउण इति पूर्वोक्ततीर्थकरपदप्रापक क्षमाफल श्रुत्वा विज्ञाय ।
खमागुण हे क्षमागुण ! चतुरशीतिशतसहस्रगुणानां मध्ये प्रधानक्ष-
मागुण हे मुने ! । खमेहि क्षमस्व । तिविहेण मनीषचनकायलक्षण-
त्रिप्रकारेण । सयलजीवाणं सकलजीवान् एकेन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्य-
न्तान् । चिरसंचियकोहसिहिं चिर दीर्घकालं संचितं पुष्टितं पुष्टि-
नीतं क्रोध एव शिखी वैश्वानर दाहसन्तापकारकत्वात् ॥ क्रोधशि-
खिनं क्रोधाग्निं । वरखमसलिलेण सिंचेह वरा उत्तमा क्षमा सर्व-
सहनधर्मः सैव सलिलं पानीयमुदकं आयुः स्थिरीकरणमनः प्रसादजनक-
त्वात् तेन वरक्षमासलिलेन कृत्वा सिंच त्वं विध्यापय । उक्तं च—

आकृष्टोऽहं हतो नैव हतो वा न द्विधाकृतः ।

मारितो न हतो घर्मो मदीयोऽनेन बन्धुना ॥ १ ॥

चित्तस्थमप्यनवबुद्धयः हरेण जाह्नवा-

त्कुदूध्वा बहिः किमपि दग्धमनद्बुद्धया ।

घोरामवाप स हि तेन कृतामवस्था

क्रोधोदयान्भवति कस्य न कार्यहानि ॥ २ ॥

दिक्खाकालाईयं भावहि अवियार दंसणरिसुद्धो ।

उत्तमबोहिनिमित्तं असारसाराडं मुणिऊण ॥ १०८ ॥

दीक्षाकालादीय भावय अविचार । दर्शनविशुद्ध ।

उत्तमबोधिनिमित्त असारसाराणि ज्ञात्वा ॥

दिक्खाकालाईयं दीक्षाकाले खलु जिविस्य परमवैराग्य भवति,
दीक्षाकाल आदिर्यस्य रोगोत्पत्तिप्रभृतिकालस्य स दीक्षाकालादि दी
क्षाकालादौ भवो दीक्षाकालादीयो भावस्त दीक्षाकालादीय निजपरिणा
मविशेष हे जीव आत्मन् । हे चैतन्य । हे मुने । त्व । भावहि—भाज्य
तं परिणाम त्व स्मर । यदहमद्यप्रभृति यनितामुख न पश्यामि, क्वनि
तासु रक्तोऽहमनादिकाले ससारे पर्यटतोऽवाञ्छितमेव दुःखं प्राप्त,
अहर्निशमाकाक्षन्नपि सुखलश न लब्धवान् । तदुक्त—

अजाकृपाणीयमनुष्ठित त्वया

यिक्ल्पमूढेन भवादित पुण ।

यद्यत्र किञ्चित्सुरालेशमाप्यते

तदार्य । विद्वद्यन्धकवर्तनीयकम् ॥ १ ॥

अन्यत्र—

ससारे नरकादिषु स्मृतिपथऽप्युद्वेगकारीण्यल

दु स्त्रानि प्रतिसेवितानि भवता तान्येधमेवासताम् ।

तत्तावत् स्मरसि स्मरस्मिताशितापाङ्ग रनङ्गायुधै

वर्माना हिमदग्धमुग्धतरुचयत्प्रातवत्त्रिधन ॥ १ ॥

आतङ्गपावकशिखा सरसावलेखा

स्वस्थे मनाडमनसि ते लघु विस्मरन्ति ।

तत्कालजातमतिनिस्फुरितानि पञ्चा

जीवान्यथा यदि भवन्ति कुतोऽग्रिय ते ॥ १ ॥

भावाहि अविचार दंसणविसुद्धो दाक्षाकाले दारिद्र्यकाले रोगा-
दिकाले च ये भावास्तस्या भाविता धर्माध्ययणपरिणामस्तान् भावान् हे
जीव ! सदाकालमपि त्व भावय, हे अविचार-हे अविचार निर्विवेक-
जीव ! । अथवा हे अविकार रागद्वेषमोहादिदुष्परिणामवर्जितजीव ! ।
स्थभूत सन् भावय, दंसणविसुद्धो-सम्यक्त्वकौस्तुभशोभितनिर्मलद्वय
सन् भावय । अथवा अविचारदंसणविसुद्धो इत्येकमेव पदं । तत्रा-
यमर्थ-अविकार पञ्चविंशतिशोपरहित यद्दर्शन सम्यक्स्वरत्न तेन विशुद्धोऽ-
नन्तभयपापरहित । किमर्थं भावय, उत्तमप्रोहिनिमित्त उत्तमा गण
धरचक्रधरकुलिशधरमन्वयरपुण्डरीके "पूज्यत्वात् उत्तमा चासौ बोधि
तन्निमित्त उत्तमप्रोधिनिमित्त । असारसाराइ मुणिउण असाराणि
साराणि च मुनित्वा ज्ञात्वा । उक्त च—

अधिरेण धिरामल्लिणेण निम्मला निग्गुणेण गुणसारा ।

काएण जा विदुप्पइ सा किरिया किं न कयय्वा ॥ १ ॥

अनागोचित असार, आलोचितं सार । परनिदा असार, निजनिन्दा
सार । आमदोषाणा गुरोरप्रेऽप्रकथन असार, गुर्वप्रे निजदोषकथन
सार । अप्रतिक्रमण असार, प्रतिक्रमण सार । विराधनं असार,
आराधन सार । अज्ञान असार, सम्यग्ज्ञान सार । मिथ्यादर्शनं
असार, सम्यग्दर्शनं सार । कुचरित्र असार, सच्चरित्र सार । कुतप,
असार, सुतप सार । अकृत्य असार, कृत्य सार । प्राणातिपातोऽसार,
अभयदान सार । मृषावादोऽसार, सत्य सार । अदत्तादान असार,
दत्त कल्प्य च सार । मैथुन असार, ब्रह्मचर्यं सार । परिग्रहोऽसारं,

१ अस्थिरेण स्थिरमनसा निमला निर्गुण गुणसारा ।

कायन वा विधीयते सा क्रिया किं न कर्तव्या ॥

२ धिरामणेन च ।

नैर्प्रन्थ्यं सारं । रात्रिभोजनमसारं, दिवाभोजनमेकभक्तं प्रत्युत्पन्नं प्रासुक्तं
 सारं । आर्त्तरौद्रध्यानमसारं, धर्म्यं शुद्धध्यानं सारं । कृष्णनीलकपो-
 तलेदया असारं, तेजःपद्मशुद्धलेदया सारं । आरंभोऽसारं, अनारंभ
 सारं । असयमोऽसारं, संयम सारं । सप्रचोऽसारं, निप्रन्थ्य सारं ।
 सचेलोऽसारं, निथेल सारं । अलोचोऽसारं, लोच सारं । स्नानं
 असारं, अस्नान मलधारण सारं । अभूमिशयनं असारं, भूमिशयन सारं ।
 दन्तधाननं असारं, अदन्तघर्षण सारं । उपरिदय भोजनं असारं, उद्भभो-
 जनं सारं । भाजने भोजन असारं, पाणिपात्रे भोजन सारं । क्रोधोऽसारं,
 क्षमा सारं । मानोऽसारं, मार्दवं सारं । मायाऽसारं, आर्जनं सारं ।
 लोभोऽसारं, सत्तोष सारं । अतपोऽसारं, द्वादशविधं तप सारं ।
 मिथ्यात्वं असारं, सत्यत्वं सारं । अशील असारं, शील सारं । सश-
 ल्योऽसारं, निशल्य सारं । अग्निनयोऽसारं, प्रिनय सारं । अनाचाराऽ-
 सारं, आचार सारं । उन्मार्गोऽसारं जिनमार्गं सारं । अक्षमा असारं,
 क्षमा सारं । अगुप्ति असारं, गुप्ति सारं । अमुक्ति असारं, मुक्ति-
 सारं । असमाधि असारं, समाधि सारं । ममत्वं असारं, निर्ममत्वं
 सारं । यद्वाकितं तदसारं, यन्न भावितं तत्सारं । इति सारासाराणि
 शातव्यानि ।

सेनहि चउविहलिगं अचमंतरलिगमुद्धिमापणो ।

वाहिरलिगमकज्जं होइ पुढं भावरहियाणं ॥ १०९ ॥

सेवस्व चतुर्विधमिदं अभ्यतरलिङ्गमुद्धिमापणं ।

वागलिङ्गमकार्यं भवति स्फुटं भावरहितानं ॥

सेनहि चउविहलिगं सेवस्व हे मुने ! चतुर्विधं लिगं शिर-
 केशमुखदमश्रुलोचाऽथ केशरक्षणं चतुर्विधमिदं लिगं पिष्टकुण्टी-
 दयग्रहं । अचमंतरलिङ्गमुद्धिमापणो अभ्यतरलिङ्गं त्रिनसम्पत्त्वं

तस्य शुद्धिमापन्न प्राप्त । बाहिरलिङ्गमकज्जं बहिरिङ्गं पूर्वोक्तं
चतुर्लिङ्गमकार्यं मोक्षदायकं न भवति । होइ कुडं भावरहियाणं
अकार्यं भवति स्फुटमिति निश्चयेन भावरहितानां मिथ्यादृष्टीनां
दिगम्बराणां ।

आहारमयपरिग्रहमेदुणसण्णाहि मोहिओसि तुमं ।

ममिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ॥ ११० ॥

आहारमयपरिग्रहमैधुनसंज्ञामि मोहितोसि त्वम् ।

अस्मिन् संसारवने अनादिकालमनामयश्च ॥

आहारमयपरिग्रहमेदुणसण्णाहि मोहिओसि तुमं आहार-
मयपरिग्रहमैधुनसंज्ञाभिर्मोहित आत्मरूपाद्यालित प्रचलित प्रच्युत,
असि-भवसि, तुम-न्व हे जीव ।। ममिओ संसारवणे भ्रान्त पर्यटित्वं
संसारवने नरकतिर्यक्कुमनुष्यतुलितदेवगहने । अणाइकालं अनादि-
काळ पूर्वकाले । अणप्पवसो अनात्मवश, न आमा मनो वशे यस्य
सोऽनात्मवश त्रिपयकपायान्यापरेजितहृदय इत्यर्थः ।

बाहिरसयणत्ताणतरमूलाइणि उत्तरगुणाणि ।

पालहि भावविमुद्धो पूयालाहं नर्दहतो ॥ १११ ॥

बाहिःशयनातपनतरमूलादीन् उत्तरगुणान् ।

पालय भावविमुद्धं पूजाकार्त्तव्यं अनीहमान् ॥

बाहिरसयणत्ताणतरमूलाइणि उत्तरगुणाणि बाहिःशयनातप-
नतरमूलादीन् उत्तरगुणान् पालयेति सम्बन्धः । शीतकाउऽनाहतस्थाने
स्थितिं कुरु । उष्णकाले आतपनयोगं धर । वर्षाकाले तरमूले तिष्ठ ।
वृक्षपर्णोपरि पतित्रा यज्जलं यन्मुषी पतति तस्य प्रामुक्त्यादिराधनाऽ-
ष्कायिकानां जीवानां न भवति दिगुर्ण वर्षाकाले च भवतीति कारणात्
वर्षाकाले तरमूलस्थितेऽप्यपयोग, अन्यथा कानरत्वप्रसक्ते । एते त्रयोऽपि

योगा उत्तरगुणा कथ्यन्ते । पालहि भागविमुद्धो (पालय भागवि
शुद्ध) तत्रभावनानिर्मग्नना सन्निति भाव । पूयालाह नईहतो
पूजालभल्यायादिकमनाहमानाऽनिच्छन्निति शेष ।

भागहि पढम तच्च विदिय तदिय चउत्थपचमय ।

तिरयणसुद्धो अप्प अणाइणिहण तिरग्गहर ॥ ११२ ॥

भावय प्रथम तत्र द्वितीय तृतीय चतुर्थपञ्चमकम् ।

त्रिकरणशुद्ध आत्मान अनादिनिधन त्रिवर्गहरम् ॥

भागहि पढम तच्च भागय हे जीव । त्व अद्वेहि, किं तत् ?
प्रथमं तत्त्वं जावतत्त्वं । विदिय द्वितीय तत्रमजीवसज्ञ पुद्गलधर्माधर्मका
लाकाशलक्षण । तदिय तृतीय तत्त्वं आत्मरनामधेय । चउत्थपचमय
चतुर्थ बधनामधेय, पंचमक तत्त्व सवराभिधान, निर्जरा पत्र तत्र,
मोक्ष सप्तम तत्र । तिरयणसुद्धो अप्प त्रिकरणशुद्ध सन्नामान
भागय, अल्प वा स्तोककालं अन्तर्महूर्तकाल । कथभूतमानानं, अणा
इणिहण अनादिनिधनं आद्यतरहित । तिरग्गहर धर्मार्थकाममर्गत्रय
वर्जित सर्वकर्मक्षयक्षणमोक्षसहित निश्चयात् ।

जाव ण भागइ तच्च जाव ण चित्तेड चितणीयाड ।

ताव ण पावइ जीरो जरमरणविरज्जिनय ठाण ॥ ११३ ॥

यावन्न भावयति तत्त्व यावन्न चिन्तयति चिन्तनीयानि ।

तावन्न प्राप्नोति जीव जरामरणविवर्जित स्थानम् ॥

जाव ण भागइ तच्च यावकाल न भावयति, किं ? तत्त्व सप्तसत्य
जीवाजावास्तवप्रधसवरनिर्जराशलाक्षण, त म य निजामत य मोक्षकारण
अपरे जीवा शुद्धबुद्धैकस्यभावा निजा गा च । अजीवतत्र पुद्गलो धर्मोऽ
धर्म काल आकाशश्च । तत्रष्टस्त्वमनितादिरूप पुद्गलपर्याया माहापादको

रागजनक, शस्त्रविषकण्टकशत्रुप्रभृतिद्वेषकारकपुद्गलपर्याय । सोऽप्या-
स्रनिमित्त कर्मबन्धकारणं शुद्ध आहारादिगृहीत शुद्धध्यानाध्ययनका-
रणत्वात् सत्तर्निर्जराकारणत्वात् सोऽपि मोक्षप्रत्यय, अशुद्ध आहारो
गृहीत चर्मादिस्पृष्टतया दुर्ध्यानोत्पादकत्वादास्रबन्धकारण । इत्यादि
पुद्गलस्य हेयोपादेयसुक्तितया विचारो ज्ञातव्य । अथवा पुद्गलत्रयमेव
जीवस्य बन्धकारणत्वात् स्वकारण परमार्थतया हेय एव । धर्मस्तु नरका-
दिगतिसहायकारकत्वाद्देय स्वर्गमोक्षगतिकारकत्वादुपादेय । अधर्मस्तु
स्वर्गमोक्षस्थानादौ मुनीना ध्यानाध्ययनादिकाले स्थितिहेतुतादुपादेय ।
नरकनिकोत्तादिस्थितिकारणत्वे हेय । कालस्तु स्वर्गमोक्षादौ धर्तना-
प्रत्ययत्वादुपादेय, नरकादिपर्यायतर्तनाकारणत्वाद्देय । आकाश समवश-
रणस्वर्गमोक्षादायवकाशदायकगुणत्वादुपादेय । नरकनिगोदादिस्थानाव-
काशदानदायकत्वाद्देय । निर्निदानविशिष्टार्थिक्करनामकर्मास्त्रव उपादेयो
मोक्षहेतुत्वात् । नरकादिगर्तादिनिपातहेतुत्वादन्व आस्रवो हेय । तीर्थ-
करनामकर्महेतुश्चतुर्विधोऽपि बन्ध उपादेय, ससारपर्यटनकारीतरो बन्धो
हेय । सत्तर् उपादेय । निर्जरा चोपादेया मुनीना सम्प्रधिनी । मोक्ष
सर्वार्थाप्युपादेयोऽनन्तज्ञानादिचतुष्टयकारणत्वादिति ससत्त दानि यावन्न
भावयति । जाय ण चिंतेइ चिंतणीयाइं यावन्न चिंतयति चिन्तनी
यानि धर्मशुद्धध्यानानि अनुप्रेक्षादीनि च । ताव ण पावइ जीवो
तावन्न प्राप्नोति जीव आत्मा । जरमरणविवर्जितं ठाणं जरामरण-
विवर्जित स्थान परमनिर्वाणपदमिति शेष ।

पावं पयइ असेसं पुण्णमसेसं च पयइ परिणामो ।

परिणामादो उंघो भुक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥ ११४ ॥

पाप पचति अशेष पुण्यमशेष च पचति परिणाम ।

परिणामाद्बन्ध मोक्षो निनशासने दृष्ट ॥

पाप पयइ असेस पाप पचति अशप, सर्व पाप परिणाम पचति निर्जरयति निजामपरिणामो भावना नि शेष पाप दूरीकराति । उक्तं च —

नाममात्रकथया परात्मनो भूविजमहतपापसक्षय ।

धोघवृत्तरुचयस्तु तद्वता कुर्वते हि जगता पतिं नरम् ॥ १ ॥

पुण्यमसेस च पयइ परिणामो पुण्य अशप सर्वं च सर्वमपि पचति विस्तारयति मेलयति, योऽसौ १ परिणाम निजशुद्धयुद्धैकस्व भावामभावनो जिनसम्भव च । तथा चोक्त—

एकापि समर्थेय जिनमस्ति दुर्गोतिं निवारयितुम् ।

पुण्यानि च पूरयितुं दातुं मुक्तिधिय कृतिन ॥ १ ॥

सद्वैद्यगुभायुर्नामगोत्रलक्षण तीर्थकरनामकर्मासाधारणपुण्य परिणामे नैवोपाज्यत इत्यर्थ । तथा चोक्त—

परिणाममेव कारणमाहु खलु पुण्यपापयानिपुणा ।

तस्मात्पुण्योपचय पापापचयश्च सुविधेय ॥ १ ॥

तथा च समर्थसार —

आमहत परिणाम निमित्तमात्र प्रपद्य पुनरग्ये ।

स्ययमय परिणमन्तऽत्र पुद्गला कमभावेन ॥ १ ॥

परिणामादो बन्धो परिणामाद्बन्ध प्रवृत्तिस्थित्यनुभागप्रदशब्दलक्षण-
क्षतुर्बन्धो बन्ध —पुण्यसम्बन्धी पापसम्बन्धी च बन्ध सजायते । उक्तं च—

पयडिद्विद्विद्यगुमागपदेसबधा दु चदुविधो यधो ।

जोगा पयडिपदेसा द्विद्विद्यगुमागा कसायदो द्योति ॥ १ ॥

१ पुरपायतिद्विगुणस्यैवतप्राप्तातरै ।

२ प्रवृत्तिस्थित्यनुभागप्रदेगवधान्तु धनुर्विधो बन्ध ।

योगाद् प्रवृत्तिप्रदेशौ स्थित्यनुभागौ कसायता भवत ॥

मुक्ता जिनसासणे दिट्टो मोक्ष सर्वकर्मप्रक्षयलक्षणोपलक्षित पर-
मनिर्वाण जिनशासने श्रीमद्भगवदर्थसर्जयितरागमते दृष्ट प्रतिपादित
परिणामादेवेति निश्चय, स मोक्षकारणभूत परिणाम आत्मन्येकलोली-
भाय इति भागार्थ ।

मिच्छत्त तह कसायाऽसंजमजोगेहि असुहलेसेहि ।

बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो ॥ ११५ ॥

मिथ्यात्व तथा कपाया असयमयोगैरशुभलेश्यै ।

बध्नाति अशुभ कर्म जिनवचनपराङ्मुखो जीव ॥

मिच्छत्त तह कसाया मिथ्यान् पंचविध तथा तेनैव पंचप्रकार-
मिथ्यात्वप्रकारेण कपाया पचविंशतिभेदा । असंजमजोगेहि असुह-
लेसेहि असंपमो द्वादशविध, योगा पचदशभेदा, एव सत्तपचाश-
कर्मबन्धप्रत्यया कारणानि आस्त्रकभेदा भवन्तीति सक्षेपार्थ । कथ-
भूतैरेतैरास्त्रै, अशुभलेश्यै कृष्णनीलकापोतलेस्याबलेन सज्जानै । बंधइ
असुहं कम्मं बध्नाति अशुभं कर्म । जिणवयणपरम्मुहो जीवो जिन
वचनपराङ्मुखो जीवो मिथ्यादृष्टिरात्मा ।

तं विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावमुद्धिमावण्णो ।

दुविहपयार बंधइ संसेवेणेरव बंजरिपं ॥ ११६ ॥

तद्विपरीत बध्नाति शुभकर्म भावमुद्धिमावण्ण ।

द्विविधप्रचारं बध्नाति संसेवेनैव कथित ॥

तं विवरीओ बंधइ तस्माजिनवचनपराङ्मुखान्मिथ्यादृष्टिर्जायाद्वि-
परीत सम्यग्दृष्टिर्जीव बध्नाति, किं शुभकर्म पुण्यकर्म-सद्वैद्यशुभायु-

१ संसेवेण जिणेण वज्जरिय य पुस्तके पाठ । संसेवे जिणे वज्जरिय य
पुस्तके पाठ । २ “कयेर्वज्जर-पय्जर-सम्भ-सास-साह-चव-जप्प-पियुग-
शोलोव्वाला ।” इत्यनेन एतेषु द्वादशेषु कथयतेर्वज्जरादेशो जात ।

नामगोत्रलक्षण तीर्थकरत्वं । कथभूतो जीव , भावसुद्धिमात्रणो भाव
शुद्धिमापन्न परिणामशुद्धि प्राप्त सदृष्टिजीव इत्यर्थ । दुविहपयार
वधइ द्विभिधप्रचार द्वयोर्भेदयो प्रचार विस्तारं वनाति । ससे
वेणेय वज्जरिय संभेषणेय कथित प्रतिपादितम् ।

णाणावरणादीहि य अट्टविरुम्मेहि वेट्टिओ य अह ।

उहिउण इण्हि पयडमि अणतणाणाइगुणचिंता ॥ ११७ ॥

ज्ञानावरणादिभिश्च अट्टभि कमभि वेष्टिनधाहम् ।

दग्धवेणानी प्रकटयामि अनन्तज्ञानादिगुणचेतनां ।

णाणावरणादीहि य ज्ञानावरणादिभिश्च ज्ञानावरणमादिर्येनां दर्श
नावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाणां तानि ज्ञानावरणादीनि तै
र्ज्ञानावरणादिभि । चकारादुत्तरप्रवृत्तिभिरष्टचचारिंशदधिकशतप्रवृ
त्तिभि । तथा उत्तरोत्तरप्रवृत्तिभिरसंख्याताभिरह वष्टित इति सम्बन्ध ।
अट्टविरुम्मेहि वेट्टिओ य अह अट्टभिरपि कर्मवृत्तिरेष्टितधाह ।
अपिचशब्दादनन्तान्तकर्मभिरहं वष्टितो वर्ते । उहिउण इण्हि पय-
डमि दग्घा भस्मीकृत्य तानि कर्माणि इयुपस्कार । इण्हि इदानी,
प्रकटयामि । अणतणाणाइगुणचिंता अनन्तज्ञानादिगुणचेतनामिति
तापर्यम् ।

सीलसहस्मट्टारम चउगसीगुणगणाण लभ्भराइ ।

भावहि अणुदिणु णिहिल अमप्पलावेण किं बहुणा ॥ ११८ ॥

सीलसहस्राद्यादय चतुरासीनिगुणगणानां लभ्याणि ।

भावय अनुदिन निहिल अमप्रापन किं बहुना ॥

१ अट्टविह इति क पुस्तके मूत्रगाथायाऽ । स पुस्तके, क ता पुस्तके
य टीकायां च अट्टवे इति पाठः । य य पुस्तके तु अट्टे इति पाठः ।

शीलसहस्रद्वारस शीलसहस्राष्टादश शीलाना सहस्राणि अष्टादश
भवन्ति तानि त्व भावयेति सम्बन्ध । चतुरशीतिगुणगणाना लक्षाणि ।
भावहि अणुदिण्णिहिलं भावय अनुदिने अहर्निश निखिलं समग्र ।
असम्पलावेण किं बहुणा असत्प्रलापन मिथ्यानर्थकचनेन बहुना
बहुतरेण किं-न किमपि ।

अष्टादशशीलसहस्राणा विवरण यथा—अशुभमनोवचनकाययोगा
शुभेन मनसा ह-यन्ते इति त्रीणि शीलानि । अशुभमनोवचनकाययोगा
शुभेन वचसा हन्य ते इति पद शीलानि । अशुभमनोवचनकाययोगा
शुभेन काययोगेन ह-यन्ते इति नव शीलानि । तानि चतसृभि सङ्गा-
भिर्गुणितानि पदत्रिंशच्छीलानि भवन्ति । तानि पचभिरिन्द्रियजयेर्गुणि-
तानि अशीत्यप्रशत भवन्ति । पृथ्व्यप्तेजोवायुवनस्पतिद्वीन्द्रियत्रीन्द्रियचतु-
रिन्द्रियपञ्चन्द्रियसप्तसङ्गिदयामिर्दशभिर्गुणितानि अष्टादशशतानि भ-
वन्ति । उत्तमूक्षमादिभिर्दशभिर्गुणितानि अष्टादशसहस्राणि भवन्ति ।
अथवा अशीत्यप्रद्विशताधिकसप्तदशसहस्राणि चैत यमम्बन्धीनि भ-
वन्ति । त्रिंशदधिकसप्तशतानि अचेतनसम्बन्धीनि भवन्ति । तत्रा-
चेतनकृतभेदा कथ्य ते—काष्ठ पापाण-लेप कृता स्त्रियो मन कायकृत-
गुणिता पद । कृतकारितानुमतगुणिता अष्टादश । स्पशादिपचगुणिता
भवन्ति । द्रव्यभासगुणिता अशीत्यप्र शत । कपायैश्चतुर्भिर्गुणिता त्रिंश-
स्यधिकानि सप्तशतानि । चैतन्यसम्बन्धीनि अशीत्यधिकद्विशताप्रसप्त-
दशसहस्राणि, तद्यथा—देवी मानुषी तिरस्त्री चेति स्त्रियस्तिस्त्र कृतकारि-
तानुमतगुणिता नव भवन्ति । मनोवचनकायगुणिता सप्तत्रिंशतिर्भ-
वन्ति । स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दैर्गुणिता पञ्चत्रिंशदधिक शत । द्रव्यभास

धर्म्यं ध्यानमित्युमास्वोमिसूच्येनात् । तथा श्रीगौतमस्वामिवचनाद्धर्म्यं ध्यानं दशविधं । तद्यथा । अपायविचयः १ उपायविचयः २ विपाकविचयः ३ विरागविचयः ४ लोकविचयः ५ भवविचयः ६ जीवविचयः ७ आज्ञाविचयः ८ संस्थानविचयः ९ संसारविचयश्चेति १० । तथा शुक्लध्यानं ध्याय पृथक्त्ववितर्कवीचारं १ एकवचनितर्कवीचारं २ सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति ३ व्युपरतिक्रियानिवर्ति ४ चेति । अहं रउहं च ज्ञाणं मृत्तूणं आर्त्तं रौद्रं च ध्यानद्वयं मुक्त्वा परित्यज्य । तत्रार्त्तध्यानं चतुर्विधं इष्टप्रयोगः १ अनिष्टसंयोगः २ पीडा-चिन्तनं ३ निदानं चेति ४ । रौद्रध्यानं चतुर्विधं हिसानन्दः १ अनृ-तानन्दः २ स्तेयानन्दः ३ संरक्षणानन्दश्चेति ४ । रुद्रहृद्वा इत्याहं रौद्रार्त्तं द्वे ध्याने ध्यातानि (ध्याते) । इमेण जीवेण चिरकालं इमेण प्रत्य-क्षीभूतेन जीवेनात्मना चिरकालं अनादिकालं । धर्म्यं शुक्लं च ध्यानद्वयं न ध्यातमिति भावार्थः ।

जे के वि दध्वसवणा इंदियमुहआउला ण छिंदंति ।

छिंदंति भावसवणा ज्ञाणकुढारेहिं भवरुक्खं ॥ १२० ॥

ये केपि द्रव्यश्रवणा इन्द्रियमुहआकुला न छिन्दन्ति ।

छिन्दन्ति भावश्रवणा ध्यानकुढारेण भवरुक्खम् ॥

जे के वि दध्वसवणा ये केऽपि द्रव्यश्रवणाः शरीरमात्रेण दिग-म्बरा अन्तर्जिनसम्यक्त्वशून्याः । इंदियमुहआउला ण छिंदंति इन्द्रियाणां स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्रलक्षणानां प्रियमाणं मुखेण आकुला । कदा सर्वोरूपरि विवक्षितवनिताया पादौ विन्यस्य स्तन-

१ " आहः पायविपायकसंस्थानविचयाय धर्म्यं " इति सूत्रमूचनात् । २ यद्य-नात् ख. पुस्तके पाठः । ३ भवरुक्खं, य. ।

कनककलशोपरि कर्तपल्लवौ विधृत्य मुखचुम्बनमधरपानमहं करिष्या-
मीति स्पर्शनेन्द्रियसुखलम्पट, घृतपानपक्वान्नव्यञ्जनशाल्यन्नादिस्वादमहं
प्रहीष्यामि, कर्पूरकस्तूरीचन्दनागुरुपुष्पादिपरिमलपान विधास्यामि, स्तन-
जघनवदनविलोचनविलोकन प्रणेष्यामि, धीणावशस्वरमण्डलनवयौवन-
कामिनीगीतमिश्र रवं श्रोष्यामीति पञ्चेन्द्रियविषयमाकाङ्क्षन् व्याकुलोऽयं
जीवो भवति । तत्सर्वं पूर्वमनन्तशोऽनुभूतमेव ससारे, न किमपि दुर्लभं
वर्तते अन्यत्रात्मस्वरूपसमुत्पन्नसुखामृतपानात् । तथा चोक्तं—

अदृष्टं किं किमस्पृष्टं किमनाघातमश्रुतं ।

किमनास्यादितं येन पुनर्नवमित्येक्ष्यते ॥ १ ॥

तथा च—

अङ्गं यद्यपि योषितां प्रधिलसत्तारुण्यलावण्यव-

द्भूपाद्यत्तदपि प्रमोदजनकं मूढात्मनां नो सताम् ।

उच्छ्रैर्बहुभिः शयैरतितरां कीर्णं श्मशानस्थलं

लब्ध्वा तुष्यति कृष्णकाकनिकरो नो राजहंसमजः ॥ १ ॥

तथा च—

समसुखशीलितमनसामशान्तमपि द्वेषमेति किमु कामाः ।

स्थलमपि दहति क्षपाणां किमङ्ग ! पुनरङ्गमङ्गाराः ॥ १ ॥

इत्यमृतचन्द्रः । तथा च शुभचन्द्रभगवान्—

घरमालिङ्गिता कुद्धा चलल्लोलात्र सर्पिणो ।

न पुनः कौतुकेनापि नारी नरकपद्मनिः ॥ १ ॥

तथा च शुभचन्द्रः—

मालतीव मृदून्यासां विद्धि चाङ्गानि योषितां ।

दारविष्यन्ति मर्माणि विपाके श्वास्यसि स्वयं ॥ १ ॥

काक इमिबुलाकीर्णं करङ्गे कुग्गं रनिम् ।

यथा तद्वद्वराकोऽयं कामी स्त्रीगुह्यमपने ॥ २ ॥

तथा च सोमदवस्वामी चूर्णिगधेन पराग्यभायनामार—

युवजनमृगाणा यथायानाय इव यनितासु कुन्तलशृङ्गाय ।
पुनर्ममदीर्घहारोद्दणोपाय इव भूलतोद्भास । ससारसागरपरि-
भ्रमाय नौयुग्ममित्र लोचनयुगल । दुःखाटव्याविनिपातकरमित्र
धाचि माधुर्ये । मृत्युगजप्रलोभनकघल इजायमधरपल्लव ।
स्पर्शविषकन्दार्द्रेद इव पयोधराविनिवेश । यमपादावष्टनमिव
भुजलतालिल्लत । उत्पत्तिनरामरणयमैत्र घग्गिना त्रय । भोलभन-
कुण्डमित्र नाभिमण्डल । भगिलगुणविलोपनगररेखेय रोमराजीवि
निर्गम । कालयालनिशसभूमिरिय मयलास्थान । व्यसनागमन
तोरणमिषोरनिर्माण । अपि च—

ब्रूधनुदृष्टयो वाणास्त्रिशूल च यस्मिन्नयम् ।

हृदय कर्तरी यासा ता कथं न नु चविडकाः ॥ १ ॥

गुणप्रामविलोपेषु साक्षाद्नीतय स्त्रिय ।

स्वर्गापवर्गमार्गस्य नित्यगोदगंला इव ॥ २ ॥

गूढकीटो यथा गूढे रति कुन्त यत्र हि ।

तथा ह्यम्यमेव्यसज्जान कामी स्त्रीविहंता मयेन् ॥ ३ ॥

एवमिन्द्रियमुखाकुला इन्द्रियमुखविच्छेदा न तिन्दति भयवृक्षमिति
सम्बन्ध । तिन्दति भावभरणा तिन्दति दिधापुरंति सण्डयति
भयवृक्षमिति सम्बन्ध । क तिन्दति ? भावभरणा त्रिनमम्यस्वरन
मण्डितहृदयस्थया । ज्ञानकुटारेण भयवृक्षं ध्यानं धम्यध्यान गुह-
ध्यानं च तदवकुटार कुटारं कृणार इयति गृह्णातीति कुटार,
ध्यानमेव कुटारो ध्यानकुटार कर्मनम्कधरिणागणवान् । भयवृक्ष
मेसारतमिति शेष ।

जह दीवो गव्वहरे मारुयवाहाविवज्जिओ जलइ ।

तह रायानिलरहिओ ज्ञाणपईवो वि पज्जलइ ॥ १२१ ॥

यथा दीप गर्भगृहे मारुतबाधाविवर्जितो ज्वलति ।

तथा रायानिलरहितो ध्यानप्रदीपोऽपि प्रज्वलति ॥

जह दीवो गव्वहरे यथा दीपो ज्योति गर्भगृहेऽपवरके स्थित
सन् । मारुयवाहाविवज्जिओ जलइ मारुतस्य सम्बन्धिनी मारुतोपन्ना
बाधो सजाता, बाधा प्रचलार्चि करणलक्षणा घौडा तस्या विवर्जितो
ज्वलति अवलम्बक्रिया कुर्याण उद्योत करोति । सह रायानिलरहिओ
तथा रागानिलरहितो यनितालिंगनादिप्रीतिलक्षणरागानिलरहितो रागश्च
ज्ञावातविवर्जितो मुनेर्ध्यानप्रदीप प्रज्वलति उद्योत करोति । उक्त च—

जसु हिरणव्ही हियवडइ तासु न बसु वियारि ।

एएकटि केम समति वड १ बे खडा पडियारि ॥ १ ॥

उक्त च—

घृष्टपाकुलध्वण्डमरज्जज्ञावातः प्रकीर्तित ॥ ३ ॥

ज्ञायहि पच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए ।

गरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥ १२२ ॥

ध्याय पञ्चापि गुरुन् मङ्गलचतु शरणलोकपरिकरितान् ।

गरसुरखेयरमहितान् आराधनाभावकान् ॥

ज्ञायहि पच वि गुरवे ध्याय वं हे मुने । हे आमन् । पचापि
मूर्धसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधून् पचपरमेष्ठिन । कथमूतान् पचापि
गुरुन्, मङ्गलचउसरणलोयपरियरिए मङ्गललोकोत्तमशरणभूतानि
त्यर्थ । मल पाप मालयन्ति मूलादुन्मूल्यति निमूलकाप कपन्तीति
मङ्गल । अथवा मग मुख परमानन्दलक्षणं लभति ददतीति मङ्गलं ।

१ इय गाथा पूर्वं एकोनच वारिंशत्तमे पृष्ठे आगता । ठनैवास्या छाया वर्तते ।

एते पचपरमेष्ठिनो मगलमित्युच्यन्ते । लोकेषु भूर्भुवः स्वर्लक्षणेषु
 उत्तमा उत्कृष्टा लोकोत्तमा । एते पचगुरुवः सर्वेभ्योऽपि वर्या
 उच्यन्ते । तथा शरण—अतिमथनसमर्था इमे पचगुरवो जीवानां शरण
 प्रतिपाद्यन्ते, चउसरणशब्देनामी, अर्हन्मगल अर्हन्लोकोत्तमा अर्हन्छ-
 रण । सिद्धमगल सिद्धलोकोत्तमा सिद्धशरण । साधुमगल साधुलो-
 कोत्तमा साधुशरण । साधुशब्देनाचार्योपाध्यायसर्वसाधनो लभ्यन्ते ।
 तथा केवलप्रणीतधर्ममगल धर्मलोकोत्तमा धर्मशरण चेति द्वादशमंत्रा
 सूचिता चतुःशब्देनेति ज्ञातव्य । एते द्वादशमंत्रा प्रणवपूर्वभाषा-
 बीजमस्रश्रुतबीजाक्षरपूर्वा ललाटपट्टे गोक्षीरवर्णा लिखिताधिन्यन्ते । तथा
 चोक्त—

नेत्रद्वन्द्वे धयणयुगले नासिकाग्रे ललाटे

यकत्रे नाभी शिरसि हृदये तालुनि भ्रूयुगान्ते ।

ध्यानस्थानाम्यमलमतिभिः कीर्तिताम्यत्र देहे

तेष्वंकस्मिन् विगतविषय चित्तमालम्बनीयम् ॥ १ ॥

लोचपरिपरिण—लोकोत्तममंत्रसहितामित्यर्थ । तथा चानादिसिद्धमन्त्रो
 गुरुपदेशान्मन्तव्य । सूरिणा तु सूरिमन्त्र तिलकमन्त्रो बृहल्लघुश्च निज-
 गुरुसमीपादुपदेशात् ध्यातव्य इति भावार्थ । नरसुरखेयरमहिण् कथं
 भूतान् पचगुरुन्, नरसुरखेचरमहितान् नराणां नृपादीनां, सुराणां सौध-
 मेन्द्रादीनां, खेचराणां विद्याधरचक्रवर्तिनां, महितान् अष्टविधपूजाद्रव्यै-
 र्भावपूजाभिश्च पूजितान् । पुनः कथंभूतान् पचगुरुन्, आराहणणा-
 यगे आराधनायां नायकान् स्वामिन इत्यर्थ । वीरे वीरान् कर्मशनु-
 क्षयकरणसमर्थानिति भावार्थ ।

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविष्य भावेण ।

वाहिजरमरणवेयणढाहविमुक्ता सिवा होंति ॥ १२३ ॥

ज्ञानमयविमलशीतलसलिलं प्राप्य भव्या भावेन ।

व्याधिजरामरणवेदनादाहविमुक्ताः शिवा भवन्ति ॥

णाणमयविमलसीयलसलिलं ज्ञानेन निर्वृत्त ज्ञानमय सम्यग्ज्ञान
मेव विमल कर्ममलकलकरहितं शीतल परमाह्लादलक्षणसुखोत्पादक
एतद्विशेषणत्रयविशिष्टं सलिलं जलमिति रूपकं । पाशुणं ज्ञानपानीय
प्राप्य लब्ध्वा । के ते, भविष्य रत्नत्रययोग्या भव्यजीवा । भावेन
भावेन जिनभक्त्या । उक्तं च—

सुखयतु सुखभूमिः कामिनं कामिनीव

सुतमिष जननी मा शुद्धशीला भुनक्तु ।

कुलमिष गुणभूषा कम्यका संपुनीता-

जितपतिपदपद्मप्रेक्षिणी दृष्टिलक्ष्मीः ॥ १ ॥

बाहिजरामरणवेयणडाहविमुक्ताः सिवा ह्येति व्याधिजरामरण-
वेदनादाहविमुक्ताः शिवा भवन्ति । ज्ञानजलं पीत्वा ज्ञानजलमाकर्ष्य
तन्मध्ये वृद्धित्वा तदवगाह्य परममगलभूताः शिवा सिद्धा भवन्ति ।
इति सम्यग्ज्ञानमाहात्म्यं भगवता श्रीकुन्दकुन्दाचार्येण सूरिणोद्गाभितं
भवतीति भावार्थः ।

जह बीयम्मि य दइढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे ।

तह कम्मवीयदइढे भवंकुरो भावसवणाणं ॥ १२४ ॥

यथा बीजे दग्धे नैव रोहति अकुरश्च महीपीठे ।

तथा कर्मबीजे दग्धे भवंकुरो भावसवणानां ॥

जह बीयम्मि य दइढे यथा येनप्रकारेण बीजे दग्धे भस्मीकृते ।
ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे नापि नैव रोहति प्रादुर्भवति । कोऽ-
सौ ? अकुरः अभिनव उद्भिज्ज उद्भिद्, महीपीठे भूमितले । चकार उक्त-
समुच्चयार्थं, तेन रागद्वेषमोहादयो भावकर्मशाखादयोऽपि न रोहन्ति

तह कम्मवीयदङ्गे तथा कर्मवीजे दग्धे मस्मीकृते । भवंकुरो भाव-
सवणाणं भवाङ्कुरः संसारङ्कुरो जन्मलक्षणो नापि रोहति न प्रादुर्भ-
वति । केपां, भावसवणाणं-सम्पद्दृष्टिनिरम्बराणां दुर्लक्ष्यपरमात्मभावना-
भाषितानां भेदज्ञानवतां । उक्तं च—

दुर्लक्ष्यं जयति परं ज्योतिर्वाचां गणः कवीन्द्राणां ।

जलमिध घञ्जे यस्मिन्नलब्धमप्यो बहिरुल्लंघति ॥ १ ॥

भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दब्बसवणो य ।

इय गाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होह ॥ १२५ ॥

भावश्रवणोपि प्राप्नोति सुखानि दुःखानि द्रव्यश्रवणश्च ।

इति क्षात्वा गुणदोषान् भावेन च संयुतो भव ॥

भावसवणो वि पावइ भावश्रवणः सम्पद्दृष्टिदिगम्बरोऽपि निश्च-
येन प्राप्नोति लभते । कानि प्राप्नोति, सुक्खाइं निजामोक्षपरमान-
न्दलक्षणनिराकुलतासहितपरमानन्तसौख्यानि । दुहाइं दब्बसवणो
य प्राप्नोतीति दीपकोद्योतात् दुःखानि शारीरमानसागन्तुकलक्षणोपलक्षि-
तान्यसातानि द्रव्यश्रवणो मिथ्यादृष्टिदिगम्बरः प्राप्नोति । चशब्दाद्बृह-
स्योऽपि सावधसंयुक्तो दानपूजास्नपनरहितः पर्वोपवासकातरः घलम-
डिनाङ्गरहितसम्पद्दर्शनदुर्विधो क्रतातिचारभग्नपुण्यपादो दूरभव्यतया
गुरुचरणनिन्दक आत्महितो न भवति । लौकस्तु महापापी जिनप्र-
तिमोष्टेदको नारको भवति । तथा चोक्त—

सर्वे धर्मेभ्यं क्वचित्क्वचिदपि प्रायेण पापात्मकं

क्षाप्येतद्द्वयवत् करोति चरितं प्रज्ञाधनानामपि ।

तस्मादेतदिहान्धरज्जुवलयं स्नानं गजस्याथवा

मसोन्मत्ताविचोष्टितं न हि दितो गेहाश्रमः सर्वथा ॥ १ ॥

इयं णाउं गुणदोसे इति ज्ञात्वा गुणशोषान् । भावेण यं संजुदो
होहे भावेन जिनभक्तिनिजात्मभाषनापचगुरुचरणरेणुरजितभाटस्थल-
सयुतो भव । एव सति शं मुख तेन युक्तो भव हे मुने ! हे जीवेति
सम्बोधन ।

तित्थयरगणहराहं अभ्युदयपरपराहं सोक्खां ।

पावन्ति भावसहिता संसेवि जिणेहि वज्जरियं ॥ १२६

तीर्थंकरगणधरादीनि अभ्युदयपरम्पराणि सौख्यानि ।

प्राप्नुवन्ति भावसहिता संसेवनं जिने कथितं ॥

तित्थयरगणहराहं तीर्थंकरगणधरादीनि सौख्यानीति सम्बोध ।
तीर्थंकराणां धर्मोपदेशकाळे तीर्थंकरा कमलोपरि पादो-पस्पन्ति, अशो-
कवृक्षच्छायायामुपविशन्ति, तेषामुपरि द्वादशयोजनमभिव्याप्य देवा पुष्प-
वर्षणं प्रचरन्ति, तानि तु पुष्पाणि उपरि मुखानि अधोवृत्तानि अव-
तिष्ठन्ते, जानुपर्यन्तं पतन्ति, मुनीनामागमने मुनिपुत्रा मागं लभन्ते,
भ्रमरपरीतानि कमलोत्पलकैरवेन्दीवरराजधपकजातिमुक्तान्धनाऽद्वासरु-
ल्लकेतकमदारमु-दरनमेरुपरिजातसन्तानककल्हारशुक्ररक्तसेधनकमुचुकु-
न्दवृन्दानि पतन्ति, पचाशद्वृक्षद्वादशकोटिपटहा अपराणि च धादित्राणि
वैष्णवल्लङ्घिपणवमृदंगत्रिधिलतालकाहलकम्बुप्रभृतीनि सरयासीतानि अ-
म्बरचरकुमारकरास्फलितानि समुर्वतरिक्षलक्ष्माणि ध्वनन्ति, सजलजल-
धरगर्जितमिव स्वामिनो योजनैकं यात्रद्व्यनिर्भव्यजनैराऽर्ण्यत, हससो-
ऽञ्जलानि चतुःपञ्चामराणि पतन्त्युत्पतन्ति च, पचशतधनुस्त्रतं
सिंहगिष्टं भगति, योजनैकप्रमाणं सभामभिव्याप्य कोटिभास्करयुगप-
दुद्योतिशरीरतेजो भगति, तच्च शारदेन्दुपरिपूर्णमण्डलमिव श्लोचनानां
प्रियतमं भगति, एकदण्डानि उपर्युपरि त्रीणि च्छत्राणि मस्तकोपरि सम-

वृत्ति, इत्यादीनि चतुर्विंशदतिशयपञ्चकन्याणादीनि जिनोत्तमाना सुखानि बाह्यानि भवन्ति, अनन्तज्ञानानन्तदर्शनानन्तरीर्यानिन्तसुखानि चाम्यन्तरसुखानि भगवता भवन्ति । तथा भावध्रुवणा (ना) गणधरदेवाना तीर्थकरयुवराज्यसौख्यानि भवन्ति । अब्भुदयपरपराहं मोक्षराहं इन्द्रपदतीर्थकरकल्याणत्रयलक्षणानि कल्याणपरम्पराणि सौर्यानि भावध्रुवणा अब्भ्यन्तरमहामुनयो मुच्यन्ते इति भावार्थः । पात्रंति भावसहिया प्राप्तुवन्ति लभन्ते, के ते ? भावसहिता सम्यक्त्वचित्तानि मण्डितमनस्थलय खलु दिगम्बरा । संखेवि जिणेहिं वज्जरिय सखेरिसमासेनोक्तमिदं वचनं जिने कथितमिति भावार्थः ।

ते धण्णा ताण णमो दसणवरणाणचरणसुद्धाणं ।

भावसहियाण णिच्च तिविहेण पणहमाद्याण ॥ १२७ ॥

ते वन्द्यस्तेभ्यो नमः दर्शनवरज्ञानचरणशुद्धेभ्यः ।

भावसहितेभ्यो नित्यं त्रिविधेन व्रणश्रमायेभ्यः ।

ते धण्णा ताण णमो ते मुनिपुगवा धन्या पुण्यवन्त तम्योऽस्माकं श्रीकुन्दबुद्धाचार्याणां नमो नमस्कारो भवतु नमोऽस्तु स्तान् । दसणवरणाणचरणसुद्धाणं सम्यग्दर्शनसम्यग्ज्ञानसम्यक्चरणानि शुद्धानि निरतिचाराणि येषां, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रैरां ये शुद्धा कर्मफललङ्घरहिता दर्शनवरज्ञानचरणशुद्धा ये मुनिपुगवा तम्यो नमः । कथं भूतेभ्यस्तेभ्यः, भावसहियाण भावनं शुद्धामपरिणामेन त्रिनसम्यक्त्वनं च सहितानां सयुक्तेभ्य इत्यर्थः । ननु नमस्त्वस्तिस्वाहास्वधास्वपद्योगे चतुर्थी भवति तत्कथमत्र पट्टीनिर्देशः ? सत्यं, संसृते तद्योगं चतुर्थी प्रोक्ता, न तु प्राकृते । कथं ? नित्यं सर्वकालं नमो नमोस्तु इत्यस्य विशेषणमिदं । केन कृत्वा नमः, त्रिविहेण मत्तोवाक्का

यलक्षणेन नमस्कोरेण नमो न तु हास्येन । कथंभूतानां तेषां, यणद्वमा-
माणं प्रणष्टा भिनाशं प्राप्ता माया परवचना येषां ते प्रणष्टमायास्तेषां ।

इष्टिमतुलं विउन्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं ।

तेहि वि ण जाइ मोहं जिणभावणभावितो धीरो ॥१२८॥

कृद्धिमतुलो विकृतां किंनरकिम्पुरुषामरखचरैः ।

तैरपि न याति मोहं जिणभावनाभावितो धीरः ॥

इष्टिमतुलं विउन्विय ऋद्धिः पूर्वोक्तलक्षणा, अतुला अनुपमा,
विकुर्विता विक्रियाकृता निजतद्भवान्यभवतपोमहिमसंजाता । तथा किण्ण-
रकिंपुरिमअमरखयरेहिं किन्नरैः, किम्पुरुषैः, अमरैः कल्पप्राप्तिप्रभृति-
भिश्च निहिता ऋद्धिः । तेहि वि णे जाइ मोहं तैरपि किन्नरकिम्पुरु-
षामरखचरैरपि मोहं न याति लोभ न गच्छति । कोऽमौ, जिणभावण-
भावितो धीरो जिणभावनया निर्मलसम्पत्त्येन भावितो वासितो धीरो
योगीश्वरः । ध्येयं प्रति धियनीरपतीति धीरैः ।

किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसारणं

जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्खःमुणिधवलो ॥१२९॥

किं पुन गच्छति मोहं नरसुरसुखानामल्पसाराणाम् ।

जानन् पश्यन् चिन्तयन् मोक्षं मुनिधवलः ॥

किं पुण गच्छइ मोहं किं पुनर्गच्छति मोहः लोभ । णरसुर-
सुक्खाण अप्पसारणं नराणां नृपादीनां सम्बन्धिना, सुराणामिन्द्रा-
दीनां देवानां सम्बन्धिनां मौख्यानां मोहः लोभः किं गच्छति—अपि तु
न गच्छति । कथंभूतानां मौख्यानां, अल्पसाराणां स्तोत्रप्रशस्यानां
वा अल्पस्वादानामित्यर्थः । जाणंतो पस्संतो जानन्नपि अनुभूय दृष्ट्वा

जानन्नपि, पस्ततो—यद्यन् प्रयक्ष चक्षुर्म्या निरीक्षमाणोऽपि । चिंततो
 मोक्ष मुनिधवलो चित्तयन्नपि विचारयन्नपि, किं ? मोक्ष सर्वकर्म
 क्षयलक्षणं मोक्ष परमनिर्वाणमुख अनन्तसौख्यदायक परमनिर्वाणमुखं
 जानन्नपीत्यादिसम्बन्ध, मुनिधवल मुनीनां मुनिषु वा धवलं निर्मलं
 चारित्र्यमरोद्धरणधुरधरो वृषभ श्रेष्ठ इत्यर्थः ।

उत्थरइ जा ण जरओ रोगगी जा ण डहइ देहउडिं ।

इंदियबलं न वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहिय ॥१३०॥

आक्रमते यावन्न जरा रोगाग्निं यावन्न दहति देहकुट्टिम् ।

इन्द्रियबलं न विगलति तावत् त्वं कुरु आत्महितम् ॥

उत्थरइ जा ण जरओ आक्रमते यावन्न जरा । “छुदोत्थारोहाना
 आक्रमे ” इति प्राकृतप्याकरणसूत्रेण आक्रमधातोत्त्थार इत्यादेशः ।
 तर्हि उत्थारइ इतीदृशं रूपं स्यात् ? प्राकृते नृस्वदीर्घो मिथ भवति
 “अचामच प्रायेण” इति सूत्रेण, सत्र नास्ति दोषः “आहो
 ज्योतिरहमे ” इति रचादिपाठदामने पदं । अथवा उत्थारइ जा ण
 जरइ इति च कश्चित् पाठः । रोगगी जा ण डहइ देहउडिं रोगाग्नि-
 र्यावन्न दहति ॥ भस्मीकरोति, का ? देहकुट्टिं शरीरपुष्पशाला । इंदिय
 बलं न वियलइ इन्द्रियाणां चक्षुरादीनां बलं सामर्थ्यं यावत्काटं न
 विगलति । इंदियबलं न वियलं इति पाठे इन्द्रियबलं यावद्विकलं
 हीनं न भवति । ताव तुमं कुणहि अप्पहिय तावत्त्वं हे मुनिपुंगव !
 कुरु निधदि, किं ? आत्महितं मोक्षं साधयेयर्थं । उक्तं च—

पलितच्छलेन देहाग्निगच्छति शुद्धिरेव तव बुद्धेः ।

यथमिय परत्ताकार्यं जरी घरावस्तदा स्मरसि ॥ १ ॥

आतदशोकमयभोगकलत्रपुत्रै-

र्यः खेदयेन्मनुजजन्म मनोरथाप्तं ।

नूनं स भस्मकृतधीरिह रत्नराशि-

मुद्गापयेदतनुमोहमल्लीमसात्मा ॥ २ ॥

अधोऽधीय तिरस्कृता परतिरस्कारक्षुतीनां धृति-

अक्षुर्वीक्षितुमक्षम तव दशां दूष्यामिवान्धं गतं ।

भीत्येषाभिमुखान्तकादतिनरां कायोऽप्ययं कपते

निष्कम्पस्त्वमहो प्रदीममघनेऽप्यासे जराजर्जरः ॥ ३ ॥

छज्जीयछडायदणं णिचं मणवयणकायजोएहिं ।

कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुच्चं महासत्त ॥ १३१ ॥

पदजीवषडायतनानां नित्य मनोवचनकाययोगै ।

कुरु दयो परिहर मुणिवर । भावय अपूर्वं महासत्त्व । ॥

छज्जीयछडायदणं पदजीवानां दया कुरु, पडायतनानि परिहर ।

कथ, णिचं सर्वकाल । मणवयणकायजोएहिं मनोरचनकाययोगै ।

कुरु दय परिहर मुणिवर हे मुनिर मुनीनां श्रेष्ठ । । भावि अपुच्चं

महासत्त भावय अपूर्वं आत्ममानन हे महासत्त्व महाप्रसन्नधर्मपरिणाम । ।

“अभाविं भावेमि भाविं ॥ भावेमि ।”

इति श्रीगौतमोक्तत्वात् ।

दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण ।

भोगसुहकारणं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं ॥ १३२ ॥

दशविधप्राणाहार अनन्तभवसायरे भ्रमता ।

भोगसुखकारणार्थं कृतश्च त्रिविधेन सकलजीवानाम् ॥

दसविहपाणाहारो दशविधानां प्राणानामाहार पचेन्द्रियाणि मान-

वाना तिरश्चा च त्वया कवलितानि, मनोरचनकायलक्षणसूत्रयो बलप्रा-

णास्त्वया हे जीव । भक्षिताः, उच्छ्वासप्राणोऽपि त्वया चर्षितः, आयु-

प्राणश्चोदराग्निमाजन कृतः । अणंतभवसायरे भमंतेण अनन्तानन्त-

ससारसमुद्रे भ्रमता पर्यटता । भोगसुहकारणद्वं भोगसुखकारणार्थं
जिह्वोपस्थसंजातसुखहेतवे । कदो य त्रिभिहेण सयलजीवाणं दश-
प्राणाना त्वया आहार कृत त्रिभिधेन मनसा वाचा वपुषा चेति सक-
लजीवाना चातुर्गतिकप्राणिना ।

पाणियहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि ।

उप्पज्जंतमरतो पत्तोमि निरतर दुक्खं ॥ १३३ ॥

प्राणिवधै महायश । चतुरशीतिलक्षयोनिमध्ये ।

उत्पद्यमानम्रियमाण प्राप्तामि निरन्तरं दुःखम् ॥

पाणियहेहि महाजस प्राणिना वधै कृत्वा हे महायश ।। चउ-
रासीलक्खजोणिमज्झम्मि चतुरशातिलक्षयोनीना मध्ये । उप्पज्जंत
मरतो उत्पद्यमाना म्रियमाणश्च । पत्तोमि निरतर दुक्खं प्राप्तोऽसि
लब्धवानसि निरंतरमविच्छिन्न दुःख शरीरमानसागन्तुकलक्षण । चतु-
रशीतिलक्षयोनीना विवरणनिर्देशं पूर्वोक्त एव ज्ञातव्य ।

जीवाणमभयदानं देह मुणी पाणभूदसत्ताणं ।

कल्लाणसुहनिमित्तं परपरा तिविहसुद्धीए ॥ १३४ ॥

जीवानामभयदानं देहि मुने । प्राणभूतसत्त्वानाम् ।

कल्याणसुखनिमित्तं परम्परा त्रिविधशुद्ध्या ॥

जीवाणमभयदानं जावानामभयदान । देह मुणी पाणभूदसत्ताणं
हे मुने ! त्वं देहि प्रयच्छ न केवल जीवाना अभयदानं देहि—अपि तु
प्राणभूतसत्त्वाना । किमर्थमभयदानं देहि ॥ कल्लाणसुहनिमित्तं तीर्थ-
करनामकर्मवधनार्थं गर्भावतारजमाभिपेकनिष्क्रमणज्ञाननिर्माणपचक
व्याणसुखपरपरानिमित्तं सुखश्रेणिकारणं अभयदानमियर्थ । त्रिविह-
सुद्धीए त्रिविधशुद्ध्या मनोवचनकायनिर्मलतया अभयदानं देहि ।
उक्तं च—

अभयदाणु भयभीरुह जीवह दिण्णु ण आसि ।

चारचारयरणह डरहि केम्व चिराउ मुहोसि ॥ १ ॥

तथा चाक्त—

एका जीवदयैकत्र परत्र सकला क्रिया ।

पर फलं तु सर्वत्र रूपेक्षितामणेरेव ॥ १ ॥

आयुष्मान् सुभग धीमान् सुरूप कीर्तिमान् ॥

अहिसाघ्नतमाहात्म्यादेकस्मादेव जायते ॥ २ ॥

वक्तुं च—

द्विभिचतुरिन्द्रिया प्राणा भूतास्ते तत्र स्मृता ।

जीवा पञ्चेन्द्रिया शेषा शया शरया प्रकीर्तिता ॥ १ ॥

असियसय किरियवाई अकिरियाण च होइ चुलसीदी ।

सत्तही अण्णाणी वेणैया होति वत्तीसा ॥ १३५ ॥

अशीतिशत क्रियावादिनाम कयाणा च भवति चतुरशीति ।

सप्तपष्ठिरज्ञानिनां वैनयिकानां भवति त द्वात्रिंशत् ॥

असियसय किरियवाई अशीत्यंशत क्रियावादिना श्रान्तादिक्रिया
यामन्यमानानां प्राक्षणाणां भवति । अकिरियाण च होइ चुल-
सीदी अक्रियावादिना इन्द्रियनाग-द्रव्योपन्नानां तदुलोदककायोद-
कादिसमाचारासमाश्रयिणां श्वेतपटानां प्रायः कपटानां मायाबाहुलानां
चतुरशीति सशयिना मिथ्याभवा भवन्ति । सत्तही अण्णाणी सप्तप-
ष्ठिरज्ञानेन मोक्ष-प्राप्तानां मत्स्वरूपरूपमतानुसारिणां भवति । वेणैया
होति वत्तीसा त्रिनयात् मातृपितृनृपलोकादित्रिनयन मोक्षक्षेपिणां ताप-
सानुसारिणां द्वात्रिंशमतानि भवन्ति । एव त्रिपष्ठप्राणि त्रीणि शतानि

१ अभयदानं भयभीतानां जीवानां वक्तुं नास्ति ।

चारचारमरणं विभसि कथं चिरायुः सुभगम् ॥

२ नर पुण्यवनेश्वर ख ॥ ३ द्विपार्ता ख ॥ ४ ना टी ॥ ५ मोक्षापिणा ख ॥

मिथ्यावादिना भवन्ति तानि त्याज्यानीयार्थ । १८०+८४+६७+
३२=३६३ ।

ण म्रयइ पर्यडि अभव्वो सुदु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं ।

गुडदुद्धं पि पिमंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥ १३६ ॥

न मुञ्चति प्रकृतिमभय सुदु अपि आकर्ष्य जिनधर्मम् ।

गुडदुग्धमपि पिबन्त न पन्नगा निर्विषा भवन्ति ॥

ण म्रयइ पर्यडि अभव्वो न मुञ्चति प्रकृति मिथ्याव अभव्वो
दूरमव्वो वा लोकादिमिथ्यादृष्टि पापिष्ठ । सद्दु वि आयण्णिऊण जिण
धम्मं सुदु अपि आकर्ष्य श्रुता जिनधर्म दिगम्बरशास्त्र । गुडदुद्धं पि
पिमंता गुडेन मिश्र दुग्ध गुडदुग्ध पिबन्तोऽपि । ण पण्णया णिव्विसा
होंति न पन्नगा सर्पा निर्विषा विपरहिता भवन्ति संजायन्ते ।

तथा चोक्त—

येहसत्थइ जाणियइ धम्मु ण चरइ मुणेवि ।

दिणयर सउजइ उगमइ घूहहु अधउ तो धि ॥ १ ॥

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धी रागगहगहियचित्तेहि ।

धम्मं जिणपण्णत्त अभव्वजीवो ण रोचेदि ॥ १३७ ॥

मिथ्यावच्छन्नदृष्टि दुर्धा रागग्रहगृहीतचित्तैः ।

धर्मं जिनप्रणीत अभयजीवो न रोचयति ॥

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी मिथ्यावेन छात्रा आवृता दृष्टिर्ज्ञानलोचन

यस्य स मिथ्यात्वच्छन्नदृष्टि अज्ञानो मिथ्यादृष्टि । दुद्धी दुष्टा धीर्बुद्धि-
र्यस्य स दुर्धा दुर्बुद्धि । रागगहगहियचित्तेहि रागग्रहगृहीतचित्तैः
रागो दुर्मागाश्रिता प्रीति स एव ग्रह पिशाच तेन गृहीतानि चित्तानि
अभिप्राया रागग्रहगृहीतचित्तानि स रागग्रहगृहीतचित्तैः करणभूतैः

नानानयदुष्टपरिणाधैरित्यर्थः । धम्मं जिणपण्णत्तं धर्मे जिनेन केशलिना
प्रणीत । अभव्वजीवो ण रोचेदि अभव्वजीरो स्तत्रयापोग्गो जीउ
आमा न रोचयति न ग्रहधाति ।

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो ।

कुच्छियतनं कुणंतो कुच्छियगइमायणो होइ ॥ १३८ ॥

कुत्तितधर्मे रत्त कुत्तितपापण्डिमणि संयुक्तः ।

कुत्तिततपः कुर्वन् कुत्तितगतिभाजन भवति ॥

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुत्तितधर्मे हिंसाधर्मे रत्तस्तत्परोऽनुरागान् ।
कुच्छियपासंडिभत्तिसंजुत्तो कुत्तित्ता ऋषिपत्नीपादपद्मसल्लपद्मस्नफा
ये पापण्डिनो वशिष्ठदुर्वासपाराशरयाज्ञयस्त्वजमद्रमिनिश्वाभिरभरद्वाग-
गौतमगर्गभार्गवप्रभृतय उपनिवृत्तान्ते उक्ताश्च अतीता वर्तमानाश्च
तेषां पापडिनां मक्तिसंयुक्ताः करयोदनपादपतनभोजनदानादित-
त्परमनाः । कुच्छियतनं कुणंतो कुत्तित तप एकपादेनो-
द्धाभूतोर्ध्वहस्तजटाधारणत्रिकाञ्जलस्नानपचामिसाधनादि कुत्तितं तपः
कुर्वन् । कुच्छियगइमायणो होइ कुत्तितगतेनारक्षतिर्यग्यो-
निमल्लिनामुरव्यन्तरव्योतिष्यकिस्त्रिपिकराहनदेवादिगतेर्भाजनं स्थानं
भवति—अनन्तसंसारो च स्यात् । “ब्रह्मणे ब्राह्मणमाउभेत” इत्यादि
कुत्तितो धर्मो ज्ञातव्यः ।

इय मिच्छत्तावासे कुणयवुसत्थेहि मोहिओ जीरो ।

भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चित्तेहि ॥ १३९ ॥

इति मिथ्यात्वावासे कुणयकुशाखे मोहितो जीवः ।

प्रान्त अनदिक्काल संसारे धीर । चिन्तय ॥

इय मिच्छत्तावासे इति अमुना प्रकारेण मिथ्यात्वावासे मिथ्यात्वा-
स्पदे प्रायेण मिथ्यात्वभूते संसारे इति सम्बन्धः । कुणयवुसत्थेहि

मोहिओ जीवो कुनयै कुत्तितनयै सर्वथैकान्तरूपै, बुशाछै चतु-
र्वेदाष्टादशपुराणाष्टादशस्मृत्युभयमीमांसादिशाछै मोहितो भ्रान्ति
प्राप्तो जीव आत्मा । भूमिओ अणाङ्कालं आतोऽय पर्याटितो जामोऽ-
नादिकाले उत्सर्पिण्यवसर्पिणाकाट्गड्डलं । संसारे धीर चित्तेहि हे धीर !
हे योगेश्वर ! संसारे भये भ्रान्त इति चिन्तय विचारय ।

पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठिमेया उम्मग्ग मुत्तूण ।

रुंमहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥१४०॥

पापण्डिन श्रीणि शतानि त्रिपष्टिभेदा उन्मार्ग मुक्त्वा ।

रुद्धि मनो जिनमार्गे असत्प्रलापेन हि बहुना ॥

पासंडी तिण्णि सया पापण्डिनस्त्रीणि शतानि । तिसट्ठिमेया
उम्मग्ग मुत्तूण तथा त्रिपष्टिभेदा उन्मार्ग मुक्त्वा । रुंमहि मणु जिण-
मग्गे रुद्धि मनो जिनमार्गे जिनधर्मे त्वं स्थापय । अमप्पलावेण किं
बहुणा असत्प्रलापेनानर्थकेन वचसा बहुना प्रचुरतरेण किं । न किम
पीत्याक्षेप ।

जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ ।

सरओ लोयअपुजो लोउत्तरयम्मि चलमवओ ॥१४१॥

जीवविमुक्त शव दर्शनमुक्तश्च भवति चलसवकः ॥

शवको लोकापूज्य लोकोत्तरे चलसवकः ॥

जीवविमुक्को सवओ जीवविमुक्तो जीवेन रहित कायो लोके शव
उप्यते । दंसणमुक्को य होइ चलमवओ दर्शनमुक्त पुनान् सम्य
वक्त्रहीनो जीवश्च भवति चलसवकः कुत्तित मृतकः । सवओ लोयअ-
पुजो जीवरहित शवको लोकानामपूज्य, अपूज्यत्वादेव भूमी निगम्यते,
अग्निना भस्मीक्रियते वा । लोउत्तरयम्मि चलमवओ लोकोत्तरे लोके

जैनलोके चलसवओ—सचेष्टितमृतकं मिध्यादृष्टिर्मुनि लोकोत्तराणां सम्य-
ग्दृष्टिलोकानां अपूज्योऽमाननीयो भवति । इति भावप्राभृतस्य गोप्य-
तत्वं यत्सद्दृष्टिना जीवेन भवितव्यमिति । लौकास्तु पापिष्ठा मिध्याद-
ृष्ट्यो जिनस्नपनपूजनप्रतिग्रन्धकत्वात् तेषां समापणं न कर्तव्यं तत्स-
मापणं महापापमुत्पद्यते । तथा चोक्तं कालिदासेन महाकविना—

निवार्यतामालि ! किमप्ययं वटु

पुनर्यिषधुः स्फुरितोत्तराधरः ।

॥ केवलं यो महता विभापते

शृणोति तस्मादपि यः स पापमाक् ॥ १ ॥

तेन जिनमुनिनिन्दका लौका परिहर्तव्या । तथा चोक्त—

दलानां कण्टकानां च द्विधैव प्रतिक्रिया ।

उपानन्मुखमगो या दूरतः परिव्रजनम् ॥ १ ॥

जह तारयाणं चंदो मयराओ मयउलाणं सव्याणं ।

अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं ॥१४२॥

यथा तारकाणां चन्द्र मयराओ मृगकुलानां सर्वेषाम् ।

अधिकं तथा सम्यक्त्वं ऋषिधानकद्विविधधर्माणाम् ॥

जह तारयाणं चंदो यथा तारकाणां ताराणां मध्ये चन्द्रोऽधिक
इति सम्बन्धः । मयराओ मयउलाणं सव्याणं मृगराज सिंह मृग-
कुलानां मध्ये सर्वेषामपि अधिकं प्रधानभूतः । अहिओ तह सम्मत्तो
अधिकं तथा सम्यक्त्वं । केषां मध्ये सम्यक्त्वमधिकं, रिसिसावयदुवि-
हधम्माणं ऋषीणां दिगम्बराणां श्रावकाणां च देशपतीनां द्विविध-
धर्माणाम् मध्ये सम्यक्त्वमधिकं प्रधानभूतमित्यर्थः । अस्य पदप्राभृतप्र-
त्यक्षं प्रारम्भपरिसमाप्तिपर्यन्तं सम्यक्त्वमेव प्रशंसितमिति तात्पर्यार्थो
ज्ञातव्य इति भावः ।

जह फणिराओ रेहइ फणमणिमाणिककिरणविष्फुरिओ ।
तह विमलदंसणधरो जिणमत्तीपवयणो जीवो ॥ १४३ ॥

यथा फणिराओ राजते फणमणिमाणिक्यकिरणविष्फुरित ।

तथा विमलदशनधर जिनभक्तिप्रवचनो जीव ॥

जह फणिराओ रेहइ यथा फणिराजा धरणेद्रो राजते शोभते ।
कथंभूत सन् राजत, फणमणिमाणिककिरणविष्फुरिओ
फणाना सहस्रसंख्यफणानां सम्बन्धिनो ये भणयस्तेषु मध्ये यन्माणिक्य
पद्मरागमणि मध्यफणाया उपरि स्थित यद्दालरत्न तस्य सर्वोत्तमरत्नस्य
ये किरणा रश्मयस्तैर्विष्फुरितो धरणेद्र शेषनागनामा पद्मावतीदेवी-
प्राणबहुभ पातालस्वर्गलोकस्वामी यः शोभते । तह विमलदंसण
धरो तथा तेन प्रकारेण विमलदर्शनधरो निर्मलसम्यक्त्वमण्डितो मुनि
श्रावको वा । जिणमत्तीपवयणो जीवो जिनभक्तिर प्रवचनं गोप्य-
तयसिद्धान्तं, जीव आत्मा चातुर्गतिकोऽपि पंचेन्द्रियसञ्चिजीव शोभते ।

तथा चाक्त—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातङ्गदेहज ।

देवा देव विदुमस्मगूढाद्वायान्तरौजस ॥ १ ॥

जह तारायणसहियं ससहरनिं खमंडले विमले ।

भाविय तह वयविमलं जिणालिगं दंसणविमुद्धं ॥ १४४ ॥

यथा तारायणमण्डित शशधरविम्ब खमण्डले विमले ।

भावित तथा वयविमल जिनलिङ्ग दर्शनविमुद्धम् ॥

जह तारायणसहिय यथा यन प्रकारेण तारायणसहित । ससहर
निं खमण्डले विमले शशधरविम्ब च द्रमण्डल खमण्डले गगनमण्डले ।
कथंभूते, विमलेऽभ्रपटलादिरहिते । भाविय तह वयविमलं तथा तेन

प्रकारेण भाषितव्रत व्रतैर्मण्डितं निरतिचारव्रतसहित । जिणलिंगं दंस-
णविसुद्धं जिनलिंग निप्रचयमुनिपुगवयेष दर्शनेन सम्पक्त्वेन विशुद्ध
निर्मलं जिनशासने शोभते इति शेष ।

इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण ।

सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥ १४५ ॥

इति ज्ञात्वा गुणदोष दर्शनरत्न धरत भावेन ।

सारं गुणरत्नानां सोपान प्रथम मोक्षस्य ॥

इय णाउं गुणदोसं इत्यमुना प्रकारेण ज्ञात्वा सम्पग्निचार्य गुण-
दोष, सम्पक्वगुणरत्नमण्डित पुमान् गुणगान् मिथ्यात्वेन दूषितो जीवो
महापातकीति विज्ञाय । दंसणरयणं धरेह भावेण दर्शनरत्न सम्प-
क्त्वरत्नं धरत यूयं भावेन शुद्धपरिणामेन कपट परित्यज्येत्यर्थ । सारं
गुणरयणाणं सारं उत्तमं गुणरत्नानां मध्ये व्रतसमितिगुण्यादीना मध्ये
दानपूजोपनामशीलव्रतादीना च मध्ये सम्पक्त्वरत्नं सारं उत्तम धरत
यूयं हे भव्या ।। कथभूतं, सोवाणं पढम मोक्खस्स सोपान आरो-
हण पादारोपणस्थानं पढम प्रथम । कस्य, मोक्षस्य सर्वकर्मक्षयलक्षणोपल-
क्षितस्य मोक्षप्राप्तादस्योपरितनमूयुपरिगमने, सिद्धपर्यायप्रापणमित्यर्थ ।

कत्ता भोइ अमुत्तो सरीरमित्तो अणाइणिहणो य ।

दंसणणाणुअओगो णिदिट्ठो जिणवरिंदेहि ॥ १४६ ॥

कत्ता भोगी अमूर्तं सरीरमात्र अनादिनिघनश्च ।

दर्शनज्ञानोपयोगिर्दिष्टो जिनवरेन्द्रे ॥

कत्ता भोइ अमुत्तो जीवशब्द पूर्वोक्त एव भाव । तेन जीव
आत्मा कर्ता वर्तते । न केवलं कर्ता पुण्यस्य पपस्य च अपि तु भोगी
पुण्यस्य पापस्य च फलस्य भोक्ता आहारादक इति व्यवहार, निश्चयेन

तु केवलज्ञानस्य केवलदर्शनस्य च कर्ता वर्तते । तथा अनन्तमुखस्य भोक्ता अनन्तवीर्यस्य च । अमूर्तो मूर्ते शरीराद्रहित इति निश्चय , व्यनहारेण तु कर्मत्रयप्रवधात् शरीरसयुक्तत्वाच्च मूर्त इत्युच्यते । शरीरमित्तो अणाद्विहणो य शरीरमात्र शरीरप्रमाण आत्मा वर्तत इति व्यनहार तत्सुखदुःखाद्यावेदकत्वात् , निश्चयेन तु असरदातप्रदेशबाह्योक्तप्रमाण । अनादिनिधनश्च जीवस्यादिनास्ति निधन विनाशश्च न वर्तते । दंस-
णणाणुवओमो दर्शनज्ञानोपयोग व्यनहारेण चत्वारि दर्शनानि अष्ट-
ज्ञानानि उभयाम्या द्विविधोपयोग , निश्चयेन तु केवलज्ञानकेवलदर्श-
नाम्या द्विविधोपयोग परमनिश्चयेन तु आत्मा केवलज्ञानमेव तन्मय-
त्वात् । णिदिद्वो जिणवरिंदेहि निर्दिष्ट प्रतिपादित कथित आत्मा
जिनवरेन्द्रै सर्वज्ञवीतरागैरिति तात्पर्यार्थ ।

दंसणणाणावरणं मोहणियं अतराइयं कम्मं ।

णिद्वयइ भवियजीवो सम्मं जिणमाणाजुत्तो ॥ १४७ ॥

दर्शनज्ञानावरण मोहनीयमतराय कम्म ।

निष्ठापयति भव्यजीवो सम्यग्भिजनभावनायुक्त ॥

दंसणणाणावरणं दर्शनानरण नवविध, तत्र चक्षुर्दर्शनानरण
अचक्षुर्दर्शनानरण अवधिदर्शनानरण केवदर्शनानरण चेति चतुर्विध दर्श-
नावरण निद्रा निद्रानिद्रा प्रचला-प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धिधेति पञ्चविधा
निद्रा एवं सप्तविध दर्शनानरण । मतिज्ञानानरण श्रुतज्ञानानरण अरधि-
ज्ञानावरण मन पर्ययज्ञानानरण केवलज्ञानानरण चेति पञ्चविध ज्ञानान-
रण । मोहणियं अतराइयं कम्मं मोहनीयं कर्म अष्टाविंशतिभेद,
अन्तरायं कर्म वंचभेद । तत्राष्टाविंशतिभेद मोहनीयं कर्म यथा-तत्र
त्रिविध दर्शनमोहनीयं सम्यक्त्व मिथ्याय सम्यग्मिथ्यात्वं चेति । चारि-

त्रमोहनीय पचत्रिंशतिभेदं, अकपायभेदा नव हास्यं रति अरति शोको भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुवेदो नपुसकभेदश्चेति नव नोकपाया अकपाया उच्यन्ते यथाख्यातचारित्र्यातकत्वात् । पौडशकपाया । तथाहि-अनन्तानुबन्धी क्रोधोऽनन्तानुबन्धी मानोऽनन्तानुबन्धी मायाऽनन्तानुबन्धी लोभश्चेति चत्वार कपाया सम्यक्कथातका पूर्वोक्त त्रिभिर्धं दर्शनमोहनीय च । अप्रत्याख्यानक्रोधोऽप्रत्याख्यानमानोऽप्रत्याख्यानमायाऽप्रत्याख्यानलोभश्चेति चत्वार कपाया श्रावकव्रतधातका । प्रत्याख्यानक्रोध प्रत्याख्यानमान प्रत्याख्यानमाया प्रत्याख्यानलोभश्चेति चत्वार कपाया महाव्रतधातका । संज्वलनक्रोध संज्वलनमान संज्वलनमाया संज्वलनलोभश्चेति चत्वार कपाया पयाख्यातचारित्र्यातका । अन्तराय एवंविधो दानांतरायो लज्जांतरायो भोगान्तराय उपभोगान्तरायो धीर्षान्तरायश्चेति । एतत्सर्वं कर्म णिद्वयद् भवियजीवो निष्ठापयति क्षयं नयति, कोऽसौ ? भविकजीवो भव्यजन । सम्मं जिणभायणा जुत्तो सम्पणिजनभायनायुक्तो जिनसम्यक्त्वावधक इत्यर्थः ।

बलसोक्तरणाणदंसण चत्तारि वि पायडा गुणा होंति ।

णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ॥ १४८ ॥

बलसोक्तरणज्ञानदर्शनं चत्वारोपि प्रकृत्य गुणा भवन्ति ।

नट्टे घातिचनुक्के लोकांलोकं प्रकाशयति ॥

बलसोक्तरणाणदंसण बल चानन्तरीयं केवलज्ञानदर्शनाभ्यामनन्तानन्तराव्यपरीयस्वरूपपरिच्छेदकत्वलक्षणा शक्तिरनन्तरीयमुच्यते न ॥ कस्यचिद्घातकरणे भगवान् बलं निदधाति सूक्ष्मगुणाभासप्रसक्ते । तथा चोक्तमाशङ्गेण महाकविना—

यद्याहति न जातु किञ्चिदपि न व्याहृत्यते केनचिद्
यन्निर्णीतसमस्तवस्तवपि सदा केनापि न स्पृश्यते ।

यत्सर्वज्ञसमक्षमप्यविषयस्तस्यापि चार्थाद्विरा

तद्व सृष्टमतम स्वतत्त्वमभवा भाव्य भवोच्छित्तये ॥१॥

तथा अनन्तसौरय भगवतः सद्भ्यः भवति तदप्यनन्तज्ञानगुण
सद्भावात् परमानन्दापनिलक्षण वस्तुस्वरूपपरिच्छदकत्वमत्र अद्वैतम् ।
तथा चाक्त निमानपत्तयुपायानपयते । तथा हि—

शास्त्र शास्त्राणि वा ज्ञात्वा तावत् तुष्यन्ति साधय ।

सद्यतत्याधयिज्ञानाभ सिद्धा सुखिनः कथं ॥ ॥

अक्रिणा कुरुजाताना नागेन्द्राणा मरुतताम् ।

अनन्तगुणित सौरयमुत्तरोत्तरयतिना ॥ २ ॥

तन्निकालमत्रात् सर्वथादनतगुणित सुख ।

सिद्धाना तु क्षणार्धेन त घो यच्छतु तच्छित्त ॥ ॥

तथा ज्ञानं कलज्ञान लालालोकस्तुपरिज्ञायक दशन चानन्तदर्शन
ज्ञानक्षण एव वस्तुसत्तास्वरूपेण ग्रहणलक्षण बोद्धव्य । चत्वारि वि
षयदा गुणा ह्येति चत्वारऽपि गुणा प्रकटा भवति । कस्मिन्
सति, ण्डे घाइचउके नष्टे विनाशं प्राप्ते घाइचउक-माह्वानावरण
दर्शनावरणान्तराया मकेवलज्ञानसाम्राज्यविप्रसकारके कर्मशत्रुचतुष्टये ।
लोयालोय पयासेदि लोकालोक प्रकाशयति । लक्ष्यन्ते दृश्यते जीव
पुद्गलधमाधमकाशकाशा यस्मिन्निति लोक । ते न लक्ष्यन्ते न दृश्यते
यस्मिन् ससौर सर्वतोऽन तानन्तजीवादय पदार्थाध्यागेक । लोक
क्षालोकश्च लालालोकस्तु लोकालोक प्रकाशयति जानाति पश्यति
चेत्यय ।

णाणी सिव परमेष्टी सव्वण्ह विण्ह चउमुहो बुद्धो ।

अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुड ॥ १४९ ॥

१ श्लाका इमं व्यतीतितमे पृष्ठ उद्धृताल्लोकसारगाथाद्वयमनुवर्तते ।

२ सुखिरे च ।

ज्ञानी शिव परमेष्ठी सर्वज्ञो विष्णुः चतुर्मुखो बुद्धः ।

आत्मापि च परमात्मा कर्मविमुक्तश्च भवति स्फुटम् ॥

सम्यग्दर्शनप्रभावेणायं संसारी जीवः सिद्धो भवतीति न केवलं सर्वज्ञो भवतीत्यपिशब्दस्यार्थः । ॥ सिद्धः कथंभूतः तस्य नाममालां प्रतिपादयन्नाह भगवान् कुन्दकुन्दाचार्यः—**पाणी शिव परमेष्ठी ज्ञानी ज्ञानमनन्तकेयलज्ञानं विद्यते यस्य स भवति ज्ञानी । शिवः परम- कल्याणभूतः शिरति लोकाग्रे गच्छतीति शिवः । “ नाम्युपधप्रीहृगृ- ज्ञो कः ” । परमेष्ठी परमे इन्द्रचन्द्रधरणेन्द्रवदिते पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी । औणादिकोऽयं प्रयोगः । सद्यहं विण्णु चउमुहो बुद्धो सर्वं लोकालोकं जानाति वेत्तीति सर्वज्ञः । वेवेष्टि केयलज्ञानेन लोकालोकं व्याप्नोतीति विष्णुः “ प्रिये किञ्च ” इत्यनेन नुप्रत्यय स ॥ किन् कानुबन्ध- त्वान्न गुणः । चतुर्मुखः भूतपूर्वनयापेक्षया चतुर्मुखः चतुर्दिक्षुसर्व- सम्यानां सम्मुखस्य दृश्यमानत्वात् सिद्धावस्थायां तु सर्वत्रावलोकनशी- लत्वात् चतुर्मुखः । बुद्धवत् सर्वं जानातीति बुद्धः । “ व्यनुबन्धगति- बुद्धिब्रूजार्थेभ्यः कः ” इत्यनेन सूत्रेण वर्तमानकाले कप्रत्ययः । अप्यो वि य परमप्यो आत्मापि च संसारी जीवोऽपि च परमात्मा अहंन् सिद्धश्च भवति । कथंभूतः सिद्धः, कर्मविमुक्तो य इति स्फुटं कर्मभ्यो विमुक्तो रहितो भवति सजायते स्फुटं निश्चयेनेति शेषः । एतत् सम्यग्दर्शनस्य महान् महिमा ज्ञातव्य इति भावार्थः ।**

इयं घाङ्कम्ममुक्तो अट्टारहदोसवज्जिओ सयलो ।

तिहुवणमवणपईवो देउ मम उत्तमं बोहं ॥ १५० ॥

इति पाणिक्कर्ममुक्तः अष्टादशगोपवर्जितः सकलः ।

त्रिभुवनभवन्प्रदीपः ददातु मशमुत्तमं बोधम् ॥

इय धाङ्कम्ममुक्को इति पूर्वोक्तलक्षणघातिकर्मभ्यो मुक्त । अद्या-
रहदोसवज्जिओ सयलो अष्टादशदोषवर्जितो रहित, सकल सह
कलया शरीरेण वर्तते इति सकल तेन तस्य धर्मोपदेशोऽपि घटते
शरीरसयुक्तपरमाप्तत्वात् । एतेनेद वचन प्रत्युक्त मति—

अट्टेयिग्रहाच्छान्ताच्छिवात्परमकारणात् ।

नादंरूप समुत्पन्न शास्त्र परमदुर्लभ ॥ १ ॥

अशरीरस्य शास्त्रोत्पत्तिर्न सगच्छते कूर्मरोमवत् वप्यास्तनन्धवत्
शशिपाणवत् बिष्णुपदलैतावत् मरमरीचिकोदकवत् “अष्टौ स्थानानि
वर्णानि” इति शब्दानां करणकारणत्वात् । तिहुवणभवणपईवो त्रैलो-
क्यगृहस्य दीप प्रद्योतक त्रिमुवनभवनप्रदीप । देउ मम उत्तमं बोहं
ददातु मम महा उत्तम बोध केवलज्ञान । इतीष्टप्रार्थना श्रीकुन्दाकुन्दा-
चार्याणां शास्त्रकरणस्य फलाभिलाषित्वात् । अथ के ते अष्टादश दोषा
इति चेदुक्ता अप्युच्यन्ते—

क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मया ।

न रागद्वेषमोहाश्च यस्यास्त. स प्रकीर्त्यते ॥ १ ॥

चकाराच्चिन्ताऽऽरतिनिद्राविपादस्वेदखेदविस्मया गृह्यन्ते । निर्दोषपरमाप्त-
विचारोऽष्टसहस्रीन्यायकुमुदचन्द्रोदयप्रमेयकमलमार्तण्डास्तपरीक्षातत्त्वार्थ
राजयार्तिकतत्त्वार्थश्लोकवार्तिकन्यायनिश्चयालङ्कारादिषु महाशास्त्रेषु वि-
स्तरेण ज्ञातव्य ।

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभत्तिराएण ।

ते जम्मवेळ्ळिमूलं सणंति वरभावसत्थेण ॥ १५१ ॥

१ नि ख । २ नादकपकजच्छत्र ख । ३ मर्त्यतवत् ख । ४ करणशब्दो
नारित ख पुस्तके । ५ न्यायविनयवेति विश्रुतिरन्यत्र ।

जिनवरचरणाम्बुहं नमन्ति ये परमभक्तिरागेण ।

ते जन्मबल्लीमूलं खनन्ति वरभावशस्त्रेण ॥

जिणवरचरणंबुहं जिनोऽनेकविपममगहनव्यसनप्रापणहेतून्
कर्माशयीन् जयतीति जिनः " इणजिकुपिम्यो नेक् " । जिनश्चासौ
वरः श्रेष्ठो जिनवरः । अथवा जिनानां गणघरदेवादीनां मध्ये वरः श्रेय-
स्करो जिनवरस्तस्य चरणावेयम्बुहं जिनवरचरणाम्बुहं श्रीमद्भगवद्दर्ह-
त्सर्वज्ञधीतरागपादपद्म । नमन्ति जे परमभक्तिराएण नमन्ति नमस्कु-
र्वन्ति ये आसन्नभक्त्याः परमभक्तिरागेण परमभक्त्यनुरागेणाकृत्रिमस्नेहेन ।
ते जन्मबेल्लिमूलं ते पुरुषा जन्मबल्लीमूलं खनन्तीति सम्बन्धः, जन्मैव
बल्ली संसारबीरुत् अनन्तानन्तप्रसारत्वात् तस्या मूलं कन्दं खनन्ति
उत्पाटयन्ति लुद्धरन्ति समूळकापं कपन्तीत्यर्थं मोहस्य विच्छेदकत्वात्,
संसारबल्लीमूलं मिथ्यात्वमोहः तस्य मूलं खनन्ति सम्यग्दृष्टयो भवन्ति ।
उक्तं च श्रीभोजराजमहाराजेन—

सुमोहितेन सुमुयेन सुमंगलाय

दृष्टव्यमस्ति यदि मंगलमेव वस्तु ।

अन्येन किं तदिह नाथ । तत्रैव यश्च

अलोभ्यमंगलनिकेतनमीक्षणीय ॥ १ ॥

खणन्ति वरभावसत्थेण खनन्ति निमूळकाप कपन्ति, केन कृत्वा ?
वरभावशस्त्रेण विशिष्टभाषनाकुशलेन दात्रादिना वा ।

अहं सलिलेण णं लिप्यइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।

तह भावेण ण लिप्यइ कयायविसएहि सप्पुरिसो ॥ १५२ ॥

यथा सलिलेन न लिप्यते कपलिनीपत्रं स्वभावप्रकृत्या ।

तथा भावेन न लिप्यते कयायविषयैः सत्पुरुष ॥

जह सलिलेण ण लिप्पइ यथा येन प्रकारेण (सलिलेन) न लिप्यते न स्पृश्यते । किं तत्कर्मतापेन, कमलिणिपत्तं सहायपयडीए कमलिनीपत्र पद्मिनीच्छद स्वभाप्रवृत्त्या निजस्वभावेन । तह भावेण ण लिप्पइ तथा तेन प्रकारेण भावेन जिनचरणकमलभक्तिलक्षणसम्यक्त्वेन करणभूतेन कृत्वा । कै कर्तृभूतै न लिप्यत, कसायविसण्हि सत्पुरिसो कपायै क्रोधमानमायालोभै, त्रिपयै त्रिपयमुखै स्पर्शरस-गन्धवर्णशब्दै सत्पुरुष सम्यग्दृष्टिजीव । तथा चोक्त—

धात्रीयालाऽस्ततीनाथपादनीदलवारिवत् ।

दग्धरज्जुयदाभास भुञ्जन् राज्य न पापमाक ॥ १ ॥

ते धिय भणामिहं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं ।

बहुदोसाणावासी सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो ॥१५३॥

तानेव भणामि अहं ये सकलकलाशीलसयमगुणे ।

बहुदोषाणामावास सुमलिनचित्तं न धावकसमं स ॥

ते धिय भणामिहं जे तानेव सत्पुरुषानहं कुन्दकुदाचार्यो भणामि कथयामि । तान् कान्, ये पुरुषा सकलकलासीलसंजमगुणेहिं सकलकला परिपूर्णकलना सम्यक्परीक्षादायिन, कै शीलसयम-गुणै शीलनिकपक्षमा सयमनिकपक्षमा गुणनिकपक्षमा भवन्ति । तथा चोक्त—

यथा चतुर्भिः वनकं परीक्ष्यते निर्घर्षणच्छेदनतापताडनै ।

तथैव धर्मो विदुषा परीक्ष्यते श्रुतेन शीलेन तपोदयागुणैः ॥१॥

तथा चोक्त—

१ अस्मादग्रे अथ पाठोऽधिकः स पुस्तके । सलिलेन जलेन न लिप्पइ कमलिनीदल इति सम्बन्धः । २ भुजानोऽपि न पापमाक इत्यपि क्वचित्पाठः ।

सजंमु सीलु सउच्चु तवु ज्मु सुपिहि गुरु सोइ ।

दाहछेदकसघायसमु उच्चु कचणु होइ ॥ १ ॥

बहुदोसाणावासो बहूना दोषाणामतीचारादीनामात्रासो गृह,
अथवा बधूना छाणा दोष्णा वाहूना आवास आलिंगो मुनि ।
सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो सुष्ठु अतीव मत्तिचित्तो राग-
द्वेषमोहमदमच्चता मुनि मुनिर्न भवत्यय, तर्हि किं भवति ? ण
सावयसमो सो न थावकसम थावकेणापि गृहस्तेनापि सम सदृश
स न भवति । तस्य दानपूजादिलाभसयुक्तत्वादुत्तमत्व । तथा चोक्त—

घट गार्हस्थ्यमेवाद्य तपसो भाविजन्मन ।

इय. स्त्रीकटाक्षलुटाकलोप्यवैराग्यसम्पद ॥ १ ॥

“ चिअ चअ अस्मदीयस्यानस्थानुमूक्ततूष्णीकदवैकमृदुकसेवानख-
नीडनिहितहूतग्यादृतकुतूहलस्थूलग्याकुलेषु वा ” इत्यनेन प्राकृत-
ग्याकरणसूत्रेण चिअ इत्यस्य वा द्विः । चिअ इति कोऽर्थ “ अवधा
रणे णई च चिअ चेओ । ”

अन्यच्च—

ते धियं धण्णा ते चिय साउरिसा ते जियति जियलोए ।

घोइहवहम्मि पडिया तरति जे धिय लीलाए ॥ १ ॥

घोइह इति कोऽर्थो यौवनम् ।

१ समय शील शीघ्रं तप यस्य सूरं गुरु स ।

दाहच्छेदकपघातदाम उत्तम कचन भवति ॥

२ कमु मूले । कम्मु ख ।

३ य क ख । ४ एते चत्वार शब्दा अवधारणार्थं वर्तन्त इयं ।

५ ते एव धन्या ॥ एव सत्पुरुषा त जीवन्ति जीवलोक ।

यौवनद्रह पतितास्तरन्ति ये चैव लीलया ॥

ते धीरवीरपुरिषा खमदमसग्गेण विष्फुरतेण ।

दुज्जयपनलवल्लुद्धरकसायभट्ट निज्जिन्हा जेहिं ॥१५४॥

ते धीरवीरपुरिषा क्षमादमखड्गेण विस्फुरता ।

दुजयप्रबलबलोद्धरकपायभट्टा निर्जिता य ॥

ते धीरवीरपुरिषा ते पुरिषा धीरा अनिर्जिता सयमसमामात्
कर्मशत्रूणां घातमकृत्वा न पश्चाद्ब्याधुदति, वीरा विशिष्टा केवलज्ञान-
साम्राज्यलक्ष्मीं राति स्वीयुर्वन्तीति वीरा । खमदमसग्गेण विष्फुर-
तेण क्षमा प्रकृष्टप्रशम, दमो जितेन्द्रियत्व क्षमयोपलक्षितो दम क्षमदम-
स एव खड्ग कौक्षय करवाणोऽसिर्निर्लिप्तः घातिकर्मशत्रुसघातघातक-
त्वात् तन क्षमादमखड्गेण । किं कुत्रता ? विस्फुरता अप्रतिहतव्यापार-
तया चमत्कुर्वता । दुज्जयपनलवल्लुद्धर दु खेन महता षष्ठेन नैतुम-
शक्या दुर्जया, प्रबल प्रचुर, बल सामर्थ्यं तेन उद्धरा उकटा ये-
कपायभट्टा ब्राधमानमायालोभमुभय । कसायभट्ट निज्जिन्हा जेहिं
एवविधा कपायभट्टा यैर्निर्जिता मारिता भूमौ पातिता ।

घण्णा ते भयवता दसणणाणगपवरहत्थेहि ।

विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं ॥ १५५ ॥

ध्यास्ते भगवतो दर्शनज्ञानप्रवरहस्ताभ्याम् ।

विषयमकरधरपतिता भव्या उत्तारिता ये ॥

घण्णा ते भयवता धन्या पुण्यवता त भगवत इन्द्रादिपूजिता
अथवा भयं वात त्यक्तं यैस्ते भयवता निर्भया सप्तमयरहिता ।
दसणणाणगपवरहत्थेहिं दर्शनज्ञाने एव प्रसौ बलवत्तरौ हस्तौ करो-
दर्शनज्ञानप्रवराप्रहस्तां ताम्या द्वाभ्यां हस्ताभ्यां करणमूलाभ्यां । विम-

१ इत आरभ्य जेहिं पद्यं पाठ पुस्तके एता एव ।

२ उभा मूलगाथापाठ । ३ दर्शनज्ञानो (ना) प्र एव क ।

यमयरहरपडिया विषय एव मकरधर समुद्र तत्र पतिता मुडिता ।
भविष्या उत्तारिया जेहि भव्यजीवा उत्तारिता हस्तायलम्बन दत्ता
उत्तारिता ससारमुखक्षारसमुद्रस्य पार नीता , यैर्वारिवर्धमानश्रीगौतम-
स्वाम्यादिभिरिति मगलाभिप्राय ।

मायावेह्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा ।

विसयविसपुष्पफुल्लिय लुणंति मुणि गाणसत्थेहि ॥१५६॥ .

मायावल्लीमशेषो मोहमहातरुवरे आरूढाम् ।

विषयविषपुष्पपुष्पितां लुणन्ति मुनय ज्ञानशर्त्त ॥

मायावेह्लि असेसा माया परधचनस्वभावा सैव बह्वी प्रतानिनी ता
मायावल्ली, अशेषो अनन्तानुबधिप्रभृतिचतुर्भेदसमप्रा । मोहमहातरु-
वरम्मि आरूढा मोह एव तरुवर पुत्रकलत्रमित्रादिस्नेहमहावृक्षारत-
मारूढा चदिता । विमयविसपुष्पफुल्लिय विषया एव विषपुष्पाणि
तै पुष्पिता विषयत्रिपुष्पपुष्पिता ता । लुणंति मुणि गाणसत्थेहि
लुणन्ति छिन्दन्ति, के ते ? मुनय सम्यग्ज्ञानसमुपेता दिगम्बरगुरव
इत्यर्थ । केन, ज्ञानशस्त्रेण सम्यग्ज्ञानशस्त्रेण परशुना इति शेष ।

मोहमयगारवेहि य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता ।

ते सब्वदुरियरंभं हणंति चारित्तसग्गेण ॥ १५७ ॥

माहमदगारव च मुक्का ये करुणभावसंयुक्ता ।

ते सर्वदुरितस्तप्तम ध्रुति चारित्र्यपङ्गेन ॥

मोहमयगारवेहि य मोह कलत्रपुत्रमित्रादिषु स्नेह , मदो ज्ञाना
दिरष्टप्रकारो निजौन्नत्य, गारव शब्दगारवर्द्धिगारवसातगारवभेदेन त्रि
विधं । तत्र शब्दगारव वर्णोच्चारणं , श्रद्धिगारव शिष्यपुस्तककमण्ड-
लपिच्छपट्टादिभिरात्मोद्घातन, सातगारव भोजनपानादिसमुपन्नसौख्यली-
लामदस्तैर्मोहमदगारवै । चकार उक्तसमुच्चयार्थस्तेन निजपक्षीयसधन-

राजमायश्रानकादिभिरभिमान । मुक्ता जे कर्णभासंजुत्ता पूर्वो
 कैर्मोहादिभिर्ये मुक्ता , कर्णभाव काहण्य दयापरिणामस्तेन संयुक्ता ।
 ते सव्वदुरियसंभं त मुनय सर्वदुरितस्तभ समस्तमलातिवारादि-
 समुपन्न पापस्तभ । हण्यति चारिचसग्गेण श्रुति चारिखड्गन
 ष्छिदास्ति निवनिर्मलसद्दृत्तनिस्त्रिशोनेति शेष ।

• गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे निसायरमुणिंदो ।
 तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइंदुव्व पवणवहे ॥ १५८ ॥

गुणगणमणिमालया जिणमतगगने निशाकरमुनीन्द्र ।

तारावलिपरिकल्पित पूर्णिमेन्दुरिव पवनारये ॥

गुणगणमणिमालाए गुणा अष्टाविंशतिमूलगुणा दशधर्मा तिस्रो
 नुत्तय अष्टादशशीलसहस्राणि द्वाविंशतिपरीपक्षाणा जय एते उत्तर
 गुणा , गुणानां गणा समूहा गुणगणास्त एव भणयो रत्नानि तेषा
 माला मुक्ताफलहारस्तया गुणगणमालया मुनि शोभते इत्युपस्कार ।
 जिणमयगयणे निसायरमुणिंदो निमत्तमार्हतशासन तदेव गगनं
 आकाश पापलेपरहितत्वात् जिनमतगगन तस्मिन् निमत्तगगने सर्वज्ञ
 शासनाकाशे, निशाकरश्चन्द्र निशा कराति उदात्तयति निशाकरो
 मुनीन्द्र , तत्र मुनीन्द्रा दिगम्बर निशाकर पापाघकारविच्छेदकत्वात् ।
 तारावलिपरियरिओ तारावलिपरिकल्पितो नक्षत्रमालापरिवेष्टितो नक्ष
 तमण्डलोपेत । पुण्णिमइंदुव्व पवणवहे पूर्णिमेन्दुरिव पूर्णिमाचन्द्रव
 ष्छोभते, पवनपथे गगनमार्ग इति शेष ।

चक्रहररामः सवसुरवरजिणगणहराडसोक्खाइ ।

चारणमुणिरिद्धीओ विसुद्धभावा णरा पत्ता ॥ १५९ ॥

चक्रहररामकेशवसुरवरजिनगणधरादिसौर्यानि ।

चारणमु वृद्धी विसुद्धभावा नरा प्राप्ता ॥

चक्रहृरामनेसवसुरवरजिणगणहराहसोकराई चक्रधराश्च भर-
तादय सकलचक्रवर्तिन, सगाश्च बलदवा, केशवाश्चार्धचक्रवर्तिन,
सुरवराश्च सौभर्मेन्द्राद्यच्युतेद्रपर्यन्ता अहमिन्द्रान्ता, जिनाश्च वृषभादि-
धीरान्ता, गणधरादयश्च वृषभसेनादय श्रीगौतमात्तास्तथा सौख्यानि
महापुराणादिशास्त्रवर्णितानि । चारणमुणिरिद्धीओ चारणमुनीना
आकाशगामिनामृषीणा ऋद्धी अक्षीणमहानसाल्यप्रभृती । विशुद्धभावा
नरा जीवा प्राप्ता लभन्ते स्म ।

शिवमजरामरलिङ्गमणोवममुचंमपरमविमलमतुलं ।

पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणमाप्तिया जीवा ॥१६०॥

शिवमजरामरलिङ्गमनुपममुत्तम परमविमलमतुलम् ।

प्राप्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणमाप्तिया जीवा ॥

शिवमजरामरलिङ्गं शिव परमकल्याण परममगलभूत कर्ममलकलं-
करहितत्वात्, अजरामरलिङ्गं जरामरणरहितचिन्ह । अणोवर्म उपमा
रहित । उत्तमं परममुख्य । परमविमलं द्रव्यकर्मभावकर्मनोऽर्मरहित ।
अतुलं अन तमित्यर्थ । पत्ता वरसिद्धिसुहं एतद्विगणपणावशिष्ट धरं
श्रेष्ठ सिद्धिसुख परमनिर्वाणसौख्य प्राप्ता लभत स्म । जिणभावण
भाविया जीवा जिवभावणया निर्मलसम्यक्त्वेन भाविता वासिता जीवा
आसन्नमया ।

ते मे तिहुवणमहिंया सिद्धा सुद्धा णिरजणा णिचा ।

दिंतु वरमावसुद्धिं दंसणणाणे चरित्ते य ॥ १६१ ॥

ते मे त्रिमुवनमहिता सिद्धा शुद्धा निखनानित्या ।

ददतु वरमावसुद्धिं दर्शनशाने च रिने च ॥

ते मे तिहुवणमहिंया ते जगप्रसिद्धा, म मम श्राउन्दकुन्दा-
चार्यस्य, त्रिमुवनमहितास्त्रैलोक्यपूजिता । सिद्धा सुद्धा णिरजणा

णिच्चा । सिद्धा मुक्तिस्त्रीवल्लभा , शुद्धा कर्ममलकलकरहिता , निरजना
निरुपलेपा , नित्या शाश्वता । दितुं वरभावसुद्धिं ददतु प्रयच्छन्तु,
वरभावसुद्धिं विशिष्टपरिणामसुद्धिं । कस्मिन्, दंसणणाणे चरित्ते य
सम्यग्दर्शनं सम्यग्ज्ञाने सम्यक्चारित्र्ये चेयर्थ ।

किं जंपिण्ण बहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो य ।

अण्णे वि अ वावारा भावम्मि परिट्ठिया सव्वे ॥ १६२ ॥

किं जल्पितेन बहुना अर्थो धर्मश्च काममोक्षश्च ।

अन्येपि च व्यापारा भावे परिस्थिता सर्वे ॥

किं जंपिण्ण बहुणा बहुना प्रचुरतरेण, जल्पितेन किं ? न किमपि ।
अत्थो धम्मो य काममोक्खो य अर्थो धन, धर्मो यतिभ्रावकगोचर ,
काम पञ्चेन्द्रियमुखदायिनी इष्टवनिता तस्या भोग , मोक्ष सर्वकर्म-
क्षयलक्षण । अण्णे वि अ वावारा अन्येऽपि च व्यापारा विद्यादेवता
साधनादय । भावम्मि परिट्ठिया सव्वे भावे शुद्धपरिणाम परिस्थिता
भावार्थाना भवन्तीति भावार्थ । उक्तं च—

न देवो विद्यते काष्ठे न पापाणे न मृन्मये ।

भावेषु विद्यते देवस्तस्मान्नाद्यो हि कारण ॥ १ ॥

भायविहणउ जीव तुह जइ जिणु वहहि सिरिण ।

पत्थरि कमलु किं निप्पजइ जइ सिंचहि अमिण्ण ॥ २ ॥

सीसु नमतह कवणु गुणु भाउ कुसुखउ जाह ।

पारद्धीदूणउ नमइ हुक्कउ हरिणाह ॥ ३ ॥

अम्रघ्नपि भवेत् पापी निम्रघ्नपि न पापभाक् ।

परिणामविशेषेण यथा धीवरकर्षकौ ॥ ४ ॥

१ भावविहीन जीव । त्व यदि जिन् वहति शिरसा ।

प्रस्तरे किं कमल निष्पद्यते यदि सिंचेत् अमृतेन ॥

इय भावपाहुडमिणं सच्चं बुद्धेहि देसियं सम्मं ।

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचलं ठाणं ॥१६३॥

इति भावप्राभृतमिदं सर्वं बुद्धैः देशितं सम्यक् ।

य पठति शृणोति भावयति स प्राप्नोति अविचलं स्थानम् ॥

इय भावपाहुडमिणं इति-एव प्रकार, भावप्राभृतमिदं भावप्राभृतनाम शास्त्र । सच्चं बुद्धेहि देसियं सम्मं सर्वं बुद्धैः सर्वज्ञैः, देशितं कथित सम्यग्निश्चयेन । यथा मया कथितं सर्वं बुद्धैरप्येवमेवोक्तमिति भावार्थः । जो पढइ सुणइ भावइ य आसन्नमन्यो जांन पठति गुर्नप्रेऽगुशीलपति अम्यस्यति, सुणइ-एतदर्थमारुणयति, भावइ-श्रुत्या श्रद्धयाति । सो पावइ अनिचलं ठाणं स आसन्नमन्यो मुनिपुगन, प्राप्नोति छमते, अविचलं निश्चल, स्थान मोक्षपदमिति सिद्धम् ।

इति श्रीपद्मनन्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रप्रवाचाचार्यलाचार्यगृध्रपिच्छा-
चार्यनामपञ्चकविराजितेन श्रीसमिन्धरस्यामितम्यग्वोचस्योदितभग्यजनेन
श्रीजिनचन्द्रसूरिभट्टारकपद्मभरणभूतेन कलिकालसर्वज्ञेन विरचिते पद्मप्राभृतभा-
वनाग्रन्थे सर्वमुनिमण्डलीमण्डितेन कलिकालगीतमस्यामिना श्रीमल्लिभूपणेन
भट्टारकेणाब्रुमतेन सकलविद्वज्जनसमाजसम्मानितेनोभयभाषाकविचक्रवर्तिना श्री-
विद्यानन्दिगुर्वन्तेवासिना श्रीदेवेन्द्रकीर्तिप्रणिव्येण सूरिवरश्रीभुतसागरेण
विरचिता भावप्राभृतटीका—

परिसमाप्ता ।



मोक्षप्राभृतं ।

७७ • ६६

अथ देवेन्द्रयशोगुरुविद्यानन्दीश्वरस्य शिष्येण ।
मुक्तिप्रियामुखाम्बुजदिहधुणा शिक्षितेन गुणे ॥ १ ॥
श्रुतसागरेण कत्रिणा विनापि बुद्ध्या गिरिच्यते रचिदा ।
मोक्षप्राभृतविधृतिर्धौकाऽऽलीकप्रमुक्तेन ॥ २ ॥
याचकजनकरूपतत् स्वरूपि मिथ्यामताद्रिशृङ्गेषु ।
भव्यजनजनकतुल्यो विवेकवान् महिभूषणो जयति ॥ ३ ॥
गीतिरार्या ।

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण ।
चइउण य परदव्वं णमो णमो तस्म देव्वस्म ॥ १ ॥

ज्ञानमय आत्मा उपलब्धो येन क्षरितकर्मणा ।
त्यक्त्वा च परद्रव्यं नमो नमस्तस्यै देवाय ॥

णाणमयं अप्पाणं ज्ञानमय आत्मा । उवलद्धं जेण झडियकम्मेण
उपलब्धो येन क्षरितकर्मणा । चइउण य परदव्वं त्यक्त्वा च परद्रव्यं
शरीर कर्म च परियज्य नमो नम - पुन पुनर्नम । तस्य देवस्य-तस्मै
देवायेति भाग्यार्थ ।

णमिउण य तं देवं अणतउरणाणदंसण सुद्ध ।
वोच्च परमप्पाण परमणयं परमजोईण ॥ २ ॥

नत्वा च त देव अनन्तवरज्ञानदर्शनं शुद्धम् ।
वक्ष्ये परमात्मानं परमपदं परमयोगिनाम् ॥

-
- १ - हादिनी यज्ञमखी स्वात्तु वुलिश मिदुर पवि ।
शतकोटि स्वह शम्भो दम्भोलिशनिर्दयो ॥
२ आत्मादमे ॐ नम सिद्धय्य इति पाठ । स पुस्तके नास्ति ।
३ बुद्ध कचित् ।

णमिऊण य तं देवं नत्वा च तं देवं सर्वज्ञरीतरागं । कथंभूतं
देवं, अणंतवरणाणंदं सणं सुद्धं अनन्तवज्ज्ञानदर्शनं शुद्धं अनन्तज्ञान-
मनन्तदर्शनमनन्तरीर्यमनन्तसौख्यमित्यर्थः, शुद्ध घातिकर्मसघातनेन
निर्मलस्वरूप अष्टादशदोषरहितमित्यर्थः । वोच्छं परमप्पाणं वक्ष्यामि
कथयिष्यामि । कः कर्ता ? अहं श्रीरुन्दकुन्दाचार्यः, कं वक्ष्ये ? पर-
मात्मानं शुद्धनयेन परमात्मानं अर्हत्सिद्धसमान । कथंभूतं परमात्मानं,
परमपयं परमपदं परम उत्कृष्ट इन्द्रादिदेव-नरेन्द्रादिमानव-मणधरादिमहा-
मुनीश्वरसंयुक्तसमवशरणस्थानमण्डितं । अथ केषां परमात्मानं वक्ष्यामि ?
परमजोईणं परमयोगिना दिगम्बरगुरूणा । इत्यनेन मुनीनामेव परमा-
त्मव्याप्तं घटते । तत्तत्तद्गोलकसमानगृहिणा परमात्मध्यानं न संगच्छते ।
तेषां दानपूजापरोपवाससम्पत्त्वप्रतिपालनशीलव्रतरक्षणदिकं गृहस्थधर्म
एवोपदिष्टं भवतीति भावार्थः । ये गृहस्था अपि सन्तो मनागात्मभाव-
नामासाद्य धय ध्यानिन इति ब्रुवते ते जिनधर्मधिराधका मिथ्यादृष्टयो
ज्ञातव्याः । अयन्याचागं गृहस्थधर्मादपि पतिता उभयधरा धेदितव्याः ।
ते लोकाः, तन्नामग्रहणं तन्मुखदर्शनं प्रमातृकालं न वर्तव्य इष्टवस्तुभो-
जनादिनिघ्नहेतुत्वात् । ते जिनस्नपनपूजादानादिसद्धर्मघातका ज्ञातव्याः ।

जं जाणिऊण जोई जो अंत्यो जोइऊण अणवरं ।

अव्यावाहमणंते अणोवमं हवई णिव्वाणं ॥ ३ ॥

यद्ज्ञात्वा योगी यमं दृष्ट्वाऽनवरतम् ।

अव्यावाहमनन्तं अनुपमं भवते निर्वाणम् ॥

जं जाणिऊण जोई यं अर्थं आमतत्वं ज्ञात्वा हे योगिन् । जो
अंत्यो जोइऊण अणवरं (य) अर्थं तयं, जोइऊण-दृष्ट्वा ज्ञानेन

साक्षाद्वाक्ष्य योगी ध्यानवान् मुनि । अव्याप्ताहमणंत अव्याप्तावे वाधा-
रहित, अन तमग्निश्वर । अणोवमं हवद् णिव्वाण अनुपम उपमार
हित, भवत प्राप्ताति । “भूप्राप्ताग मनेयदा” इति वचनात् । किं ?
निर्वाण शुद्धमुख मेक्षस्थान । उक्त च—

जन्मजरामयमरणं शैवेर्दुर्लभदैश्च परिमुक्त ।

निव ण शुद्धमुख नि ध्येयसमिप्यते नित्य ॥ १ ॥

तिपयारो सो अप्पा परमिन्तरेयाहिरो दु हेउणं ।

तत्थ परो झाइज्जइ अतोयाएण चयहि बहिरप्पा ॥ ४ ॥

[त्रिप्रकार ॥ आत्मा परमात्मा बहि दु हित्वा ।

तत्र परं प्यायते अन्तरात्मायेन त्वज बहिरात्मानम् ॥

तिपयारो सो अप्पा त्रिप्रकार स आत्मा त्रिविध । परमिन्त-
रेयाहिरो दु हेउणं परमात्मा अन्तरात्मा बहिरात्मा चेति । तत्र बाहिरो दु
हेउण-बहिरात्मान हित्वा परित्यज्य । तत्थ परो झाइज्जइ तत्र पर
मामा ध्यायते । कथं परमात्मा ध्यायते ? अतोयाएण अन्तरात्माया-
येन भेदज्ञानप्रत्ययेन । चयहि बहिरप्पा त्यज्य परिहर त्वं हे मुने ।
बहिरप्पा बहिरात्मान-शरीरमेवामेति मत मन्यते बहिरात्मा तमभिप्राय
ण त्यजेति तात्पर्यार्थः ।

अक्खणि बहिरप्पा अतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो ।

कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णाए देवो ॥ ५ ॥

अक्षणि बहिरात्मा अन्तरात्मा स्फुट आत्मसङ्कल्पः ।

कर्मकलङ्कविमुक्त परमात्मा भण्यते देवः ॥

अक्खणि बहिरप्पा अक्षणि इन्द्रियाणि बहिरात्मा भवति ।
अतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो अन्तरात्मा दु-स्फुट आत्मसङ्कल्पः शरी-
रकर्मरागद्वेषमोहादिदुःखपरिणामरहितोऽयं ममाभा वर्तते शरीरे तिष्ठ-

ननुद्वनिध्वनयेन शरीरं न स्पृशति, कर्मबन्धनयद्दोऽपि सन् कर्मबन्धनै-
र्बद्धा न भवति नलिनीदलस्थितजलवद्वितीदृशं भेदज्ञानं आत्मसंस्पर्श-
उच्यते स आत्मसंस्पर्शो यस्य जीवस्य वर्तते साऽत्र मां वदितव्यम् ।
कर्मकलंकविमुक्तो परमप्पा भण्णाए देवो कर्मकलङ्कविमुक्तो द्रव्य-
कर्मभावकर्मनोकर्मरहितं सिद्धपरमेश्वरो दत्तं परमा मां भण्यते—अहं
परमेश्वरं सामान्यकेवलीं च परमा मां वदयते तस्य जायमुक्तत्वात् ।
उक्तं च—

आत्मध्यातमचिलोपनात्मचरितैरासीदुं रात्मा विर

स्वात्मा स्यात् परमात्मानं चरितैरात्मिकतैरात्मनः ।

आत्मेत्या परमात्मतां प्रतिपद्यन् प्रत्यात्मविद्यारम्भ

स्वात्मोत्थातमसुखो निषीदसि लसन्नध्यात्ममध्यात्मना ॥१॥

मलरहिओ कलचत्तो अणिदिओ केवलो विसुद्धप्पा ।

परमेही परमजिणो सिवंकरो सासओ सिद्धो ॥ ६ ॥

मलरहितं कलत्रयुक्तं अनिद्रियं केवलं विसुद्धात्मा ।

परमेष्ठी परमजिनः शिवङ्करः शाश्वतः सिद्धः ॥

मलरहिओ कलचत्तो मलरहितं कर्ममलकलकरहितं, कल्या-
णशरीरेण युक्तं कलत्रयुक्तं । मौकारो स्त्राकृतौ हस्तौ क्वचित्
यथा इष्टकचित् इषीकतूलमिति । अणिदिओ केवलो विसुद्धप्पा अनि-
न्द्रिय इन्द्रियज्ञानरहितं बेशलज्ञानं द्रव्यपयायस्वरूपं जानति यर्थः ।

उक्तं च पुष्पदन्तेन महाकविना—

सर्वं ह्यु अणिदिओ णाणमओ ओ मयमुदु न पत्तिदइ ।

सो णिदिओ पच्चिदियनिरओ वइतरणिदि पाणिउ पियइ ॥१॥

१ चित्तो मू क । २ ई+आ इति छेदोत्रं ज्ञातव्यम् ।

३ सर्वज्ञं अनिन्द्रियं ज्ञानमयो यो मदमूढः न प्रत्येति ।

स निन्दकः पञ्चन्द्रियनिरतः चैतरण्याः पानीयं पिबति ॥

अथ ॥—अग्निदिओ—अग्निदित इन्द्रधरणे द्रनरेन्द्रखग द्रादीना स्तुत्य
इत्यर्थ । उक्त च मुलाचनाका तेन—

शमिताखिलविघ्नसस्तवस्तत्राये तुच्छोऽप्युपयात्यतुच्छता ।

शुचिशुक्तिपुटेऽम्बुनिधृत ननु मुक्ताफलता प्रपद्यते ॥ १ ॥

घटयन्ति न विघ्नरोदयो निकटे त्वत्कमयोर्निगासिना ।

पटवोऽपि पद दद्याग्निभिर्भयमस्त्यम्बुधिमध्यवर्तिना ॥ २ ॥

हृदये स्थायि सन्निधापिते रिपव केऽपि भय विधित्सव ।

ममृताशिषु सत्सु सन्तत विषमेदार्पितत्रिपञ्च-शुत- ॥ ३ ॥

उपयान्ति समस्तसम्पदे रिपवो विज्युतिमामुय-यल ।

घृपम घृपमागदशिन क्षपकेतुद्विषमायुषा ॥ ४ ॥

इत्थ भवतमतिभक्तिपथानर्नापोऽ, प्रागेवयन्ध-ल्लय प्रलय प्रजन्ति ।

पञ्चादनभ्वरमयाचित्तमप्यवश्य, सपरस्परेऽस्य त्रिस्तदुणभद्रभद्र ॥

केवलोऽसहाय केवलज्ञानमयो वा, के परब्रह्मणि निजशुद्धबुद्धैक-
स्वभावे आत्मनि बलमनन्तरीयं यस्य स भवति केवल, अथवा केवते
सेवते निजाम्नि एक्कोर्लभावेन तिष्ठतीति केवल । विशुद्धामा-विशे-
पेण शुद्ध कर्ममलकलकरहित आत्मा स्वभावो यस्य स विशुद्धामा ।
परमेष्ठी परमजिणो परमेष्ठी परमजिन, परमे इन्द्रधरणे द्रनरेन्द्रमुनी-
न्दादिवदिते पद तिष्ठतीति परमेष्ठी यन्वपरमेष्ठिरूप, परमजिणो—परा
उत्कृष्टा प्रत्यक्षलक्षणोपलक्षिता मा प्रमाणं यस्येति परम, अथवा परेषां
भव्यप्राणिना उपकारिणो मा लक्ष्मी समग्रशरणविभूतिर्यस्यति परम,
अनेकविषमभङ्गहनदु खप्रापणहेतून् कर्मारतीन् जयति समूलकाय कप-
तीति जिन परमश्वासौ जिन परमजिन तीर्थकारपरमदेव । सिंङ्करो
शिव परममगल कराति शिङ्कर, अथवा शिव मोक्ष करोति भक्तम-
व्यजीवाना मोक्ष निदधाताति शिङ्कर शिवतातिरपरपर्याय । सासओ

शश्वद्भवः शाश्वतोऽविनश्वरः । सासवो-इति च कचित पाठो दृश्यते
तत्रायमर्थः—साशपः भक्तभक्त्याना आशापूर्णसमर्थ इत्यर्थः । सिद्धो
सिद्धिः स्वात्मोपलब्धिर्विद्यते यस्य ॥ सिद्ध परमनिर्वाणपदमारूढ
इत्यर्थः ।

तदुक्तं—तस्य त्रिविधस्यात्मनः स्वरूपं शास्त्रान्तरेऽपि प्रोक्तमस्तीति
श्रीकुन्दकुन्दाचार्या निरूपयन्ति—

आरुहवि अंतरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण ।

झाइज्जइ परमप्पा उवइदं जिणवरिंदेहिं ॥ ७ ॥

आरुह्य अन्तरात्मानं बहिरात्मानं स्वयत्वा त्रिविधेन ।

ध्यायते परमात्मा उपदिष्टं जिनवरेन्द्रं ॥

आरुहवि अंतरप्पा आरुह्य प्रादुर्मान्य आश्रित्येति, किं ? अत-
रप्पा—अन्तरात्मानं भेदज्ञानाबलम्बनं कृत्वेत्यर्थः । बहिरप्पा छंडिऊण
तिविहेण त्रिविधेन मनोवचनकायैर्बहिरात्मानं त्यक्त्वा । झाइज्जइ पर-
मप्पा ध्यायते अर्हर्निशं चिंत्यते, कोऽसौ ? परमात्मा निश्चयनयेन कर्म-
मलकलकरहितः सिद्धस्वरूपः निजपरमात्मा ध्यायते अर्हन्तिद्वयस्वरूपोऽ-
वलोक्यते द्विविधमभ्यासं कुर्वाणो मुनिः परमात्मानमेव प्राप्नोति—अर्ह-
रिसिद्धसदृशो भवति । तथा चोक्त—

आत्मा मनीषिमिरयं त्वद्भेदतुद्धया

ध्यातो जिनेन्द्र ! भवतोह भवत्प्रभायः ।

पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमान

किं नामनो विषविकारमपाकरोति ॥ १ ॥

उवइदं जिणवरिंदेहिं उपदिष्टं प्रतिपादितं । कैः, जिनवरेन्द्रैः श्री-
॥ द्रगवदर्हः सर्वज्ञवीतरागैरिति शेषः ।

बहिरस्थे फुरियमणो इंदियदारेण नियसरूवचुओ ।

णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठी ओ ॥ ८ ॥

बहिरर्थं स्फुरितमना इन्द्रियद्वारेण निजस्वरूपच्युत ।

निजदेहं अपि मानमध्यवस्यति मूढदृष्टिस्तु ॥

बहिरस्थे फुरियमणो बहिरर्थे इष्टवनितासुतस्यापतेयादौ स्फुरितं चमत्कृतं मनो यस्य स इष्टार्थे स्फुरितमना । इंदियदारेण नियसरूवचुओ इन्द्रियद्वारेण इन्द्रियेषु प्रविश्य, निजस्वरूपच्युत आत्मभावनायाः प्रभृष्टः । णियदेहं अप्पाणं निजदेहं स्वकीयशरीरं आत्मानमध्यवस्यतीति सम्बन्धः—शरीरमामानं जानातीत्यर्थः । अज्झवसदि मूढदिट्ठी ओ अध्वन्यस्यति मूढदृष्टिस्तु ममाय क्वाय आ मेति जानाति मूढदृष्टिर्बहिरात्मेति भावार्थः ।

णियदेहसरिसं पिच्छिऊण परविग्गह पयत्तेण ।

अच्चेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभाएण ॥ ९ ॥

निजदेहसदृशं दृष्ट्वा परविग्रहं प्रयत्नेन ।

अचेतनमपि गृहीतं ध्यायते परमभागेन ॥

णियदेहसरिसं पिच्छिऊण निजदेहसदृशं सदृशं पिच्छिऊण-दृष्ट्वा । परविग्रहं पयत्तेण परविग्रहं इष्टवनितादिशरीरं, पयत्तेण—प्रयत्नेन मलमूत्राद्युत्तराधिरमासकीरुसचर्मरोमादिदुर्गन्धापवित्रादिपरिणामभावेन । अच्चेयणं पि गहियं अचेतनमपि आमना गृहीतं जायेन स्वीकृतं । झाइज्जइ परमभाएण ध्यायते शरीरस्वरूपं चिन्त्यते परमभागेन पृथक्तया भेदज्ञानेन—शरीरं भिन्नं आत्मा भिन्नो वर्तते इति भेदं कृत्येत्यर्थः । तत्रा च क्त—

आत्मा भिन्नस्तदनुगतिमत् कर्म भिन्न तथोक्तं ।
 प्रत्यासत्तेभ्यस्तेषां त्रिकूटं सापि भिन्ना तत्रैव ।
 कालक्षेत्रप्रमुखापि यत्तच्च भिन्न मत मे
 भिन्न भिन्न निजगुणरूपालङ्कृत सर्वमेतत् ॥ १ ॥
 सपरञ्जयसाएणं देहेषु य अविदिदत्थमप्पाणं ।
 सुयदारार्इविसए मणुयाणं वडूए मोहो ॥ १० ॥
 स्वपराध्यवसायेन देहेषु च अविदितार्थमात्मनम् ।
 सुयदारार्इविसए मणुजाना वर्धते मोह ॥

सपरञ्जयसाएणं स्वपराध्यवसायेन परमस्तुशरीरादिक स्वमात्मान
 मन्यते स्वपराध्यवसाय । केषु पदार्थेषु, देहेषु य शरीरेषु च, चकाराद्व-
 नितादिषु च, शरीर धनितामुत्तस्यापतेयादिक वस्तु खलु परकीय वर्तते
 तत्र । अविदिदत्थं अविदितार्थं यथास्वरूपपरिज्ञानरहितार्थं यथा
 भवत्येव वर्तमान आत्मा । अप्पाणं इति जीव आत्मान जानीते तच्च
 देहादिक वस्तु आत्मा न भवति । तेन विपरीताभिनिवेशेन सुयदा-
 रार्इविसए सुतदारार्इविसए पुत्रकलादिषु । मणुयाणं वडूए मोहो
 मनुजाना मानवाना वर्धते मोह—स्नेहेनाज्ञानगूल मोहो वैचित्र्य वृद्धि
 याति, मोहेन परिणतो जीवो बहिर्भावा पुन कर्माष्टौ गन्ताति । उक्तं च—

जीवकृत परिणाम निमित्तमात्र प्रपद्य पुनरन्ये ।
 स्वयमेव परिणमन्तऽत्र बुद्ध्या कर्मभावेन ॥ १ ॥
 मिच्छाणापोसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो ।
 मोहोदएण पुणरवि अंगं सं मण्णए मणुओ ॥ ११ ॥

मिथ्याज्ञानेषु रत मिथ्याभावान् भावित सन् ।

मोहोदयेन पुनरपि अत्र स्व मायते मनुज ॥

मिच्छाणापोसु रओ मिथ्याज्ञानेषु रतोऽय मनुजो जीव । मिच्छा-
 भावेण भाविओ संतो मिथ्यापरिणामेन बुगुरुदेवभक्त्या भावितो

वासित सन । मोहोदयेण पुनरपि मोहोदयेन मिथ्यामाहस्य त्रिवि-
धस्योदयेन विपात्रेण, पुनरपि भूयोऽपि । अगं स मण्णए मणुओ
अग शरीर, स्वमा मान, मयते जानाति, मनुओ मनुथो मिथ्यादृष्टि
जीन इत्यर्थ ।

जो देहे गिरवेक्खो णिंदो निम्ममो निरारम्भो ।

आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥ १२ ॥

यो देहे निरपेक्ष निर्द्वन्द्व निर्मम निरारम्भ ।

आत्मस्वभावे सुरत योगी स समते निवाणम् ॥

जो देहे गिरवेक्खो यो योगी देहे शरीरे निरपेक्ष उदासीनो
ममत्वेन च्युत । णिंदो निम्ममो निरारम्भो निर्द्वन्द्वो निष्कलह
केनापि सह कलहरहित । अथवा निर्द्वन्द्व निर्युग्म स्त्रीभोगरहित
“द्वन्द्व कलहयुग्मयो ” इति वचनात् । निर्ममो ममत्वं रहित, ममेति
अदत्तोऽव्ययशब्द निर्गत ममेति परिणामो यस्येति निर्मम । उक्तं च—

अकेचनाऽहमित्यास्त्वं त्रिलोक्याधिपतिर्भवे ।

योगिगम्य तव प्रोक्त रहस्य परमात्मन ॥ १ ॥

निरारम्भ सेवाकृपिवाणिज्यादिकर्मरहित । उक्तं च—

आरभे णरिथ दया महिलासगणण नासए वम ।

सकाए सम्मस पवज्जा अत्थगहणेण ॥ १ ॥

आदसहावे सुरओ आत्मस्वभावे टको वीर्णज्ञायकैकस्वभावचिच्च-
॥ कारलक्षणनिजशुद्धबुद्धैकपरिणामे जीवतत्वेमुष्टु—अतिशयन रत एक-

१ नि मू । २ नि मू । ३ आस्त्व इत्यपि क्वचित्पाठ ।

४ आरभे नास्ति दया महिलासगण नानायति वम ।

पाकया सम्यक्त्वं प्रवज्या अयमग्रहण ॥

५ ए टी ।

छोलीभाय । जोई सो लहइ णिव्वाणं य एवमिधो यागी शुद्धो-
पयोगरतो मुनि स लभते निर्वाण, सर्वकर्मक्षयलक्षणोपलक्षित मोक्ष
लभते प्राप्नोति । अथवा जोईसो—योगा ध्यान प्रियते यस्य स योगी
योगिनामीशो योगीश इत्यनेन गृहस्थस्य स्त्रिया परमिधो च मुक्तिर्न भव-
तीति सूचित ज्ञातव्य । उक्त च—

साम्य स्त्र्यास्थ्य समाधिश्च योगश्चिन्तानिरोधनम् ।

शुद्धोपयोग इत्येते भयन्त्येकार्थवाचका ॥ १ ॥

कथं गृहस्थस्य मुक्तिर्न भवतीति चत् ?—

खण्डनी पेयणी शुद्धी उदकुम्भ प्रमार्जनी ।

पञ्च सूना गृहस्थस्य तेन मोक्ष न गच्छति ॥ १ ॥

तथा स्त्रीणामपि मुक्तिर्न भवति महाव्रताभावात् । तदपि कस्मान्न
भवति ? दक्षयो रतनयारन्तर नामौ योनौ च जायमानामुत्पत्ति
विनाशलक्षणरिंसासद्भावात्, नि शक्त्वाभावात्, बह्वपरिग्रहायजनात्,
षडभिन्द्रपदमपि न लभन्ते कथं निर्वाणमिति हेतोश्च । यदि च स्त्रियो
मुक्ता भवन्ति तर्हि त पर्यायमूर्तय कथं न पूज्यत । सधथा दुर्मत
विहाय पुरुषस्यैव मुक्तिर्न तव्येति भाव । परमिधो च मुक्तिर्न भवति
मिथ्या वदयित्वात्, दण्डकमण्डलुमृगचर्मकर्माशर्मकारणात् । तद्विस्तरण
प्रमेयकमलमार्तण्डादिषु शास्त्रेषु ज्ञातव्य । सज्जातिज्ञापनार्थं स्त्रीणां
महाव्रतान्युपचय ते न परमार्थतस्तासा महाव्रतानि सति तेन मुनेज
नस्य स्त्रियाश्च परस्पर वदनापि न युक्ता । यदि ता व द ते तदा मुन-
भिर्नेमोऽस्त्विति न वक्तव्य, किं तर्हि वक्तव्य ? समाधिर्वर्मश्रयोऽस्त्वात् ।
ये तु परस्पर मथण्य वदामीति आर्या प्रतिनन्दति तेऽप्यसयमिनो
ज्ञातव्या । दिगम्बराणा मत या नीति कृता सा प्रमाणमिति मतव्य ।
उक्त च—

वरिसंसयदिन्मियाण अज्जाण अज्ज दिन्मिअओ साहु ।
अभिगमण वदण नमसणेण पिणएण सो पुज्जो ॥ १ ॥

इति गाथा अप्रमाण भवति यदि स्त्रीणा मुक्ति स्यात् ।

परद्व्यरओ वज्झइ विरओ मुच्चेइ विविहकम्मेहि ।
एसो जिणउवएसो समासओ बंधमोक्खस्स ॥ १३ ॥

परद्व्यरत बध्यते विरत मुच्यति विविधकर्मभि ।

एष जिनोपदेश समासत बन्धमोक्षस्य ॥

परद्व्यरओ वज्झइ परद्रव्य शरीरादिक तत्र रतो बध्यते बध्नं
प्राप्नोति चोरवत्, यथा चौर परद्रव्य चोरयन् पुमान् राजलार्कैर्बध्यते
यो न परद्रव्य चोरयति स न बध्यते । विरओ मुच्चेइ विविहक-
म्मेहि विरत परद्रव्यपराप्नुष्य पुमान् मुच्यते मुक्तो भवति विविधैर्मा-
नाप्रकारैः कर्मभिर्ज्ञानारणादिभिः । एमो जिणउवएसो एष जिनो-
पदेश । समासओ बंधमोक्खस्स समासत सक्षपात्, बन्धमोक्षस्य
बन्धेनोपलक्षितो मोक्षो बन्धमोक्ष तस्य बन्धमोक्षस्य । अथवा बन्धश्च
मोक्षश्च बन्धमोक्ष समाहारद्वन्द्वस्तस्य ।

सद्व्यरओ सण्णो सम्माइट्ठी हवेइ नियमेण ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठकम्माणि ॥ १४ ॥

स्वद्व्यरत धमण सम्यग्दर्शित्वेन नियमेन ।

सम्यक्कर्मिणस्त पुन क्षिण्ते दुष्टकृमाणि ॥

१ वर्षसप्तदशक्षितया आर्यया अद्य दीक्षित साधु ।

आभिगमनन वदनया नमस्कारेण विनयेन स पूज्य ॥

२ अस्य स्वाने ण्यो जिनोपदेश इति क पुस्तके । स पुस्तके ॥ एष जिनो-
पदेश इति । अनेनैव पाठेन भवितव्य लक्षणग्राह्यत्वात् ।

सद्वरओ सवणो स्वद्वरत श्रवण आमस्वरूपे ॥ मयभूतो
दिगम्बर । सम्माइही हवेइ णियमेण सम्यग्दृष्टिर्भवति नियमेन
निश्चयेन, अत्र स देहा नास्ति । सम्पादर्शनस्य आमशरिणाम रेन सूक्ष्म
त्वात्, चक्षुरादीन्द्रियाणामगोचरत्वात् । सम्मत्तपरिणदो उण सम्य-
क्त्वपरिणत पुन । एवेइ दुट्ठकम्माणि क्षिपते दुष्टानि अष्टकम्माणि
ज्ञानावरणादीनि ।

जो पुण परद्वरओ मिच्छादिही हवेइ सो साहु ।

मिच्छत्तपरिणदो उण उज्झदि दुट्ठकम्मेहि ॥ १५ ॥

य पुन परद्वरत मिथ्यादृष्टिर्भवति त साधु ।

मिथ्यात्वपरिणत पुन बध्यते दुष्टाष्टकमभि ॥

जो पुण परद्वरओ य पुन साधु परद्वरत इट्ठवनितादि-
रत स्तनजघनवदनलोचनादिफायादिमिलोक्तनादिछम्पट । मिच्छा-
दिही हवेइ सो साहु मिथ्यादृष्टिर्भवति सज्जयते साधु जिनसिगोप
जीवी । मिच्छत्तपरिणदो उण मिथ्यात्वपरिणत पुन मिथ्यादर्शनन
वासितो मुनि । उज्झदि दुट्ठकम्मेहि बध्यते दुष्टाष्टकमभि । उक्तं च—

कम्मइ दिट्ठघणचिक्खणइ मरुयइ यज्जसमाइ ।

णाणविघनपणजीउज्जउ उत्तरदि पाडहि ताइ ॥ १ ॥

इति कारणात् कर्माणि दुष्ट परिशेषणप्रतिष्ठ च लभ्यते ।

परद्वरादो दुगई सद्वरादो हु सुमगई हउइ ।

इय णाऊण सद्वरे कुणह रई गिरइ डयरम्मि ॥ १६ ॥

परद्वरात् दुर्गति स्वद्वरात् सुकृत सुगति भवति ।

इति ॥ त्वा स्वद्वर्य कुरुन रात विरतिमिनरस्मिन् ॥

परदब्वादो दुर्गई परद्रव्यादुर्गतिः परमात्मध्यानं परिहृत्य परद्रव्ये परिणमनान्नरकादिषु चतसृषु गतिषु पतनं हे जीव । तव भवति । सदब्वादो सुगर्गई हवइ स्वद्रव्यादात्मद्रव्ये एकलोलीभावात् सम्य-
 क्थद्वानज्ञानानुचरणात् सुगतिर्भवति मुक्तिर्भवति । इय णाऊण सदब्वे
 इति ज्ञात्वा ईदृशमर्थं परिज्ञाय स्वद्रव्ये आत्मतत्त्वे । कुणह रई विरइ
 इयरम्मि कुरुत यूयं रति भायना, विरति विरमणं, इतरस्मिन् परद्रव्ये,
 मा रज्जयत मूर्धामिति ।

तं परद्रव्यं सद्व्यं च केरिसं हवदि । तं जहा—

तत्परद्रव्यं स्वद्रव्यं च कौटुशं भवति । तद्यथा—तदेव निरूपयत्त्या-
 चार्याः—

आदसहायादण्णं सच्चित्ताचित्तमिस्सियं हवदि ।

तं परद्रव्यं भणियं अवितत्यं सव्वदरसीहिं ॥ १७ ॥

आत्मभावभादन्यत् सच्चित्ताचित्तमिधितं भवति ।

तत् परद्रव्यं भणितं-अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥

आदसहायादण्णं आत्मस्वभावादन्यत् पुद्गलादिद्रव्यं । सच्चित्ता-
 चित्तमिस्सियं हवदि सचित्तं विद्यमानचेतनं इष्टवनितादिकं, अचित्तं
 अचेतनं धनकनकवसनादिकं, मिश्रितं आभरणवस्त्रादिसंयुक्तं कलत्रा-
 दिकं भवति । तं परद्रव्यं भणियं तत्परद्रव्यं भणितं—आगमे प्रति-
 पादितं । अवितत्यं सव्वदरिसीहिं अवितथं सत्यरूपं सर्वदर्शिभिः
 श्रीमद्भगवदहं सर्वज्ञात्तस्यैविति शेषः ।

दुदुदकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं ।

सुद्वं जिणेहि कहियं अप्पाणं हेवदि सद्व्यं ॥ १८ ॥

दुष्टाष्टकर्मरहितं अनुपमं ज्ञानविग्रहं नित्यम् ।

शुद्धं जिनैः कथितं आत्मा भवति स्वद्रव्यम् ॥

दुष्टद्वकम्मरहितं दुष्टाष्टकर्मरहितं दुष्टानि पापिष्ठानि यानि अष्टक-
र्माणि दुर्गतिस्पातहेतुत्वात् तै ररहितं वर्जितं । अणोचमं गाणविग्रहं
णिच्चं अनुपमं उपमारहितं, ज्ञानविग्रहं ज्ञानशरीरं केवलज्ञानमयं, नित्यं
शाश्वतं अविनश्वर । सुद्धं जिणेहि कहियं शुद्ध निष्केवल कर्ममलक-
लङ्काररहितं रागद्वेषमोहादिभिर्भाजपरिणामनिर्वर्जित, जिनैः सर्वज्ञवीतरागैः,
कथित—आगमे प्रतिपादितं । अप्पाणं हवदि सद्व्वं आत्मा भवति
स्वद्रव्यं आत्मरूपं स्वद्रव्यं निजद्रव्यं ज्ञातव्यमिति ।

जे ज्ञायंति सद्व्वं परदव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता ।

ते जिणवराण मग्गं अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं ॥ १९ ॥

ये ध्यायन्ति स्वद्रव्यं परद्रव्यपराप्नुवास्तु सुचरित्राः ।

ते जिनवराणा मार्गमनुलम्भा लभन्ते निवाणम् ॥

जे ज्ञायंति सद्व्वं ये मुनयो ध्यायन्ति चिन्तयन्ति स्वद्रव्यं आत्म-
तत्त्वं । परदव्वपरम्मुहा दु सुचरित्ता परद्रव्यात् पराम्मुखा परद्रव्ये
शरीरादौ रागरहिताः, तु पुनः, सुचरित्रा शोभन चारित्र अनतिचार-
चारित्रसहिताः । ते जिणवराण मग्गं अणुलग्गा ते मुनयो, जिनव-
राणा सर्वज्ञवीतरागाणा, मार्गं स्तत्रयलक्षण, अनुलम्भाः पृष्टतो लग्ना
भवन्ति—जिनमार्गाराधका भवन्ति । लहदि णिव्वाणं निर्वाणमनन्तसुखं
परममोक्ष लभन्ते प्राप्नुवन्ति ।

जिणवरमण्ण जोई ज्ञाणे ज्ञाएह सुद्धमप्पाणं ।

जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ॥ २० ॥

जिनवरमतेन योगी ध्याने ध्यायति शुद्धमानमानम् ।

येन लभते निवृत्तिं न लभत किं तेन सुरलोकम् ॥

पिणवरमण्ण जोई जिनवरमतन जिनशासनेन सम्पदश्रद्धानज्ञाना
नुभवनलक्षणन रनत्रयण यागा दिगस्रो मुनि । ज्ञाणे ज्ञापइ सुद्धम
प्पाण ध्यान एकाग्रवि तानिराल्लभण, ध्यायति चित्तयति, शुद्ध राग
द्वेषमोहादिरहित कर्ममलकलकरहित टकोकीणस्फटिकमणित्रिवसदृश
ज्ञाययैकरयभाज चिच्चमकारस्वरूप, आमान निजामतत्त्व । जेण लहइ
पिब्बाण यनामघ्णनेन लभत निगाण सर्वरुमक्षयलक्षणमेक्षमनन्त
सौख्य । ण लहइ किं तेण सुरलोय तेना मध्यानेन न लभते किं न
प्राप्नोति मुरलाक रवर्गभाग । तथा चाक्त-

सुष्णा भोगेषु चेन्निक्षो । सहस्वारूप स्वरेय ते ।

प्रतीक्ष्य पाप किं पीत्वा पेया भुक्तिं विनाशय ॥ १ ॥

जो जाइ जोयणसय दियहेणेकेण लेवि गुरुभार ।

सो किं कोसद्ध पि हु ण सबए जाहु भुवणयले ॥ २१ ॥

सो याति योजनशत दिनेनकेन लावा गुरुभारम् ।

त किं कोशार्धमपि हु न शक्यते यातु भुवनतले ॥

जो जाइ जोयणसय या याति य पुमान् याति गच्छति, किं ?
योजनशत सहस्रयाजनदशमभाग । दियहेणेकेण लेवि गुरुभार दिव
सेनैकेन लेवि-लात्वा गृहीत्वा, क ? गुरुभार महाभार । सो किं
कोसद्ध पि हु स पुमान् (किं) कोशार्धमपि हु-स्फुट । न सकए जाहु
भुवणयले न शक्नोति न समर्थो भवति यातु भुवनतले पृथिवीमण्डले
अपि तु ग०यूतिचतुर्थमशं यातुं शक्नो येव ।

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहि सव्वेहिं ।

सो किं जिप्पइ इकिं णरेण संगामए सुहडो ॥ २२ ॥

य कोट्या न जीयते सुभट सप्रामकै सर्वे ।

स किं जीयते एकेन नरेण सप्रामे सुभट ॥

जो कोडिए ण जिप्पइ य सुभट सुभटाना कोट्या न जीयते न पराभूयते । सुहडो संगामएहि सव्वेहिं सुभट सप्रामकै सर्वैरपि । सो किं जिप्पइ इकिं स सुभट किं जायते एकेन सुभटन अपि तु न जीयते । णरेण संगामए सुहडो नरेण एकेन पुरेण सप्रामके एकस्मिन् सप्रामे ।

सगं तवेण सव्वो वि पावए तहि वि ज्ञाणजोएण ।

जो पावइ सो पावइ परलोए सासयं सोकरं ॥ २३ ॥

स्वर्गं तपसा सर्वोऽपि प्राप्नोति तत्रापि ध्यानयोगेन ।

य प्राप्नोति स प्राप्नोति परलोके शाश्वत सौख्यम् ॥

सगं तवेण सव्वो वि पावए स्वर्गं तपसा कृत्वा उपयासादिना कायक्लेशेन सर्वोऽपि भव्यजीवोऽभव्यजीवोऽपि प्राप्नोति लभते । तहि वि ज्ञाणजोएण तत्रापि सर्वेष्वपि जीवेषु मध्ये ध्यानयोगेन कृत्वा । जो पावइ सो पावइ य प्राप्नाति स्वर्गं स पुमान् प्राप्नोति । परलोए सासयं सोकरं परलोक आगामिनि भवे शाश्वतमनिश्वर सौख्यं परमनिर्गमिमिति शेषः । परभावे इति च क्वचित्पाठः तत्रायमर्थः — परभावे भवनं भावो ज-मोच्यते तस्मिन् परभावे परज-मनीत्यर्थः ।

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य ।

कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥ २४ ॥

अतिशोभनयोगेन शुद्धं हेमं भवति यथा तथा च ।

कालादिलब्ध्या आत्मा परमात्मा भवति ॥

अडसोदणजोएणं अतिशोमनयोगेन सामग्र्या अनन्धपापाणादिकं
अग्निमन्त्रे पचितं गुम्फपदिष्टौषधयोगेन । सुद्धं हेमं हवेद् जह तद् य
शुद्धं पोटशरणिक् हेमं सुवर्णं भवति यत्र तद् य—तथा च तथैव च
कालाईलद्वीए कालादिदम्भ्या वृत्ता कालादिदम्भ्या सत्या वा । अप्पा
परमप्पओ हवदि आत्मा ससारी जीव परमात्मा भवति—अहंन् सिद्धश्च
संजायते । उक्तं च—

नागफणीए मूल नागिणितोएण गम्भणाएण ।

नाग होइ सुवर्ण धम्मतंद् पुण्णजोएण ॥ १ ॥

अस्या अयमर्थ—नागफणीए मूल—नागौषधि । नागिणितोएण—
हस्तिनामूत्रेण पिष्टा । गम्भणाएण—गर्भे नाग सीसको यस्य स गर्भनाग
सिन्दूर साऽपि मध्य क्षिप्या मर्धते । नाग होइ सुवर्ण—नाग सीसक ।
एतत्सर्वं मृत्तिकाभाजने क्षिप्या अधोऽग्निं क्रियते खदिराङ्गारैर्ध्मायते
सुवर्णं भवति । पुण्ययोगेन पुण्ययोग विना सुवर्णं न भवति ब्रह्मादिभट्ट-
स्येति भावः तथाय आत्मा कालादिदम्भं प्राप्य सिद्धपरमेष्ठी भवतीति
भावार्थः ।

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहि ।

छायातपट्टियाणं पडिवालं ताणं गुरुमेयं ॥ २५ ॥

वरं व्रततपाभिः स्वर्गं मा दुःखं भवतु नरके इतरं ।

छायातपस्थितानां प्रतिपालयतां गुरुमेव ॥

वर वयतवेहि सग्गो वर ईपट्टुचौ वर श्रेष्ठ व्रतैस्तपोभिश्च स्वर्गो
भवति तच्चार । मा दुक्खं होउ निरइ इयरेहि मा दुःखं भवतु
निरइ—नरकानासे, इतरैरव्रतैस्तपोभिश्च । छाया तपट्टियाणं छायातप-

स्थितानां ये छायाया स्थिता अनातपे वर्तन्ते ते सुखेन तिष्ठन्ति, ये आतपे घर्मे स्थिता वर्तन्ते ते दुःखेन तिष्ठन्ति । पडिवालं ताण गुरु-
मेयं प्रतिपालयता व्रतानि अनुतिष्ठता स्मर्गो भवति तद्वर ससारिखे-
नापि ते मुखिन । अव्रतानि प्रतिपालयता नरके दुःखमनुभवता अति-
निन्दितमिति महान् भेदो वर्तते । तथा चोक्तं पूज्यपादेनेष्टोपदशप्रश्ने—

घर प्रतैः पद् दैय नामतैर्वत नारक ।

छायातपस्थयोर्मदः प्रतिपालयतोर्महान् ॥ १ ॥

जो इच्छइ निस्सरिदुं संसारमहणवस्स रुंदस्स ।

कम्मिधणाण दहणं सो ज्ञायइ अप्पयं सुदं ॥ २६ ॥

य इच्छति निस्सरितुं संसारमहणवस्य रुद्रस्य ।

कर्मन्धनानां दहनं स ध्यायति आत्मानं शुद्धम् ॥

जो इच्छइ निस्सरिदुं यो मुनिवर इच्छति अभिलषति, किं कर्तुं ?
नि सरितुं पार यातु । कस्य, संसारमहणवस्स रुंदस्स संसारमहर्ण-
वस्य संसारमहासमुद्रस्य । कथभूतस्य, रुद्रस्य अतिविस्तीर्णस्य ।
कम्मिधणाण दहणं कर्मन्धनानां दहनं कर्मकाष्ठानां भस्मीकरणं । सो
ज्ञायइ अप्पयं सुदं स मुनिर्प्रापति चिन्तयति, आत्मानं शुद्धं कर्ममल-
फलैरहितं रागद्वेषमोहादिभिर्भावार्जितमिति शेषः ।

सज्जे कसाय मोत्तुं गारवमयरायदोसवामोहं ।

लोयववहारविरदो अप्पा ज्ञाणइ ज्ञाणत्यो ॥ २७ ॥

सर्वान् कषायान् मुक्त्वा गारवमदरागद्वेष्यामोहम् ।

लोभ्यवहारविरत आत्मानं ध्यायति ध्यानस्थः ॥

सज्जे कसाय मोत्तुं सर्वान् कषायान् क्रोवमानमायालोभान् मुक्त्वा
परित्यज्य क्षीणकषायो मुनिर्भूत्वा । गारवमयरायदोसवामोहं

गारव च शब्दगारवं—अह वणोच्चारं रचिर जानामि न त्वेते यतयः,
 ऋद्धिगारवं-शिष्यादिसामग्री नम बन्ही वर्तते न त्वमीषा यतीनां, सात-
 गारव—अह यतिरपि सन् इन्द्रतनुमुख चक्रिमुख तीर्थकरसुखं भुजानो वर्ते
 न त्विमे यतयस्तपस्विनो वराकाः । मदा अष्ट—अहं ज्ञानवान् सकल-
 शास्त्रज्ञो वर्ते, अहं मान्यो महामंडलेश्वरा मत्पादसेवकाः । कुलमपि
 मम पितृपक्षोऽतीरोज्ज्वल. कोऽपि ब्रह्महत्या-ऋषिहत्यादिभिरदोषं । जातिः-
 मम माता संघस्य पत्युर्दुहिता—शीलेन मुलोचना-सीता-अनन्त-
 मती—चन्दनादिका वर्तते । बलं—अहं सहस्रभटो लक्षभटः कोटी-
 भटः । ऋद्धि.-ममानेकलक्षकोटिगणन धनमासीत् तदपि मया त्यक्त
 अन्ये मुनयोऽधर्मणा सतो दीक्षा जगृहुः । तप -अहं सिंहनिष्क्रीडित-
 बिमानपक्षित्सर्वतोभद्रशातकुम्भसिंहनिक्रमत्रिलोकमारुक्त्रमभ्योदृष्टीणोदृष्टीज-
 मृदगमध्यधर्मधक्कवालरुद्रोत्तरवसतमेरुनन्दीश्वरपक्तिपत्न्यविधानादिमहात-
 पोविधिविधाता मम जन्मैर्न तपः कुर्वतो गत, एते तु यतयो नित्य-
 भोजनरता । वपु.-ममरूपाग्रे कामदेवोऽपि दासत्वं करोतीत्यष्टमदाः ।
 रागश्च प्रीतिलक्षणः । द्वेषश्चाप्रीतिलक्षण. । व्यामोहं पुत्रकलत्रमित्रादि-
 स्नेहः । यामाना स्त्रीणां वा औहो यामौह. तत्तयोक्त समाहारो इन्द्रः ।
 लोयवग्रहारविरदो धर्मोपदेशादिकमपि न करोति लोकव्यवहारविरतः ।
 अप्पा क्षाण्ड क्षाणत्यो आत्मानं, ध्यायति चिन्तयति, क्षाणत्यो—
 “उत्तमसहननस्यैवाप्रचिन्तानिरोधो ध्यानमा-तर्मुहूर्तात्” इत्युक्तलक्षणे
 ध्याने तीष्ठतीति ध्यानस्थ. । “स्थैध ” इति कप्रत्ययप्रयोगत्वात् ध्या-
 नस्थ उच्यते ।

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चण्वि तिविहेण ।

मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अण्णा ॥ २८ ॥

मिथ्यात्वमज्ञानं पापं पुण्यं च त्यक्त्वा त्रिविधेन ।

मौनव्रतन योगी योगस्थो योतयति आत्मानम् ॥

मिच्छत्तं अण्णाणं मिथ्यात्व बौद्धवैशेषिकचार्वाककणभक्षकापि
लभद्भवेदात्तप्राभाकरश्चेतपटगौपुच्छिकयापर्णायद्रामिलनिष्पिच्छाशनेकैका-
न्ताशाश्रितमतः, अज्ञानं मस्करप्रकरणमतः । पावं पुण्णं चण्वि तिविहेण
पापं पञ्चप्रकारं प्राणातिपातानृतचौर्यमैथुनपरिग्रहाग्निभोजनादिकं सत्
व्यसनादिदुःखेण च, पुण्यं शुभपुद्गलग्रहणलक्षणं स्वदुःखसहन इत्यादिकं
त्यक्त्वा परिहृत्य त्रिविधेन मनोवचनकाययोगप्रकारेण । मोणव्वएण
जोई मौनव्रतेन वाग्व्यापाररहिततया योगी दिगम्बरः । जोयत्थो योग-
स्थितः शुद्धोपयोगतटीनः । योतयति ध्याययात्मानं शरीरप्रमाणं निज-
जीवस्वरूपम् ।

कथं मौनेन तिष्ठतीति प्राकृतयन्त्रमाह—

जं मया दिस्सदे रूढं तण्ण जाणादि सच्चहा ।

जाणमं दिस्सदे णंतं तम्हा जंपेमि केण हं ॥ २९ ॥

यमया दृश्यते रूपं तत्र जानाति सर्वथा ।

ज्ञायको ह्यमतेऽनन्तं तस्माज्जल्पामि केनाहम् ॥

जं मया दिस्सदे रूढं यमया दृश्यते रूपं यद्रूपं स्त्रीप्रभृतिशरी-
रादिषु दृश्यतेऽनलोक्यते रूपं रूपिषदार्थं तत् सर्वं पुद्गलद्रव्यपर्यायत्वा-
त्परमार्थतोऽचेतनम् । तण्ण जाणादि सच्चहा तद्रूपं सर्वथा निश्चयन-
येन न जानाति, अचेतनेन सह कथं ज्ञायकः । जाणमं दिस्सदे णंतं
ज्ञायकमात्मानं रूपाश्रितं वस्तु, अनन्तमात्मतत्त्वमनतकेरज्ञानस्थमाय-
त्वादनन्तं यदहं तेन सह जल्पामि स ह्यजानात्येवात्मा । तम्हा जंपेमि

केण हं तस्मात्कारणात् केन सहाह जल्पामि, अथवा केन कारणेन जल्पामि तेन मे मौनमेव शरण ।

सव्वासुरगिरोहेण कम्म खवदि संचिदं ।

जोयत्यो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं ॥३०॥

सवासुरनिरोधेन भक्क्षिपयति संचितम् ।

यागस्थो जानाति योगी जिनदेवेन भाषितम् ॥

सव्वासुरगिरोहेण सर्वेपामासुराणां मिथ्यात्वानिरसिप्रमादकपाय-
योगलक्षणानां निराधेन निषधेन । कम्मं खवदि संचिदं कर्म क्षिपयति
पूर्वोपार्जितं तडागऽभिनयजलप्रवेशाभावे संचितपूर्वजलशोषयत् । जोय-
त्यो जाणए जोई योगस्थ ध्यानस्थित आ भैकलोलीभावमिलितो
जानाति कवलज्ञानमुत्पादयति योगी शुद्धध्यानविशेषागमभाषया केवली
भवति । जिणदेवेण भासियं सिद्धार्यनृपनन्दनेन वीरेण कथितमिति
भाव ।

जो सुत्तो वरहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।

जो जग्गदि वरहारे सो सुत्तो अप्पणे कज्जे ॥३१॥

य मुक्तो व्यवहारे स योगी जागर्ति स्वकार्ये ।

यो जागर्ति व्यवहारे स मुक्त आत्मन कार्ये ॥

जो सुत्तो वरहारे यो मुनि मुत्त, क १ व्यवहारे व्यवहारमध्ये
न पतित । सो जोई जग्गए सकज्जम्मि स यागी जागर्ति सावधानो
भवति, स्वकार्ये आमकार्ये कर्मक्षयविधाने । जो जग्गदि वरहारे यो
योगी जागर्ति सावधानो भवति, क २ व्यवहारे लोकोपचारे । सो सुत्तो
अप्पणे कज्जे स योगी मुनि मुत्तो न वदयतऽसावधानो भवति
आमन कार्ये आनन्दस्थये । उक्तं च—

जो निसि सयलह देहियहं जोगिउ तहिं जग्गेइ ।

जहि पुणु जग्गेइ सयलु जगु सा निसि भणेवि सुप्पइ ॥१॥

इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं ।

झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेण ॥ ३२ ॥

इति ज्ञात्वा योगी व्यवहारं त्यजति सर्वथा सर्वम् ।

ध्यायति परमात्मानं यथा भणितं जिनवरेन्द्रेण ॥

इय जाणिऊण जोई इतीदृशमर्थं ज्ञात्वा, कोऽसौ ? योगी ध्यान-
यान् मुनि' । व्यवहारं चयइ सव्वहा सव्वं व्यवहारं त्यजति सर्वथा सर्वं
आत्मना सह एकलोलीभावं गते सति व्यवहारः स्वयमेव तिष्ठति ।
झायइ परमप्पाणं ध्यायति परमात्मानं—निजशुद्धबुद्धैकस्वभावे आत्मनि
तल्लीनो भवति । जह भणियं जिणवरिंदेण यथा भणितं प्रतिपादित
जिनवरेन्द्रेण प्रियकारिणीप्रियपुत्रेण श्रीवीरवर्धमानस्वामिना ।

पंचमहव्ययजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।

रयणत्तयसंजुत्तो ज्ञाणज्झयणं सया कुणह ॥ ३३ ॥

पञ्चमहाव्रतयुक्तः पंचसु समितिषु तिष्ठतु गुप्तिषु ।

रत्नत्रयसयुक्तः ध्यानाध्ययनं सदा कुरु ॥

पंचमहव्ययजुत्तो पञ्चमहाव्रतयुक्तो दयावान् सत्यवादी अदत्तादान-
विरतः सर्वस्वीसोदरः वस्त्रादिपरिग्रहहितं दिवा एकवारं प्रत्युत्पन्न
प्रासुकं मुक्तं शुद्धं शोधितं भुञ्जानः । पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु
इर्याया युगान्तरविलोकगमनः, आर्गमोक्तभाषानिपुणः, चर्मजलस्पृष्टभो-
जनपरित्यागी हिंसुसंवासितव्यंजनाभोजनः, अजिनसंगृह्यतैलपरिहारी, दृष्ट-
मृष्टोपकरणग्रहणनिक्षेपैः, प्रासुकारुद्धभूमिभलमूत्रव्युत्सर्जनकुशलैः, अप-
ध्यानमनोनिषेधैः, मौनवान्, कूर्मवत्संकोचितकरचरणादिकार्यैः । रयण-

१ या निशा सकलानां देहिना योगी तस्या जागर्ति ।

यस्यां पुनः जागर्ति सकलं जगत् सा निशां भणित्वा स्वसिति ॥

तयसंजुतो मिथ्यात्ववदकुद्दालं^१ सम्यग्ज्ञानानुशीलनपुण्ड सच्चरित्रप-
त्रिगात्र । ज्ञाणज्ज्ञयणं सया कुणह ध्यानाध्ययनं मदा सर्वकालं
कुरु त्व हे जीव ! इति तात्पर्यार्थ ।

रयणतयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो ॥

आराहणाविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं ॥३४॥

रत्नत्रयमाराधयन् जीव आराधको मुनितन्व्य ।

आराधनाविधान तस्य फल केवल ज्ञानम् ॥

रयणतयमाराहं रत्नत्रयमाराधयन् । जीवो आराहओ मुणे-
यव्वो जीव आत्मा आराधको मुनितन्व्यो ज्ञातव्य । आराहणाविहाणं
इदमाराधनाविधान विधि । तस्स फलं केवलं णाणं तस्याराधना
विधानस्य, किं फल केवल ज्ञान अनन्तकेवलज्ञानमिति अनन्तचतुष्टय ।

सिद्धो सुद्धो आदा सब्बण्ह सब्बलोयदरसी य ।

सो जिणवरेहि भणियो जाण तुमं केवलं णाणं ॥३५॥

सिद्ध शुद्ध आत्मा सब्र सबलोकदर्शी य ।

स जिनवरे भणित जानीहि त्व केवल ज्ञानम् ॥

सिद्धो सुद्धो आदा सिद्ध आत्मापलब्धिमान् । शुद्ध कर्ममल-
फलकहित , ईदृग्विध आत्मा अतति समयैकेन ऊर्ध्व त्रयास्वभावेन
त्रिभुवनाप्र गच्छतीति आत्मा शुद्धबुद्धैकस्वभाव । सब्बण्ह सब्बलो
यदरिणी य सर्वज्ञ त्रैलोक्यालोकस्वरूपज्ञायककेवलज्ञानसमुपेत , सर्व-
लोकदर्शी च सर्वशब्देनालोकाकाशो लभ्यते लोकशब्देन पृथग्द्वयाधार-
वन्निभुवनमुच्यते तद्द्वय दृष्टु अवलोकयितु शील्यमस्येति सर्वलोकदर्शी ।
चकार उक्तविशेषणसमुच्चयार्थ तनानन्तरीर्यान तसौल्यानदादिरनन्त-

१ रयणतयमाराहं अथ पाठ क पुस्तके नास्ति, ख पुस्तकात् संयोजित ।

२ सांख्यादादि इ ख पुस्तके पाठ ।

गुणोऽपि गृह्यते । सो जिणवरोहि भणिओ स एव गुणविशिष्ट आत्मा
जिनवरैस्तार्थकरपरमदेवैर्भणित प्रतिपादित । एव गुणविशिष्टमात्मानं
जाण तुमं केवलं णाणं जानीहि त्व केवल ज्ञान, आत्मा खलु केवल
ज्ञान—अभेदनयत्वात् ज्ञानमेवात्मान जानीहि ।

रयणत्तयं पि जोई आराहइ जो हु जिणवरमएण ।

सो ज्ञायदि अप्पाणं परिहरदि पर ण संदेहो ॥ ३६ ॥

रत्नत्रयमपि योगी आराधयति य स्फुट जितवरमतेन ।

स ध्यायति आत्मानं परिहरति परं न सन्देहः ॥

रयणत्तयं पि जोई रत्नत्रयमपि योगी ध्यानयान् मुनि, न केवल
गुणिनमात्मानं तद्गुण रत्नत्रयमपीत्यपेक्षार्थः । आराहइ जो हु जिणवर-
मएण आराधयति य सयमी हु स्फुट जितवरमन्त्रन सर्वहारीतरागकाधि-
तमार्गेण । सो ज्ञायदि अप्पाणं स योगी ध्यायति चिंतयति, कः
आत्मानं सहजानन्दस्वभावात् जीवतत्त्वः । चकाराद्य आत्मा तद्रत्नत्रयं यद्
रत्नत्रयं स आत्मा गुणगुणिनोरभेदनयात् । परिहरदि परं णं संदेहो
परिहरति परियजति, पर पुद्गलाद्यचेतनद्रव्यं, न सन्देहोऽत्रार्थे सशयो-
नास्ति ।

कह आंदे रयणत्तयं हवदि तं जहा—

कथमात्मनि रत्नत्रयं भवतीति चेत् ? तद्यथा—तदेव निरूपयति—

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेयं ।

तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं ॥ ३७ ॥

यज्जानाति तज्ज्ञानं यत् पश्यति तच्च दर्शनं ज्ञेयम् ।

तच्चारित्तं भणितं परिहारः पुण्यपापानाम् ॥

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिच्चाणं ।

दंसणविहीणपुरिसो न लहइ तं इच्छियं लाहं ॥ ३९ ॥

दर्शनशुद्ध शुद्ध दशनशुद्ध लभते विवाणम् ।

दशनविहीनपुरुष न लभते ॥ इष्ट लाभम् ॥

दंसणसुद्धो सुद्धो दर्शनेन सम्यग्दर्शनेन सम्यक्त्वेन शुद्धो निर्मलो
निरतिचार पचविंशतिदोपरहित पुमान् शुद्ध कथ्यत । उक्त च—

सम्यग्दर्शनसशुद्धमपि मातगदेहज ।

देवा देव विदुभस्मगूडाङ्गादन्तरौजस ॥ १ ॥

दंसणसुद्धो लहेइ णिच्चाणं दर्शनशुद्ध पुमौल्लभते निर्माणं
मोक्ष । दंसणविहीणपुरिसो दर्शनविहीन पुरुष सम्यग्दर्शनरहित
पुमान् सम्यक्त्वविवर्जितो जीव । न लहइ तं इच्छियं लाह न लभते
न प्राप्नोति त जगत्प्रसिद्ध योगिना प्रयक्ष इष्ट लाभ सर्वकर्मक्षयलक्षण
मोक्षपदार्थ ।

इय उवएसं सार जरमरणहर खु मण्णए ज तु ।

तं सम्मत्तं भणियं समणाणं सावयाणं पि ॥ ४० ॥

इति उपदेश सारो जन्ममरणहर स्फुट मन्यते यत्तु ।

तत् सम्यक्त्व भणित धम्मणानां आवाक्यामपि ।

इय उवएस सार इतीदृश उपदेश सबाधनचर्च, सारं सार श्रेष्ठतर ।

धेष्ठे वंले स्थिरस्थान्ते मज्झाया सार उच्यते ।

जले न्याय्ये धने विद्धि सारमुक्त नपुसवे ॥ १ ॥

जरमरणहर खु मण्णए जं तु जरामरणहरं जरामरणविनाशक इम
उपदेश मन्यते ग्रह्वाति यत्तु यत् भद्वत्ते तु पुन । तं सम्मत्तं
भणियं तत्सम्यक्त्व भणित प्रतिपादित । समणाणं सावयाणं पि

श्रवणानां दिगम्बराणां अनगारयतीनां श्रावकाणामपि गृहस्थानां ।
अपिशब्दाच्चातुर्गतेकर्त्रीणामपि ।

जीवाजीवविहृत्ती जोई जाणेइ जिणवरमणं ।

तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं मज्जदरिसीहि ॥ ४१ ॥

जीवाजीवविभक्तिं योगी जानाति जिनवरमणेन ।

तत् सञ्ज्ञानं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥

जीवाजीवविहृत्ती जावाजीवानां विभक्तिं भेदस्तां जीवाजीववि-
भक्तिं । जोई जाणेइ जिणवरमणं यागी दिगम्बरो मुनि, जानाति
वेत्ति यथाऽस्वरूपमवैति, जिनवरमणेन सर्वज्ञशासनेन । तं सण्णाणं
भणियं तत्सञ्ज्ञानं भणितं तत्सम्पगृह्णान् कथितं । अवियत्थं मज्जद-
रिसीहि अवितथं सत्यमूतं, सर्वदर्शिभिः सर्वज्ञैरिति शेषः । उक्तं च—

अन्यूनमनसिरिक्खायाथातथ्यं विना च विपरीतात् ।

नि सन्देहं चेदं यदाद्गुस्तज्ज्ञानप्राप्तमिति ॥ १ ॥

जं जाणिउण जोई परिहार कुण्ड पुण्णपावाण ।

त चारित्तं भणियं अवियत्थं कम्मरहिण्ण ॥ ४२ ॥

यत् ज्ञात्वा योगी परिहारं करोति पुण्यपापयो ।

तत् चारित्र्यं भणितं अविकल्पं कर्म्मरहितेन ॥

जं जाणिउण जोई यज्ज्ञानाया विज्ञाय योगी जैनो मुनि । परि-
हारं कुण्डं पुण्यपापाणां परिहारं परित्यागं करोति पुण्यपापयो ।
त चारित्तं भणियं तदात्मना सहैकलोलीमान् तमयन् तत्परत्वं
तन्निष्ठं तदेकतानत्र चारित्र्यं परमोदासीनतालक्षणं भणितं प्रतिपा-
दितं । केन, कम्मरहिण्णं धातुवर्त्मनिध्वंसकेन सर्वज्ञेन । तत्कथंभूते
चारित्र्यं, अवियत्थं अत्रिकल्पं सकल्पत्रिकल्परहितं निर्विकल्पसमा-
विष्टक्षणं यथाख्यातनामकं ।

जो रणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए ।

भो पावइ परमपयं ज्ञायंतो अप्पयं सुद्धं ॥४३॥

यो रत्नत्रययुक्तं करोति तपं सयतं स्वशक्त्या ।

स प्राप्नोति परमपदं ध्यायन् आत्मानं शुद्धम् ॥

जो रणत्तयजुत्तो यो जैनो मुनी रत्नत्रययुक्तं सम्पददर्शनज्ञानं चारित्रसहितं सम्पक्त्वाज्ञानज्ञानानुष्ठानसमुपेतं । कुणइ तवं संजदो संसत्तीए करोति विदधाति सम्पगनुतिष्ठति, किं तत् ? तप इच्छा-निरोधलक्षणं आत्मनि ज्ञानवृत्तया तपनं, सयतो जैनो मुनि परमोदासीनतालक्षणसंयमं सम्पन्नं, स्वशक्त्या आत्मशक्त्यनुसारेण । उक्तं च—

ज सक्कइ त कीरइ अं च ण सक्केइ त च सइहइ ।

सइहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाण ॥ १ ॥

“शक्तितत्स्यागतपसी” इति वचनात् । सो पावइ परमपयं स प्राप्नोति स मुनिर्लभते, किं तत् ? परमपदं इन्द्रधरणन्द्रमुनीन्द्रनरेन्द्रवदितं स्थानं परमनिर्माणं । ज्ञायंतो अप्पयं सुद्धं ध्यायन् सन् एकाग्रतया चिन्तयन्, कं ? आत्मानं निजशुद्धबुद्धैकस्वभावात्मतत्त्वं, शुद्धद्रव्यकर्मभावाकर्मनोऽकर्मरहितं रागाद्वेपमोहादिप्रिवर्जितं कर्ममलकलङ्कारहितं प्रत्यक्षतया प्राप्तमिति तात्पर्यार्थः ।

तिहि तिण्णि धरवि णिच्चं तियरहिओ तह तिण्ण परियरिओ ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा ज्ञायए जोई ॥ ४४ ॥

त्रिभिः श्रीन् धृत्वा नित्यं त्रिकरहितं तथा त्रिकेण परिरक्षितं ।

* द्विदोषविप्रमुक्तं परमात्मानं ध्यायते योगी ॥

१ शशब्दोऽयं टीकायां नास्ति मूलान् संयोजितः ।

२ यच्छब्दोति सत्त्वियते यच्च न शक्नुयात् तच्च शब्दीयते ।

अर्हधानो जीवः प्राप्नोति अपरामरं स्थानं ॥

श्रवणानां दिगम्बराणां अनगारयतीना श्रावकाणामपि गृहस्थानां ।
अपिशब्दाच्चातुर्गतिकजीवानामपि ।

जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएणं ।

तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सच्चदरिसीहिं ॥ ४१ ॥

जीवाजीवविभक्तिं योगी जानाति जिनवरमतेन ।

तत् सञ्ज्ञानं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥

जीवाजीवविहत्ती जीवाजीवाना विभक्तिः भेदस्तां जीवाजीववि-
भक्तिं । जोई जाणेइ जिणवरमएणं योगी दिगम्बरो मुनिः, जानाति
वेत्ति यथावत्स्वरूपमवैति, जिनवरमतेन सर्वज्ञशासनेन । तं सण्णाणं
भणियं तत्सञ्ज्ञानं भणित-तत्सम्यग्ज्ञानं कथित । अवियत्थं सच्चद-
रिसीहिं अवितथं सत्यभूतं, सर्वदर्शिभिः सर्वज्ञैरिति शेषः । उक्तं च-

अन्यूनमनतिरिक्तं याथातथ्यं विना च विपरीतात् ।

निःसन्देहं घेद यदाहुस्तज्ज्ञानमागमिन ॥ १ ॥

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं ।

तं चारित्तं भणियं अवियप्पं कम्मरहिण्ण ॥ ४२ ॥

यत् ज्ञात्वा योगो परिहारे करोति पुण्यपापयो ।

तत् चारित्रं भणितं अविकल्पं कम्मरहितेन ॥

जं जाणिऊण जोई यज्ज्ञात्वा निश्चाय योगी जैनो मुनिः । परि-
हारं कुणइ पुण्णपावाण परिहार परित्यागं करोति पुण्यपापयोः ।
तं चारित्तं भणियं तदात्मना सहैकलोलीमानः तन्मयत्वं तत्परत्वं
तन्निष्ठत्वं तदेकतानत्वं चारित्रं परमोदासीनतालक्षणं भणितं प्रतिपा-
दित । केन, कम्मरहिण्ण धातिकर्मविध्वंसकेन सर्वज्ञेन । तत्कथंभूतं
चारित्र, अवियप्पं अविकल्पं संकल्पविकल्परहितं निर्विकल्पसमा-
धिलक्षणं यथाख्यातनामक ।

जो रणत्तयजुत्तो कुणइ तर्न संजदो ससत्तीए ।

सो पावइ परमपयं ज्ञायंतो अप्पयं सुद्धं ॥४३॥

यो रत्नत्रययुक्तं करोति तप संयतं स्वशक्त्या ।

त प्राप्नोति परमपदं ध्यायन् आत्मानं शुद्धम् ॥

जो रणत्तयजुत्तो यो जैनो मुनी रत्नत्रययुक्तं सम्पाददर्शनज्ञान
चारित्रसहितं सम्पक्वश्चज्ञानज्ञानानुष्ठानसमुपेत । कुणइ तर्न संजदो
संसत्तीए करोति विदधाति सम्पगनुतिष्ठति, किं तत् ? तप इच्छा
निरोधलक्षण आत्मनि ज्ञानवत्तया तपनं, सयतो जैनो मुनि परमोदासी-
नतालक्षणसयमं सम्पन्नं, स्वशक्त्या आत्मशक्त्यनुसारेण । उक्तं च—

ज सफकइ त कीरइ ज च ण सन्नेइ त च सहहइ ।

सहहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाण ॥ १ ॥

“ शक्तितत्त्वागतपत्नी ” इति वचनात् । सो पावइ परमपयं
॥ प्राप्नोति स मुनिर्लभते, किं तत् ? परमपदं इन्द्रधरणन्दमुनीन्द्रनरेन्द्र
वदितं स्थानं परमनिर्गणं । ज्ञायंतो अप्पयं सुद्धं ध्यायन् सन् एका
प्रतया चिन्तयन्, यः आत्मानं निजशुद्धबुद्धिकस्यभासामतत्त्वं, शुद्धं
द्रव्यकर्मभावकर्मनोर्म्मरहितं रागद्वेषमोहादिनिवर्जितं कर्ममलकलङ्कारहितं
प्रत्यक्षतया प्राप्तमिति ता पर्यार्थः ।

तिहि तिण्णि धरवि णिचं तियरहिओ तह तिण्ण परियरिओ ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा ज्ञायए जोई । ॥ ४४ ॥

त्रिभिः त्रीन् भूत्वा नित्यं त्रिकरहितं तथा त्रिकेण परिकल्पितं ।

द्विदोषविप्रमुक्तं परमात्मानं ध्यायते योगी ॥

१ सशब्दोऽयं टीकायां नास्ति मूलात् सयोनित् ।

२ यच्छप्नोति तत्क्रियते यच्च न शक्नुयात् तच्च व्यदीयते ।

अदधानो जीवः प्राप्नोति अजरामरं स्थानं ॥

तिहि त्रिभि मनोवचनकायै । तिणिं धरवि त्रीन् वर्षाशीतोष्ण
कालयोगान् धृत्वा । “तुआण तूणात्तुम् च क्वाया” इति प्राट्ठ-
व्याकरणसूत्रेण क्त्वाम्यान्ऽव आदत्त तन धृत्वा इत्यस्य स्थाने धरवि
इति प्रयोग साधु । णिन्चं मर्यदा सप्तस्मिन् दाक्षाकाले । तियरहिओ
मायामिथ्याऽनिदानशल्यत्रिकरहित । तह तिण्ण परियरिओ तथा
तेनैव त्रिकरहितप्रकारेण, त्रिकेण सम्पददर्शनज्ञानचारित्रेण, परिकरितो
मटित । दोदोसविप्पमुक्को द्विदोपरिप्रमुक्त विशेषेण प्रक्षय्येण
रागद्वेषदोषरहित । परमप्पा ज्ञायए जोई परमात्मान सिद्धस्वप्पमा
त्मान प्यायति चित्तयति योगी ध्यानगान् मुनि । अथवा योगीति
योगत्रलेम मनोवाक्काययोगावष्टम्भन ।

मयमायकोहरहिओ लोहेण विगज्जिओ य जो जीवो ।

निम्मलसहावजुत्तो सो पावड उत्तमं सोवसं ॥ ४५ ॥

मदमायाकोवरहित लोभन विवर्तितश्च यो जीव ।

निर्मलस्वभावयुक्त स प्राप्नोति उत्तमं सौख्यम् ॥

मयमायकोहरहिओ मदमायाक्रोधरहित । लोहेण विगज्जिओ
य जो जीवो लोभेन विवर्तितश्च यो जीव आत्मा । निम्मलसहाव
जुत्तो निर्मलस्वभाव रागादिरहित परिणामस्तेन सयुक्त । सो पावड
उत्तमं मोक्षं स जीव प्राप्नोति लभते, किं ॥ उत्तमं सोऽयं कर्मक्षय
सजात इन्द्रियमुखरहित इन्द्रादीनामपि दुर्लभं सौख्यं परमानन्दलक्षण ।

तथा चोक्त—

जं मुणि एहइ अणत्तमुहु नियअप्पा ज्ञायतु ।

त सुहु इहु वि न वि एहइ देविहिं कोडि रमतु ॥ १ ॥

१ चो क ।

२ यन्मुनि लभतऽन तमुक्त निजआत्मान ध्यायन् ।

तत् सुख इन्द्रोऽपि नैव लभते देवीनां कोऽपि रममाण ॥

विसयकसाएहि जुदो रुदो परमप्पभारहियमणो ।

सो न लहइ सिद्धिसुहं जिणमुदपरम्महो जीवो ॥४६॥

विषयकार्ययुक्त रुद परमा मभावराहितमना ।

स न लभते सिद्धसुखं जिनमुद्रापराद्मुखो जीव ॥

विसयकसाएहि जुदो विषयै वनिताजननामालिगनादिस्प
शादिपचेन्द्रियमुखै कयायैध कोधमानमायाओमे युत सहित ।
रुदो परमप्पभावरहियमणो रुद सत्यकिमहाराजपुत्र परमात्म-
भारहितमना परमामभोजनाया प्रभृत् । सो न लहइ सिद्धिसुहं
स रुदो न लभते न प्राप्नोति, किं ? सिद्धिसुखं आमोपलब्धि-
मुख । तर्हि किं लभते ? नरकदुःखं लभते इत्यर्थापत्ति । जिण-
मुदपरम्महो जीवो जिनमुद्रापराद्मुखो जीव जिनमुद्रा परित्यज्य
भ्रष्टो बभूवेति भाग्यार्थः ।

रुदस्य कथा यथा—अथेह भरतक्षेत्रे विजयार्थपर्वते दक्षिणश्रेण्या
किन्नरगीतनगरे रत्नमाली खगनरेन्द्रो मनोहरीनिघाधरीकान्तः, तत्पुत्रो
रुदमाली । स एकस्मिन् दिने स्वच्छन्दं वने विहरमाणो निघा साध-
यतीं निघाधरकुमारीं ददर्श । तद्रूपमोहितो विचया भ्रमरो बभूव ।
पण्मासपर्वतं तद्वदनकमले स्थितिं चकार । पुनः सूक्ष्मो भूत्वा स्तन-
योजनेन च तस्यौ । पश्चात्प्रकटीकृतनिजशरीरं स तया परिगलितत्रैर्वो
भणितं प्रतीक्षन् कियत्कालं तावत् निमग्नः सा कार्षी । शिखिदुर्लभा
निघा सिद्धयति तस्या सिद्धायां तन जाया भविष्यामि । हे मुभग !
बद्धानुरागाहं वर्ते । तदा तेन सा पृष्टा । यद्रे ! त्वं कस्य घृदा ? ।
भणितं च तया । अत्रैव पर्वत उत्तरस्या श्रेणी गन्धर्वपुरपत्तनानीशो
मम पिता महानलः । तस्य प्रमाकरी भार्या । तयोर्धोदा प्रसिद्धाहर्षचि-

१ अस्मात्पदादमे सुता इत्यपि पाठः स पुस्तके वर्तते । स च कः पुस्तके
टिप्पणरूपेण वर्तते । धूदा इत्यर्थं नामान्तरं मुतेति । ज्ञायते खलु लेखकस्य
दोऽयं । यत् मूले अक्षिप्तोऽयं सुतेति शब्दः ।

मालिनी । तयापि पृष्ट त्व क ? । स आह । अत्र गिरौ दक्षिणश्रेणौ
 किन्नरगीतपुरप्रभुरत्नमालिमनोहर्यो सुतोऽह रुद्रमाली नाम । बहुभि-
 र्दिनैः साधितप्रियार्चिमालिनीदुवदना सदन जगाम । मातरपितरी द्वयो-
 र्मनो निज्ञाय तयोर्विवाह चक्रतु । तौ रतिरसरजितौ साधितप्रज्ञसिधिर्यौ
 नन्दनपुत्रे शांतिहेतवे जिनस्नपनपूजनस्तवनानि कृत्वा मुख स्थितौ ।
 मनोजयचित्तमेगौ तस्या मैथुनिकायागत्य महाजालिनीप्रियया रुद्रमालिन
 वदूच्या प्रगृह्य गतौ । सोऽपि तौ निर्जित्य पुनरागत । अर्चिमालिन्या
 सह निजपुर प्रविवेश । सानुरागस्तस्यौ । एकदा वैराग्य प्राप्य चारण-
 चरणमूले सभार्यो दिदीक्षे । तौ परस्पर ममाय कान्तौ भविष्यति ममेय
 प्राणप्रिया भविष्यतीति सनिदानौ सौधर्म सन्यासेन गतौ । तत्रापि दीर्घ-
 काल रतिमुख मुक्त्वा गन्धारदेशे माहेश्वरपुरे स देव सत्यन्धरमहाराजसत्य-
 वत्सो सुत सात्यकिर्जात । अर्चिमालिनीचरी देवी सौधर्माच्युता
 सिन्धुदेशे विशालीपत्तने चेटकमहाराजसुप्रभादेव्यो सुता ज्येष्ठा जाता । सा
 सात्यके पूर्वमेव दत्ता । पर विवाहो न वर्तते । अनन्तरे श्रेणिकमहा-
 राजपुत्र कपार्थ सार्धवाहो भूत्वा अभयकुमारो नाम घूर्तस्तत्रागत ।
 तत्र राजपुत्र्यौ चेलना ज्येष्ठा च चालयित्वा उपाय कृत्वा सुरगया नि-
 सूत । तत्र चेलनया ज्येष्ठा आभरणादिमिषेण व्याघोडिता स्वयं श्रेणिक
 आगता । यावज्ज्येष्ठा जिनप्रतिमा गृहीत्वा गच्छति तान्तत्र कोऽपि
 न दृष्ट । ज्येष्ठा तु लज्जिता “अहं वृहद्भगिन्या वचिता” इति वैराग्येण
 पितृष्वमुपशस्यत्यौघैत्यालये स्थितायाश्चरणमूले दीक्षा जप्राह । कन-
 त्काचनपर्णाया कन्याया वार्ता श्रुत्वा सत्यकिर्नाम कुमार ससाराद्विरक्तो
 राज्यलक्ष्मी परित्यज्य समाविगुप्त नत्वा जिनदीक्षामग्रहीत् । त्रिगुप्तिगुप्त

सन् स तपस्तीव्रं कुर्वाण उत्तरगोर्कर्णमाद्रिं मुक्त्वा कदाचित् राजगृह-
नगरसमीपे उच्चप्रीतपर्वते स्थितः । एकस्मिन् दिने तद्गुणानुरागिण्यस्त-
त्रत्यार्यास्तं वन्दितुमागताः । वन्दित्वा यात्रद्भिरेवतरन्ति तावन्महामेघ-
वृष्टिरागता । आर्यास्तु स्तिम्बन्त्यो विव्दलीभूता यत्र तत्र गताः । जेष्टार्या
सत्यकिमुनेर्गुहा प्रविष्टा । तत्र वस्त्र निष्पीलयन्ती ज्येष्ठा सत्यकिना
मुनिना दृष्टा । समुत्पन्नकामोद्रेकेण सा तेन मुक्ता । पुनरालोचनां निन्दा
गर्हणं च कृत्वा श्रवणधर्मे स्थितः । सा सगर्भा शान्त्यार्यया ह्यात्वा
चेलन्याः समर्पिता । तत्र तिष्ठन्ती सा पुत्रमसूत । स पुत्रोऽभयकुमारेण
स्वयंभूगुहायां क्षितः । तत्र रात्रौ स्वप्नदर्शनाच्चेलनया स आनायितः ।
दर्शनोद्वाहं शमयित्वा स्वयंभूनामा कृतः । ज्येष्ठा तु निःशल्या भूत्वा
गता । आर्यायाः पार्श्वे समयमनियमान् पालयन्ती स्थिता । स्वयंभूस्तु
वर्धमानः शिशूनां चपेटादिताडनेन सन्ताप्य करोति । तदेव्या चेलनया
अपरमपि कालेनयुक्तं दृष्ट्वा स्वयंभूरुक्तः । खलो जारजातो निर्लज्जः
किं केनापि स्वभावं गुञ्चति । भ्रुकुटिं कृत्वा दुर्वचनेन शूलभिन्न इव
ताडितः । पुनः स प्रणामं कृत्वा पृष्ठवान्—मातः । किमेतदुक्तं ? चेल-
नया तु न किमपि रक्षितं यद्योक्तमुवाच । निजोत्पत्तिस्मृतिफलं ज्ञात्वा उत्तर-
गोर्कर्णपर्वतं गत्वा सत्यकिमुनिं नत्वा वैराग्येण दिगम्बरो भूत्वा उत्तर-
गोर्कर्णपर्वते स्थितः । गुरुशिक्षया मनो रद्वन्वा स एकादशाङ्गानि शिक्षितः ।
तत्र रोहिणीप्रभृतयः पञ्चशतविद्या महाविद्या आगताः सिद्धाः ।
अपरा अपि अंगुष्ठप्रसेनाप्रभृतयः सप्तशतक्षुद्रविद्यास्तस्य सिद्धाः ।
विद्यासामर्थ्येन सिंहो भूत्वा जनं भीषयति । तद्दृष्टान्तः केनचित् सत्यके-
निरूपितः । गुरुणा स ऊचे—मुने ! तव स्त्रीहेतुना विनाशो भविष्यति ।

तच्छ्रुत्वा यत्र स्त्रीमुख न पश्यामि तत्राहं तप करिष्यामीति कैलासप-
 र्वत गत्वा तप कर्तुं लग्न । तानदिजयार्धदक्षिणश्रेणौ मेघनिमग्नपत्तने
 वनकरथो नाम विद्याधरनरेन्द्र । तदेया मनोरमा । देवदारुविद्युत्सनी
 द्वौ पुत्रौ । एकदा देवदारु राज्ये स्थापयित्वा त्रिभुजिह्व च युवराज कृत्वा
 कनकरथो गुणधरगुरुचरणमूले दीक्षा जप्राह । प्रज्ञसिन्धुविद्याप्रभावेण त्रिभु-
 जिह्वेन देवदारुर्जितो निर्घात्रित । कैलासमागत्य सपरिवारो विद्यापुर
 कृत्वा निर्भय स्थित । तस्य देवदारो चतस्रो महादेव्य संत्य योजन-
 गन्धा, कनका, तरंगमेगा, तरंगभामिनी चेति । चतस्रोऽप्यतिमनोहर-
 शरीरा । योजनगन्धायां गंधिला गन्धमालिनी चेति द्वे धीदे जाते अति
 विनीते । कनकाया कनकाचित्रा कनकमाला चेति धूदे द्वे जाते । तरंग-
 वेगाया तरंगसेना तरंगरती चेति द्वे कन्ये सजाते । तरंगभामि-या
 सुप्रभा प्रभाशती चेति द्वे पतिवरे बभञ्चतु । एता अष्टावपि दिव्यामर-
 णमूपिता दिव्याम्बरधरा अमरकुमारिका इव कञ्चुकिपरिवरितास्ति-
 ष्ठन्ति । एकदा कैलासोपरि मानससरसि जलक्रीडार्थमागता पीनो-
 न्तस्तनशोमिता स्नान कुर्वतास्ता रुद्रो ददर्श । मदनरागै-
 र्वक्षसि विद्ध । क्षुभितो रुद्रो व्यामोह प्राप । तनासन्नस्थितेन
 कामबाणजर्जरितहृदयेन चिन्तित उपाय । विद्यया सरस्तटस्थि-
 तानि वस्त्राभरणानि हारयति स्म । ता अनुपमा स्नान कृत्वा तटमा-
 गय वस्त्राभरणानि न पश्यति स्म । व्याकुलितमनोभिस्ताभिर्मुनिस-
 मीप गत्वा स मुनिरुच्ये । स्वामिन् ! न ज्ञायते देवानामपि प्रियाणि
 अस्माक वस्त्राभरणानि केनचिद्रूढीतानि । भगवन् ! त्व ज्ञानवान् जानासि
 निश्चित वधय । रुद्र उवाच । जानाम्येन, यदि मामिच्छत यूयं तदा
 दर्शयामि । एतच्छ्रुत्वा विस्मिय नययौनना विद्याधरनुमार्ग ऊचु । मुने !

वयं स्वच्छन्दचारिण्यो न वर्तमहे । अस्मन्मातरपितरौ जानीतः । स्वच्छ-
न्दचारिणीनां विद्यामाहात्म्यं कुतः । ततो वस्त्राभरणानि दत्त्वा शिपि-
विष्टः प्राह । निजमातरपितृगणं पृष्ट्वा मम उत्तरं दत्तं यूयं । ताभिर्गृहं
गत्वा पितुरग्रे वार्ता कृता । पित्रा तु एकः कंचुकी संदेशहरो हरं प्रेषितः ।
स गत्वा मुनिमुवाच । स्वामिन् ! अस्मत्स्वाम्येवं भणति । यदि मेघ-
निवद्धं पत्तनं गत्वा मेघनृपं तथा मेघनादं च दायिनं निर्धाव्य त्रिकहर्ष-
दायि त्रिपुरं पुरं प्रवेशयासि मां तदा जनमनोमोहनकारिणीर्मम सुता
अष्टा अपि ददामि । कपर्दिना ओमिति मणिते कंचुकिना चागत्य राज्ञो
तथा कथिते खचराधिपो हर्षं चकार । सुहृत्सुजनवर्गेण सर्वेण तत्र गत्वा
शर्वं स्वमन्दिरमानिनाय । तत्रोपवेश्येश्वरमादितो वृत्तान्तं जगाद यथा
दायिना राज्यमपहृतं । ईशान उवाच । राजन् ! यत्वं भणसि तदहं
साधयामि, किमेकेन त्रिपुराधिपेन ! त्रिजगदपि संहरामि । तदनन्तरं सरोपो
देवदारुर्भयरहितो नानाछत्रध्वजचामरसैग्यसहितः शंकरं नीत्वा तत्र गतः ।
पुरं वेष्टितवान् । विद्युज्जिह्वस्तु निर्गतः, चन्द्रशेखरस्तेन सह त्रैलोक्य-
चित्तचमत्कारकारकं समनीकं चकार । उवाळिन्या विद्यया ज्वालयित्वा
रिपुं भस्मयामास । त्रिपुरं गृहीत्वा देवदारुः मुखी बभूव । जामातरं
त्रिपुरं नीत्वा तस्मै चन्द्रशेखराय अष्टा अपि कन्या अदित ।
तास्तंमथुनमसहमाना अष्टा अपि भृताः । देवदारुखगस्याध्वचन्द्रैः
सुहृद्भिः शत्रुमारकस्य भूतेशस्य मालतीमाला इव कोमलभुजाः
पंचशतकन्याः पुनर्दत्ताः । ता अपि खण्डपरशोरिपमरतेन दिनं
दिनं प्रति मुक्ता एकैकाः सर्वा अपि मधुः । तदा तासां मरणे
गिरीशश्चिन्ताग्न्याबुलितमनाः स्थितः । अथ गौर्या सह यथा
संयोगो जातस्तत्कथां कथयामि शृणुत भव्याः ! । पूर्वभवे खल्वेका
क्षान्तिफा देशान्तरं यान्ती मार्गश्रमश्रान्ता धीवरेण नदीमुत्तारिता ।

तस्य मत्स्यबन्धस्य शीतलशरीरस्पर्शेन सा आप्यायिता । तया विषयाशया
 कर्मजशेन निदानं कृतं—अयस्मिन् भवे प्रकटितपरमद्येहोऽयं मम
 भर्ता भविष्यतीति । ईदृशं निदानं कृत्वा कायं विमुच्य सौधर्मेन्द्रस्य
 देवी जाता । कैवर्तस्तु ससारे भ्रमित्वा मिथ्यातपं कृत्वा ज्येष्ठाभुतो
 जातः । अथ साऽस्तिपुरे राजा वासतः । तन्महादेवी मित्रवती । तया
 विद्युन्मती नाम्नी कन्या जनिता । तद्विद्वत्स्य विद्याधरस्य सा दत्ता ।
 सौधर्मेन्द्रदेवी प्युत्वा विद्युन्मती गर्भे स्थिता । नयमे मासे कष्टेन
 जनिता । विद्युन्मती विद्याधरी पीडावशेन निर्भिन्ना (पणा) सती
 साऽस्तिनगरे पर्यतगुहाया त्वाजिता । तत्र गुहायां चतस्रो द्विजपुत्र्य
 क्रीडितुं कन्यापुण्येनागताः । उमा उमा इति शब्देन रटन्ती ताभिर्दृष्टा ।
 उमेति नाम कृत्वा सा कोमलाङ्गी करणया गृहमानीता । ब्राह्मणपुत्री-
 भिक्षतसृभि सा कन्या राजपुत्रे विद्युन्मत्या महादेव्या वासववृषभार्यया
 [सा बाटिका] दर्शिता । तयापि गृहीत्वा पुत्र्यो पुत्र्यो निजधात्र्या पंडि-
 ताया पालयितुं दत्ता । अथाष्टचन्द्रनृपेषु प्रधान ईद्रसेनाभिधानो गगनाङ्गणे
 संचोदितविमान एकस्मिन् दिने साऽस्तिमागतः । तस्य कुलद्विषा
 निजभगिन्या अपत्यरहिताया सन्मानदूर्धकं मित्रवत्या वासववृषभार्यया
 गिरिर्षिकानामन्या सा उमा दत्ता । तयापि प्रतिपास्य नययोरना कृता ।
 सा सुन्दरी मुरकूटपुरेशविद्याधरेशतद्विद्वेगस्य परिणायिता । सा मक्षोमत्ता
 सुष्ठु मुरतानुरागा यदा मुरतमुगमनुभवति तदा तद्विद्वेगो मृतः । उमा
 तु यौवनमदेन स्वच्छन्दा जाता । विश्वस्तोमा देवदाम्नगरे एकस्मिन्
 दिने गता । देवदारुणा तद्यारं ज्ञाया रतिगुणाधिका सा स्थानोर्विद्या-

१ सा य । २ सा. य. । स्वा क । पूषपाटानुगारेण (सा) प्रवर्तिता ।
 २ पुष्पाः । ४ विद्युन्मत्या । ५ उमा । ६ य य । ७ सा य, स्वा क ।
 अयोध्या ।

विभवस्यार्थमाननेनार्थानस्यार्थीकरणेन च तस्य भार्या पुनर्भूर्जाता ।
 भूतेशस्तु तस्या मुखविशप्रसूनं निरीक्षमाणोऽहर्निश तिष्ठति । सरित्सु
 सीतासीतोदादिषु सरस्सु पद्मादिषु गिरिषु मेर्गादिषु लण्णोदादिषु समुद्रेषु
 देवारण्यादिषु च वनेषु सर्वमंगलया तथा सार्धमनुदिनं रममाण उर्वरायां
 पर्यटति । स जटामुकुटविभूषितो वृषारूढो मस्मोद्भूलितो लोकानेव
 वदति—अहं त्रिजगत्सामी, कर्ता, इर्ता, शिवः, स्वयभूः, शम्भुः, ईश्वरः,
 हरः, शंकरः, सिद्धः, बुद्धः त्रिपुरारिः, त्रिलोचनः, प्रकृतिशुद्धः, सर्वज्ञः,
 उमापतिः, भवः, ईश, ईशानः, मृडः, मृत्युञ्जय, श्रीकण्ठः, वामदेवः,
 महादेवः व्योमकेश इत्यादीनि मम नामानि । अहमेव वर्त्तेऽपरो नास्ति ।
 मायानी विजयार्थे बहूनि दिनान्युपित्वा जनमनासि मेरु रंजयित्वा न भरत-
 क्षेत्रमागत्य तेन शैवशास्त्रं प्रकटीकृतं । तदीक्षिता शैवाचार्या बहवो
 बभूवुः । दर्शितगुणा गणाः प्रभूता मिलिता, तैः परिवृतोऽस्त्रलितप्र-
 तापोऽनवरतमुमाप्रेमानुरागो द्वादश वर्षाणि विषयसौख्यं भुञ्जानो मद्या
 हतविपक्षो भ्रमितः । तत्प्रतापं दृष्ट्वा सर्वेऽपि विद्याधरा अतिभीताः ।
 तैर्निचारितं एष महाविद्यावलीयानस्मान् मारयित्वा उभये अपि श्रेण्यौ
 निक्षिप्तं ग्रहीष्यति । केनोपायेनाय खलो हन्यते यावज्ज हन्तीति ।
 लोके चिन्ताकुले दृष्ट्वा मात्रा गिरिकर्णिकानाम्भ्या निजमुतोमा भेदं पृष्ट्वा-
 पुत्रि उमे ! मम जामातुर्विद्या कदाचिदपि अनशा भवन्ति न वेति,
 उमा प्राह—मातर्गिरिकर्णिके ! यदाय मन्मूर्खह सुरतमुखमनुभवति तदा
 सुरतकाले विद्या अस्य न स्पृशन्ति । इत्युपदेशं लब्ध्वा । गन्धारदेशे दुरंड-
 नगरे वनप्रदेशे सुरतमारुढः, तैर्विद्याधरैः कान्तासहितस्य शिरधिच्छिदे ।
 तस्मिन् इते तद्विद्याभिर्देश उपद्रूयोदासितः । गृहे गृहे कृतघोरः
 प्रविष्टः जीवघनं मुष्णाति । तन्नगरस्य राज्ञा विश्वसेनेन नन्दिपेणो मुनिः
 पृष्टः । भगवन् ! मरकोपसर्गस्य कः प्रपयः । मुनिवशाच । रद्रनामा

विद्याधरस्तत्र नगरे विद्यानामक्षमापणं कुर्वाणो मारितस्तेनोपसर्गो वर्तते ।
 तर्हि स्वामिन् ! उपसर्गविनाशं कथं भविष्यति ? तर्हिङ्गं छित्वा उमो-
 पस्थे स्थापयित्वा यदि पूजयन्ति भवतस्तदा विद्या उपशाम्यन्ति । उत्पात
 उपशाम्यतीति तद्युत्वा विश्वसेनस्तत्र गत्वा सर्वोऽपि जनपदो व्याहृतः ।
 इष्टकाभिरुच्चा मचिकां कृत्वा तर्हिङ्गं छित्वा तदुपरि धृत्या तर्हिङ्गोपरि
 सुरतमुखक्षोणिं तदुपरि धृत्या तन्मध्ये ऊर्ध्वमणिं शिखरिङ्गं स्थापयित्वा
 जलेन प्रक्षाल्य परिमलबहुलेन चन्दनेन त्रिलिप्य पुष्पाक्षतादिभिर्लोकै-
 राजाह्वया पूजयित्वा तदिन्द्रिययोर्नमस्कारं कृतं तदा विद्याभिः क्षमा
 कृता, लोकस्योपसर्गस्य विनाशो जातः । तद्दिनमारभ्य प्रहतलज्जं शोक-
 स्येश्वरं छिङ्गं पूज्यं जातमित्यक्षानिभिर्लोकैः श्रीमद्भगवद्दर्शनपरमेश्वरं
 परित्यज्य स एव देव परमात्माकृतः ।

इति मोक्षप्राभृते ह्योन्मत्स्युपाख्यानं जिनमुद्रापरिधृष्टव्यसूचकं
 समाप्तम् ।

जिणमुद्रं सिद्धिसुहं हवेद् नियमेण जिणवरुदिष्टा ।

सिन्धिणे वि ण रुचद् पुण जीना अच्छंति भवगहणे ॥ ४७ ॥

जिनमुद्रा सिद्धमुख भवति नियमेन जिनवरोदिष्टा ।

स्वप्नेषि न रोचते पुन जीवा सिद्धंति भवगहणे ॥

जिणमुद्रं सिद्धिसुहं जिनमुद्रा सिद्धिसुखं आत्मोपलब्धिदक्षणमु-
 त्सिख—सिद्धिसुखयोगाजिनमुद्रैव सिद्धिसुखमुपवर्धते । हवेद् भवति ।
 नियमेण जिणवरुदिष्टा नियमेन निश्चयेन, कर्णभूता जिनमुद्रा । जिन-
 वरोदिष्टा वेवलिप्रतिपादिता । तदृक्षणं पूर्वमेवोक्तं वर्तते । सिन्धिणे वि
 ण रुचद् पुण सा जिनमुद्रा जीवस्य स्वप्नेऽपि निद्रायामपि न

रोचते । रुचधातोः प्रयोगे चतुर्थी प्रोक्ता “यस्मै दिप्सा रोचते धारयते वा तत्संप्रदानं” इति वचनात् संप्रदाने चतुर्थी तदयुक्तं, कस्मादिति चेत् ? यदा रोचते तदा संप्रदानं यदा तु न रोचते तदा पट्टीप्रयोग एव । स्वप्नेऽपि न रोचते पुनर्जीवत्येति सम्बन्धः । जीवा अच्छंति भवगहणे येन कारणेन जिनमुद्रा न रोचते भावचारित्रं भावचारित्रमिति लोकादिभिराम्रेष्यते तेनैव कारणेन जीवास्तिष्ठन्ति भवगहने संसारवने । रुद्रादिष्वच्छजिनमुद्रा नरकादौ पतन्ति ।

परमपय शायंतो जोई मुच्चेइ मलदलोहेण ।

णादियदि णवं कम्मं णिदिहं जिणवरिंदेहिं ॥ ४८ ॥

परमात्मानं ध्यायन् योगी मुच्यते मलदलोभेन ।

नाद्रियते नव कर्म निरिदं जिनवरेन्द्रे ॥

परमपय शायंतो परमात्मानं निजात्मस्वरूपं ध्यायन् । जोई मुच्चेइ मलदलोहेण योगी ध्यानवान् मुनिर्मुच्यते परिह्रियते, केन ? मलदलोभेन मलं पापं ददातीति मलदः स चासौ लोभो धनाकाक्षा तेन मलदलोभेन । णादियदि णवं कम्मं लोभरहितो मुनिर्नाद्रियते न वध्नाति, नव कर्म अभिनव पाप, पूर्वोपार्जितं तु स्वयमेव क्षीयते । णिदिहं जिण-वरिंदेहिं निरिदं कथित, जिनवरेन्द्रेः* जिनवरा एव इन्द्रास्त्रिभुवन-प्रभवस्तैर्जिनवरेन्द्रेः* सर्वज्ञवीतरागैरिति शेषः ।

होउण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ ।

शायंतो अप्पाणं परमपयं पावण जोई ॥ ४९ ॥

भूत्वा दृढचरितः दृढसम्यक्त्वेन भावितमति ।

ध्यायन्नात्मानं परमपदं प्राप्नोति योगी ॥

* एतद्धिन्दुसम्यगतः पाठः ख. पुस्तके नास्ति । १ जिनेन्द्रेः इति मूलटीका-
पाठः मूलपदानुसारेण प्रवर्तितः ।

होउण दिठपरिचो ददचरिओऽचलितचारिओ भूत्वा । दिठ-
सम्मत्तेण भावियमईओ ददसम्पक्केन चलमलिनतारहितसम्यग्दर्श-
नेन भावितमतिस्तु यासितमना । ज्ञायतो अप्पाण ज्ञानवलेन ध्याय-
नामान । परमपथ पापए जोई परमपद केउल्लान निर्माण च
प्राप्नोति, योगा भदवानवान् मुनि ।

चरण हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो ।

मो रागरोसरहिओ जीवस्म अणण्णपरिणामो ॥ ५० ॥

चरण भवति स्वधर्मं धर्मं स भवति आमसमभाव ।

स रागरोपरहित जीवस्य अनन्यपरिणाम ॥

चरण हवइ सधम्मो चरणं चारित्रं भवति स्वधर्म आमस्वरूप ।
धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो धर्मो भवति, कोऽसौ ? स एव य स्वधर्म
आमस्वरूप, स धर्मं कथंभूत ? अप्पसमभावो-आमसमभाव आमसु सर्व
जीवेषु समभाव समतापरिणाम, यादृशो मोक्षस्थाने सिद्धो यत्तते तादृश एव
ममामा शुद्धबुद्धैकस्वभावा सिद्धपरमेश्वरसमान यादृशोऽह केउल्लान
स्वभावास्तादृश एव सर्वोऽपि जीवराशिरत्र भेदो न कर्तव्य । मो राग
रोसरहिओ जीवस्म अणण्णपरिणामो ॥ आमसमभाव कथंभूत
स्तस्य लक्षण निरूपयन्ति भगवत -स आमसमभावो रागरोपरहितो
भवति यं प्रति प्रीतिलक्षण रागं करोमि सोऽप्यहमेव, यं प्रति अप्रीति
लक्षण द्वेषं करोमि सोऽप्यहमेव तेन रागरोपरहितो जीवस्या मनोऽनन्य
परिणाम एकगोलीभावा समन्वयेन परमचारित्रं ज्ञातव्यमिति । तथा
चोक्त—

जीवा निणयर ओ मुणइ जिणयर जीव मुणेइ ।

मो समभावपरिद्विज्जा एहु जिज्वाणु एहेइ ॥ १ ॥

१ नं टी ।

२ जीवान् निनरं यो जानाति तिनयर जीव जानाति ।

स समभावपरिस्थित लघु जिवाणु लभते ॥

जह फलिहमणि विसुद्धो परदम्बजुदो हवेइ अण्णं सो ।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अण्णविहो ॥५१॥

यथा स्फटिकमणिः विशुद्धः परद्रव्ययुतो भवति अन्य.स ।

तथा रागादिविमुक्त जीवो भवति स्फुटमन्योन्यविध. ॥

जह फलिहमणि विसुद्धो यथा येन प्रकारेण स्फटिकमणिः स्वभा-
वेन विशुद्धो निर्मलो वर्तते । परदम्बजुदो हवेइ अण्णं सो परद्रव्येण
जपापुष्पादिना युत , अण्ण-अन्योऽन्यादृशो भवति । तह रागादि-
विजुत्तो तथा तेनैव स्फटिकमणिप्रकारेण रागादिभिर्विशेषेण युक्तः
स्त्र्यादिरामयुतो रागादिमान् भवति । जीवो हवदि हु अण्णविहो
जीव आत्मा भवति हु-स्फुट अन्योन्यविधोऽपरापरप्रकारो भवति-स्त्रीभि-
र्योगे रागवान् भवति शत्रुभिर्योगे द्वेषवान् भवति पुत्रादिभिर्योगे मोह-
वान् भवतीति सात्पर्यार्थः ।

देव गुरुम्मि य भत्तो साहम्मि य संजदेसु अणुरत्तो ।

सम्मत्तमुज्ज्वहंतो ज्ञाणरओ होइ जोई सो ॥ ५२ ॥

देवे गुरौ च भक्त. साधर्मिके च संयतेषु अनुरक्तः ।

सम्यक्त्वमुद्बुद्धन् ध्यानरत भवति योगी स. ॥

देव गुरुम्मि य भत्तो देवे गुरौ च भक्तो विनयपर । साहम्मि य
संजदेसु अणुरत्तो साधर्मिकेषु समानधर्मेषु जैनेषु, सयतेषु महामुनिषु,
अनुरक्तोऽकृत्रिमस्नेहवान् वात्सल्यपर । सम्मत्तमुज्ज्वहंतो सम्यक्त्व सम्य-
ग्दर्शनमुद्बुद्धन् मूर्धनि स्थापयन् । ज्ञाणरओ होइ जोई सो एव विशे-
षणत्रयविशिष्टो योगी अष्टाङ्गयोगनिपुणो मुनिर्ध्यानरतो भवति ध्याना-
नुरागी भवति सः । निपरीतस्य ध्यान न रोचत इत्यर्थः । तथा चोक्तं—

सर्वपापाक्षवे क्षीणे ध्याने भवति भावना ।

पापोदतवृत्तीनां ध्यानवार्तापि दुर्लभा ॥ १ ॥

अन्यच्च—

स्वयूथ्यान् प्रति सद्भावसनाथापेतर्कतया ।

प्रतिपत्तिर्यथायोग्यं चात्सल्यमभिलष्यते ॥ २ ॥

उगगतवेण्णार्णी जं कम्मं खवेदि भवहि बहुएहि ।

तं णार्णी तिहिं गुत्तो खवेइ अंतोमुद्दुत्तेण ॥ ५३ ॥

उग्रतपसाऽग्रानी यत्कर्म क्षपते भवेर्बहुकैः ।

तज्ज्ञानी त्रिभिर्गुणैः क्षपयति अन्तर्मुद्गतेन ।

उगगतवेण उग्रतपसा तीव्रतपसा कृत्वा । अण्णार्णी अज्ञानो मुनिः ।
आत्मभावनाविद्यार्जितस्तपस्वी । जं कम्मं खवेदि भवहि बहुएहि
यत्कर्म पापकर्म क्षिपते भवेर्बहुकैः कोटिभवैः शतकोटिभवैः सहस्रको-
टिभवैः लक्षकोटिभवैः कोटिकोटिभवेभ्येत्यादिभिः । तं णार्णी तिहिं
गुत्तो तत्कर्म ज्ञानी आत्मभावनापरः सूरिः तिहिं गुत्तो—त्रिभिर्गुणैः
मनोवचनकायगुणैः सहितः । खवेइ अंतोमुद्दुत्तेण क्षपयति क्षपमान-
यति, कियति फाले ! अन्तर्मुद्गतेन । कोऽसायन्तर्मुद्गते इति चेत् !—

आंवालि असंघसमया संखेज्जावलिहि होइ उस्सासो ।

सत्तुस्सासो थोओ सत्ताथोओ लघो भणिओ ॥ १ ॥

अट्टत्तीसखलया नाली दो नालिया मुहुत्तं तु ।

समऊणं तं भिण्णं अंतमुद्दुत्त अणेययिहं ॥ २ ॥

इति गाथाद्वयकथितक्रमेण जानत्या उपरि एकः समयोऽधिको
भवति सोऽन्तर्मुद्गतो जघन्यः कथ्यते । एवं व्यादिसमयद्वया समयद्व-
यहीनोऽन्तर्मुद्गतं उत्पद्यते । मध्येऽसंख्यातभेदा अन्तर्मुद्गतेष्वपि
ज्ञातव्याः । तेषु कस्मिंश्चिदन्तर्मुद्गते ज्ञानी कर्म क्षपयति । एतेन सम-
येन हीनो मुद्गतो भिन्नमुद्गतं उच्यते इति भावः ।

सुभजोगेण मुभावं परदब्धे कुण्ड रागदो साहू ।

सो तेण दु अण्णाणी णाणी एत्तो दु विवरीदो ॥ ५४ ॥

शुभयोगेन मुभावं परदब्धे करोति रागतः साधुः ।

स तेन तु अज्ञानो ज्ञानी एतस्माद्विपरीतः ॥

सुभजोगेण मुभावं शुभस्य मनोज्ञपदार्थस्येष्टवनितादेः योगेन संयोगेन मेष्टनेनोपदौकनेनाप्रत आगतेन मुभावं—शोभनं प्रीतिलक्षणं भावं परिणामं । परदब्धे कुण्ड रागदो साहू परदब्धे आत्मनो भिन्ने वस्तुनि इष्टवनितादौ, करोति निदधानि मुभावमिति सम्बन्धः, रागतः प्रेमपरिणामात् । कः कर्ता, साधुर्वेपथारी मुनिः पुण्यदन्तवत् । तथा चोक्तं—

अलकचलयरम्य भूलतानतंकाव्यं

नवनयनविलास चारुगण्डस्थलं च ।

मधुरध्वननगर्भं स्मेरविम्याधरायाः

पुरत इव समास्ते तन्मुखं मे प्रियायाः ॥१॥

कर्णायतंसमुखमण्डनकण्ठभूषा-

वक्षोजपत्रजघनाभरणानि रागात् ।

पादेष्वलककरसेन च चर्चनानि

शुर्चंगित ये श्रणयिनीषु त एव धन्याः ॥२॥

लीलाविलासविलसन्नयनोत्पलायाः

स्फारस्मरोत्तरलिताधरपल्लवायाः ।

उपगङ्गाविरपयोधरमण्डलाया-

स्तस्या मया सह कदा ननु संगमः स्यात् ॥३॥

किञ्च—

चित्रालोचनकर्मभिर्मनसिजव्यापारसारास्मृतै-

र्गोढाभ्यामपुरमस्थितप्रियतमापादप्रणामक्रमैः ।

स्यमे संगमविप्रयोगविषयप्रीत्यमोदागमै-

रित्यं घेषमुनिर्दिनानि शमयत्युत्कण्ठित कानने ॥४॥

इत्यादिमुदतीचिन्तनेनाज्ञानी मूढ कथ्यते । णाणी एत्तो दु विव-
रीदो ज्ञानी निर्मोहो मुनि एतस्मादुक्तलक्षणात् साधोर्निपरीत शुभ-
वस्तुयोगे सति राग न करोतीति तात्पर्यार्थः ।

आसवहेद् य तहा भावं मोक्षस्स कारणं हवदि ।

सो तेण दु अण्णाणी आदसहावस्स विवरीदो ॥ ५५ ॥

आसवहेतुश्च तथा भावो मोक्षस्य कारण भवति ।

स तेन तु अज्ञानी आत्मस्वभावान् विपरीत ॥

आसवहेद् य तहा आसवहेतुश्च तथा यथेष्टवनितादिविषये राग
आसवहेतुर्भवति तथा निर्बिकल्पसमाधि निना मोक्षस्यापि रागः
कर्मासवहेतुर्भवति । सो तेण दु अण्णाणी स साधुर्मोक्षेऽपि रागभावं
कुर्वाण तेन कारणेन पुण्यकर्मबन्धहेतुत्वादज्ञानी भवति—मूढ स्यात्
आदसहावस्स विवरीदो आत्मस्वभावान्निर्बिकल्पसमाधिलक्षणात्म-
न्यारूपविपरीत । तथा चोक्तमेकत्वसप्तन्या—

स्पृहा मोक्षेऽपि मोहोत्था तन्निषेधाय जायते ।

अन्यस्मै तत्कथ शान्ताः स्पृहयन्ति मुमुक्षव ॥ १ ॥

जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स रांडदूसयरो ।

सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो ॥ ५६ ॥

य कर्मजातमतिक स्वभावज्ञानस्य खण्डदूषणकर ।

स तेन ॥ अज्ञानी जिनशासनदूषको भणित ॥

जो कम्मजादमइओ य पुमान् कर्मजातमतिक इन्द्रियानिन्द्रि-
याणि खलु कर्मजातानि तदुत्पन्नमतिटेशसंयुक्त । सहावणाणस्स रांड-
दूसयरो स्वभावज्ञानस्या मोक्षज्ञानस्य केवलज्ञानस्य दूसयरो—दोषदायक ।
आत्मन खल्वतीन्द्रियज्ञान नास्ति चक्षुरादीन्द्रियजनितमेव ज्ञानं वर्तते

इत्येवं स्वभावाज्ञानस्य दूषणकरो भवति, अतीन्द्रियज्ञान न मन्यते । खण्ड-
दूसयो—खण्डज्ञानेन दूषणकर कथिभिष्यादृष्टि । मो तेण दु अण्णाणी
स पुमान् तेन तु दूषणदानेन अज्ञानी ज्ञातव्यो ज्ञानीयो ज्ञेयो वेदितव्य
इति यावत् । स कथंभूत, जिणसासणदूसगो भणिदो जिनशासन-
स्याहृतमतस्य दूषको दोषभाषको भणित —स नरकदुख प्राप्त्यति । तथा
चोक्त पुष्पदन्तेन महाकविना काव्यपिशाचखण्डकव्यपरनामद्वयेन—

संव्यण्हु अणिदिओ णाणमउ जो मइमूहु न पत्तियइ ।

सो णिदिउ पच्चिदियणिउ वैतरणिहि पाणिउ पियइ ॥ १ ॥

णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहि संजुत्तं ।

अण्णोसु भावरहियं लिङ्गग्रहणेण किं सोक्खं ॥ ५७ ॥

ज्ञान चरित्रहीन दर्शनहीन तपोभि द्युक्तम् ।

अन्येषु भावरहित तिरङ्गग्रहणेन किं सौख्यम् ॥

णाणं चरित्तहीणं ज्ञान चरित्रहीन सौख्यकर न भवतीति सम्बन्ध ।
दंसणहीणं तवेहि संजुत्तं दर्शनहीन सम्पद्दर्शनरत्नरहित तपोभि
सद्युक्त कर्म सौख्यकर न भवतीति सम्बन्ध । अण्णोसु भावरहियं
अन्येषु पञ्चावस्थादिषु भावरहित कर्म । लिङ्गग्रहणेण किं सोक्खं
लिङ्गग्रहणेन वेपमात्रेण आमभावनारहितेन कर्मणा किं सौख्य भवति—
अपि तु सर्वकर्मक्षयलक्षण मोक्षसुखं न भवतीति भावार्थः ।

अचेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी ।

सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा ॥ ५८ ॥

अचेतनमपि चेतयितारं यो मन्यते स भवति अज्ञानी ।

स पुन ज्ञानी गणित यो मन्यते चेतने चेतयितारम् ।

अचेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी चेतयितार-
मात्माने य पुमान् कापिलमतानुसारी अचेतनमामानं मन्यते स पुमान्
अज्ञानी ज्ञानवर्जितो मूर्खो भवेत् । सो पुण्ण जाणी भणिओ ॥
पुमान् पुनर्ज्ञानी भणित । स क ' जो मण्णइ चेयणे चेदा य
पुमान् चेतने चेतनद्रव्ये चेतयितारमामानं मन्यते । उक्तं च—

स यदा तु सप्रयोंपतसचेतास्ताद्विषातश्चेतुर्जिज्ञासो सेकितनि-
वेकस्योक्ता स्फाटिकादमानमिथानन्दारमानमप्यात्मानं सुखदुःखमो-
हायदपरिषर्तमंहदहकारपिषर्तं च पशुपयनया . सत्परज साम्याय-
स्यापरनामयत्या सनातनव्यापिगुणाधिरुते . प्रवृत्ते स्वरूपमयग-
च्छति तदायोमयगोलवानलतुल्यपदं यस्य बांधवद्रुघानरससर्गस्य
सति विसर्गे सबलज्ञानशेषसम्यग्धर्मेकस्य कैवल्यमपलम्ब्यते तदा
दृष्टुः स्वरूपेऽप्यस्थानं मुक्तिरिति वापिलाः श्रियदन्तः प्रतिउत्तर्याः—
कपिलो यदि पाछति पिप्पिमच्चिति सुरगुरुगीर्णुंकेन्नेप पतति ।
चेतन्य बाह्यप्राहारहितमुपयोगि कस्य चर्दं तत्र विदित ॥ १ ॥

तत्परहिं जं णाणं णाणविजुत्तो ततो वि अकयत्थो ।

तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिज्वाणं ॥ ५९ ॥

तत्परहितं दत्तं ज्ञानं ज्ञानविशुक्तं तपोऽपि अहृतार्थं ।

तस्मिन् ज्ञानतपसा संयुक्तः स भवति निर्वाणम् ॥

तत्परहिं जं णाणं तत्परहितं यज्ज्ञानं तदहृतार्थमिति सम्प्रथ . ।
णाणविजुत्तो ततो वि अकयत्थो ज्ञानविशुक्तं ज्ञानरहितं अज्ञानं
तपोऽपि अहृतार्थं मोक्षं न साधयति । तस्मात् णाणतवेणं संजुत्तो
लहइ णिज्वाणं तस्मात्कारणात् ज्ञानतपसा ज्ञानं ॥ तपश्च ज्ञानतप
समाहारो द्वादशेन ज्ञानतपसा । अथवा ज्ञानेनोपलक्षितं तपो ज्ञानतपसेन
तथोक्तेन संयुक्तो मुनिर्भवति निर्वाणं सर्वकर्मक्षयश्च मोक्षमिदं ।
तथा चोक्तं—

मान्य ज्ञान तपोऽहीन ज्ञानहीन तपोऽहित

द्वाम्या युक्त स देवः स्याद् द्विहीनो गणपूरणः ॥ १ ॥

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवथरणं ।

णाउण धुवं कुज्जा तवथरणं णाणजुचो वि ॥ ६० ॥

धुवसिद्धिस्तीर्थकर चगुणज्ञानयुक्त करोति तपश्चरणम् ।

ज्ञात्वा धुव कुर्यात् तपश्चरणं ज्ञानयुक्तोऽपि ॥

धुवसिद्धी तित्थयरो धुवसिद्धिरवश्यं मोक्षगामी, कोऽसौ ? तीर्थकर
तीर्थकरपरमदेव । चउणाणजुदो करेइ तवथरणं दीक्षानन्तरमेवोत्प-
न्नमन पर्ययज्ञान तथापि तपश्चरणं त्रिरात्रादिक तपश्चरणं करोति ।
णाउण धुवं कुज्जा तवथरणं णाणजुचो वि इति ज्ञात्वा, धुवमिति
निश्चयेन, कुर्याद्विदध्यात्, किं तत् ? तपश्चरणं ज्ञानयुक्तोऽपि । अहं
सकलशास्त्रप्रवीण किं मनोपवासादिना तपश्चरणेनेति न बाध्यमिति
भावः । उक्तं च—

उपवासस्यो एकस्य फलेन सर्वोद्दिष्टपरिवारः ।

णायवत्तु दिवि देवो हुउ पुणरपि णायकुमारः ॥ १ ॥

तेन कारणेन जिय प्रमणमि करि उपवाससुम्भासु ।

जाम्भय देहकुडिल्लयहि हुसकइ मरणहु यासु ॥ २ ॥

यद्ज्ञानेन जीवेन हृतं पापं सुदारुणं ।

उपवासेन तत्सर्वं दहत्यग्निरिवेन्धनः ॥ १ ॥

तथा धीक्तं प्रभावदेण तार्किकलोकशिरोमणिना—

उपवासफलेन भजति नरा भुवनत्रयजातमहाविभवान् ।

खलु कर्ममलप्रलयादचिरादजरामरकेवलसिद्धिसुखः ॥ १ ॥

१ उपवासस्य एकस्य फलेन सर्वोद्दिष्टपरिवारः ।

नागदत्तं दिवि देवो जातः पुनरपि नागकुमारः ॥

२ तेन कारणेन जीवः । प्रमणमि कुरु उपवासाम्बासः ।

यावत्तं देहकुड्या दौकते मरणं यत् ॥

होइ घणिज्जु न पोइलिहि उववासै नउ धम्म ।
एउ अयाणउ सो ववइ जमु कउ भारउ कम्म ॥ १ ॥

पोइलियाहि मणिभोत्तियइ घणु केत्तियहि ण माइ ।
घोरहि भरिउ बरुइडा त नाहीं ज खाइ ॥ २ ॥

आत्मशुद्धिरिय प्रोक्ता तपसैव विचक्षणैः ।
किमग्निना रिना शुद्धिरस्ति काचनशोधने ॥ १ ॥

बाहिरलिङ्गेण जुदो अग्भंतरलिङ्गरहिदपरियम्भो ।
सो सगचरित्तभट्टो मोक्खपहविणासगो साहू ॥ ६१ ॥

बहिरिङ्गेन युतो अभ्यन्तरलिङ्गरहितपरिष्कर्मा ।
स स्वकचरित्रभट्ट मोक्षपथविनाशक साधु ॥

बाहिरलिङ्गेण जुदो बहिरिङ्गेन युतो नम्रमुद्रासहित । अभ्यन्तर-
लिङ्गरहितपरियम्भो अभ्यन्तरलिङ्गरहितपरिष्कर्मा आमस्वरूपभायना
रहितं परिष्कर्मा भगवत्कारो यस्य सोऽभ्यन्तरलिङ्गरहितपरिष्कर्मा ।
सो सगचरित्तभट्टो स साधु स्वकचरित्रभट्ट । मोक्खपहविणा-
सगो साहू मोक्षपथविनाशक साधु स साधुमोक्षमार्गविध्यसक्तो ज्ञातव्यो
ज्ञानीयो ज्ञेय । इति भाव ज्ञात्वा निजशुद्धयुद्धैकस्वभावे आत्मतत्त्वे नित्य
भायना कर्तव्या साधो ।

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि ।

तम्हा जहायलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए ॥ ६२ ॥

मुखेन भावितं ज्ञानं दुःखे जाते विनश्यति ।

तस्माद् यथावलं योगी आत्मानं दुःखं भावयेत् ॥

सुहेण भाविदं णाणं मुखेन नित्यभोजनादिना भावितं वासितं
ज्ञानं आत्मा । दुहे जादे विणस्मदि दुःखे जाते सति भोजनादेर-
प्राप्तौ सत्या विनश्यति आत्मभावनाप्रच्युतो भवति । तम्हा जहा-

- आत्मा चारित्रवान् दर्शनज्ञानेन संयुत आत्मा ।
स ध्यातव्यो नित्यं ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥

अप्या चरित्तमंतो आमा चारित्रवान् वर्तते आत्मात्मानमेवानुतिष्ठ-
तीति कारणात् यस्य मुनेश्चारित्रे प्रीतिरस्ति स आत्मानमेवाश्रयत्विति
भावार्थः । दंसणणाणेण संजुदो अप्या दर्शनेन ज्ञानेन च संयुत
संयुक्तः, कोऽसौ ? आत्मा जीवतत्त्वः, अत्रापि स एव भावार्थः—यस्य
मुनेर्दर्शने प्रेम वर्तते ज्ञाने वानुरागोऽस्ति स मुनिरात्मानमेवाश्रयतु तद्द्व-
यमपि तत्रैव वर्तते यस्मान् । सो ज्ञायन्व्यो निश्चं स आत्मा ध्यातव्यो
नित्यं सर्वकालः । रत्नानां त्रयस्योपायभूतस्यात्मलाभे मोक्षलाभे वा प्रीति-
मत इत्यर्थः । णाउणं गुरुपसाएण गुरोर्निग्रथाचार्यस्य शिक्षादीक्षा-
चारवाचनादेश्च कर्तुं प्रसादेन कारण्येन । अयं वस्तुस्वभावो वर्तते
यदाचार्यप्रसन्नतयात्मलाभो भवति तद्विराघने सत्यात्मा न स्फुटी-
भवति । तथा चोक्तः—

गुणेषु दोषमनीपयान्धा
दोषान् गुणैर्कर्तुमयेशते ये ।
धोतु कर्षाणा वचनं न तेऽहो
सरस्वतीप्रोदिषु कोऽधिकारः ॥१॥

अथना गुरुणा पचतयानां परमेष्ठिना प्रसादादात्मा प्रमुल्लभ्यते ।
तैषां प्रसादं विना आत्मप्रभुर्न प्राप्यत इत्यर्थः । यथा राजानं द्रष्टुं काम-
कश्चित् पुमान् तत्सामन्तमादीन् पूर्वं पश्यति ते तु राजानं न लभ्यन्ति,
तानन्तरेण तत्र प्रवेष्टुमपि न लभ्यते इति कारणात् पूर्वं पचदेवता
प्रसादनीया आत्मलाभमिच्छता योगिनेति भावार्थः ।

दुक्खे णज्जि अप्पा अप्पा णाउण भावणा दुक्खं ।
भावियसहावपुरिमो विसण्णु निरच्चण दुक्खं ॥ ६५ ॥

दु खेन ज्ञायते आत्मा आत्मानं ज्ञात्वा भावना दुःखम् ॥

भावितस्वभावपुरुषो विषयेषु निरञ्ज्यति दुःखम् ॥

दुःखं णज्जइ अप्पा दुःखेन महता कण्ठेन तावदात्मा ज्ञायते आत्मास्तीति बुद्धिरुपपद्यते । अप्पा णाऊण भावणा दुःखं यथात्मास्तीति ज्ञात तदा तस्मिन्नात्मानि भावना वासनाऽहर्निशचिन्तनं तद्गुणस्मरणादिकं दुःखं दुष्प्राप्यं भवति । भावियसहावपुरिसो विसएसु विरच्चए दुःखं भावितस्वभावः पुरुष आत्मभावनासहितोऽपि सूरिः यद्विषयेषु वनिता-जनस्तनजघनघदनलोचनादिबिलोचने तद्वातालापगोष्ठीशु शरीरस्पर्शनादि-सुखेषु निरञ्ज्यति तत्सुखं हालाहलविषास्वादनज्जानाति तदतीव दुःखं दुष्करमिति तात्पर्यार्थः ।

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्ठए जाम् ।

विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥ ६६ ॥

तावत् न ज्ञायते आत्मा विषयेषु नरः प्रवर्तते यावत् ।

विषये विरत्तचित्तः योगी जानाति आत्मानम् ॥

ताम ण णज्जइ अप्पा तान्त्कालमात्मा न ज्ञायते । तान्तिकियत् ॥ विसएसु णरो पवट्ठए जाम् यावत्काल विषयेषु पूर्वोक्तलक्षणेषु नरो जीवः प्रवर्तते व्याप्रियते । विसए विरत्तचित्तो विषये पूर्वोक्तलक्षणे निरत्तचित्तो निवृत्तचेता यती । जोई जाणेइ अप्पाणं योगी प्यानवान् पुमान् महामुनिरात्मानं जानाति प्रत्यक्षतया पश्यति ।

अप्पा णाऊण णरा केई सम्भावभावपब्बमहा ।

हिंढंति चाउरंगं विसएसु विमोहिया मूढा ॥ ६७ ॥

आत्मानं ज्ञात्वा नरा केचित्सङ्भावभावप्रपञ्चः ।

हिंढन्ते चातुरङ्ग विषयेषु विमोहिता मूढाः ॥

अप्पा णाउण णरा आमानं ज्ञात्वा आत्मास्तीति सम्यग्विज्ञाय
नरा बहिरात्मजीवा । केई सच्चभावभावपब्बमहा वेचित् सद्भावभाव-
प्रभ्रष्टा वेचित् निगक्षिता सन् समीचिनो भाव सद्भाव निजात्म-
भावना तस्माप्रभ्रष्टा निजशुद्धबुद्धैकस्वभावात्मभावनाप्रच्युता रिपयसुख-
दुर्भावनासु रता इत्यर्थ । छिंदन्ति चाउरंगं हिण्टत्ते परिभ्रमन्ति पर्य
टन वुर्वन्ति चाउरंग—चतुरंग भव चातुरंग चतर्गतिससारससरण यथा
भवत्येव । विसएसु विमोहिया मूढा रिपयेषु पचेन्द्रियार्थेषु स्पर्शरस-
गन्धवर्णशब्देषु विमोहिता लोभ गता , त च रिपया अनादिकाळे जीवे-
नैस्वादिता , आत्मोत्थरयाधान मुख कदाचिदपि न प्राप्ता । तथा चोक्त-

अदृष्ट किं किमस्पृष्ट किमनाघ्रातमश्रुत ।

किमनास्यादित येन पुनर्नयमिवेश्यत ॥ १ ॥

[० • • भुक्कोरिहता मुहुर्मोहान्मया सर्वेऽपि पुद्गलाः ।

उच्छिष्टेष्विष्य तेष्वद्य मम विश्वस्य का स्पृहा ॥ २ ॥

विपयेषु विमोहिता ये ते मूढा अज्ञानिनो बहिरात्मान इत्यर्थ । तेन
बहिरात्मभाव परित्यज्यात्मभावना कर्तव्या ।

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाउण भावणासहिया ।

छिंदन्ति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ६८ ॥

ये पुन विषयविरक्ता आत्मान ज्ञात्वा भावणासहिता ।

त्यजन्ति चातुरङ्ग तपोगुणयुक्ता न सन्देहः ॥

जे पुण विसयविरत्ता ये पुनरासन्नमन्यजीना रिपयेभ्यो विरक्ता
पराङ्मुखा रिपयेषूपन्नविषमायना । अप्पा णाउण भावणासहिया
आमनं ज्ञात्वा आमभावनासहिता भवन्ति । छिंदन्ति चाउरंगं ते
पुद्गलास्त्यजन्ति, किं " चातुरंग ससारं । तवगुणजुत्ता ण संदेहो तप

एव गुणस्तपोगुणस्तेन युक्ता । अथवा तपो द्वादशभेद गुणा अष्टाविं-
शतिर्मूलगुणा उत्तरगुणाश्च बहुभेदास्तैर्युक्ता ससार त्यजति अत्र
सन्देहो नास्ति संशयो न कर्तव्य । उक्तं च गौतमेन महर्षिणा—

वदंसमिदिदियरोघो लोचावस्सयमचलमण्डाण ।

खिदिसयणमदतवण ठिदिमोयणमेगमत्त च ॥ १ ॥

एदे सल्लु मूलगुणा समणाण जिणवरोहि पण्णत्ता ।

एत्थ पमादकदादो अइच्चारोदो नियत्तो ह ॥ २ ॥

परमाणुप्रमाणं वा परद्रव्ये रति हवेदि मोहादो ।

सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीदो ॥६९॥

परमाणुप्रमाण वा परद्रव्ये रतिर्भवति मोहात् ।

स मूढोऽज्ञानी आत्मस्वभावाद्विपरीत

परमाणुप्रमाणं वा परमाणुप्रमाण वा । परद्रव्ये रति हवेदि
मोहादो परद्रव्ये रतिर्भवति मोहादज्ञानात् परमाणुमात्रापि रतिर्मोहा-
दज्ञानाद्भवति, किमुच्यते क्वही रति १ महती रतिस्तु अज्ञानाद्भवत्येव ।
सो मूढो अण्णाणी यस्य परद्रव्ये रूपादिरप्ये रतिर्भवति स मुनि-
र्मूढ तस्यैव पर्यायोऽज्ञानीति । आदसहावस्स विवरीदो ॥ मुनि-
रात्मस्वभावाद्विपरीत परद्रव्यरत इत्युच्यते बहिरात्मा कथ्यत इति
भावार्थ । एव ज्ञावा परमात्मान परित्यज्य परद्रव्ये रतिर्न कर्तव्येति
तात्पर्यार्थ ।

अप्पा ज्ञायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं ।

होदि धुवं णिव्वाणं विसप्पेसु विरत्तचित्ताणं ॥७०॥

१ व्रतसमितीन्द्रियरोघा लोच आवश्यकमचलमण्डान ।

क्षितिशयनमदन्तमन स्थितिभोजनमेकभक्त च ॥

एते सल्लु मूलगुणा श्रमणाना जिनवरै प्रणीता ।

अत्र प्रमादकृतादतिचाराच्चिवृत्तोऽह ॥

आत्मानं ध्यायता दर्शनशुद्धीर्ना दृढचारित्राणाम् ।

भवति ध्रुव निर्वाण विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥

अप्या ज्ञायंताणं आत्मानं ध्यायता मुनीना । दंसणसुद्धीण दिढ-
चरित्ताणं दर्शनस्य शुद्धिर्नैर्मल्यं चलमलिनत्वरहितसम्पत्त्वाना चर्मजल-
घृततैलभूतनाशनादिपरिहरतां शरीरमात्रदर्शनेन परगृहेषु कृतादिदोष-
रहिताशेनमश्रुता दर्शनशुद्धिमता, दृढचरित्राणा ब्रह्मचर्यप्रत्याख्यानदि-
दृढचारित्राणा । होदि ध्रुवं णिव्वाणं भवति ध्रुवमिति निश्चयेन
निर्वाण मोक्षो भवति । विमणसु विरक्तचित्ताणं विषयसु इष्टयनिता-
लिङ्गनादिषु विरक्तचित्ताना विषयान् विषं मन्यमानानामिति संक्षेपतोऽर्थो
ज्ञातव्यो ज्ञानायो ज्ञेय इति ।

जेण रागे परे दब्बे ससारस्स हि कारणं ।

तेणावि जोइणो णिच्चं कुज्जा अप्पे सभावणा ॥७१॥

येन रागे परे द्रव्ये ससारस्य हि कारणम् ।

तेनापि योगी नित्यं कुर्यादात्मनि स्वभावनाम् ॥

जेण रागे परे दब्बे येन वनितादिना पर्यायेण, रागे सति राग
उत्पद्यते, परकीये द्रव्ये आत्मनो भिन्ने वस्तुनि । संसारस्स हि कारणं
स राग कथभूत, ससारस्य भवभ्रमणस्य, हि निश्चयेन, कारणं हेतु ।
तेणावि न केवल आत्मनि आत्मभावना कुर्यात् किन्तु तेनापीष्ट वनि-
तादिना । जोइणो यागी । नित्यं सर्वकालं । अप्पे अत्मनि । स्वभा-
वना—आत्मभावना कुर्यात् । कथमिति चेत् ? इयमिष्टयनिता अनन्त-
केवलज्ञानमयी वर्तते यथा ममा मानसकेवलज्ञानमयो वर्तते । इयमहं च
द्वावपि केवलज्ञानिनौ वर्तमाने । तेन इयमप्यासा ममेति को नाम पृथ-
ग्वर्तते येन सह स्नेह करोमि । तथा चापनिषद्—

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मेचाभूद्विजानतः ।

तत्र को मोहः कदशोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ १ ॥

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य ।

सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ॥ ७२ ॥

निन्दायां च प्रशंसायां दुःखे च सुखेषु च ।

शत्रूणां चैव बन्धूनां चारित्र्यं समभावतः ॥

णिंदाए य पसंसाए निन्दाया प्रशंसाया च समभावतश्चारित्र्यं भवतीति सन्बन्ध । दुक्खे य सुहएसु यं दुःखे च सुखके च समागते-
स्थित्युपस्कार । सत्तूणं चेव बंधूणं शत्रूणां चैव बन्धूनां समायोगे
स्थित्युपस्कार । चारित्तं समभावदो समभावतः समतापरिणामे सति
चारित्र्यं भवतीति निर्विकल्पसमाधिरूपं यथाख्यातं चारित्र्यं भवतीति
भावार्थः ।

चरियावरिया वदममिदिवज्जिया सुद्धभाणपब्भट्ठा ।

केई जंपंति णरा ण हु कालो ज्ञाणजोयस्स ॥ ७३ ॥

चर्यावरिका व्रतसमितिर्वर्जिता शुद्धभावप्रभट्टा ।

केचित् जल्पन्ति नरा न हि कालो ध्यानयोगस्य ॥

चरियावरिया चर्यायाश्चारित्र्यस्य आचरिका आवरणं येषां ते चर्या
वरिका चारित्र्यमोहनीयकर्ममुक्ता । वदममिदिवज्जिया व्रतसमिति-
र्वर्जिता व्रतरहिता समितिहीनाश्च । सुद्धभाणपब्भट्ठा शुद्धभाणप्रभट्टा
रागद्वेषमोहादिभिः परिणामैः कश्मलीकृता आत्मध्यानहीना । केई
जंपंति णरा केचिद्वहिरात्मानो नरा पुरुषा जल्पन्ति ब्रुवन्ति । किं
जल्पन्ति ? ण हु कालो ज्ञाणजोयस्स ध्यानयोगस्य अष्टाङ्गयोगमध्ये
सप्तमो योगो ध्यानयोगस्तस्य कालोऽवसरो न वर्तते । कथं हि स्फुटं ।
के ते अष्टाङ्गयोगा —

आत्मानं ध्यायतां दर्शनशुद्धीनां दृढचारित्राणाम् ।

भवति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥

अप्या ज्ञायंताणं आत्मानं ध्यायतां मुनीनां । दंसणमुद्धीण दिढ-
चरित्ताणं दर्शनस्य शुद्धिर्नैर्मल्य चलमलिनत्वरहितसम्पत्त्वानां धर्मजल-
घृततैलभूतनाशनादिपरिहरतां शरीरमात्रदर्शनेन परगृहेषु कृतादिदोष-
रहितार्शनमश्रुतां दर्शनशुद्धिमतां, दृढचरित्राणां ब्रह्मचर्यप्रत्याख्यान-
दृढचारित्राणां । होदि ध्रुवं णिव्याणं भवति ध्रुवमिति निश्चयेन
निर्वाणं मोक्षो भवति । विमणसु विरक्तचित्ताणं विषयेषु इष्टप्रतिता-
लिङ्गनादिषु विरक्तचित्तानां विषयान् विषं मन्यमानानामिति संक्षेपतोऽर्थो
ज्ञातव्यो ज्ञानीयो ज्ञेय इति ।

जेण रामे परे दब्बे संसारस्म हि कारणं ।

तेणावि जोइणो णिच्चं कुञ्जा अप्पे समावणा ॥७१॥

येन रामे परे द्रव्ये संसारस्य हि कारणम् ।

तेनापि योगी निरव्यं कुर्यादात्मनि स्वभावनाम् ॥

जेण रामे परे दब्बे येन वनितादिना पर्यायेण, रामे सति राम
उत्पद्यते, परकीये द्रव्ये आत्मनो भिन्ने वस्तुनि । संसारस्म हि कारणं
स रामः कथंभूतः, संसारस्य भवभ्रमणस्य, हि निश्चयेन, कारणं हेतुः ।
तेणावि न केवलं आत्मनि आत्मभावनां कुर्यात् किन्तु तेनापीष्ट वनि-
तादिना । जोइणो योगी । नित्यं-सर्वकालं । अप्पे आत्मनि । स्वभा-
वना-आत्मभावनां कुर्यात् । कथमिति चेत् ? इयमिष्टप्रतिता अनन्त-
केवलज्ञानमयी वर्तते यथा ममात्मानन्तकेवलज्ञानमयी वर्तते । इयमहं च
द्वारपि केवलज्ञानिनौ वर्तामहे । तेन इयमप्यात्मा ममेति को नाम पृथ-
ग्वर्तते येन सह स्नेहं करोमि । तथा चांपनिपद्—

यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मवामूद्विजानतः ।

तत्र को मोहः कदशोकः पक्त्वमनुपश्यतः ॥ १ ॥

णिंदा ए यः पसंसा ए दुःखे यः सुहृत्सु यः ।

सत्तूणं चैव बंधूणं चारित्तं समभावदो ॥ ७२ ॥

निन्दायां च प्रशंसायां दुःखे च सुखेषु च ।

शत्रूणां चैव च धूनां चारित्र्यं समभावतः ॥

णिंदा ए यः पसंसा ए निन्दायां प्रशंसायां च समभारतधारित्रं भवतीति सम्बन्धः । दुःखे यः सुहृत्सु यं दुःखे च सुखके च समागते-
ष्वित्युपस्कारः । सत्तूणं चैव बंधूणं शत्रूणां चैव बंधूनां समायोगे
इत्युपस्कारः । चारित्तं समभावदो समभारत समतापरिणाम सति
चारित्र्यं भवतीति निर्विकल्पसमाधिरूपं यथाख्यातं चारित्र्यं भवतीति
भाषार्थः ।

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभाणपम्भट्ठा ।

केई जंपंति णरा ण हु कालो ज्ञाणजोयस्स ॥ ७३ ॥

चर्यावरिका व्रतसमितिर्वर्जिता शुद्धभावप्रभट्टा ।

केचित् जल्पति नरा न हि कालो ध्यानयोगस्य ॥

चरियावरिया चर्यायाधारित्रस्य आनरिका आनरणं येनां ते चर्या-
वरिका चारित्र्यमाहनीयकर्मयुक्ताः । वदसमिदिवज्जिया व्रतसमितिर्व-
र्जिता व्रतरहिता समितिहीनाश्च । सुद्धभाणपम्भट्ठा शुद्धभाणप्रभट्टा
रागद्वेषमोहादिभिः परिणामैः कदमलीकृता आत्मप्यनहीनाः । केई
जंपंति णरा केचिद्बहिरात्मानो नरा पुरुषा जल्पन्ति व्रजन्ति । किं
जल्पन्ति ? ण हु कालो ज्ञाणजोयस्स ध्यानयोगस्य अष्टाङ्गयोगमप्ये-
समो योगो ध्यानयोगस्तस्य कालोऽवसरो न वर्तते । कथं हि स्फुटं ।
के ते अष्टाङ्गयोगा —

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधय । इति ।

सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीरो हु मोक्खपरिमुक्को ।

संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ ज्ञाणस्स ॥ ७४ ॥

सम्यक्त्वज्ञानरहित अभव्यजीवो हि मोक्षपरिमुक्त

संसारमुखे सुरत न हि कालो भणति ध्यानस्य ॥

सम्मत्तणाणरहिओ सम्यक्त्वरहितो मिथ्यादृष्टि, ज्ञानरहितोऽज्ञानो
मूढजीवो बहिरात्मा । अभव्यजीवो हु मोक्षपरिमुक्को अभव्य
जीवो रत्नत्रयस्यायोग्या लौकादिको मोक्षपरिमुक्त तस्य कदाचिदपि
कर्मक्षयो न भविष्यति स न सेस्यति ककटुकमुद्रवत् । संसारसुहे सु-
रदो संसारमुखे वनितायोनिमधनमुखे, सुरत सुष्ठु अतिशयेन रत
तत्पर । ण हु कालो भणइ ज्ञाणस्स एव दीपदुष्टो भणति ब्रूते,
किं भणति ? ध्यानस्य कालो न भवति । कथं ? हु स्फुटं ।

पंचसु महव्वदेसु य पचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।

जो मूढो अण्णाणी ण हु कालो भणइ ज्ञाणस्स ॥ ७५ ॥

पञ्चसु महाव्रतेषु च पञ्चसु समितिषु तिष्ठषु गतिषु ।

यो मूढ अज्ञानी न हि कालो भवति ध्यानस्य ॥

पंचसु महव्वदेसु य पचसु महाव्रतेषु च प्राणातिपातमृपायादस्तै
न्यमैथुनपरिग्रहसर्वापरित्यागो महाव्रतमुच्यते एतेषु पंचसु महाव्रतेषु यो
मूढश्चारित्रमोहबलरत्तर । चकारादणुव्रतानामपि अप्रतिपालको रात्रिमो-
जननियमरहित चर्मजलघृततैलरामठास्वादनमठ । पंचसु समिदीसु तीसु
गुत्तीसु ईर्ष्यासमिति — ऋचतुष्टय मार्गमन्त्रलोक्य गमनं, भापासमिति —
आगमातिरुद्धभाषण, एपणासमिति — पूर्वोक्तपट्त्वार्तिशदोपरहिताहार-
ग्रहण, आदाननिश्चेपणासमिति — ज्ञानापकरणशौचोपकरणानां पूर्वं दृष्ट्वा

पञ्चान्मयूरपिच्छै प्रतिलेख्य ग्रहण विसर्जन च आदाननिक्षेपणाममिति.,
प्रतिष्ठापनासमिति—मलमूत्रशरीरादिकस्याविरुद्धनिर्जन्तुप्रदेशे विसर्जन
एतासु पचसु समितिषु यो मूढो निर्भिरेक । तिसृषु गुप्तिषु मनोगुप्ति-
धागुप्तिकायगुप्तिषु । जो मूढो अण्णाणी य पुमान् मूढो निर्भिरेकोऽ-
ज्ञानी जिनसूत्रबहिर्भूत । ण हु कालो भणइ ज्ञाणस्स न विद्यते हु स्फुटं,
कोऽसौ ॥ कालोऽनसर, ध्यानस्य सप्तमयोगस्य, एव भणति ब्रूत ।

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स ।

तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥७६॥

भरते हु पचकाले धर्म्यध्यान भवति साधो ।

तदारमस्वभावस्थिते न हि मनस्य सोऽपि अज्ञानी ॥

भरहे दुस्समकाले भरहे—भरतक्षत्रे भारतरण्ये, दु पच काले पच-
मकाले कलिकालापरनास्त्रि काले । धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स धर्मध्यान
भवति साधोर्दिगम्बरस्य मुने । तं अप्पसहावठिदे तद्धर्मध्यान आत्म-
स्वभावस्थिते आत्मभाषनात्त-मये मुनौ भवति । ण हु मण्णइ सो वि
अण्णाणी न मन्यते नाङ्गीकरोति सोऽपि पुमान् पापीवान् अज्ञानी
जिनसूत्रबाह्य ।

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा ज्ञाएवि लहहि इंदत्तं ।

लोयंतियदेवत्तं तस्य खुआ णिन्नुदिं जंति ॥ ७७ ॥

अद्यापि तिरस्त्रिशुद्धा आत्मान ध्यात्वा लभन्ते इदंत्वम् ।

लौकान्तिकदेवत्व तत च्युत्वा निर्वाण यान्ति ॥

अज्ज नि तिरयणसुद्धा अद्यापि पचमकालोत्पन्ना समनस्का पंचे-
न्द्रिया उत्तमकुलादिसामग्रीप्राप्ता वैराग्येण गृहीतदक्षिात्रिरत्नशुद्धा सम्य-
क्त्वज्ञानचारित्रनिर्मला वर्तन्त एव, ये कथयन्ति महाव्रतिनो न विद्यन्त
ते नास्तिका जिनसूत्रबाह्या ज्ञातव्याः । ते आसन्नमव्याः किं कुर्वन्ति ।

अप्या ज्ञाएवि लहहि इंदुत्तं आत्मान ध्याना भावयित्वा लभन्ते इन्द्राय शक्रपदं । न केवलमिन्द्रत्व लभन्ते, लोयंतियदेवर्त्तं केचिदल्पश्रुता अपि साधव आत्मभावनानावलेन लौकांतिकत्वं लभन्ते पचमहर्गस्यान्ते पर्यन्त-प्रदेशेषु तेषा विमानानि सन्ति, तत्र भग्न लौकांतिका सुरमुनयश्च कथ्यते, ते स्वर्गे स्थिता अपि ब्रह्मचर्यं प्रतिपालयन्ति-स्त्रीरहिता भजन्ति, तीर्थ-कारसम्बोधनकाले मर्त्यगेरुमागच्छन्ति अन्यथा स्वस्थानमेव गतिष्ठ ते ।

चतुर्लक्षा सहस्राणि सप्त चैव शताष्टक ।

विंशतिर्मेलिता एते बुधैर्लोकान्तिरा मता ॥ १ ॥

“ सारस्वत्यादित्यव ह्यरणगर्दतोयतुपिताभ्यावाधारिष्ठाश्च ” इति तेषा अष्टौ जातय । तथा तेषा षोडशजातयश्च वर्तन्ते । सारस्वतादित्यान्तरे अग्न्यामसूर्याभा । आदित्यवह्निमध्ये चन्द्राभसत्याभा । षड्वारणांतरे ध्रुवस्करक्षेमकरा । अरणगर्दतोयमध्ये वृषभोष्टूकामचरा । गर्दतोयतु पितान्तरे निर्माणजोदिगंतरक्षिता । तुपिताभ्यावाधमध्ये आत्मारक्षित-सर्वरक्षिता । अव्यागाधारिष्ठांतरे मरुद्दसन । अरिष्टसारस्वतांतरे अश्व विश्वा । तस्य क्षुआ णिव्बुदिं जंति तस्माच्च्युता निर्बृतिं निर्माण यान्ति गच्छन्ति । सर्वेऽपि पूर्वधारिण एक गर्भगत गृहीत्वा मोक्ष प्राप्नुवन्ति ।

जे पापमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं ।

पापं कुणंति पापा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥ ७८ ॥

ये पापमोहितमतय लिङ्गं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम् ।

पापं कुर्वन्ति पापा ते त्यक्त्वा मोक्षमार्गे ॥

जे पापमोहियमई ये मुनय पापमोहितमतय पार्ष्णेन ब्रह्मचर्य-भगप्रत्याख्यानभजनादिना मोहिता लोभ प्रापिता पापमोहितमतय । लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं लिङ्गं चिह्नं मुद्रा नम्रत्वं वस्त्रमात्रोपेत-

सुलोक्य च चक्रवर्तिणि, घेतूण गृहीत्वा घृत्वा, जिनरेन्द्राणा तीर्थ
करपरमदेवाना । शवं कुर्वन्ति पाप्मा पाप ब्रह्मचर्यभंगादिक कुर्वन्ति
पापा पापमूर्तय पापरूपा । ते चत्ता मोक्षरामगम्भि ते जिनलि
गोपजीविन त्यक्ता पतिता मोक्षमार्गादियर्थ । उक्त च—

अन्यलिङ्गकृत पाप जिनलिङ्गेन मुच्यते ।

जिनलिङ्गकृत पाप वज्रलेपो भविष्यति ॥ १ ॥

जे पञ्चवेलसत्ता गंयग्गाहीय जायणासीला ।

आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्षरामगम्भि ॥ ७९ ॥

ये पञ्चवेलसत्ता प्रयग्राहिण याचनशीला ।

अथ कर्मणि रता ते त्यक्ता मोक्षमार्गे ॥

जे पञ्चवेलसत्ता ये मुनय पञ्चवेलसत्ता पञ्चविधखलपटा भंडज-
बुद्धज दल्फज चर्मज रोमजपचप्रकारवस्त्रेष्वन्यतम वस्त्रप्रकार परिदधत्युप-
दधति च । गंयग्गाहीय जायणासीला प्र यग्राहिणो रिक्थंस्वीकारिण ,
याचनार्हाला स्वभावेन याज्जापरा जिनमुद्रा प्रदर्श्य धन याच त मातर
प्रदर्श्य भाटी गृह्णीत तरामाना । आधाकम्मम्मि रया आधाकर्मणि
अथ कर्मणि नि धकर्मणि उपविश्य भोजन कारयिवा भुजते ये तेऽथ
कर्मरता इयुध्यत । ते चत्ता मोक्षरामगम्भि ते मुनयस्यक्ता
पतिता मोक्षमार्गादिति भावार्थ ।

निगंयमोहमुक्का वावीसपरीसहा जिघकसाया ।

पावारमविमुक्का ते गहिया मोक्षरामगम्भि ॥ ८० ॥

निग्र य मोहमुक्का द्वाविंशतिपरीषदा जितकषाया ।

पावारमविमुक्का ते गृहीता मोक्षमार्गे ॥

निगंयमोहमुक्का निग्रया परिप्रहरहिता , मोहमुक्ता पुत्रमित्र
कलत्रादिस्नहरहिता । वावीसपरीसहा द्वाविंशतिपरीषदा द्वाविंशति-

अप्या ज्ञापयि लहहि इंदत्तं आत्मानं ध्यात्वा भावयित्वा लभन्ते इन्द्रत्वं
शक्रपद । न केवलमिन्द्रत्वं लभन्ते, लोयंतियदेवत्तं केचिदत्पश्रुता अपि
साधय आत्मभावनारत्नेन लौकान्तिकत्वं लभन्ते पचमस्वर्गस्या ते पर्यन्त-
प्रदेशेषु तेषां विमानानि सन्ति, तत्र भया लौकान्तिकं सुरमुनयश्च कथ्यन्ते,
ते स्वर्गे स्थिता अपि ब्रह्मचर्यं प्रतिपालयन्ति—स्त्रीरहिता भवन्ति, तीर्थ-
करसम्बोधनकाले मर्त्यगेरुमागच्छन्ति अन्यथा स्वस्थानमेवावतिष्ठन्ते ।

चतुर्लभाः सहस्राणि सप्त चैव शताष्टकं ।

विंशतिर्मेलिता एते बुधैर्लौकान्तिना मताः ॥ १ ॥

“सारस्वत्यादित्यवन्द्यारणगर्दतोयतुपिताभ्यावाधारिष्ठाश्च” इति तेषां
अष्टौ जातयः । तथा तेषां षोडशजातयश्च वर्तन्ते । सारस्वत्यादित्यान्तरे
अग्न्याभसूर्याभा । आदित्यबहिमध्ये चन्द्राभसत्याभा । वन्द्यारणा-
न्तरे श्रेयस्करक्षेमकरा । अरणगर्दतोयमध्ये वृषभोष्ट्रकामचरा । गर्दतोयतु-
पितान्तरे निर्माणरजोदिगन्तरक्षिताः । तुपिताभ्यावाधमध्ये आत्मरक्षित-
सर्गरक्षिता । अव्यावाधारिष्ठान्तरे मरुद्सप्त । अरिष्ठसारस्वतान्तरे अश्व
विन्धाः । तस्य चतुर्धा णिष्पुर्दिं जति तस्माच्च्युता निर्वृतिं निर्माण
यान्ति गच्छन्ति । सर्वेऽपि पूर्वधारिण एक गर्भगसं गृहीत्वा मोक्षं
प्राप्नुवन्ति ।

जे पापमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिदाणं ।

पावं कुणंति पापा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥ ७८ ॥

ये पापमोहितमतयः लिङ्गं गृहीत्वा जिनवरे द्रष्टव्यम् ।

पापं कुर्वन्ति पापा ते तेषां मोक्षमार्गः ॥

जे पापमोहियमई ये मुनयः पापमोहितमतयः पार्ष्णेन ब्रह्मचर्य-
भंगप्रत्याख्यानभ्रमनादिना मोहिता लोभं प्रापिता पापमोहितमतयः ।
लिंगं घेत्तूण जिणवरिदाणं लिङ्गं चिह्नं मुद्रां नम्रत्वं वस्त्रमात्रोपेत-

क्षुल्लकृत च चक्रवर्तिणि, घेतूण गृहीत्वा घृत्वा, जिनपरेन्द्राणां तीर्थ-
करपरमदेवाना । पावं कुणंति पावा पापं ब्रह्मचर्यभगादिकं कुर्यन्ति
पापा पापमूर्त्य पापरूपा । ते चत्ता मोक्षसमगममि ते जिनलि-
गोपजीविन त्यक्ता पतिता मोक्षमार्गादित्यर्थ । उक्तं च—

अन्यलिगकृतं पापं जिनलिगेन मुच्यते ।

जिनलिगकृत पापं घञ्जलेपो भविष्यति ॥ १ ॥

जे पंचचेलसत्ता गंधग्गाहीय जायणासीला ।

आधाकम्ममि रया ते चत्ता मोक्षसमगममि ॥ ७९ ॥

ये पञ्चचेलसत्ता ग्रन्थग्गाहिण याचनशीला ।

अथ कर्मणि रता ते त्यक्ता मोक्षमार्गे ॥

जे पंचचेलसत्ता ये मुनय पंचचेलसत्ता पचनिधवस्त्रलपटा भट्टज-
बुद्धज धत्तकज चर्मज-रोमजपंचप्रकारवस्त्रेष्वन्यतम वस्त्रप्रकारं परिदधत्युप-
दधति च । गंधग्गाहीय जायणासीला ग्रन्थग्गाहिणो रिकथस्वीकारिण ,
याचनाशीला स्वभावेन याज्यापरा जिनमुद्रा प्रदर्श्य धनं याचन्ते मातरं
प्रदर्श्य भाटीं गृह्णीत त समाना । आधाकम्ममि रया आधाकर्मणि
अथ कर्मणि नि चकर्मणि उपविश्य भोजनं कारयित्वा भुजते ये तेऽथ-
कर्मरता इत्युच्यन्ते । ते चत्ता मोक्षसमगममि ते मुनयस्त्यक्ता,
पतिता मोक्षमार्गादिति भागर्थः ।

निगंधमोहमुक्ता चावीसपरीसहा जियकसाया ।

पावारंभविमुक्ता ते गहिया मोक्षसमगममि ॥ ८० ॥

निग्रन्थ मोहमुक्ता द्वाविंशतिपरीपदा जितकसाया ।

पावारंभविमुक्ता ते गृहीता मोक्षमार्गे ॥

निगंधमोहमुक्ता निग्रन्था, परिग्रहरहिता, मोहमुक्ताः पुत्रमित्र-
कलत्रादिस्नेहरहिताः । चावीसपरीमहा द्वाविंशतिपरीपदा द्वाविंशति-

पुरुष कार आमा योगी वरज्ञानदर्शनसमग्र ।

यो ध्यायति स योगी पापहरो भवति निद्वन्द्व ॥

पुरिमायारो अप्पा पुरपस्य नरस्याकर आकृतिर्यस्य स पुरुषाकार
एव गुण निशिष्ट क २ आमा चेतनस्वभावो जीवतः, जोई
चरणाणदसणसमग्रो योगा मुनि, इयनन गृहस्थस्य भाक्ष मुराणा
सितपटा प्रयुक्ता भवन्ति । वरज्ञानदर्शनसमग्र केवलज्ञानकरलदर्शन
परिपूर्ण । इयननाचैतन्यमामानं म यमाना कापिला शुनका इव
निराकृता । जो ज्ञायदि सो जोई एव गुणनिशिष्टमा मान यो मुनि
ध्यायति स योगी ध्यानी भवति । अन्यध्वार्जको नास्तिको योगिनामा ।
एव स्थाने स्थाने मतात्तराश्रयेण व्याख्यान कर्तव्यमिति भाव ।
पापहरो भवदि णिद्दो पापहरस्त्रिपष्टिप्रकृतिमिच्छदको भवति घाति
सघातघातक स्यात्, निद्वन्द्व समप्रशरणागतपरस्परविरोधिज-तुललह
निपधक इयर्थ ।

एय जिणेहि कहिय सवणाण सावयाण पुण पुणमु ।

ससारविणासयर मिद्धियर कारण परम ॥ ८५ ॥

एतत् त्रिनै कथित श्रवणाना भावकाना पुन पुन ।

ससारविनाशकर सिद्धिकर कारण परमम् ॥

एय जिणेहि कहिय एतद्वातिसघातघातनादिक फल आमध्या
नस्य, त्रिनै सवज्ञै कथित प्रमाणभूतवचनै प्रतिपादित । सप्रणाण
सावयाण पुण पुणमु श्रवणाना दिगम्बराणा महामुन्यपरसज्ञानामृपी
णामिति, न केवल श्रवणानां श्रावकाणा सदृष्टीनामुपासकाना च
यतस्ते दीक्षायाम्या ध्यानाधिकारिणो देशव्रता सत्त आमभायनापरा
ससारविरोक्तचित्ता आरक्षकगृहीतचौरवत् गृहपरियागपरिहारमनस पोढ
शान्तमस्वगगादिन । पुन पुन भणित तत्त्वज्ञानविज्ञानार्थ च । ससार

रविणासयर् सर्वज्ञीतरागवचनमिदं कथंभूतं ? ससारप्रिनाशकर मोक्ष
प्रदायक । सिद्धियर् आमोपलब्धिकर । कारण हेतुभूत । परम उरुष्ट
उपदेशानामुपदेशात्तम ।

गहिउण य सम्मत्त सुनिम्मल सुरगिरीन निक्कंष ।

त ज्ञाणे झाइज्जइ सावय दुक्खकण्णटाण ॥ ८६ ॥

एतीचा च सम्यक् च मुनिर्वैलं सुरगिरिरिव निष्कम्पम् ।

तद् ध्याने ध्यायते धावक ! इह लक्ष्यार्थं ॥

पुरयाकार आत्मा योगी वरज्ञानदर्शनसमग्र ।

यो ध्यायति स योगी पापहरो भवति निर्द्वन्द्व ॥

पुरिसायारो अप्पा पुरपस्य नरस्याकर आकृतिर्यस्य स पुरुषाकार ,
एव गुण विशिष्ट क * आत्मा चेतनस्वभावो जीवतत्त्व, जोई
चरणाणदंसणसमग्गो योगी मुनि , इत्यनेन गृहस्थस्य मोक्ष मुवाणा
सितपटा प्रयुक्ता भवन्ति । वरज्ञानदर्शनसमग्र केवलज्ञानकेवलदर्शन
परिपूर्ण । इत्यनेनाचेतन्यमात्मान मन्यमाना कापिछा शुनका इव
निराकृता । जो ज्ञायदि सो जोई एव गुणविशिष्टमात्मान यो मुनि-
ध्यायति स योगी प्यानी भवति । अयश्चार्वाको नास्तिको भोगिनामा ।
एष स्थाने स्थाने मतान्तराश्रयेण व्याप्यान कर्तव्यमिति भाव ।
पापहरो भवदि णिहंदो पापहरद्विपष्टिप्रकृतिविच्छेदको भवति घाति-
सघातघातक स्यात्, निर्द्वन्द्व समवशरणागतपरस्परविरोधिजतुकल्ह-
निषेधक इत्यर्थ ।

एयं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण पुणसु ।

संसारविणासयर सिद्धियर कारणं परमं ॥ ८५ ॥

एतत् जिने कथित श्रवणाना श्रावकाणां पुन पुन ।

संसारविनाशकर सिद्धिकर कारण परमम् ॥

एयं जिणेहि कहियं एतद्वातिसघातघातनादिक कल आत्मध्या-
नस्य, जिने सवज्ञे कथित प्रमाणभूतवचनै प्रतिपादित । सवणाणं
सावयाण पुण पुणसु श्रवणाना दिगम्बराणा महामुन्यपरसंज्ञानाश्रयी
णामिति, न कवल श्रवणाना श्रावकाणा सदृष्टीनामुपासकाना च
यतस्ते दीक्षायोग्या ध्यानाधिकारिणो देशव्रता सत आत्मभावनपरा
संसारविरक्तचित्ता आरक्षकगृहीतचौरवत् गृहपरित्यागपरिहारमनस षोड
शान्यतमस्वर्गगाभिन् । पुन पुन भणित तत्त्वज्ञानविज्ञानार्थ च । संसा-

रविणासयर सर्वज्ञत्रीतरागवचनमिदं कथंभूतः ? ससारविनाशकर मोक्ष-
प्रदायक । सिद्धियर आत्मोपलब्धिहर । कारणं हेतुभूत । परमं उत्कृष्ट
उपदेशानामुपदेशोत्तम ।

गहिउणं यं सम्मत्तं सुनिम्भलं सुरगिरीं निक्कंपं ।

तं ज्ञाणे ज्ञाडज्जइ सावयं दुक्खकण्ठयट्ठाए ॥ ८६ ॥

गृहीत्वा च सम्यक् च सुनिर्भलं सुरगिरीं निक्कम्प्यम् ।

तद् ध्याने ध्यायते श्रावकः । दुःखस्यार्थे ॥

मघद्भि धरति जटामध्ये गगा चादधाति, ब्रह्मा वशिष्टस्य पितृत्वादुर्वशी-
बलुमत्वात्, निष्णुः षोडशसहस्रगोर्षार्भजते गोपनायस्य दुहितरं च,
सूर्यो रण्णादेवी चन्द्रो रोहिणी च मुक्ते तेनैते रागवन्तोऽपि ज्ञातव्याः ।
ब्रह्मा गजामुरं द्वेष्टि, रुद्रश्चिपुरदानं भक्षयति, निष्णुः कसकेशचाणूर-
जरासन्धानं पिनाष्टि तेनैते द्वेपयन्तोऽपि ज्ञातव्याः । ब्रह्मा वशिष्टमुखं
पश्यति, रुद्रस्तु स्कन्दं निरीक्षते, निष्णुः प्रयुञ्जे क्षिप्रति तेनैते
मोहिनोऽपि ज्ञातव्याः । ब्रह्मण सृष्टिचिन्ता समुत्पन्ना रुद्रस्य नरक-
स्तदन्तात् निष्णोर्जरेतसन्धारिणुपाल्लदिवधे महती चिन्ता समुत्पन्ना ।
ब्रह्मा उर्मश्चा रमते, रुद्रः पार्वतीं भुङ्क्ते, निष्णु सत्यभामायाः क्रीडति
तेनैतेषु रतिदोषोऽपि घटते । ब्रह्मा योगनिद्रां करोति, रुद्रः कैलासे
शेते गिरीशानामकृत्वात्, निष्णुर्जलशार्पाति कथ्यते तेनैते प्रमीला-
वन्तोऽपि विज्ञेयाः निद्रादोषा इत्यर्थः । रुद्रो नरकाय वरं दावा विपादति
इत्यादि विपाददोषोऽपि सगच्छते । मैथुनादिषु स्वेदसङ्गातोऽपि लोक-
कल्पितदेवानामभ्युद्यः । खेदस्तु संप्रामादो । विस्मयस्तु रूपादिदर्शने ।
इत्यादि लोकदेवतानामष्टादशापि दोषाश्चिन्तनीयाः । सर्वज्ञीनरागे तु
कश्चिदपि दोषो न वर्तते । उक्तं च—

रागादिदोषसङ्गावो ज्ञेयोऽमीषां तदागमात् ।

असतः परदोषस्य गृहीती पातके महत् ॥ १ ॥

निर्गन्धे पानयणे निग्रन्धे प्राश्रचने प्रवचननियुक्ते गुणे । सद्वर्णं
होद् मम्मत्तं एतेषु धर्मदेवगुरुषु पदार्थेषु यद्दानं न चि. अन्येषु रन-
धातास्वादनन्दरचिः सम्पत्त्यं भवतीति त्रियाकारकसम्बन्धः ।

जहजायरुवरुपं मुसंजयं मज्जसंगपरिचत्तं ।

लिङ्गं ण वरावेरसं जो मण्णइ तम्म सम्मत्तं ॥९१॥

यथाजातरूपस्य सुसंयत सर्वसंगपरित्यक्तम् ।

लिङ्गं न परापेक्षं य मयते तस्य सम्भवम् ॥

जहजायस्वरूपं यथाजातरूपं मानुर्गर्मनिर्गतनालकरूपं तद्वद्रूप-
माकारो यस्य लिङ्गस्य तद्यथाजातरूपरूप । सुसंयत मन्वसंगप-
रित्यक्तं पुन कथंभूतं लिङ्गं, सुसंयतमुष्टु-अतिशयऋतसयमसहित, सर्व-
संगपरित्यक्तं सर्वपरिग्रहरहितं शिरःकर्णकण्ठकरवटीममप्रभृत्यङ्गाभरण-
वस्त्ररहितं सर्वथा नम । लिङ्गं न परापेक्षं ईदृशिवधं लिङ्गं कथंभूतं,
न परापेक्षं परापेक्षारहितं शरीरमात्रपरिग्रह । जो मण्डात् तस्मै सम्मत्तं
ईदृशं लिङ्गं निप्रार्थयेत् य पुमान् मन्यते साधु वक्ति तस्य सम्भवम्
भवति, य सप्रार्थालिङ्गेन मोक्षं वक्ति स मिथ्यादृष्टिर्ज्ञातव्य इति ।

कुच्छिद्यदेवं धम्मं कुच्छिद्यलिङ्गं च वंदे जो दु ।

लज्जाभयगारवदो मिच्छादिद्वी हवे सो दु ॥९२॥

कुत्सितदेव धर्मं कुत्सितलिङ्गं च वंदे यत् ।

लज्जाभयगारवत मिथ्यादृष्टिर्मेवेत् स दु ॥

कुच्छिद्यदेवं धम्मं कुत्सितदेवं श्रीमहादेवं ब्रह्माणं नारायणं ब्रह्मं
रवि चन्द्रमसं यक्षं त्रिपुरभैरवीं चेत्यादिक । कुत्सितधर्मं आर्द्धभनकुड-
खण्डितपद्मचक्रवत्कारसम्बन्धं शूलपाणिं, क्षपापातं, बहिमवेशं, भर्तुं
सह गमनं, सूर्यार्धग्रहणस्नानं, सक्रान्तिदानं, नदीसागरादिमज्जने, गोयो-
निस्पर्शनं, तन्मूत्रपानं, शर्मातरूपपूजनं, पिप्पलाद्विग्नं मृत्तिकाविलेपनं,
कृष्णसारचर्मवसनं, नक्तभोजनं, घृतीद्वयदुक्षयनन्दनं, रत्नपूजनं, वाह-
नार्चनं, भूमिपूजनं, खड्गपूजनं, पर्वतपूजनं, धृते मुखपाक्षणमित्यादि कुत्सि-
तधर्म । कुच्छिद्यलिङ्गं च वंदे जो दु कुत्सितलिङ्गं नान्नाण्डकं, जटाधारिणं,
पञ्चशिखं, एकदण्डिनं, त्रिदण्डिनं, शिखाधारिणं, सौम्यतपाशुपतयोग्ये-

१ भर्ता सह गमनं च इदमेव साधु ।

पद० २४

त्यादि-कुसितलिंगं च व दत्ते नमस्करोति अभिषादनं विदधाति नमो-
नारायणमिति वाचा प्रणमति मस्तकेन वै दे इति प्रणमति यस्तु पुमान् ।
लज्जाभयगारवदो लज्जया कृत्वा भयेन च गारवेण गर्णेन च यो
वन्दते । मिच्छादिद्वी हवे सो हु मिध्यादृष्टिर्भवति स । कथं हु स्रुष्टं ।

सपरावेक्षं लिंगं राई देव असंजयं वंदे ।

माणइ मिच्छादिद्वी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्तो ॥९३॥

स्वपरापेक्षं लिङ्गं रागिण देव असंजयं वंदे ।

मानयति मिध्यादृष्टिं न हि मानयति शुद्धसम्यक्त्वम् ॥

सपरावेक्षं लिंगं स्वपरापेक्षं लिङ्गं, स्वापेक्षं ऋषिपत्नीयुतं परा-
पेक्षं रक्तयत्नमृगचर्मादि सापेक्षं लिङ्गं वेधं । राई देवं असंजयं वंदे
रागिण देव पार्वतीपतिं लक्ष्मीकांतं तिलोत्तमामुखकमलप्रघट्टकचतु-
र्वक्त्रं चेत्यादिकं देव, असंजयं वंदे-असंजयं अनेकमानुषमांसदक्षिणमुख-
मक्षकं व दे इति यो वक्ति । माणइ मिच्छादिद्वी मानयति मिध्या-
दृष्टि-श्रद्धाति मिध्यादृष्टिं जिनानामभक्तं । ण हु मण्णइ सुद्धस-
म्मत्तो न मानयति न ॥ मानं ददाति, कोऽसौ शुद्धसम्यक्त्वो निर्म-
लसम्यक्त्वरत्नमंडितः ।

सम्माइद्वी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं पुणदि ।

विवरीयं कुब्बंतो मिच्छादिद्वी मुण्यय्वो ॥९४॥

सम्यग्दृष्टिं श्रावकं धर्मं जिनदेवदेशिनं करोति ।

विपरीतं कुर्वन् मिध्यादृष्टिं ज्ञातव्यम् ॥

सम्माइद्वी सावय सम्यग्दृष्टिं श्रावकं सम्यग्त्वरत्नसशोभितो
गृहस्थः । अथना श्रावयतीति श्रावको मुनिः । अथना हे सम्यग्दृष्टिश्रावकः ।
इति सम्बोधनपदं । धम्मं जिणदेवदेशियं पुणदि धर्मं दूर्गतिपाता-

दुद्रव्य इन्द्रचन्द्रमुनीन्द्रवन्दिते पदे धरतीति धर्मस्त । जिणदेवदेसियं—
जिनदेवदेशित श्रीमद्भगवदर्हत्सर्वज्ञमीतरागकथित करोति । निवरीयं
कुर्वंतो विपरीतं कुर्वन् रुद्रजिमिनिकणभक्षकापिलसौगतादिभिरुपदिष्ट
धर्मं कुर्वन् पुमान् । मिच्छादिद्वी मुण्येयव्वो मिथ्यादृष्टिरिति ज्ञातव्य ।

मिच्छादिद्वी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ ।

जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउले जीवो ॥९५॥

मिथ्यादृष्टि य स संसारे संसरति सुखरहित ।

जन्मजरामरणप्रचुरे दुःखसहस्राकुले जीव ॥

मिच्छादिद्वी जो सो मिथ्यादृष्टियो जीव स । किं करोति ? संसारे
संसरेइ सुहरहिओ संसारे भवसागरे संसरति सम्यक्प्रतिशति सुखर-
हितो दुःखसहित । कथभूते संसारे, जम्मजरमरणपउरे जन्मजरा-
मरणप्रचुरे बहुले । दुक्खसहस्साउले जीवो दुःखाना सहस्रैरनन्तदु-
ःखैराकुले परिपूर्णं, क ? जीवो मिथ्यादृष्टिप्राणीति शेष ।

सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु ।

जं ते मणस्स रुचइ किं बहुणा पलविण्णं तु ॥ ९६ ॥

सम्यक्त्व गुण मिथ्यात्व दोष मनसा परिभाज्य तत्तद्वत् ।

यत्ते मनसे रोचते किं बहुणा प्रलपितेन तु ॥

सम्म गुण मिच्छ दोसो सम्यक्त्वं गुणो भवति, मिथ्यात्व दोषो
भवति पाप स्यात् । मणेण परिभाविऊण तं कुणसु इममर्थं मनसा
चित्तेन परिभाज्य सम्यग्निश्चार्य तत्तु तत्त्व विधेहि । तत् किं ? जं ते
मणस्स रुचइ यद्द्वयोर्गुणदोषयोर्मध्ये ते तत्र मनसे रोचते । किं बहुणा
पलविण्णं तु बहुणा प्रलपितेन अनर्थकवचनेन किं—न किमपि । यदि
तव मनसे गुणो रोचते तर्हि सम्यक्त्वं विधेहि उत दोषो रोचते तर्हि

मिथ्यात्वं विधेहि । अर्थतस्तु सम्यक्त्वं विधेहीति सम्यगुपदेशो भगवतां
श्रीकुन्दकुन्दाचार्याणां ।

बाहिरसंगविमुक्तो ण वि मुक्तो मिच्छभाव निगंगंयो ।

किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं ॥ ९७ ॥

बाह्यसंगविमुक्तः न विमुक्तः मिथ्याभावेन निग्रन्थः ।

किं तस्य स्थानमौनं नापि जानाति आत्मसमभावम् ॥

बाहिरसंगविमुक्तो बहिःसंगादिमुक्तो रहितो न प्रप्रेयः । ण वि
मुक्तो मिच्छभाव निगंगंयो नापि मुक्तः नैव मुक्तः न विमुक्तो वा
मिथ्याभावेन—मिथ्यात्वदोषेण रहितो न भवति, कोऽसौ ? निग्रन्थो दिग-
म्बरवेपाजीवी जीवः । किं तस्स ठाणमउणं तस्य निग्रन्थस्य स्थानं
उद्भवायोत्सर्गः किं—न किमपि, कर्मक्षयलक्षणं मोक्षं न साधयतीत्यर्थः ।
तथा मौनं किं—भूकत्वमपि न किमपि, मोक्षाश्रितं कार्यं न करोतीत्यर्थः ।
ण वि जाणदि अप्पसमभावं नापि जानीते न लभते न वेत्ति आत्म-
समभावं आत्मनां जीवानां समत्वपरिणामं—सर्वे जीवाः शुद्धबुद्धैकत्व-
भावा इति सिद्धान्तवचनं न जानाति ।

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ ओ साह ।

सो ण लहइ सिद्धिमुहं जिणलिंगविराधगो णिचं ॥ ९८ ॥

मूलगुणं छित्त्वा बाह्यकर्म करोति यः साधुः ।

स न लभते सिद्धियुक्तं विनष्टिविराधकः नित्यम् ॥

मूलगुणं छित्तूण य मूलगुणमष्टाविंशतिभेदभिन्नं पंचमहाप्रज्ञानि
पंचसमितयः पंचेन्द्रियरोधो लोचः पटावश्यकानि अचेदत्वमस्नानं क्षिति-
शयनं दन्तधारनरहितत्वं उद्भोजनं एकभक्तं इत्यष्टाविंशतिमूलगुणा-
न्नायः । तत्र यदुक्तः स्नानाभावस्तस्यापमर्थः—

नित्यस्नानं गृहस्थस्य देवार्चनपरिश्रमे ।

यतेस्तु दुर्जनस्पर्शात् स्नानमन्यद्विगदितं ॥ १ ॥

तत्र यतेः रजस्वलास्पर्शे अस्थिस्पर्शे चण्डालस्पर्शे शुनक्रगर्दभना-
पित्तयोगकपालस्पर्शे वमने विद्योपरि पादपतने शरीरोपरिकाकविष्मोचने
इत्यादिस्नानोत्पत्तौ सत्या दंडबदुपनिश्यते, श्रावकादिकच्छात्रादिको वा
जलं नामयति, सूर्यो गप्रक्षालनं क्रियते, स्वयं हस्तमर्दनेनाङ्गमलं न दूरी-
क्रियते, स्नाने संजाते सति उपवासो गृह्यते, पवनमस्कारशतमष्टोत्तरं
कायोत्सर्गेण जप्यते एव शुद्धिर्भवति । एवं मूलगुणं श्रित्वा बाहिर-
कर्मं करेद् जो साहू बहि कर्म आत्मपनयोगादिकं यः साधुः करोति ।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं स साधुः सिद्धिसुखं मोक्षसौख्यं न लभते न
प्राप्नोति । जिगलिंगविराधगो णिचं स साधुजिगलिंगविराधको
भवति, कथं ! नित्यं सर्वकालं ।

किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खणं च ।

किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो ॥ ९९ ॥

किं करिष्यति बाह्यकर्म किं करिष्यति बहुविधं च क्षमणं च ।

किं करिष्यति आतापः आत्मस्वभावादिपरीतः ॥

किं काहिदि बहिकम्मं किं करिष्यति—न किमपि करिष्यति, मोक्षं
न करिष्यति, किं तत् ? बहिकर्म पठनपाठनादिकं प्रतिक्रमणादिकं च ।
किं काहिदि बहुविहं च खणं च किं करिष्यति—न किमपि करिष्यति,
न मोक्षं दास्यति । किं तत् ? बहुविधं ज्ञानाप्रकारं क्षमणमुपयासः । किं
काहिदि आदावं किं करिष्यति—न किमपि करिष्यति, कोऽसौ ?
आतापः घर्मकायोत्सर्गः पूर्वोक्तः समाचारः । कथंभूतः, आदसहा-
वस्स विवरीदो आत्मस्वभावादिपरीतः वाञ्छयस्तुसम्भोहित्तमना ।

जदि पढदि बहुमुदाणि य जदि काहिदि गहुनिहे य चारित्ते ।
तं बालमुदं चरणं हवेइ अप्पस्म विवरीदं ॥ १०० ॥

यदि पठति श्रुतानि च यदि करिष्यति बहुविधानि चारित्राणि ।
तद्बालश्रुत चरण भवति आत्मन विपरीतम् ॥

जदि पढदि बहुमुदाणि य यदि चेत्, पठति व्यक्तमुच्चारयति, बहुश्रु-
तानि अनेकतर्कव्याकरणच्छन्दोऽलङ्कारसिद्धांतसाहित्यादीनि शास्त्राणि ।
चकार उक्तसमुच्चयार्थ एकादशाङ्गानि दशपूर्वाणि च । जदि काहिदि
बहुविहे य चारित्ते यदि चेत्, काहिदि—करिष्यति अनुष्ठास्यति, बहुनि-
धानि चारित्राणि त्रयोदशप्रकाराणि सामायिकादीनि पञ्चनिधानि वा ।
तं बालमुदं चरणं तत्सर्वं बालश्रुत मूर्खगात्र, बालचरण मूर्खचारित्र ।
हवेइ अप्पस्म विवरीदं भवति बालश्रुतं बालचारित्र भवति, कर्पभूतं
सत् आत्मनो निजशुद्धमुदैकस्वभावाजीवतत्वाद्विपरीतं पराङ्मुखमात्म-
भावनाराहितमिति भावार्थः ।

वेरगपरो साहु परदव्वपरम्महो य सो होदि ।
संसारमुहनिरत्तो सगमुद्धसुहेसु अणुरत्तो ॥ १०१ ॥

वैराग्यपर साधु परद्रव्यपराङ्मुखश्च स भवति ।
संसारमुखविरक्त स्वकशुद्धमुखेषु अतुरक्त ॥

वेरगपरो साहु वैराग्यपर साधु संसारशरीरभोगनिर्निष्ण सम्य-
ग्दर्शनज्ञानानामाराधकत्वात्साधक आत्मनामान्वर्थत्वात् । परद्रव्यपर-
म्महो य सो होदि य साधु वैराग्यपर स साधु परद्रव्यपराङ्मुखो
भवति इष्टनितादिनिरक्तो भवति । संसारमुहनिरत्तो संसारस्य मुखं
कर्पूरकस्तूरीचन्दनपुष्पमालापद्मकूलमुवर्णमणिमौक्तिकप्रासादपल्यकनकयौ-
वनयुवतिपुत्रसम्पदिष्टसयोगारोग्यदीर्घायुयशः कीर्तिप्रभृतिक तस्माद्विरक्तः ।

सगसुदसुहेसु अणुरत्तो पूर्वोक्तात्मशरीरकर्मसमुपन्ननिश्चमुखाद्विरुध्य नि-
ष्केवलक्षणखल्यास्वादवत् सुखेषु अनतज्ञानादिचतुष्टयेऽनुरक्तोऽनुराग-
वान् भवतीति भावार्थः ।

गुणगणनिहसियंगो हेयोपादेयणिच्छिदो साह ।

ज्ञाणज्ज्ञयणे मुरदो सो पावइ उत्तम ठाण ॥ १०२ ॥

गुणगणविभूषिताः हेयोपादेयनिश्चिन्ता भाषु ।

ज्ञानाभ्ययने मुरतः स प्राप्नोति उत्तम स्थानम् ॥

गुणगणनिहसियंगो गुणानां ज्ञानध्यानतपोरत्नानां गणैः समूहैर्नि-
भूषिताः शोभितशरीर । हेयोपादेयणिच्छिदो साह हेयं मिथ्यारा-
दिक उपादेयं ग्रहणीयं सम्प्रस्वरत्नादिकं तत्र निश्चितं निश्चयो यस्य स
हेयोपादेयनिश्चितः साधू रत्नयारागको मुनिः । ज्ञाणज्ज्ञयणे मुरदो
ध्यानमार्तरौद्रध्यानद्वयपरित्यागेन धर्म्यशुद्धध्यानद्वये रतस्तत्परस्तन्निष्ठस्त-
देकतान् । सो पावइ उत्तमं ठाण य एवमिदं साधुः स प्राप्नोति,
किं ? उत्तमस्थानं नीचस्थानं-शरीरलक्षणं हीनस्थानं परिहृत्य उत्तम-
स्थानं कर्मशरीरबन्धनरहितं वं मोक्षं प्राप्नोति लभते सिद्धं प्रसिद्धं
भवतीति तात्पर्यार्थः ।

णविएहि जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहि अणवरयं ।

धुव्वतेहि धुणिज्जइ देहत्वं किं पि तं मुणह ॥ १०३ ॥

ननै यत् नम्यते ध्यायते ध्यातैः अनवरतम् ।

स्तूयमानं स्तूयते देहस्थं किमपि तत् मनुत ॥

णविएहि जं णविज्जइ नतैरेवेदादिभिर्यज्जम्यते । झाइज्जइ झाइ
एहि अणवरयं ध्यायतेऽहर्निशं चिन्त्यते झाइएहि-ध्यातैस्तार्थकरपर-

मदेवैर्यद्वयायते अहर्निश शुद्ध्यानार्थं सर्वकर्मक्षयार्थं तत्पदप्राप्त्यर्थं अनुचिन्त्यते । श्रुज्यतेहि शुणिज्जइ स्तूपमानैस्तीर्थकरपरमदेवैर्यत् स्तूप-
तेऽनन्तगुणोद्भावनतया प्रशस्यते । देहस्य किं पि तं मुणह देहस्थं
शरीरमध्ये स्थितं किमप्यपूर्वमनिर्वचनीयमाससगमप्राप्तं तयोगिना प्रसिद्धं
तत्त्वं आत्मस्वरूपं मुणह—जानीत यूयं । यदुक्त—

तिलमध्ये यथा तैलं दुग्धमध्ये यथा घृतम् ।

काष्ठमध्ये यथावन्निर्वह्ममध्ये तथा शिव ॥ १ ॥

शिवशब्दवाच्यमत्मतत्त्वमित्यर्थः ।

इदानीं शास्त्रस्यान्ते भगवन्निमित्तं पञ्चपरमेष्ठिपुरस्सररत्नत्रयगर्भितमा-
त्मतत्त्वमुद्भाषयन्ति भगवन्तः —

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पञ्चपरमेष्ठी ।

ते वि हु चिट्टहि आदे तम्हा आदा हु मे सरण ॥१०४॥

अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपाध्याया साधवः पञ्चपरमेष्ठिनः ।

तेऽपि हु तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा हु मे शरणम् ॥

अरुहा सिद्धायरिया अर्हन्तः सिद्धा आचार्याश्च । उज्झाया साहु
पञ्चपरमेष्ठी उपाध्याया, साधवः, एते पञ्चपरमेश्विनो देवा भवेष्टदवता ।
ते वि हु चिट्टहि आदे तेऽपि पञ्चपरमेष्ठिनो देवा अपि तिष्ठन्ति, कः
आत्मनि निजजीवत वे । केवलज्ञानादिगुणविराजमानत्वात् सफलभव्य
जीवसम्बोधनसमर्थत्वाच्चात्मायमर्हन् वर्तते । सर्वत्रमक्षयलक्षणमोक्षपद-
प्राप्तत्वात् निश्चयनयाममात्मायमेव सिद्धः । दीक्षाशिक्षादायकत्वात् पञ्च-
चाराचरणचारणप्रवीणत्वात् सूरिमन्त्रतिलकमन्त्रतमयत्वात् ममात्मायमेवा-
चार्यपदभागा वर्तते । श्रुतज्ञानोपदेशकत्वात् स्वपरमतविज्ञायकत्वात्
भव्यजीवसम्बोधकत्वात् ममात्मायमेवोपाध्यायः । सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र

स्त्रयसाधकत्वात् सर्वद्वन्द्वविमुक्तत्वात् दीक्षाशिक्षायात्राप्रतिष्ठायनेकधर्म-
कार्यनिश्चिन्ततयाऽऽत्मतत्त्वसावकतया ममात्मायमेव सर्वसाधुर्वर्तते इति
पंचपरमेष्ठिन आत्मनि तिष्ठतीति कारणात् । तम्हा आदा हु मे सरणं
तस्मात्कारणादात्मा हु स्पुष्टं मे मम शरण संसारदु खनिवारकत्वादतिम-
थनसमर्थ मम शरण गतिरिति ।

सम्भक्तं सण्णाणं सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव ।

चउरो चिट्ठहि आदे तस्मा आदा हु मे सरणं ॥१०५॥

सम्यक्त्व सज्ज्ञान सच्चारित्र हि सत्तपच्चैव ।

चचार तिष्ठति आत्मनि तस्मादात्मा हु मे शरणम् ॥

सम्भक्तं सण्णाणं सम्यग्दर्शनरत सज्ज्ञान समीचीनमवाधित पूर्वा-
परविरोधरहित सम्यग्ज्ञान । सच्चारित्तं हि सत्तवं चेव सच्चारित्र सम्य-
क्चारित्र पापक्रियाविरमणलक्षण परमादासीनतास्वरूप च सम्यक्चारित्र,
सत्तप—समीचीन तप इच्छानिरोधलक्षण चेति । चउरो चिट्ठहि आदे
एते चचारोऽपि परमाराधनापदार्थास्तिष्ठन्ति, क तिष्ठन्ति । आत्मनि
निजशुद्धबुद्धैकस्यमात्रजीवतत्वे तिष्ठन्ति । यदा मन थद्वानमात्रमेव करोति,
आत्मनो ज्ञानमात्रैव विधत्ते, आत्मना सहैकलोलीमात्रमात्रैव कुरुते,
आत्मैवात्मनि तपति, केवलज्ञानैश्वर्यं प्राप्नोति चतुर्भिरपि प्रकारैरात्मा-
त्मानमेवाराधयति । तम्हा आदा हु मे सरणं तस्मादात्मैव मम शरण-
मतिमथनसमर्थ ससारार्तिनिपेधकत्वात् आत्मैव मे गति, मगल मल-
गालने कर्ममलकलङ्कनिषेधने मंगस्य सुखस्य दाने च समर्थत्वादात्मैव
परम मंगलगिति भावार्थः ।

एवं जिणपण्णत्तं मोक्सस्य य पाहुडं सुमत्तीए ।

जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सोक्खं ॥१०६॥

एव जिनप्रज्ञप्त मोक्षस्य च प्राप्तुं सुमक्त्या ।

य पठति शृणोति भावयति स प्राप्नोति शाश्वत सौख्यम् ॥

एवं जिणपण्यत्तं एवममुना प्रकारेण जिनप्रज्ञप्त सर्वज्ञगीतराग-
भावितं । मोक्षस्तस्य य पाहुं सुमचीए माक्षस्य परमनिर्माणपदस्य
प्राभूत सारमिद शास्त्र सुष्ठु-अतिशयेन भक्त्या परमधर्मानुरागेण । जी-
पढइ सुणइ भावइ य आसन्नभव्यो जीव पठति जिह्वाप्रे करोति, यश्च
भव्यजीवः शृणोत्याकर्णयति, यश्च मोक्षाभिलाषुको जीवो भावयति एत-
च्छास्त्रं यस्मै रोचते । सो पावइ सासयं सौख्यं स जीव परममु-
नीश्वरं, प्राप्नोति लभते, शाश्वतमविनश्वरं, सौख्यं निजात्नोत्थ परमानन्द-
लक्षणं सौख्यं ।

नानाशास्त्रमहार्णवैकतरणे यद्वुद्धिरिच्छधिया

पूर्णां पुण्यं विप्रमोदजननी सारैकनीकायते ।

यत्पादाम्बुजयुग्ममाप्य मुनिभिर्भूतैरिधापीयते

स धीमान् श्रुतसागरो विजयतामेनस्तमोऽहर्षति ॥ १ ॥

ध्रीमत्स्वामिसमन्तभद्रममलं ध्रीकुन्दकुन्दान्द्वय

यो धीमानकलङ्कमदृमपि च ध्रीमत्प्रमेन्दुप्रभुं ।

विद्यामन्दमपीक्षितु कृतमनाः ध्रीपूज्यपादं गुरु

यक्षेत श्रुतसागर सविनयात् त्रैविद्यधीमन्नुत ॥ २ ॥

ध्रीमल्लिमूषणगुरोर्वचनादलंघ्या-

न्मुक्तिधिया सह समागममिच्छतेय ।

पद्मप्रभृते सकलसंशयशत्रुहारी

टीका कृताऽकृतधियां श्रुतसागरेण ॥ ३ ॥

इति श्रीपद्मनाब्दिकुन्दकुन्दाचार्यवक्त्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृध्रपिच्छा-
चार्यनामपञ्चविराजितेन चतुरङ्गुलाकाशगमनर्दिना पूर्वविदेहपुण्डरीकिणी-
नगरवदितसीमन्धरापरनामस्वयम्भोजिनेन तच्छ्रुतज्ञानसम्बोधितभारतवर्षभ-
व्यजीवेन श्रीजिनचन्द्रसूरिभट्टारकपद्ममरणभूतेन कलिहलसर्वहेन विचिते पद्-
मभूतग्रन्थे सर्वमुनीमण्डलीमण्डितेन कलिहलगौतमस्वामिना श्रीपद्मनाब्दि-
देवेन्द्रधारिणि-विद्यानन्दिपद्मभट्टारकेण श्रीमहिभूषणेनानुगतेन सद्ग-
विद्वज्जनसमाजसम्मानितेनोभयभाषाकविवक्त्रवर्तिना श्रीविद्यानन्दिगुरुवन्तेवा-
सिना सूरिवरश्रीधुतसागरेण विरचिता मोक्षप्राप्तटीका—

परिसमाप्ता ।



१ अस्मादग्रे क. पुस्तकेऽय पाठो वर्तते न तु ए. पुस्तके ।
पठ' परिच्छेद' । शुभं भवतु । श्रीरस्तु । मङ्गलमस्तु ।
श्रीविद्यानन्दिस्वामि भट्टारकश्रीमन्निभूषण सूरिवरश्रीधुतसागर

मम नम्रानि कुर्वन्तु ।

श्लोकसङ्ख्या ६००० ज्ञातव्या ।

लिंगप्राभृतं ।



काउण णमोकारं अरहंताणं तहेऽ सिद्धाणं ।
चोच्छामि समणलिंगं पाहुइसत्थं समासेण ॥ १ ॥

कृत्वा नमस्कार अर्हता तथैव सिद्धाना ।

वक्ष्यामि श्रमणलिंग प्राभृतशास्त्रं समासेन ॥

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती ।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥ २ ॥

धर्मेण भवति लिंग न लिंगमात्रेण धर्मसंप्राप्ति ।

जानीहि भावधर्मं किं ते लिंगेन कर्तव्य ॥

जो पावमोहिदमदी लिंगं घेत्तूण जिणररिंदाणं ।
उवइसई लिंगि भावं लिंगं णासेदि लिंगीणं ॥ ३ ॥

पापमोहितमति लिंग गृहीत्वा जिनसरेन्द्राणा ।

उपहसति लिंगी भाव लिंग नाशयति लिंगिना ॥

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूपेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खंजोणी ण सो समणो ॥ ४ ॥

नृपति गायति तावत् वाक्या वाचयति लिंगरूपेण ।

स पापमोहितमति तिर्यग्योनि न स श्रमण ॥

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्ठं झाएदि बहुपयत्तेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥ ५ ॥

समूह्यति रक्षति च आर्तं ध्यायति बहुप्रयत्नेन ।

स पापमोहितमति तिर्यग्योनि न स श्रमण ॥

कलह वादं जूवा णिचं बहुमाणगन्विओ लिंगी ।

वच्चदि णरय पाओ करणमणो लिंगिरूपेण ॥ ६ ॥

कलह वाद द्यूत निय बहुमानगर्विता लिंगी ।

व्रजति नरक पाप कुर्वाण लिंगिरूपेण ॥

पाओपहदमाओ सेवदि य अचभु लिंगिरूपेण ।

सो पावमोहिदमदी हिडदि ससारकातारे ॥ ७ ॥

पाओहतभात्र सेवते च अव्रह्म लिंगिरूपेण ।

स पापमोहितमति हिडते संसारकातारे ॥

दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगिरूपेण ।

अट्टं ज्ञायदि ज्ञाण अणंतससारिओ होदी ॥ ८ ॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि उपधानानि यदि न लिंगरूपेण ।

आर्तं ध्यायति ध्यान अनन्तसंसारिओ भरति ॥

जो जोडदि विव्वाहं किसिक्कम्मवणिज्जजीवघादं च ।

वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूपेण ॥ ९ ॥

य विवाह युनक्ति कृषिकर्मवणिज्जजीवघातं च ।

व्रजति नरक पाप कुर्वाण लिंगिरूपेण ॥

चोराण समाएण य जुद्ध विनाहं च तिल्वकम्मेहि ।

जतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवास ॥ १० ॥

चोराणा मिप्यानादिना युद्ध विवाद च तीव्रकर्मभि ।

यंत्रेण दीव्यमान गच्छति लिंगी नरकवास ॥

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिचकम्मम्मि ।

पीडयदि-चट्टमाणो पाचदि लिंगी णरयवासं ॥ ११ ॥

दर्शनञ्चानचरित्रेषु तपःसंयमनियमनित्यकर्मणि ।

पीडयति वर्तमानः प्राप्नोति लिंगी नरकवासं ॥

कंदप्प (पा) इय चट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं ।

माई लिंगाविचाई तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥ १२ ॥

कंदर्पादिकं वर्तते कुर्वाणः भोजनेषु रसगृद्धिं ।

नायायी लिंगमपायी तिर्यग्योनिः न स श्रमणः ॥

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊणः भुंजदे पिंडं ।

अर्धरूपरुई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो ॥ १३ ॥

धावति पिंडनिमित्तं कलहं कृत्वा मुक्ते पिंडं ।

अपरप्ररूपी सन् जिनमार्गी न भवति स श्रमणः ॥

गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं ।

जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो ॥ १४ ॥

गृह्णाति अदत्तदानं परनिन्दामपि च परोक्षदूषणेः ।

जिनलिंगं धारयन् चोरेणेव भवति स श्रमणः ॥

उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूपेण ।

इरियावह धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥ १५ ॥

उत्पतति पतति धावति पृथिवीं खनति लिंगरूपेण ।

ईर्यापथं धारयन् तिर्यग्योनिः न स श्रमणः ॥

बध नीरजा सन् सस्यं खण्डयति तथा च वसुधामपि ।

ठिनत्ति तस्मिन् बहुश तिर्यग्योनि न स श्रमण ॥

रागो करोति णिचं महिलावगं पर च दूसेदि ।

दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥ १७ ॥

राग करोति नित्य महिलावर्गं पर च दूषयति ।

दर्शनज्ञाननिहीन तिर्यग्योनि न स श्रमण ॥

पव्वज्जहीणगहिणं णेहं सीसम्मि वट्ठदे बहुसो ।

आचारविनयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो सण्णो ॥ १८ ॥

प्रव्रज्याहीनगृहिणि स्नेह शिष्ये वर्तते बहुश ।

आचारविनयहीन तिर्यग्योनि न स श्रमण ॥

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्ठदे णिचं ।

बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो सवणो ॥ १९ ॥

एव सहित मुनिवर सयत्तमध्ये वर्तते नित्यं ।

बहुलमपि जानान भावविनष्टो न स श्रवण ॥

दंसणणाणचरित्ते महिलावगम्मि देहि वीमट्ठो ।

पासत्थ पि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो सवणो ॥ २० ॥

पुश्चलीगृहे य मुक्ते नित्य संस्तौति पुष्पाति पिंड ।

प्राप्नोति बालस्वभावं भावविनष्टो न स श्रवण ॥

इय लिंगपाहुडमिणं सन्नं बुद्धेहि देसियं धम्मं ।

पालेहि कट्टसहियं सो गाहदि उत्तम ठाणं ॥ २२ ॥

इति लिंगप्राभृतमिद सर्वं बुद्धे देशित धर्म ।

पालयति कट्टसहित स गाहते उत्तमं स्थानं ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यविरचितलिंगप्राभृतक

समाप्तम् ।

शीलप्राभृतं ।



धीर विमालणयणं रत्नुष्पलकोमलस्समप्पायं ।

तिविहेण पणमिऊणं सीलगुणाणं णिसामेह ॥ १ ॥

धीरं विशालनयन रत्नोत्पलकोमलसमपादम् ।

त्रिभिधेन प्रणम्य शीलगुणान् निशाम्यामि ॥

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहि णिदिट्ठो ।

णवरि य सीलेण णिणा निसया णाणं णिणासंति ॥ २ ॥

शीलस्य च ज्ञानस्य च नास्ति विरोधां बुधैर्निदिष्ट ।

नवरि च शीलेन णिना विषया ज्ञान णिनाशयति ॥

दुक्खे णज्जहि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं ।

भावियमई व जीवो णिमएमु णिरज्जए दुक्खं ॥ ३ ॥

दुःखेन ज्ञायते ज्ञानं ज्ञानं ज्ञात्वा भावना दुःख ।

भावितमतिश्च जीवा विषयेषु निरुपयति दुःख ॥

ताव ण जाणदि णाणं निसयनलो जाव वट्टए जीवो ।

विसए विरत्तमेत्तो ण सवेइ पुराइय कम्मं ॥ ४ ॥

तान्न जानाति ज्ञानं विषयबलं यावत् वर्तते जीव ।

विषय विरक्तमात्रं न क्षिपते पुराणकं कर्म ॥

१ प्याव मूल पाठ ।

२ सयराद नवरि व दुत्ति शक्ति सहसत्ति इक्ष्मरिण च ।

अविहाविभ इक्ष्मणं अक्षय्यं तन्मरणं सहसा ॥ १ ॥

३ विवज्जए पु ।

पद० २५

णाणं चरित्तहीणं लिंगगहणं च दंमणप्रिदूणं ।

संजमहीणो य तपो जड चरड निरत्ययं मत्वं ॥ ५ ॥

ज्ञान चारित्रहीन लिंगग्रहण च दर्शनविहीन ।

सयमहीनश्च तप यदि चरानि निरर्थक सर्व ॥

णाणं चरित्तमुद्धं लिंगगहणं च दंसणप्रिमुद्धं ।

संजममहिदो य तपो ओजो रि महाकलो होइ ॥ ६ ॥

ज्ञान चारित्रशुद्धं लिंगग्रहण च दर्शनविशुद्ध ।

सयमसहितश्च तप स्तोत्रमपि महाकठ मरति ॥

णाणं णाउण जग केई प्रिसयाडमारसंसत्ता ।

हिडंति चादुरगदिं विमएसु विमोहिया मूढा ॥ ७ ॥

ज्ञान ज्ञात्वा नरा कंचिन् विषयादिभारससक्ता ।

हिण्डन्ते चातुर्गतिं विषयेषु विमोहिता मूढा ॥

जे पुण प्रिमयप्रित्ता णाणं णाउण भारणामहिदा ।

छिदंति चादुरगदिं तपगुणशुक्ता न संदेहो ॥ ८ ॥

ये पुनर्विषयविरक्ता ज्ञानं ज्ञात्वा भारणासहिता ।

छिदन्ति चातुर्गतिं तपोगुणशुक्ता न संदह ॥

जह कंचणं प्रिमुद्धं धम्मइयं संडियलणलेणेण ।

तह जीरो रि प्रिमुद्धं णाणप्रिमल्लेण प्रिमलेण ॥ ९ ॥

यथा कंचनं विशुद्धं धमन् गण्डिकउरणलेपेन ।

तथा जीरोऽपि विशुद्धं ज्ञानसंछिदेन प्रिमतेन ॥

णाणस्म णत्वि दोसो कापुरिमाणो रि मंदबुद्धीणो ।

जे णाणगव्विदा... होउणं प्रिमण्णु गज्जंति ॥ १० ॥

ज्ञानस्य भक्तिं दोष कापुन्यस्यापि मन्दबुद्धे ।

ये ज्ञानगर्विता.....भूत्वा विषयेषु रम्यन्ति ॥

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिण्ण सम्ममहिण्ण ।

होहदि परिणिन्वाणं जीणाणं चरित्तमुद्धानं ॥ ११ ॥

ज्ञानन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।

भविष्यति परिनिर्वाण जीनाना चारित्रशुद्धाना ॥

सीलं रक्खंताणं दंसणमुद्धान दिट्ठचरित्ताणं ।

अत्थि धुवं णिन्वाणं विसण्णु निरत्तचित्ताणं ॥ १२ ॥

शील रक्षता दर्शनशुद्धाना दृढचारिणा ।

अस्ति ध्रुव निर्वाण विषयेषु निरक्तचित्ताना ॥

विसण्णु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं ।

उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि निरत्थयं तेसिं ॥ १३ ॥

विषयेषु मोहितानां कथितो मार्गोऽपि इष्टदर्शना ।

उमार्गं दर्शना ज्ञानमपि निरर्थकं तेषा ॥

कुमयकुमुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइ ।

शीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ॥ १४ ॥

कुमत्तकुमुदप्रशस्ता (सका) जानतो बहुविधानि शास्त्राणि ।

शीलव्रतज्ञानरहिता न हु ते आराधका भवन्ति ॥

रूपसिरिगन्धिदाणं जुवणलावण्यकंतिकलिदाणं ।

शीलगुणगन्धिदाणं निरत्थयं माणुसं जम्मं ॥ १५ ॥

रूपश्रीगदिताना यौवनलावण्यकांतिकलिताना ।

शीलगुणगन्धिताना निरर्थकं मानुष जन्म ॥

चायरणछंदवइसेसियववहारणायमत्त्वेसु ।

वेदेउण सुयतेउसु य ते वसुय ? उत्तमं सीलं ॥ १६ ॥

व्याकरणछन्दोवैशेषिकन्यायहारयायशास्त्रेषु ।

विदित्वा श्रुतेषु च तेषु श्रुत उत्तमं शीलं ॥

शीलगुणमण्डिदाणं देवा भविष्याण बल्लहा ह्येति ।

मुदपायपउरा णं दुस्सीन्हा अप्पिला लोए ॥ १७ ॥

शीलगुणमण्डिताना देवा भविष्याणा बल्लभा भवन्ति ।

श्रुतपायप्रचुरा दुःशीला अपका लोके ॥

सव्वे पि य परिहीणा रूपविरूपा पि वदिदसुवया पि ।

सीलं जेसु सुसील सुजीविदं माणुसं तेसिं ॥ १८ ॥

सर्वेऽपि च परिहीना रूपविरूपा अपि पतितमुनयसोऽपि ।

शीलं येषु सुशीलं सुजीवितं मुमुक्षुः स तेषां ॥

जीवदया दम सद्यं अचोरियं वंभचेरसंतोसे ।

सम्मदंसण णाणं तओ य सीलस्म परिवारो ॥ १९ ॥

जीवदया दम सत्य अचौर्यं ब्रह्मचर्यसन्तोषौ ।

सम्यग्दर्शनं ज्ञानं तपश्च शीलस्य परिवारः ॥

सीलं तपो निसुद्धं दमणमुद्धी य णाणमुद्धी य ।

सीलं निसयाण अरी सीलं मोक्खस्म सोपाणं ॥ २० ॥

शीलं तपो विशुद्धं दर्शनशुद्धिश्च ज्ञानशुद्धिश्च ।

शीलं निपयाणामपि शीलं मोक्षस्य सोपानं ॥

जह निसयलुद्ध निसदो तह थाररजंगमाण घोरणं ।

सव्वेसिं पि निणामदि निसयविसं दास्सणं होई ॥ २१ ॥

यथा निपयलुब्धो निपदः तथा स्थावरजङ्गमान् घोरान् ।

सर्वानमपि विनाशयति विषयत्रयं दास्सणं भवति ॥

वारि एक्कम्मि य जम्मे सरिज्ज निमवेयणाहदो जीयो ।

निसयनिसपरिहया णं भमंति संमारकांतारे ॥ २२ ॥

१ “क्वचिदसादे” इत्यनेन द्वितीयास्थानं पठ्यते । द्वितीयादिभिर्गोत्राणां
 स्थाने क्वचिन् पठ्यते इत्यादिति मूलायं । २ “अस्सासाईप्” इत्यनेन द्वितीयास्थाने
 गमो । द्वितीयानुतीयया स्थाने क्वचिन् सप्तमी भवतीति मूलायं । (सं) ।

वारं एक जन्म गच्छेत् निपयेदनाहतो जीव ।

विषयविषपरिहता भ्रमन्ति संसारकान्तारे ॥

णरएसु धेयणाओ तिरिक्खए माणुएसु दुक्खाइं ।

देवेसु पि दोह्मं लहंति विमयामता जीवा ॥ २३ ॥

नरकपु वेदना तिरश्चि मानरेषु दु खानि ।

देवेष्वपि दीर्घाय लभन्ते विषयासक्ता जीवा ॥

तुमधम्मंतरेण य जह दब्बं ण हि णराण गच्छेदि ।

तवसीलमंत कुसली रावंति विसयं विमय व खलं ॥ २४ ॥

तुपध्मद्वेलेन च यथा द्रव्य न हि नराणा गच्छति ।

तप शीलमन्त बुशठा क्षिपन्ते विषय निषमिज खलं ॥

वट्ठेसु य खण्डेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु ।

अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ॥ २५ ॥

वृत्तेषु च खण्डेषु च भद्देषु च विशालेषु अंगेषु ।

अंगेषु च प्राप्तेषु सर्वेषु च उत्तमं शीलं ॥

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विमयलोलेहिं ।

संसारे ममिदब्बं अग्यघरट्ठं व भूदेहिं ॥ २६ ॥

पुरपेणापि सहितेन कुसमयमूढे निषयलोले ।

संसारे भ्रमितव्यं अरहट्ठघरट्ठं इव भूते ॥

आदेहि कम्मगंठी जावद्धा विसयरायमोहेहिं ।

तं छिंदंति कयत्था तनसंजममीलयगुणेण ॥ २७ ॥

आमनि हि कर्मप्रथि यानद्धा निषयरागमोहाभ्यां ।

ता छिन्दति वृत्तार्था तप संयमशीलगुणेन ॥

- उदधी व रदणमरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं ।
 सोहेतो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तर पत्तो ॥ २८ ॥
 उदधिरिव रत्नमृत तपोविनयशालदानरत्नाना ।
 शोभेत सदाष्ट निर्गणमनुत्तर प्राप्त ॥
- मुण्हाण गद्दहाण य गोपमुमहिलाण दीमदे मोक्खो ।
 जे' सोधंति चउत्थं पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहि ॥ २९ ॥
 शुना गर्दमाना च गोपशुमहिलाना दृश्यत मोक्ष ।
 ये साधयति चतुर्थं दर्शयमाना जनै सर्वे ॥
- जइ विसयलोलएहि णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो ।
 तो सो मुरत्तपुत्तो दसपुच्चीओ वि किं गदो नरयं ॥ ३० ॥
 यदि विपयटाढे ज्ञानिभि ममेत् साजितो मोक्ष ।
 तर्हि स सात्यकिपुत्र दर्शपूर्णक किं गतो नरय ॥
- जइ णाणेण विमोहो सीलेण विणा उहेहि णिदिट्ठो ।
 दसपुच्चिस्म य भाओ ण कि पुण विम्मलो जाओ ॥ ३१ ॥
 यदि ज्ञानेन विदुद्ध शीलेन विना बुभेनिदिष्ट ।
 दशपूर्णं च भाओ न कि पुन निर्मत्रो जात ॥
- जाए विसयनिरत्तो सो गमयादि णरयवेयणापउरा ।
 ता लेहदि अरहपय भणियं जिणउट्टमाणेण ॥ ३२ ॥
 य विपयविरक्त ॥ गमयति नरकरदनां प्रचुरा ।
 तल्लभते अहं पदं भणितं तिनर्थमाणेन ॥
- एवं उट्ठप्पयार जिणेहि पञ्चस्सणाणदरिसीहि ।
 सीलेण य भोक्खपयं अमखातीरं च लोयणाणेहि ॥ ३३ ॥

एव बहुप्रकार जिनै प्रत्यक्षज्ञानदर्शिभि ।

शीलेन च मोक्षपद अक्षातीत च लोकज्ञानै ॥

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयारमप्पाणं ।

जलणो नि पवणसहिदो ढहंति पोरणयं कम्मं ॥ ३४ ॥

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनतपोरीर्यपचाचारा आमना ।

ज्यलनोऽपि पवनसहित दहति पौराणक कर्म ॥

णिद्धुअट्टकम्मा विसयविरत्ता जिदिदिया धीरा ।

तवविणयसीलसहिदा सिद्धा मिद्धिगदिं पत्ता ॥ ३५ ॥

निर्दग्धाष्टकर्माण विषयविरक्ता जितेन्द्रिया धीरा ।

तपोविनयशीलसहिता सिद्धा सिद्धिगतिं प्राप्ता ॥

लावण्यसीलकुसला जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स ।

सो सीलो स महप्पा भमित्थ गुणवित्थर भणिए ॥ ३६ ॥

लावण्यशालकुशला जन्ममहीरुह यस्य श्रवणस्य ।

स शील स महा मा भवेत् गुणविस्तारं भवे ॥

णाणं ज्ञाणं जोगो दंसणसुद्धी य वीरियाउत्तं ।

सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे वोहि ॥ ३७ ॥

ज्ञान ध्यान योगो दर्शनशुद्धिश्च वीर्यव ।

सम्यक्त्वदर्शनेन च उभ ते जिनशासने वोहि ॥

जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तवोधणा धीरा ।

सीलसलिलेण ष्हाया ते मिद्धालयमुहं जंति ॥ ३८ ॥

जिनवचनगृहीतसारा विषयविरक्ता तपोधना धीरा ।

शीलसलिलेन स्नाता ते सिद्धालयमुख यान्ति ॥

सर्वगुणशीणकम्मा सुहृदुक्खरिगज्जिदा मणिसुद्धा ।

यप्फोडिय कम्मरया हवंति आराहणापयडा ॥ ३९ ॥

सर्वगुणशीणकर्माण सुखदु म्भिरिज्जिता मनोविशुद्धा ।

प्ररुद्धितकर्मरजस भवन्ति आराधनाप्रकटा ॥

अरहंते सुहमत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविशुद्धं ।

सीलं विमयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ॥ ४० ॥

अर्हति शुभभाक्ति सम्यक्त्व दर्शनेन सुविशुद्धं ।

शीलं विमयविरागो ज्ञान पुन र्थादस भणितं ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यविरचितशीतश्रावण

समाप्तं ।

रयणसारः ।



णमिलण वड्डमाण परमप्पाणं तियेणं सुद्वेण ।

बोच्छामि रयणसार सायारणयारधम्मोणं ॥ १ ॥

नावा वर्धमान परमात्मान त्रिकया शुद्धया ।

रक्ष्यामि रत्नसार सागारागगारधर्मयो ॥

पुब्बं जिणेहि भणियं जहद्वियं गणहरेहि वित्थरियं ।

पुट्ठवारियकमेणं जं तं बोलेइ सद्विही ॥ २ ॥

पूर्वं जिनै भणित यथास्थित गणधरै विस्तारित ।

पूर्वाचार्यक्रमेण यत्तत् मापते सद्वद्वि ।

मदिसुदणाणवलेण दु मच्छंदं बोलेए जिणुत्तमिदि ।

जो सो होइ कुदिही ण होइ जिणमगलगरयो ॥ ३ ॥

मतिश्रुतज्ञानवलेन तु स्वच्छन्द भाषते जिनोक्तमिति ।

य स भवति कुद्विर्न भवति जिनमार्गलप्ररत ॥

सम्मत्तरयणसार मोरुमहारकरमूलमिदि भणियं ।

तं जाणिज्जेइ णिच्छयववहारसरूबदोभेदं ॥ ४ ॥

सम्यक्वरनसार मोक्षमहावृक्षमूलमिति भणित ।

तज्जायते निश्चयव्यवहारस्वरूपद्विभेद ॥

भयवमणमलविवर्जिय संसारसरीरभोगणिच्चिण्णो ।

अट्ठगुणंगसमग्गो दंसणसुद्धो हुँ पंचगुरुमतो ॥ ५ ॥

१ जिण तिसुद्वेण स पुत्तके पाठ । २ धम्मोण स । ३ कमज त ख.
४ बोहद जिगिद्ध स । ५ जाणिअठ स. । ६ बी स । ७ य स ।

भयव्यसनमलनिवर्जित संसारशरीरभोगनिर्दिष्टः ।

अष्टगुणाङ्गसमग्र दर्शनशुद्ध हि पचगुरुभक्तः ॥

णियसुदृप्पशुरत्तो बहिरप्पावच्छज्जिओ णाणी ।

जिणमुणिधम्मं मण्णइ गयदुग्गसी होइ सदिही ॥ ६ ॥

निजशुद्धात्मानुरक्त बहिरामासस्यावर्जित ज्ञाना ।

जिनमुनिधर्मं जानाति गतदु खो भवति सद्दृष्टि ॥

मय मूढमणायदणं संकाइ वसण भयमईयार ।

जेसिं चउदालेदे ण संति ते हुंति सदिही ॥ ७ ॥

मदो मूढमनायतनं शकादि व्यसनं भयमतिचारम् ।

येषां चतुश्चत्वारिंशति एतानि न सन्ति ते भवति सद्दृष्टयः ॥

उहयगुणयसणभयमलवेरग्गइचारभत्तिविग्घं वा ।

एदे सत्तत्तरिया दंसणसाययगुणा भणिया ॥ ८ ॥

उभयगुणव्यसनभयमलप्रेराग्यातिचारभक्तिभिन्नानि वा ।

एते सप्तति दर्शनश्रावकगुणा भणिता ॥

देवगुरममयभक्ता संसारशरीरभोगपरिचत्ता ।

रयणत्तयसंजुत्ता ते मणुवो मित्रमुहं पत्ता ॥ ९ ॥

देवगुरसमयभक्ता संसारशरीरभोगपरित्यक्ता ।

रत्नत्रयसयुक्तास्ते मनुष्या शिष्यमुप प्राप्ता ॥

दानं पूजा सीलं उपवासं बहुविहं पि खरणं पि ।

सम्मज्जुदं मोक्खसमुहं सम्म विणा दीहसंसारं ॥ १० ॥

दानं पूजा शीलं उपवासं बहुविधमपि धमणमपि ।

सम्यग्प्रयुत मोक्षमुखं सम्यक्त्वं विना दीर्घसंसारं ॥

दानं पूजामुत्तमं सावधधम्मे ण सावयां तेण विणा ।

ज्ञाणज्झयणं मुत्तमं जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ॥ ११ ॥

दानं पूजा मुख्या श्रावकधर्मे न श्रावकाः तेन विना ।

ध्यानाध्ययनं मुख्यं यतिधर्मे ॥ विना तथा सोऽपि ॥

दाणु ण धम्मो ण चागु ण भोगु ण बहिरप्प जो पयंगो सो ।

लोइकसायग्गिमुहे पाडिउं मरिउं न संदेहो ॥ १२ ॥

दानं न धर्मः न त्यागो न भोगो न बहिरात्मा यः पतङ्गः ।

स लोभकपायाग्निमुखे पतितः मृतः न सन्देहः ॥

जिणपूजा मुणिदानं करेइ जो देइ सत्तिरूपेण ।

सम्माइटी सावयधम्मी सो होइ मोक्खमग्गरवो ॥ १३ ॥

जिनपूजा मुनिदानं करोति यो ददाति शक्तिरूपेण ।

सम्पददृष्टिः श्रावकधर्मा स भवति मोक्षमार्गरतः ॥

पूयां (य) फलेण तिलोके सुरपुज्जो हवेइ सुद्धमणो ।

दाणफलेण तिलोए सारमुहं भुंजदे णियदं ॥ १४ ॥

पूजाफलं त्रिलोके सुरपूज्यो भवेत् शुद्धमना ।

दानफलेन त्रिलोके सारमुखं भुंक्ति नियतः ॥

दाणं भोयणमेत्तं दिण्णइ धणो हवेइ सायारो ।

पत्तापत्तविसेसं सदंसणे किं वियारेण ॥ १५ ॥

दानं भोजनमात्रं ददाति धन्यो भवति सागारः ।

पात्रापात्रविशेषं स्पदर्शने किं विचारेण ॥

दिण्णइ सुपत्तदाणं विसेसतो होइ भोगसग्गमही ।

णिब्बाणमुहं कमसो णिदिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ १६ ॥

ददाति सुपात्रदान विशेषत भवति भोगस्वर्गमही ।

निर्माणमुख क्रमश निर्दिष्टं जिनपरेन्द्रे ॥

खेत्तनिसेसे काले ववियसुग्रीय फलं जहा पिउलं ।

होइ तथा त जाणइ पत्तविसेसेसु दाणफलं ॥ १७ ॥

क्षेत्रविशेषे काले उपितसुग्रीजं फलं यथा पिपुठं ।

भवति तथा तज्जानाहि पात्रविशेषे सुदानफल ॥

इह पियसुनित्तवीयं जो वगइ जिणुत्तमत्तसेत्तेसु ।

सो तिहुवणरज्जफलं भुंजदि कल्याणपंचफल ॥ १८ ॥

इह निजसुनित्तवीजं यो वपति जिनोक्तसत्तक्षेत्रेषु ।

त त्रिमुवनराज्यफल भुनक्ति कल्याणपंचफल ॥

मादुपिदुपुत्तमित्तकलत्तघणघणवत्थुवाहनिमयं ।

संसारसारसौम्यं सर्वं जानीउ सुपात्रदानफलं ॥ १९ ॥

मातृपितृपुत्रमित्रकलत्रधनधातयस्तुराहनविषयं ।

संसारसारसौम्यं सर्वं जानीहि सुपात्रदानफलं ॥

सत्तंगरज्जगणिहिमंडारखट्ठंगवलचउदहरयणं ।

छण्णवदिसहसिच्छिनिहउ जाणह सुपात्रदानफलं ॥ २० ॥

सत्ताद्वारायनगणिमिण्डारखड्गखट्ठवत्तुदशरत्नं ।

पण्णवत्तिसहस्रस्रोणिमयं जानीहि सुपात्रदानफलं ॥

सुवुलसुखसुलक्षणसुमंडसुमिवरासुसीलसुगुणचरित्तं ।

सुहृत्तेसं सुहणामं सुहमाटं सुपात्रदानफलं ॥ २१ ॥

१ जाणउ स । २ इय स । ३ फरा स । ४ सवलसगमुहाणुहण विअ

जाणउ स पुरतके, सफलसुखानुभवने विमव जानीहि ।

सुकुलसुरूपसुलक्षणसुमतिशिक्षासुशीलसुगुणचरित्र ।

शुभलेख्य शुभनाम शुभसात सुपात्रदानफलं ॥

जो मुणिभैतवसेसं भुंजइ सो भुंजए जिणुदिदं ।

संसारसारसोकरं कमसो णिव्वाणवरसोकरं ॥ २२ ॥

यो मुनिभक्तावशेष भुक्ते स भुक्ते जिनापदिष्ट ।

संसारसारसौरय क्रमश निर्गणसौख्य ॥

सीदुण्हं वाउ पिउलं सिलेसिमं तह परीसमं वाहि ।

कायकिलेमुव्यासं जाणिचां दिण्णए दाणं ॥ २३ ॥

शीताष्ण घातं पित्तं श्लेष्म तथा परिश्रम व्याधि ।

कायक्लेश उपवास शान्ता दत्त दान ॥

हियमियमण्णं पाणं निरवज्जोसहि निराउलं ठाणं ।

सयणासनमुचयरणं जाणिचां देइ मोक्खरवो ॥ २४ ॥

हितमित अन्न पान निरवज्जोपधि निराकुल स्थान ।

शयनासन उपकरणं शान्ता ददाति मोक्षरत ॥

अणयाराणं वेज्जावच्चं कुज्जा जहेह जाणिचा ।

गम्भब्भेमेव मादा पिदु वा णिच्चं तहा निरालसया ॥ २५ ॥

अनगाराणां वैपातृत्य कुर्यात् यथेह ह्य वा ।

गर्भोद्भवमिव माता पिता वा नित्य तथा निरात्सक ॥

सप्पुरिसाणं दाणं कर्णतरूणं फलाण सोहं वा ।

लोहीणं दाणं जइ विमाणसोहा सव्वं जाणे ॥ २६ ॥

सत्पुरुषाणां दानं कल्पतरूणां फलानां शोभाभिः ।

लोभिनां दानं यदि विमानशोभा इत्यस्य जानीहि ॥

१ भुत । २ परीसमव्याधिं स । ३ जे स । ४ जाणिच्चा मोक्खसमगणजो स ।

५ भवे ॥ ६ कर्णसुराणविमाणसाह वा स । ७ सबस्य जानेह स ।

जसकित्तिपुण्णलाहे देइ सुगुणं पि जत्थ तत्थेय ।
संम्माइसुगुणभायण पत्तिसैसं ण जाणंति ॥ २७ ॥

यश कीर्तिपुण्यलाभे ददति सुगुणमपि यत्र तत्रैव ।
सम्यक्त्वादिसुगुणभाजनपात्रनिशेष न जानन्ति ॥

जंतं मंतं तंतं परिचरियं पक्खवाय पिययणं ।
पट्टच्च पंचमयाले भरहे दाणं ण किं पि मोक्खस्स ॥ २८ ॥

यत्र मत्र तत्र परिचर्या पक्षपात प्रियरचनं ।
प्रतीय पचमकाल भरते दान न किमपि मोक्षस्य ॥

दाणीणं दालिहं लोहीणं किं हवेइ महसिरियं ।
उहर्याण पुच्चजियकम्मफलं जाण होइ थिर ॥ २९ ॥

दानिना दरिद्रत्व लोभिना किं भवेत् महाश्री ।
उभयो पूर्वाजितकर्मफल यावत् भवति स्थिर ॥

घणघण्णाइसमिद्धे सुहं जहा होइ मच्चजीवारणं ।
मुणिदानाइममिद्धे सुहं तहा तं निणा दुग्गं ॥ ३० ॥

घनधा यादिसमृद्धे सुख यथा भवति सर्पजीवाना ।
मुनिदानादिसमृद्धे सुख यथा त निना दुःखं ॥

पत्त निणा दाणं च मुपुत्त निणा उद्दघणं महासेत्तं ।
चित्त निणा वयमुणचारित्तं णिरुत्तरणं जाणे ॥ ३१ ॥

पात्र निना दान च मुपुत्र निना वट्टघन महाक्षेत्रं ।
चित्त निना व्रतगुणमचारित्रं निष्करणं जानीहि ॥

जिण्णुद्वारपत्ति (दि) द्वाजिणपूजातित्थयंद्रणनिमे य घणं ।
जो भुंजइ मो भुंजइ जिणट्ठिट्ठं णिरयगईदुक्खं ॥ ३२ ॥

१ छिट्ठि ख । २ लोही ख । ३ दाण ण मोक्खस्स ख । ४ दाणीं ख ।
५ लोहेण ख । ६ उदयाण म । ७-८ मिद्धो पुस्तके पाठ । म पुस्तके तु
एष एव । ९ निमयणं ॥ ।

जीर्णोद्धारप्रतिष्ठाजिनपूजातीर्थवन्दनारिपये च धनं ।

यो भुक्ते स भुक्ते जिनदृष्ट नरकगतिदुःखं ॥

पुस्तकलक्षविदूरो दारिद्र्यो पंगु मूक बहिरंधो ।

चांडालादिकुजादो पूजादाणाइद्व्यहरो ॥ ३३ ॥

पुत्रकलत्रनिहूरः दारिद्र्यः पंगुः मूकः बधिरोऽन्धः ।

चांडालादिकुजातिः पूजादानादिद्रव्यहरः ॥

ईच्छिय फलं ण लब्भइ जइ लब्भइ सो ण भुंजदे णियदं ।

वा हाणमायरोसे पूजादाणाइद्व्यहरो ॥ ३४ ॥

इच्छितफलं न लभते यदि लभते स न भुक्ते नियत ।

..... पूजादानादिद्रव्यहरः ॥

गंयहस्थपायनासियकण्णउरंगुलविहाणदिट्ठी य ।

जो तिब्बदुक्कमूलो पूजादाणाइद्व्यहरो ॥ ३५ ॥

गतहस्तपादनासिकाकर्णोरोऽगुलविधानदृष्टिश्च ।

यः तीव्रदुःखमूलः पूजादानादिद्रव्यहरः ॥

रयकुट्टमूलमूलो लयिंभयंदरजलोदरपरिसिरो ।

सीदुप्पहवाहिरोई पूजादाणंतरायकम्मफलं ॥ ३६ ॥

क्षयकुष्ठमूलशूलं भगन्दरजलोदर ।

शीतोष्णवाह्यानि पूजादानान्तरायकर्मफलं ॥

णरईतिरियाइदुरईदरिद्वियलंगहाणिदुक्खाणि ।

देवगुरुसत्यवन्दनसुयमेयसज्ज्ञाइदाणविघणफलं ॥ ३७ ॥

नरकतिर्यग्दुर्गतिदरिद्रविकलाङ्गहानिदुःखानि ।

देवगुरुशास्त्रवन्दनाश्रुतभेदस्वाध्यायदाननिघ्नफलं ॥

जसकित्तिपुण्णलाहे देड मुगहुगं पि जत्थ तत्थेर ।

संम्माडमुगुणभायण पत्तप्पिसेस ण जाणंति ॥ २७ ॥

यश कीर्तिपुण्यलाभे ददति मुगहुकमपि यत्र तत्रेय ।

सम्यक्त्वादिसुगुणभाजनपात्रप्रशप न जानन्ति ॥

जंतं मंतं तंतं परिचरियं पक्खवाय पियवयणं ।

पहुच्च पंचमयाले भरहे दाणं ण कि पि मोक्खस्स ॥ २८ ॥

यत्र मत्र तत्र परिचर्या पक्षपात प्रियवचन ।

प्रतीय पचमकाले भरते दान न किमपि मोक्षस्य ॥

दाणीणं दालिहं लोहीणं कि हवेह महसिरियं ।

उहर्याण पुव्वजियकम्मफलं जाव होड थिर ॥ २९ ॥

दानिना दरिद्राद्य लोभिना कि भरेत् महाश्री ।

उभयो पूर्वाजितकर्मफलं यावत् भवति स्थिर ॥

धणधण्णाइसमिद्धे सुहं जहा होइ सव्वजीवाणं ।

मुणिदानाइसमिद्धे सुहं तहा तं विणा दुक्खं ॥ ३० ॥

धनधान्यादिसमृद्धे सुख यथा भवति सर्वजीवना ।

मुनिदानादिसमृद्ध सुख यथा विना दुःख ॥

पत्त पिणा दाणं च सुपुत्त विणा बहुधणं महाखेत्तं ।

चित्त विणा वयगुणचारित्तं निक्कारणं जाणे ॥ ३१ ॥

पात्र पिना दान च सुपुत्र विना बहुधन महाक्षेत्र ।

चित्त पिना व्रतगुणमचारित्र निष्कारण जानीहि ॥

जिण्णुद्धारपत्ति (दि) द्वाविणपूजातित्यचंदणप्पिसे य धणं ।

जो भुंजइ मो भुंजइ जिणदिहं निरयगईदुक्खं ॥ ३२ ॥

१ किटि ख । २ लोही ख । ३ दाण ण मोक्खस्स ख । ४ दाणेण ख ।

गेहण ख । ५ उदयाण ख । ६-८ मिद्धो पुत्तवे पाठ । ख पुत्तके तु

एव । ९ विसयधण ख ।

जीर्णोद्धारप्रतिष्ठाजिनपूजातीर्थत्रय दानप्रिये च धन ।
 यो भुक्त स भुक्त जिनदृष्टं नरकगतिदुःख ॥
 पुत्तकलत्तमिदूरो दारिद्र्यो पगु मूक बहिरघो ।
 चाडालाडकुजादो पूजादाणाडद्व्यहरो ॥ ३३ ॥
 पुत्रकलत्रमिदूर दारिद्र्य पगु मूक बधिरोऽघ ।
 चाडालाडिकुजाति पूजादानादिद्रव्यहर ॥
 ईच्छिय फल ण लब्धं जइ लब्धं सो ण भुजदे णियद ।
 वा हाणमायरोसे पूजादाणाडद्व्यहरो ॥ ३४ ॥
 इच्छितफलं न लभते यदि लभते स न भुक्ते नियतं ।
 पूजादानादिद्रव्यहर ॥
 गैयहस्तपायनासियकण्णउरगुलमिहागदिद्वी य ।
 जो तिव्वदुक्खसमूलो पूजादाणाडद्व्यहरो ॥ ३५ ॥
 गतहस्तपादनासिकाकर्णोरोऽगुलमिधानदृष्टिश्च ।
 य तीव्रदुःखमूल पूजादानादिद्रव्यहर ॥
 रायकुट्टमूलमूलो लयिंभयदरजलोदरमिर्मिरो ।
 सीदुण्हवाहिराई पूजादाणतरायकम्मफल ॥ ३६ ॥
 क्षयकुट्टमूलमूल भगन्दरजलोदर ।
 शीताण्णबालानि पूजादानातरायकर्मफल ॥
 परंइतिरियाइदुरईदरिद्रियलग्गहाणिदुक्खणि ।
 देवगुरुसत्त्वयवदणसुयमेयसज्जाइदाणमिघणफल ॥ ३७ ॥
 नरकतिर्यग्दुर्गतिदरिद्र्यकलान्नाहानिदुःखानि ।
 देवगुरुशास्त्रव दानाश्रुतभेदस्वाध्यायदानमिघ्नफल ॥

सम्मनिसोही तवगुणचारित्तमण्णाणदाणपरिही णं ।

भरहे दुस्ममकाले मणुयाणं जायदे णियदं ॥ ३८ ॥

सम्पक्वविशुद्धि तपोगुणचारित्रसंज्ञानदानपरिधय ।

भरते दु पमकाले मनुजाना जायते नियत ॥

ण हि दाणं ण हि पूजा ण हि सीलं ण हि गुणं णं चारित्तं ।

जे जइणा मणिया ते णेरइया होंति कुमाणुमा तिरिया ॥ ३९ ॥

न हि दान न हि पूजा न हि शील न हि गुण न चारित्रं ।

ये यत्तिना भणिता ते नारका भवति कुमानुपा तिरश्च ॥

ण नि जाणइ कज्जमकज्जं सेयमसेयं पुण्ण पापं हि ।

तच्चमत्तच्च धम्ममधम्म सो मम्मउम्मुत्तको ॥ ४० ॥

नापि जानाति कार्यमकार्यं श्रेयोऽश्रेयं पुण्यं पापं हि ।

तत्रमत्तैः धर्ममधर्मं स सम्यक् सो मुक्त ॥

ण नि जाणइ जोगमजोगं णिच्चमणिच्चं हेयमुपादेयं ।

मच्चमच्चं भवमभवं म मम्मउम्मुत्तको ॥ ४१ ॥

नापि जानाति योग्यमयोग्यं नित्यमनित्यं हेयमुपादेयं ।

सत्यमसत्यं भावमभावं स सम्यक् सो मुक्त ॥

लोडंयजणसगादो होइ मइमुहरवृडिलदुग्मावो ।

लोदयसगं तम्हा जोई वि तिपिहण मुंचाहो ॥ ४२ ॥

लौकिकजनसगतो भवति मनिमुसुरकुट्टिदुर्भार ।

लौकिरुसग तस्मात् योग्यापि त्रिभिधन मुञ्चतात् ।

उगो तिच्यो दुहो दुग्मावो दुस्सुदो दुरालावो ।

दुम्मदरदो विद्दो मा जीवो मम्मउम्मुत्तको ॥ ४३ ॥

१ या ख । २ अस्मादप्र हि इति शब्द । तत्र छ दामण जायते । अतो नो-
सारित स पुम्तठ नास्त्यपि । ३ गार्थेय ४० ४१ गार्थात् पूर्व एव पुम्तठे ।
४ जोई तिपिहेण ख । ५ वि ख ।

उग्र तीव्रो दुष्टो दुर्भावो दुःश्रुतो दुरालाप ।

दुर्मतरतो विरुद्ध स जीवो सम्यक्त्वोन्मुक्त ॥

सुदो रुदो रुदो अणिद विमुणो सगन्वियो सुओ ।

गायणजायणभण्डणदुस्सणसीलो दु मम्मउम्मुक्को ॥ ४४ ॥

क्षुदो रुद एष्ट अनिष्ट पिशुन सगर्हित सूय ।

गायनपाचनाभण्डनदुपणशीलस्तु सम्यक्त्वोन्मुक्त ॥

दीहा—

वाणरगद्दहसाणगयवग्घराहकरहा ।

पक्खिजल्लयसहाव णर जिणवरधम्मविणासु ॥ ४५ ॥

वानरगर्दभन्नगजव्याघ्रधराहकरभ— ।

पक्षिजलैकस्वभायो नर जिणवरधर्मविनाशक ॥

कुत्तयकुलिंगिकुणाणिकुवयकुसीले कुदंसणकुसत्थे ।

कुनिमित्ते सधुइ पधुइ पससणं सम्महाणि होइ गियमं ॥ ४६ ॥

कुत्तप कुलिंगिकुलानिकुव्रतकुशीलेषु कुदर्शनकुशास्त्रयो ।

कुनिमित्त संस्तुति प्रस्तुति प्रशंसन सम्यक्त्वहानि

भवति नियमेन ॥

सम्म विणा सण्णाणं सच्चारित्तं ण होइ गियमेण ।

तो रयणत्तयमज्झे सम्मुगुणुकिदमिदि जिणुदिदं ॥ ४७ ॥

सम्यक्त्व विना सञ्ज्ञान सच्चारित्र न भवति नियमेन ।

तत रनत्रयमध्ये सम्यक्त्वगुण उत्कृष्ट इति जिनिदिष्टम् ॥

तणुकुटी कुलभंगं कुणइ जहा मिच्छमप्पणो मि तहा ।

दाणाइसुगुणभंगं गइभंगं मिच्छत्तमेव हो कटं ॥ ४८ ॥

१ जिणमणिद ख १२ पाठेऽयं क पुस्तके नास्ति ख—पुस्तकात् संयोजित ।

तनुकुष्टी कुलभग करोति यथा मिथ्यात्वमापन्नोऽपि तथा ।

दानादिसुगुणभग गतिभग मिथ्यात्वमेव अहो ! कष्टम् ॥

देवगुरुधम्मगुणचारित्तं तत्सारमोक्षसंग्रहमेयं ।

जिणवरयणसुदिट्ठिं विणा दीसइ किह जाणए सम्मं ॥४९॥

देवगुरुधर्मगुणचारित्र तप सारमोक्षगतिभेदं ।

जिनवरयचनमुदाट्ठिं विना दृश्यते कथ ज्ञापके सम्पक्कय ॥

एक्कु एण ण विचित्तइ भोक्खणिमित्तं णियप्पमब्भावं ।

अणिस विचित्तइ पायं बहुलालायं मणे विचित्तेइ ॥ ५० ॥

एक क्षण न विचिन्तयति मोक्षनिमित्त निजात्मसद्भाव ।

अनिशं विचिन्तयति पाप बहुलालाप मनसा विचिन्तयति ॥

मिच्छामइमयमोहासवमत्तो वोल्लए जहो भुल्लो ।

तेण ण जाणइ अप्पा अप्पाणं सम्ममावाणं ॥ ५१ ॥

मिथ्यामतिमदमोहासवमत्त कथयति यथा स्मृत ।

तेन न जानाति आत्मा आत्मना सद्भावान् ॥

मिहिरो महंघयार मरुदो मेहं महावणं दाहो ।

वज्जो गिरिं जहा विणमिजइ सम्मे जहा कम्मं ॥ ५२ ॥

मिहिर महा वकार मरुत् मेघं महाननं दाह ।

वज्रो गिरिं यथा विनाशयति सम्यक्त्वरं तथा कर्म ॥

मिच्छंघयारसहियगिहमज्झम्मिय सम्मरयणदीरकलावं ।

जो पज्जलइ सैं दीसइ सम्मं लोयत्तयं जिणुदिट्ठ ॥५३॥

मिथ्यासाधकारद्वयगृहमध्ये च सम्यक्त्वरनदीपकद्रापं ॥

॥ प्रज्जालयति स पश्यति सम्यक् लोकत्रय जिनदृष्टं ॥

कामदुहिं कल्पतरुं चिन्तारयणं रसायणं परैर्मम ।

लद्धो भुञ्जइ सुखं जह द्वियं जाण तह सम्मं ॥ ५४ ॥

कामदुह कल्पतरु चिन्तारत्न रसायन परम ।

लब्ध सुख सुख यथा रिक्त जानीहि तथा सम्यक्त्वं ॥

कैतकफलभरियणिम्मलववगयकालियसुवण्णा व्व ।

मलरहियसम्मजुत्तो भव्ववरो लहइ लहु मोक्खं ॥ ५५ ॥

कैतकफलभृतनिर्मलव्यपगतकालिकासुवर्णयत् ।

मलरहितसम्यक्त्वयुतो भव्यवरो लभते लघु मोक्ष ॥

पुव्वठियं एवइ कम्मं पइसदु णो देइ अहिणवं कम्मं ।

इहपरलोयमहण्णं देइ तहा उवसमो भावो ॥ ५६ ॥

पूर्वस्थित क्षपयति कर्म प्रवेष्टुं न ददाति अभिनव कर्म ।

इहपरलोकमाहात्म्य ददाति तथा उपशमो भाव ॥

संम्माइट्ठी कालं वोळइ वेरग्गणाणभावेण ।

मिच्छाइट्ठी वांछादुब्भावालस्सकलहेहिं ॥ ५७ ॥

सम्यग्दृष्टि कालं गमयति वैराग्यज्ञानभावेन ।

मिथ्यादृष्टि वाञ्छादुर्भावालस्यकल्है ॥

अज्जवसप्पिणिभरहे पउरा रुद्धइणाणया दिट्ठा ।

णट्ठा दुट्ठा कट्ठा पाविट्ठा किण्हणीलकाओदा ॥ ५८ ॥

अथावसर्पिणीमरते प्रचुरा रुदार्तध्याना दृष्टा ।

नष्टा दुष्टा कष्टा पापिष्ठा कृष्णनीलकापोता ॥

अज्जवसप्पिणिभरहे दुस्समया मिच्छपुव्वया सुलहा ।

सम्मत्तपुव्वसायारणयार दुल्लहा होति ॥ ५९ ॥

अद्यावत्सर्पिणीभरते दुःपमाया मिथ्यान्वपूर्वका मुलभा ।

सम्पत्त्वपूर्वका सागारानगारा दुलभा भवति ॥

अज्जवमत्पिणिभरहे धम्मञ्ज्ञाण पमादरहिदुत्ति ।

जिणुदिद्व ण ह्मु मण्णड मिच्छादिट्ठी (हवे) मो (हु) ॥६०॥

अद्यावत्सर्पिणीभरते धर्म्यध्यान प्रमादरहितमिति ।

जिनदिष्ट न हि मन्यत मिथ्यादृष्टि भवत् स हि ॥

असुहादो गिरयाऊं सुहमागदो दुःसगसुहमाऊं ।

दुहसुहभाव जाणड ज ते रच्चेई त कुणहो ॥ ६१ ॥

अशुभता नरकाय शुभभावतस्तु र्गसुखाय ।

दुःखमुखमात्र जानीहि यत्तुम्य शेचते तद्दुःख ॥

हिंसाइसु क्रोधाइसु मिच्छाणाणेषु पक्खवाएसु ।

मच्छरिएसु मएसु दुरहिणिवेसेसु असुहलेसेसु ॥ ६२ ॥

हिंसादिषु क्रोधादिषु मिथ्याज्ञानेषु पक्षपातषु ।

मत्सरितेषु मतेषु दुरभिनिवेशेषु अशुभलक्ष्यासु ॥

विकहादसु रुद्धदृष्ट्याणेषु असूयणेषु दंडेषु ।

सल्लेषु गारवेषु र्पाइसु जो वट्टई असुहभागो ॥ ६३ ॥

निकषादिषु रुद्रार्चध्यानेषु असूयकेषु दण्डेषु ।

शत्रुषु गारवेषु र्पातिषु यो वर्तते अशुभभाव ॥

द्व्यतिकाय छप्पण तच्चपयत्येसु सत्तणवएसु ।

उधणमुक्खे तत्कारणरूपे नारसणुवेस्खे ॥ ६४ ॥

द्रव्यास्तिकायेषु पट्पचसु त उपदार्थेषु सप्तनयकेषु ।

बन्धनमोक्ष तत्कारणरूपे द्वादशानुप्रेक्षाया ॥

रयणत्तयस्त रूपे अजाकर्ममे दयाइसद्धम्मे ।

इचेवमाइगे जो वट्टइ सो होइ सुहभावो ॥ ६५ ॥

रत्नत्रयस्य रूपे आयकर्मणि दयादिधर्मे ।

इत्येवमादिके यो वर्तत स भवति शुभभाव ॥

सम्मत्तगुणादो सुगइ मिच्छादो होइ दुग्गई णियमा ।

इदि जाण किमिह बहुणा जं ते रुचेइ तं कुणहो ॥ ६६ ॥

सम्यक्त्रगुणत सुगति मिथ्यात्वतां भवति दुर्गति नियमात् ।

इति जानीहि किमिह बहुणा यत्तुस्य रोचत तत्कुल ॥

मोहु ण छिज्जइ अप्पा दारुणकम्मं करेइ बहुवारं ।

ण हु पावइ भवतीर कि बहुदुक्खं वहेइ मूढमई ॥ ६७ ॥

मोह न छिनति आमा दारुणकर्म करोति बहुवार ।

न हि प्राप्नोति भवतीर कि बहुदु खं वहति मूढमति ॥

धरियउ बाहिरि लिंगं परिहरियउ बाहिरक्खसोक्खं हिं ।

करियउ किरियाकम्मं मरिऊं जमिऊं बहिरप्पजिऊ ॥ ६८ ॥

धरति बाह्य लिंगं परिहरति बाह्याक्षसौख्य हि ।

करोति क्रियाकर्म मरति जायते बहिरात्मजीव ॥

मोक्षरणिमिचं दुक्खं वहेइ परलोयदिट्ठि तण्णुदिट्ठी ।

मिच्छाभाव ण छिज्जइ कि पावइ मोक्खसोक्खं हि ॥ ६९ ॥

मोक्षनिमित्तं दुःखं वहति परलोकदिष्टिं तनुदिष्टिं ।

मिथ्यात्वभावात् न छिनत्ति किं प्राप्नोति मोक्षसौख्यं हि ॥

ण ह्रु दंडइ कोहाइं देहं दंडइ कहां खवइ कम्म ।

सण्यो किं भुवइ तहा वम्मीए मारिए लोएँ ॥ ७० ॥

न हि दण्डयति क्रोधादीनि देह दण्डयति कथं क्षिपते कर्म ।

सर्प किं म्रियते तथा बल्मीके मारिते लोके ॥

उवंसमभवभावजुंदो णाणी सो भावेंसंजदो होइ ।

णाणी कसायवसगो असंजदो होइ सो ताव ॥ ७१ ॥

उपशमभवभावयुतो ज्ञानी स भावसंयतो भवति ।

ज्ञानी कषायवशगोऽसंयतो भवति स तान्त्र ॥

णाणी खवेइ कम्मं णाणवलेणोदि सुबोलए अण्णाणी ।

विज्जो मेसज्जमहं जाणे इदि णस्सदे वाही ॥ ७२ ॥

ज्ञानी क्षिपते कर्म ज्ञानबलेनेति सुकथयति अज्ञानी ।

वैद्यो भेषजं अहं जानामीति नाशयति वार्धि ॥

पुब्बं सेवइ मिच्छामलसोहणहेउ सम्मभेसज्जं ।

पच्छा सेवइ कम्मामयणासणचरियसम्मभेसज्जं ॥ ७३ ॥

पूर्वं सेवते मिच्छामलशोधनहतुं सम्यक्त्वभेषजं ।

पश्चात् सेवते कर्माभयनाशनचरितसम्यग्भेषजं ॥

अण्णाणी विसयविरत्तादो होइ सयसहस्सगुणो ।

णाणी कमायविरदो विसयासत्तो जिणुदिहं ॥ ७४ ॥

अज्ञानितः विषयविरक्तः भवति शतसहस्रगुणः ।

ज्ञानी कषायविरतः विषयासक्तः त्रिनोदिष्टम् ॥

विणजो भक्तिविहीणो महिलाणं रोयणं विणा गेहं ।

चागो वेरग विणा एदे दोवारिया मणिया ॥ ७५ ॥

विनयो भक्तिविहीनः महिलानां रोधनं विना स्नेह ।

त्यागो वैराग्यं विना एते दुर्वारका भगिताः ॥

मुहडो मूरत्त विणा महिला सोहमगरहियपरिसोहा ।

वेरगणाणसंजमहीणा खवणा न किं वि लभंते ॥ ७६ ॥

मुभट् शूरत्वं विना महिला सौभाग्यरहितपरिशोभा ।

वैराग्यज्ञानसंयमहाना क्षपणा न किमपि लभन्ते ॥

वस्तुसमगो मूढो लोहि यं लहियं फलं जहा पच्छा ।

अण्णाणी जो विसर्यपरिचत्तो लहइ तहा चेव ॥ ७७ ॥

वस्तुसमगो मूढो लोभी च लभते फलं यथा पश्चात् ।

अज्ञानी यो विषयपरित्यक्तो लभते तथैव ॥

वस्तुसमगो णाणी सुपत्तदोणी फलं जहा लहइ ।

णाणसमगो विसयपरिचत्तो लहइ तहा चेव ॥ ७८ ॥

वस्तुसमगो ज्ञानी सुपात्रदानी फलं यथा लभते ।

ज्ञानसमगो विषयपरित्यक्तो लभते तथैव ॥

भूमहिलाकण्णार्इलोहाहिविसहरं क्हं पि हवे ।

सम्मत्तणाणवेरगोसंहमंतेण जिणुदिट्ठं ॥ ७९ ॥

१ लोही. ख. । २ लहइ. ख. । ३ वेच्छा क. । ४ विसयासतो. ख. । ५ दाने ख. । ६ कण्णइ क. । ७ इ. क. । ८ कहियि. ख. । ९ मतेण ख. ।
वेरगसहमंतेण क. ।

भूमहिलाङ्ग-पादिलोमाहिनिपहरो वधमपि भवत् ।

सम्यक्त्वज्ञानरैराग्यौषधमत्रेण जिनोद्दिष्ट ॥

पुष्पं जो पंचेंदियतणुमेणुअचिहत्थपायमुंडहरो ।

पच्छा सिरमुंडहरो सिरगहपहणायगो होई ॥ ८० ॥

पूर्व य पचेद्रियतनुमनाङ्गघस्तपादमुडहर ।

पश्चात् शिरोमुडहर शिवगतिपयनायको भवति ॥

पतिभक्तिविहीण सर्दा मिथो य जिणसमयभक्तिहीण जई ।

गुरुभक्तिहीण सिस्सो दुग्गइमग्गाणुलग्गणो नियमो ॥ ८१ ॥

पतिभक्तिविहीणा सती भूयश्च जिनसमयभक्तिहीनो यति ।

गुरुभक्तिहीन शिष्यो दुर्गतिमार्गानुरागो नियमात् ॥

गुरुभक्तिविहीणाणं सिस्साणं सव्वसगरिरदाण ।

उसरैछेत्ते ववियसुणीयसमं जाण सव्वणुद्दाणं ॥ ८२ ॥

गुरुभक्तिविहीनाना शिष्याना सर्गसङ्गविरताना ।

ऊपरक्षेत्रे उपितसुणीयसमं जामीहि सर्वानुष्ठान ॥

रज्जं पहाणहीणं पदिहीणं देसगामरद्वलं ।

गुरुभक्तिहीणसिस्साणुद्दाणं णस्सदे मव्वं ॥ ८३ ॥

राज्य प्रज्ञानहीन पतिहीन देशग्रामार्धत्रल ।

गुरुभक्तिहीनशिष्यानुष्ठानं नश्यति सर्वं ॥

सम्माण विणं य रुईं भत्ति विणा दाण दया विणा धम्म ।

गुरुभक्ति विणा तत्तचरित्तं णिप्पलं जाण ॥ ८४ ॥

सम्मान विना च रुचि भक्ति विना दान दया विना धर्म ।

गुरभक्ति विना तपश्चारित्र निष्फल जानाहि ॥

हाणादाणवियारविहीणदो बाहिरकसमुक्ख हि ।

किं तजिय किं भजिये किं मोक्षु दिट्ठं जिणुदिट्ठं ॥ ८५ ॥

हानादानविचारनिहीनत बाह्याक्षमुख हि ।

किं त्यक्त किं भजित किं मोक्षो दृष्टो जिनदृष्ट ॥

कायकिलेसुखवासं दुद्धरतउत्तरणकारणं जाण ।

तं णियसुद्धसत्तुपरिपुणं चेदि कम्मणिम्मूलं ॥ ८६ ॥

कायकलशोपवास दुर्धरतपश्चरणकारण जानीहि ।

तज्जिजशुद्धस्वरूपपरिपूर्ण आत्मानि कर्मनिर्मूल ॥

कम्म ण खवेइ जो हु पराम्ह ण जाणेइ सम्मउम्मुक्को ।

अत्थु ण तत्थु ण जीवो लिंगं घत्तूण किं करई ॥ ८७ ॥

कर्म न क्षिपते या हि परमेश न जानाति सम्पत्त्वोन्मुक्त ।

अत्र न तत्र न जीवो लिंगं गृहीत्वा किं करोति ॥

अप्पाणं पि ण पिच्छइ ण मुणइ ण वि सइइ ण भावेइ ।

यहुदुक्खभारमूलं लिंगं घित्तूण किं करई ॥ ८८ ॥

आत्मानमपि न पश्यति न जानाति नात्र श्रद्धाति न भावयति ।

यद्बुद्ध सभारमूलं लिंगं गृहीत्वा किं करोति ॥

जाय ण जाणइ अप्पा अप्पाणं दुक्खमप्पणो त्थारं ।

तेण अणंतमुद्दाणं अप्पाणं भाणए जोई ॥ ८९ ॥

१ भणिय ए । २ किं मोक्षो न दिट्ठं ख । ३ णियसुद्धपदपरिपुण

ख । ४ घत्तूण ख ।

यावन्न जानाति आत्मा आत्मानं दुःखमात्मनस्तावत् ।

तेनानन्तमुखमात्मानं भावयेत् योगी ॥

• णियत्तच्चुवलद्धि विणा सम्मच्चुवलद्धि णत्थि णियमेण ।

सम्मच्चुवलद्धि विणा णिव्वाणं णत्थि जिणुदिट्ठं ॥ ९० ॥

निजतत्त्वोपलब्धिं विना सम्यक्त्वोपलब्धिर्नास्ति ।

सम्यक्त्वोपलब्धिं विना निर्गोण नास्ति त्रिनदृष्टं ॥

पवेयणसारब्भासं परमप्पाक्षाणकारणं ज्ञाणं ।

कम्मकरवणणिमित्तं कम्मकरवणेहि मोक्खमोक्खं हि ॥ ९१ ॥

प्रवचनसाराभ्यासं परमात्मध्यानकारणं ध्यान ।

कर्मक्षपणनिमित्तं कर्मक्षपणं मोक्षसौख्यं हि ॥

सालविहीणो राज दाणदयाधम्मरहियगिहसोहा ।

जाणनिहीणतरो वि ष जीर विणा देहसोहं चं ॥ ९२ ॥

सालविहीनो राजा दानदयाधर्मरहितगृहिशोभा ।

ज्ञाननिहीनतपोऽपि ष जीर विना देहशोभा च ॥

मक्खि सिलिम्मे पडिओ मुवड जहा तह परिग्गहे पडिउं ।

लोही मूढो खवणो कायकिलेसेसु अण्णाणी ॥ ९३ ॥

मक्षिका श्रेष्मणि पतिता म्रियते यथा तथा परिग्रहे पतितः ।

लोभी मूढः क्षपणः कायक्लेशेषु अज्ञानी ॥

जाणव्मासविहीणो सपरं तच्चं ण जाणए किं पि ।

ज्ञाणं तस्स ण होइ हु ताव ण कम्मं खवेइ ण हु मोक्खो ॥ ९४ ॥

ज्ञानाम्यासविहीनः स्वपरं तत्त्वं न जानाति किमपि ।

ध्याने तस्य न भवति हि तावन्न कर्म क्षपयति न हि मोक्षः ॥

अज्ज्ञयणमेव ज्ञाणं पंचेदियणिग्गहं कसायं पि ।

तो पंचमयाले पव-यणमारब्भासमेव कुज्जाहो ॥ ९५ ॥

अध्ययनमेव ध्यानं पंचेन्द्रियनिग्रहो कपायस्यापि ।

ततः पंचमकाले प्रवचनसारम्यासमेव कुर्यात् ॥

धम्मज्झाणब्भासं करेइ तिविहेण जाव सुद्वेण ।

परमप्पज्ञाणचेतो तेणेव खवेइ कम्माणि ॥ ९६ ॥

धर्म्यध्यानाभ्यासं करोति त्रिविधेन यावच्छुद्धेन ।

परमात्मध्यानचेताः तेनैव क्षपयति कर्माणि ॥

पावारंभणिवित्ती पुण्णारंभे पठत्तिकरणं पि ।

णाणं धम्मज्झाणं जिणभणियं सब्वजीवाणं ॥ ९७ ॥

पापारंभनिवृत्तिः पुण्यांभे प्रवृत्तिकरणमपि ।

ज्ञानं धर्म्यध्यानं जिनभणितं सर्वजीवानां ॥

सुदयाणब्भासं जो कुणइ सम्मं ण होइ तवयरणं ।

कुब्बं जइ मूढमइ संसारसुखानुरत्तो सो ॥ ९८ ॥

श्रुतज्ञानाभ्यासं यः करोति सम्यक्त्वं न भवति तपश्चरणं ।

कुर्वन् यतिः मूढमतिः संसारसुखानुरक्तः सः ॥

तच्चवियारणसीलो मोक्खपहाराहणासहावजुदो ।

अणवरयं धम्मकहापसंगदो होइ मुणिराओ ॥ ९९ ॥

तत्रनिचारणशीलो माझपथारावनास्वभावयुत ।

अनवरत धर्मकथाप्रसंगता भवति मुनिराज ॥

पिकहाडिपिप्पमुक्को आहाकम्माडिरिहो णाणी ।

धम्मदेसणकुमलो अणुपेहाभावणाजुदो जोई ॥ १०० ॥

पिकहाडिप्रमुक्त आघाकर्माडिरिहितो ज्ञाना ।

धर्मदेशनाकुशलाऽनुप्रेक्षाभावनायुतो योगी ॥

अनियप्पो णिहंदो णिम्मोहो णिक्कलंकओ णियदो ।

णिम्मलमहावजुत्तो जोई सो होइ मुणिराओ ॥ १०१ ॥

अविक्कलो नि हंदो निर्मोहो निक्कट्ठो नियत ।

निर्मलस्वभावयुक्तो यागा स भवति मुनिराज ॥

णिंदानंचणदूरो परिसहउवमग्गदुक्ख सहमाणो ।

सुहसाणज्झयणरदो गयसंगो होइ मुणिराओ ॥ १०२ ॥

निंदानचनादूर परीपदोपसर्गदु ख सहमान ।

शुभस्थानाध्ययनरतो गतसङ्गो भवति मुनिराज ॥

तिव्वं कायकिलेसं कुव्वंतो मिण्डभावसंजुत्तो ।

सव्यण्णुएसे सो णिव्वाणमुहं ण गच्छेई ॥ १०३ ॥

तीव्र कायशूलं कुर्वन् मिथ्यात्वमासयुक्त ।

सर्वजोषदेवन स निर्वाणमुखं न गच्छति ॥

रायाडमलजुदाणं णियप्परूपं ण दिस्सण किं पि ।

ममलादरिसे रूपं ण दिस्सण जह तहा णेय ॥ १०४ ॥

रागादिमलयुक्तानां निजात्मरूपं न दृश्यते किमपि ।

समलादर्शं रूपं न दृश्यते यथा तथा ज्ञेयम् ॥

दंडत्तयसल्लत्तयमंडियमाणो असूयगो साह ।

भंडणजायणसीलो हिंडइ सो दीहसंसारे ॥ १०५ ॥

दण्डत्रयशल्यत्रयमण्डितमानोऽसूयकः साधुः ।

भण्डनयाचनाशीलो हिण्डते स दीर्घमसारे ॥

देहादिषु अणुरत्ता विसयामत्ता कमायसंजुत्ता ।

अप्पसहाये सुत्ता ते साह सम्मपरिचत्ता ॥ १०६ ॥

देहादिषु अनुरक्ता विषयासक्ताः कपपसंयुक्ताः ।

आत्मस्वभावे सुक्ताः ते साधवः सम्पत्तपरित्यक्ता ॥

आरंभे धणधण्णे उवयरणे कक्खिया तहा सूया ।

वयगुणसीलविहीणा कसायकलहप्पिया मुहुरा ॥ १०७ ॥

आरम्भे धनधान्ये उपकरणे कक्षितास्तथा सूया ।

व्रतगुणशीलविहीना कपायकलहप्रिया मुखराः ॥

संघविरोहकुसीला सच्छंदा रहियगुरुकुला मूढा ।

रायाइसेयया ते जिणधम्मविराहिया साह ॥ १०८ ॥

संघविरोधकुसीलाः स्वच्छन्दा रहितगुरुकुला मूढाः ।

राजादिसेवकाः ते जिनधर्मविरावकाः साधवः ॥

जोइसविज्जामंतोपजीवनं वा य वस्सववहारं ।

धणधण्णपडिग्गहणं समणार्णं दूसणं होइ ॥ १०९ ॥

ज्योतिर्विद्यामंत्रोपजीवनं वा च वर्षव्यवहारं ।

धनधान्यप्रतिग्रहणं ध्रमणानां दूषणं भवति ॥

वसहीपडिमोमयरणे गणगच्छे समयजाडकुले ।

सिस्सपडिसिस्सलत्ते मुतजाते कप्पडे पुच्छे ॥ ११० ॥

वसतिप्रतिमोपकरणे गणगच्छे समयजातिकुले ।

शिष्यप्रतिशिष्यच्छात्रे मुतजाते कपटे पुस्तके ॥

पिच्छे संत्थरणे इच्छामु लोहेण कुण्ड ममयार ।

यायच्च अट्ठरुद्धं ताव ण मुंचेदि ण हु सोरसं ॥ १११ ॥

पिच्छिकाया सस्तरे इच्छामु लोभेन करोति ममकार ।

यानच्च आतरोद्गं तान्न मुञ्चति न हि मुख ॥

जे पावारभरया कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता ।

लोयववहारपउरा ते साह सम्मउम्मुक्ता ॥ ११२ ॥

ये पावारभरता कसायजुत्ता परिग्गहासत्ता ।

लोयववहारप्रचुरा ते साधव सम्पक्खोमुक्ता ॥

चम्मद्विममलवलुद्धो सुण्हो गज्जए मुणिं ? दिट्ठा ।

जह पाविट्ठो सो धम्मिदं दिट्ठा सगीयट्ठो ॥ ११३ ॥

चर्मास्थिमांसलज्जलुब्धं शुनक गर्जति मुनिं दृष्ट्वा ।

यथा पापिष्ठं स धर्मिष्ठं दृष्ट्वा .. ॥

ण सहंति इयरदण्यं थुवंति अप्पाण अप्पमहण्यं ।

जिब्भणिमित्तं कुणंति ते साह सम्मउम्मुक्ता ॥ ११४ ॥

न सहन्ते इतरदण्यं स्तुवन्ति आमनाममाहात्म्यं ।

जिब्भानिमित्तं कुर्वन्ति ते साधव सम्पक्खोमुक्ता ॥

१ सुवद्वान्तु क परिग्रहेषु । २ तावत्य क. । ३-, ११०-१११-गाथा
द्वय अत्रस्थले नास्ति ख पुस्तके । ४ नेद गाथासूर्य य-पुस्तके । ५ थुवंति ये
ह्य स ।

भुंजेइ जहालाहं लहेइ जइ णाणसंजमणिमित्तं ।

ज्ञाणज्झयणणिमित्तं अणियारो मोक्खमगारवो ॥ ११५ ॥

मुक्ते यथा लाभ लभते यति ज्ञानसयमनिमित्त ।

ध्यानाध्ययननिमित्त अनगारो मोक्षमार्गरत ॥

उयरग्गिसमणमकरमकरण गोयार सव्वमपूरण भमर ।

णालण तप्पयारे णिच्च एव भुंजए भिक्खु ॥ ११६ ॥

उदरान्निशमन अक्षन्नक्षण गोचार श्वन्नपूरण भ्रमर ।

ज्ञात्वा तत्प्रकारान् नित्यमेव मुक्ता भिक्षु ॥

रसरुहिरमंसमेदद्विसुकिलमलमुत्तपूयकिमिग्रहुलं ।

दुर्गांधमसुइचम्ममयमणिधमचेयणं पडणं ॥ ११७ ॥

रसरुधिरमासमेदोऽस्थिशूलमलमूत्रपूयकृमिबहुल ।

दुर्गांधमशुचि चर्ममयमनित्यमचेतन पतन ॥

बहुदुक्खभायणं कम्मकारणं भिण्णमप्पणो देहो ।

तं देहं धम्माणुद्वाणकारणं चेदि पोसए भिक्खु ॥ ११८ ॥

बहुदु खभाजनं कर्मकारण भिन्न आत्मनो देह ।

तं देह धर्मानुष्ठानकारण चेति पोषयेत् भिक्षु ।

कोहेण य कलहेण य जायणसीलेण सकिलेसेण ।

रुहेण य रोसेण य भुंजइ किं वित्तरो भिक्खु ॥ ११९ ॥

क्रोधेन च कलहेन च याचनाशीलेन सक्लेशेन ।

रुद्रेण च रोपेण च मुक्ते किं व्यन्तरो भिक्षु ॥

दिव्युत्तरणसरित्थं जाणिच्चाहो धरेह जइ मुद्धो ।

तत्तायसपिंडसमं भिक्खु तुह पाणिगयपिंडं ॥ १२० ॥

दिव्योत्तरणसदृशं ज्ञात्वा अहो धर यदि शुद्धं ।

तप्तायःपिण्डसमं भिक्षो ! तव पाणिगतपिण्डं ॥

संजमतवज्ञाणज्ज्ञयविष्णाणए गिण्हए पटिग्गहणं ।

वचइ गिण्हइ भिक्खू ण भवक्कदे वज्जिटुं दुक्खं ॥ १२१ ॥

संयमतपोध्यानाध्ययनविज्ञानकेन गृह्णाति प्रतिग्रहणं ।

त्यक्त्वा गृह्णाति भिक्षु न शक्नोति वर्जितुं दुःखं ॥

भुत्तो अयोगुलोसइयो तत्तो अग्गिसिखोपमो यज्जे ।

भुंजइ ये दुस्साला रत्तपिण्डं असंयत्तो ॥ १२२ ॥

..... ।

..... ॥

अविरददेसमहज्जइ आगमरुट्ठं विचारतच्चण्हं ।

पत्तत्तरं सहस्सं णिदिट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ १२३ ॥

अविरतदेशमहाव्रतिनां आगमरूचीनां विचारतन्वज्ञानां ।

पात्रान्तरं सहस्रं निर्दिष्टं जिनवरैन्दैः ॥

उवसमणिरीहज्ञाणज्ञयणाइमहागुणा जहा दिट्ठा ।

जेसिं ते मुणिणाहा उत्तमपत्ता तहा भणिया ॥ १२४ ॥

उपशमनिरीहध्यानाध्ययनमहागुणा यथा दृष्टाः ।

येषां ते मुनिनाया उत्तमपात्राणि तत्रा भणिताः ॥

दंसैणमुद्धो धम्मज्ज्ञाणरदो संवज्जिदो णिसद्धो ।

पत्तविसेसो मणियो ते गुणहीणो दु विवरीदो ॥ १२५ ॥

दर्शनशुद्धो धर्म्यध्यानरतः संवर्जितः निःशक्त्यः ।

पात्रविशेषो मणितः तैर्गुणैः हीनस्तु विपरीतः ॥

सम्माङ्गुणविसेसं पचविसेसं जिणेहि णिदिढं ।

तं..... ॥ १२६ ॥

सम्यक्त्वादिगुणविशेषः पात्रविशेषो जिनैः निर्दिष्टः ।

..... ॥

ण वि जाणइ जिणसिद्धसरूव तिविहेण तह णियप्पाणं ।

जो तिव्वं कुणइ तवं सो हिंदइ दीहसंसारे ॥ १२७ ॥

नापि जानाति जिनसिद्धस्वरूपं त्रिविधेन तया निजात्मानं ।

यः तीव्रं करोति तपः स हिंइते दीर्घसंसारे ॥

णिच्छयववहारसरूवं जो रयणत्तयं ण जाणइ सो ।

जं कीरइ तं मिच्छारूवं सव्वं जिणुदिढं ॥ १२८ ॥

निश्चयव्यवहारस्वरूपं यो रत्नत्रयं न ज्ञानाति सः ।

यत्करोति तन्मिथ्यारूपं सर्वं जिनदृष्टं ॥

किं जाणिउण सयलं तच्चं किंचर तवं च किं बहुलं ।

सम्मविसोहिविहीणं णाणतवं जाण भववीयं ॥ १२९ ॥

किं ज्ञात्वा सकलं तत्त्वं कृत्वा तपः च किं बहुलं ।

सम्यक्त्वविशुद्धिविहीनं ज्ञानतपः जानीहि भववीजं ॥

वयगुणशीलपरीसहजयं च चरियं च तवं छडावसयं ।

झाण झयणं सव्वं सम्म विणा जाण भववीयं ॥ १३० ॥

व्रतगुणशीलपरीपहजयं च चरितं च तपः पडावश्यकानि ।

ध्यानं अध्ययनं सर्वं सम्यक्त्वं विना जानीहि भववीजं ॥

राई पूजा लाहं मक्काराई किमिच्छसे जोई ।

इच्छसि जइ परलोयं तेहिं किं तुझ परलोयं ॥ १३१ ॥

ह्यार्ति पूजा लाभ सत्कारादि किमिच्छसि योगिन् ।।

इच्छसि यदि परलोक तै किं तत्र परलोक ॥

कम्मादविहावसहारगुणं जो भाविउण भावेण ।

णियसुद्धप्पा रुचइ तस्म य णियमेण होइ णिव्वारणं ॥१३२॥

कर्मात्मनिभासस्वभासगुण यो भासयित्वा भावेन ।

निजशुद्धात्मा रोचते तस्मै च नियमेन भवति निरणं ॥

मूलोत्तरोत्तरदव्वाडी भासकम्मदो मुक्को ।

आसवरंधणसंवरणिज्जर जाणेह किं बहुणा ॥ १३३ ॥

मूलोत्तरोत्तरद्रव्यत भासकर्मतः मुक्त ।

आस्रवधनसवरनिर्जरा जानीहि किं बहुना ॥

विसयविरत्तो मुंचइ विसयासत्तो ण मुंचए जोई ।

बहिरस्तरपरमप्पाभेयं जाणेह किं बहुणा ॥ १३४ ॥

विषयविरक्तो मुचति विषयासक्तो न मुचति योगी ।

बहिरन्त परमाममेद जानीहि किं बहुना ॥

अप्पाण जाणझाणज्झयणमुहमियरसायणप्पाणं ।

मोत्तूणज्जरणाण सुहं जो भुंजइ सो हु बहिगप्पा ॥ १३५ ॥

आमनो ज्ञानध्यानाध्ययनमुखाभूतरसायनपान ।

मुक्त्वा अध्याना मुखे यो मुक्ते स हि बहिरात्मा ॥

किंपायफलं पक्वं विममिस्मिदमोदं गिं चारमुहं ।

जिन्मसुहं दिट्ठिपियं जह तह जाणसमोसं पि ॥ १३६ ॥

निम्पाकफलं विषयिश्रितमोदकं चारमुख ।

जिन्हामुखं दृष्टिप्रियं यथा तथा जानीहि अश्रमुखमपि ॥

देह कलत्तं पुत्तं मिच्छाद् निहायचेदणारूपं ।

अप्पसरूपं भावद् सो चेव हवेद् बहिरप्पा ॥ १३७ ॥

देह कलत्र पुत्र मित्रादिक विभावचेतनारूप ।

आत्मस्वरूप भावयति स एव भवेत् बहिरात्मा ॥

इन्द्रियविसयसुहाइसु मूढमई रमई ण लहई तच्चं ।

बहुदुक्खमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेद् बहिरप्पा ॥ १३८ ॥

इन्द्रियनिपयसुखादिषु मूढमति रमते न लभते तत्त्व ।

बहुदुःखमिति न चिन्तयति स एव भवेत् बहिरात्मा ॥

जं जं अब्रह्माण सुहं तं तं तिप्पं करेइ बहुदुक्खं ।

अप्पाणमिदि ण चिंतइ सो चेव हवेद् बहिरप्पा ॥ १३९ ॥

यद्यदक्षाणां मुखं तत्तत्तीव्र करोति बहुदुःख ।

आत्मानमिति न वि तयति स एव भवेद् बहिरात्मा ॥

जेसिं अमेज्झमज्झे उप्पण्णाणं हवेइ तत्थेव रुई ।

तह बहिरप्पाणं बाहिरिन्द्रियविसयसु होइ मई ॥ १४० ॥

येषां अमेध्यमध्ये उत्पन्नानां भवतु तत्रैव रुचि ।

तथा बहिरात्मना बहिरिन्द्रियनिपयेषु भवति मति ॥

सिविणे वि ण भुंजइ विसयाइं देहाइमिण्णभावमई ।

जइ णियप्परूपो सिवमुहरत्तो दु मज्झिमप्पो सो ॥ १४१ ॥

स्वप्नेऽपि न भुक्ते विषयान् देहादिभिन्नभावाति ।

भुक्ते निजामरूपं शिरसुखरक्तं तु मध्यमात्मा स ॥

मलमुत्तघडव्व चिर वासिय दुव्वासणं ण भुंचेइ ।

पक्खालियसम्मत्तजलो यैण्णाणम्मएण पुण्णो वि ॥ १४२ ॥

१ रमइ लहइ ण लहई त ख । २ वि य णाणावियेण पुण्णो वि ख ।

मलमूत्रघटवत् चिरं वासिता दुर्वासना न मुच्यते ।

प्रक्षालितसम्पत्त्वजलो यज्ज्ञानामृतन पूर्णोऽपि ॥

सम्माइही णाणी अस्सराण सुहं कहं पि अणुहवइ ।

केणापि ण परिहारण वाहेणणिणामणद्ध भेमज्जं ॥ १४३ ॥

सम्यग्दृष्टिं ज्ञानी अक्षाणां मुखं कथमपि अनुभवति ।

केनापि न परिहारयति व्याधिरिनाशार्थं भेषजं ॥

किं बहुणा हो तज्जि बहिरप्पसरूपाणि सयलभाणाणि ।

भजि मज्झिमपरमप्पा वत्थुसरूपाणि भाणाणि ॥ १४४ ॥

किं बहुना अहो त्यज बहिराभस्वरूपान् सकलभाषान् ।

भज मध्यमपरमात्मना वस्तुस्वरूपान् भाषान् ॥

चउगइसंसारगमणकारणभूयाणि दुवसहेउणि ।

ताणि ह्वे बहिरप्पा वत्थुसरूपाणि भाणाणि ॥ १४५ ॥

चतुर्गतिसंसारगमनकारणभूता दुःखहेतवः ।

ते भवन्ति बहिरात्मना वस्तुस्वरूपा भावाः ॥

मोक्खगइगमणकारणभूयाणि पमत्थपुण्यहेउणि ।

ताणि ह्वे दुव्विहप्पा वत्थुसरूपाणि भाणाणि ॥ १४६ ॥

मोक्षगतिगमनकारणभूता प्रशस्तपुण्यहेतवः ।

ते भवन्ति द्विविधमना वस्तुस्वरूपा भावाः ॥

दब्बगुणपज्जएहिं जाणइ परममयममयादिविभेयं ।

अप्पाणं जाणइ मो मिग्गएपहणायगो होई ॥ १४७ ॥

द्रव्यगुणपर्याये जानाति परममयस्यमयादिविभेदं ।

आत्मानं जानाति स शिरगपथनायको भवति ॥

बहिरंतरूपमेयं परसमयं भण्यते जिणिदेहिं ।

परमण्यो सगसमयं तन्मेयं जाण गुणठाणे ॥१४८॥

बहिरन्तरात्मभेदः परसमयः भण्यते जिनेन्द्रैः ।

परमात्मा स्वकसमयः तद्भेदं जानीहि गुणस्थाने ॥

मिस्मोत्ति बहिरण्या तरतमया तुरिय अंतरण्यजहण्णा ।

संतोत्ति मज्झिमंतर खीणुत्तम परम जिणसिद्धा ॥१४९॥

मिश्रेति बहिरात्मा तरतमकः तुर्ये अन्तरात्मजघन्यः ।

शान्तेति मध्यमान्तः क्षीणे उत्तमः परमाः जिनसिद्धाः ॥

मुदत्तयसल्लत्तयदोसत्तयदंडगारवतयेहिं ।

परिमुक्को जोई सो सिवगइपहणायगो होई ॥१५०॥

मूढत्रयशल्पत्रयदोषत्रयदण्डगारवत्रयै न

परिमुक्तो योगी स शिवगतिपथनायको भवति ।

रयणत्तयकरणत्तयजोगत्तयगुत्तित्तयविमुद्धेहिं ।

संयुत्तो जोई सो सिवगइपहणायगो होई ॥१५१॥

रत्नत्रयकरणत्रययोगत्रयगुप्तित्रयविशुद्धैः ।

संयुक्तो योगी स शिवगतिपथनायको भवति ॥

बहिरन्मंतरगंधविम्मुक्को मुद्धोवजोयसंयुत्तो ।

मूलुत्तरगुणपुण्णो सिवगइपहणायगो होई ॥१५२॥

बहिरभ्यन्तरागन्धविमुक्तः शुद्धोपयोगसंयुक्तः ।

मूलोत्तरगुणपूर्णः शिवगतिपथनायको भवति ॥

जं जाइ जरामरणंदुहदुद्धविसाहिविसविणासयरं ।

सिवसुहलाहं सम्मं संमावई सुणई साहए साह ॥१५३॥

यज्जातिजरामरणदु खदुष्टत्रिपाहित्रिपनिनाशकर ।

शिखसुखलाम सम्यक्त्वं संभाष्य शृणु साधक साधो ॥

किं नहुणा हो देविंदाहिदणरिंदगणधरिंदेहि ।

पुज्जा परमप्या जे तं जाण पहाणसम्ममुणं ॥१५४॥

किं बहुना अहो देवेन्द्राहीन्द्रनरेन्द्रगणधरेन्द्रे ।

पूज्या परमामान ये तज्जानीहि प्रधानमम्यक्त्वगुण ॥

उत्तममई सम्मतं मिच्छत्त बलेण पेहए तस्म ।

परिवटंति कसाया असत्पिणिकालदोसेण ॥१५५॥

उपशमक सम्यक्त्व मिथ्यात्वं बलेन क्षिपति तत् १ ।

परितर्त ते कपाया असत्पिणीकालदोषण ॥

गुणवयतत्तममपडिमांदाणं जलगालणं अणत्थमियं ।

दंसणणाणचरित्तं किरिया तेवण्णा सानया भणिया ॥१५६॥

गुणवत्तत्तप समप्रतिमादानं जलगालनं अनस्तमितं ।

दर्शनज्ञानचरित्र क्रिया त्रिपंचाशत् धारिका भणिता ॥

णाणेण ज्ञाणसिद्धी ज्ञाणादो मय्यकम्मणिज्जरणं ।

णिज्जरणफलं मोवरं णाणब्भासं तदो बुज्जा ॥१५७॥

ज्ञानेन ध्यानसिद्धि ध्यानत सर्वकर्मनिर्जरणं ।

निर्जरणफलं मोक्ष ज्ञानाम्पाम तत कुर्यात् ॥

कुमलस्स तमो णिवुणस्स सज्जमो समपरस्स चेरग्गो ।

सुदभावणेण तत्तिय तम्हा सुदभाणं बुण्ह ॥१५८॥

१ अस्माद्वाप्यासुप्रादप्र १२२ अके स्थिता गाया पुनरपि त्रिचिन-पुस्तके
वर्तते । सा तु अत्र पुनर्न मुद्रिता । ख पुस्तके तु अत्रैव वर्तत, न तु तत्र ।
२ रात्रिमुक्तिवर्जन ।

कुशलस्य तप निपुणस्य सयम समपास्य वैराग्य ।

श्रुतभावेन तत्रय तस्माच्छ्रुतभावना कुर्यात् ॥

कालमर्णतं जीवो मिच्छास्वरूपेण पंचसंसारं ।

हिंसादि ण लई सम्मं संसारम्ममणपारमो ॥१५९॥

कालमनन्त जीवो मिथ्यास्वरूपेण पंचसंसारं ।

हिण्डते न लभते सम्मक्ख संसारम्ममणपारम्म ॥

सम्मदंसणसुद्धं जाव दु लभते हि ताव सुद्धी ।

सम्मदंसणसुद्धं जाव ण लभते हि ताव दुद्धी ॥१६०॥

सम्पादर्शनशुद्ध यावत्तु लभते हि तावत् सुद्धी ।

सम्पादर्शनशुद्ध यावन्न लभते हि तावदुद्धी ॥

किं बहुणा वचणेण दु सव्यं दुक्खेव सम्मच्च विणा ।

सम्मत्तेण वि जुत्तं सव्यं सोक्खेव जाणं सु ॥१६१॥

किं बहुना वचनेन तु सर्वं दुःखमेव सम्मक्खं विना ।

सम्मक्खेनापि युक्तं सर्वं सुखमेव जानीहि खलु ॥

जिक्खेवणयप्पमाणं सद्दालंकारच्छंद लहिधूणं ।

नाटयपुराणकम्मं सम्म विणा दीहसंसारं ॥१६२॥

निशेपनयप्रमाणं शब्दालंकारच्छंद . ।

नाटकपुराणकर्म सम्मक्ख विना दीविसंसारं ॥

रयणत्तयमेव गणं गच्छं गमणस्स मोक्खसमगास्म ।

संघो गुणसंघाओ समयो खलु निम्मलो अप्पो ॥१६३॥

१ लई रा । २ वा ख । ३ संसार रा । ४ अस्या अग्ने-वमही इति ११०
मिच्छे इति १११ याथातथ विहित-पुस्तके वर्तते, तत्र पूर्व ४१४ पृष्ठे आगत ।
स-पुस्तके तु अत्रैव वर्तते न तु पूर्व । ५ वस्मादग्ने मिहिते इति, मिच्छा इति,
पचयणसार इति, धम्मज्झाण इति च याथानुष्ठय । तत्र पूर्व क्रमेण ५२-५३-
५१-५६ अंके आगते ।

रत्नत्रयमेव गण गच्छ गमनस्य मोक्षमार्गस्य ।

सर्वो गुणसघात समय खड्ग निर्मल आ मा ॥

जिणलिंगधरो जोर्ड निरायसम्मत्तसंजुढो णाणी ।

परमोवेस्साहरियो सिग्गडपहणायगो होर्ड ॥१६४॥

जिनलिंगधरो योगी निरागसम्पक्कसपुत्ता ज्ञानी ।

परमोपक्षादिरित्त शिग्गतिपघनायको भरति ॥

सम्मं णाणं वेरग्गतवोभाणं णिरीहवित्तिचारित्त ।

गुणसीलसद्दाम उप्पज्जइ रयणसारमिणं ॥१६५॥

सम्पक्क ज्ञान वैराग्यतपोभाव निरीहवित्तिचारित्त ।

गुणशीलस्वभावं उत्पादयति रत्नसारोऽऽ ॥

गंधमिणं जो ण दिट्ठइ ण हु मण्णइ ण हु सुणेइ ण हु पढइ ।

ण हु चिंतइ ण हु भावइ सो चेव हवेइ कुदिट्ठी ॥१६६॥

अथमिमं यो न पश्यति न हि मन्यते न हि गृणानि न हि पठति ।

न हि चिन्तयति न हि भावयति स चेव भवेत् कुद्वष्टि ॥

इदि सज्जनपुज्जं रयणमार गंधं णिरालसो णिच्च ।

जो पढइ सुणइ भावइ पावइ मो सासय ठाण ॥ १६७ ॥

इति सज्जनपूय रत्नसारप्रथ निरालसो नित्य ।

य पठति शृणोति भावयति प्राप्नोति ॥ शश्वते स्थान ॥

समाप्तोय रयणसार

१ अस्या अत्र ५४ अंके स्थिता कामदुहीति गाथा नतत लिखित-पुस्तके ।
स-पुस्तके तु अत्रैव । २ अस्मादग्रे अज्जवित्तपिणी यादि ६० अंके स्थिता
गाथा लिखित-पुस्तके, स-पुस्तके त्वत्रैव ।

चारस अणुवेक्खा ।



णमिऊण सन्वमिद्धे ज्ञाणुत्तमसविददीहसमारे ।
दस दस दो दो य जिणे दस दो अणुपेहणं वोच्छे ॥ १ ॥

नेत्वा सर्वसिद्धान् ध्यानोत्तमक्षपितदीर्घससारान् ।
दश दश द्वौ द्वौ च त्रिनान् दश द्वौ अनुप्रेक्षा यक्ष्ये ॥

अद्भुतमसरणमेगत्तमण्णसंसार लोमममुचित्तं ।
आसवसंरणिज्जरघम्मं बोहि च चित्तेजो ॥ २ ॥

अद्भुतमशरणमेकवमन्यससारे लोकममुचित्त्वं ।
आसवसवरनिर्जराधर्मं बोधि च चिन्तयत् ॥

यरमवणजाणवाहणसयणासण देवमणुपरायाणं ।
मादुपिदुसजणमिधसंवंधिणो य पिदित्रियाणिच्चा ॥ ३ ॥

यरमवनमानगाहनशयनानानि देवमनुब्रह्मज्ञाम् ।
मातृपितृस्वजनभृत्यसम्बन्धिनश्च पितृव्योऽनित्या ॥

सामग्गिदियरूपं आरोग्यं जीवणं बलं तेजं ।
सोहमं लायणं सुरधणुमिव सस्सयं ण हवे ॥ ४ ॥

समप्रेन्द्रियरूपं आरोग्यं यौवनं बलं तेजः ।
सौभाग्यं लायण्यं सुरधनुरिव शाश्वतं न भवेत् ॥

जलबुब्बुदसक्कधणुरणरुचिधणसोहमिव थिर ण हवे ।
अहमिदहाणाइं बलदेवप्पहुदिपज्जाया ॥ ५ ॥

जलबुद्बुदशक्कधनु क्षणरुचिधनशोभेन स्थिरं न भवेत् ।
अहमिदस्थानानि बलदेवप्रभृतिपर्याया ॥

जीवणिनद्वं देहं खीरोदयमित्र त्रिणस्मदे मिग्धं ।

भोगोपभोगकारणद्रव्यं णिच्चं कहं होदि ॥ ६ ॥

जीवनिवद्देह क्षीरोदकमित्र त्रिणश्यति शीघ्रम् ।

भोगोपभोगकारणद्रव्यं नियं कथं भवति ॥

परमद्वेण तु आदा देवासुरमणुवरायनिहवेहिं ।

वदिरित्तो सो अप्पा सस्मदमिदि चित्ते णिच्चं ॥ ७ ॥

परमार्थेन तु आत्मा देवासुरमनुजराजनिभवे ।

व्यतिरिक्तः सा आत्मा शाश्वत इति चिन्तयेत् नियं ॥

इत्यधुनावुपेक्षा ।

मणिमंतोमहरकसा हयगयरहओ य सयलत्रिज्जाओ ।

जीवानं ण हि सरणं तिसु लोए मरणममयम्हि ॥ ८ ॥

मणिमन्त्रीपधरक्षा हयगजरथाश्च सकलविधा ।

जीवानां न हि शरणं त्रिसु लोकेषु मरणसमये ॥

सगो हवे हि दुर्गं मिथा देवा य पहरणं यज्जं ।

अइरावणो गइंदो इंदस्स ण त्रिज्जे मग्गं ॥ ९ ॥

स्वर्गो भवेत् हि दुर्गं मृत्या देवाश्च प्रहरणं वज्रं ।

ऐरावणो गजेन्द्र इन्द्रस्य न विद्यते शरणं ॥

णत्रणिहि चउदहरयणं हयमत्तगइंदुचाउरगत्तलं

चक्रेस्स ण सरणं पेच्छंतो कद्विं काले ॥ १० ॥

नयनिधि चतुर्दशरत्न हयमत्तगजेन्द्रचतुरङ्गयन्त्रम् ।

चक्रेशस्य न शरणं पश्यत वदिते कालेन ॥

जाइजरमरणरोगभयदो रक्खेदि अप्पणो अप्पा ।

तम्हा आदा सरणं बंधोदयसत्तकम्मवदिरित्तो ॥ ११ ॥

जातिजरमरणरोगभयत रक्षति आत्मानं आत्मा ।

तस्मादात्मा शरणं बंधोदयसत्तकर्मव्यतिरिक्त ॥

अरुहा सिद्धाइरिया उवझाया साहु पंचपरमेठी ।

ते पि हु चेहदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥ १२ ॥

अर्हन्त सिद्धा आचार्या उपाध्याया साधन पञ्चपरमेष्ठिन ।

ते पि हि तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मात् आत्मा हि मे शरणम् ॥

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारिचं च सत्तवो चेत् ।

चउरो चेहदि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥ १३ ॥

सम्यक्त्वं सद्विज्ञानं सच्चारित्रं च सत्तपथैव ।

चत्वारि तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मात् आत्मा हि मे शरणम् ॥

इत्यपारणानुप्रेक्षा ।

एको करेदि कम्मं एको हिडदि य दीहसंमारे ।

एको जायदि मरदि य तस्स फलं भुंजदे एको ॥ १४ ॥

एक करोति कर्म एक हिण्डति च दीर्घसंसारे ।

एक जायते म्रियते च तस्य फलं भुङ्क्ते एक ॥

एको करेदि पावं विसयणिमित्तेण तिव्वलोहेण ।

णिरयतिरियेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एको ॥ १५ ॥

एक करोति पाप विषयनिमित्तेन तीव्रलोभेन ।

नरकतिर्यक्षु जीवो तस्य फलं भुङ्क्ते एक ॥

एको करेदि पुण्णं धम्मणिमित्तेण पत्तदाणेण ।

मणुवदेवेसु जीवो तस्स फलं भुंजदे एको ॥ १६ ॥

एक करोति पुण्य धर्मनिमित्तेन पात्रदानेन ।

मानउदेवषु जीवो तस्य फल मुहूर्त्ते एक ॥

उत्तमपत्तं भणियं मम्मत्तगुणेण संजुदो साहू ।

सम्मादिही सावय मज्झिमपत्तो हु विष्णोयो ॥ १७ ॥

उत्तमपात्र भणित सम्यक्त्तगुणेन सयुत साधु ।

सम्यग्दृष्टि श्रावको मध्यमपात्र हि विज्ञेय ॥

णिदिहो जिनसमये अविरदसम्मो जहणपत्तोत्ति ।

सम्मत्तरयणरहियो अपत्तमिदि संपरिवत्तेज्जो ॥ १८ ॥

निदिष्ट जिनसमये अविरतसम्पत्तश्च जघन्यपात्रं इति ।

सम्यक्त्वरत्नरहित अपात्रमिति सपरीक्ष्य ॥

दसणमट्ठा भट्ठा दंसणमट्ठस्म णरिय निव्वणं ।

मिज्झंति चरियमट्ठा दंसणमट्ठा ण मिज्झति ॥ १९ ॥

दर्शनभट्टा भट्टा दर्शनभट्टस्य नारिण निरणम् ।

सिद्धवति चरित्रभट्टा दशनभट्टा न सिद्धवति ॥

एकोह णिम्ममो सुद्धो णाणदंमणलवरणो ।

मुद्धेयत्तमुपादेयमेवं चित्तेऽ संजदो ॥ २० ॥

एकोऽहं निर्मम शुद्ध ज्ञानदर्शनलक्षण ।

शुद्धैकाग्रमुपादेय एव चित्तमेव संयत् ॥

इत्येष्टवानुपदेशा ।

मादापिदरसहोदरपुत्रकुलत्तादिवंधुसदोहो ।

जीनस्स ण संयथो णियकम्भवसेण वटंति ॥ २१ ॥

मातृपितृसहोदरपुत्रकलत्रादिवन्धुसन्दोहः ।

जीवस्य न सम्बन्धो निजकार्यवशेन वर्तन्ते ॥

अण्णो अण्णं सोयदि मदोत्ति मम णाहगोत्ति मण्णंतो ।

अप्पाणं णं हु सोयदि संमारमहण्णवे चुट्ठं ॥ २२ ॥

अन्यः अन्यं शोचति मदीयोस्ति मम चायक इति मन्यमानः ।

आत्मानं न हि शोचति संसारमहार्णवे पतितम् ॥

अण्णं इमं सरीरादिगंघि जं होअ वाहिरं दब्बं ।

णाणं दंसणमादा एवं चित्तेहि अण्णत्तं ॥ २३ ॥

अन्यदिदं शरीरादिकं अपि यत् भवति बाह्यं द्रव्यम् ।

ज्ञानं दर्शनमात्रा एव चिन्तय अन्यत्त्वम् ॥

इत्यन्येषानुप्रेक्षा ।

पंचविधे संसारे जाइजरामरणरोगभयप्पउरे ।

जिणमग्गमपेच्छंतो जीवो परिभमदि चिरकालं ॥ २४ ॥

पंचविधे संसारे जातिजरामरणरोगभयप्रचुरे ।

जिनमार्गमपश्यन् जीवः परिभ्रमति चिरकालम् ॥

सर्वे वि पोमला खलु एगे भुत्तुज्झिया हु जीवेण ।

असयं अणंतखुत्तो पुग्गलपरियट्संसारे ॥ २५ ॥

सर्वेऽपि पुद्गलाः खलु एकेन मुक्तोज्झिता हि जीवेन ।

असकृदनंतकृत्वः पुद्गलपरिवर्तसंसारे ॥

सर्वमिह लोयखेत्ते कमसो तण्णत्थि जण्ण उप्पण्णं ।

उग्गाहणेण बहुसो परिभमिदो खेत्तसंसारे ॥ २६ ॥

सर्वस्मिन् लोकक्षेत्रे क्रमशः तन्नास्ति यत्र न उत्पन्न ।

अनगाहनेन बहुश परिभ्रमित क्षेत्रसंसारे ॥

असत्पिण्डिउत्सत्पिणिसमयावलियासु निरवसेसेसु ।

जादो मुदो य बहुसो परिभ्रमिदो कालसंसारे ॥ २७ ॥

अवसर्पिण्युत्सर्पिणासमयानलिकासु निरवशेषासु ।

जात मृत च बहुश परिभ्रमित कालसंसारे ॥

निरयाउजहण्णादिसु जाय दु उवरिल्लवा (गा) दु भैवेज्जा ।

मिच्छत्तसंसिदेण दु बहुसो वि भवट्ठिदी भमिदो ॥ २८ ॥

नरकायुर्जघन्यादिषु यावत् तु उपरितनानि ग्रैवेयिकाणि ।

मिथ्यात्वसञ्चितेन तु बहुश अपि भवस्थितौ भ्रमित ॥

सन्वे पयडिडिदिओ अणुभागप्पदेसरंघठाणाणि ।

जीओ मिच्छत्तज्जा भमिदो पुण भाउसंसारे ॥ २९ ॥

सर्वा प्रकृतिस्थितयोऽनुभागप्रदेशवधस्थानानि ।

जीव मिथ्यात्वज्जात् भ्रमित पुन भावसंसारे ॥

पुत्तफलत्तणिमित्त अत्थं अज्जयदि पापबुद्धीए ।

परिहरदि दयादानं सो जीवो भमदि संसारे ॥ ३० ॥

पुत्रकलत्रनिमित्त अर्थं अज्जर्यति पापबुद्ध्या ।

परिहरति दयादानं स जीव भ्रमति संसारे ॥

मम पुत्त मम भज्जा मम धणधणोत्ति तिच्चरुत्ताए ।

चइउण धम्मबुद्धिं पच्छा परिपडदि दीहसंसारे ॥ ३१ ॥

मम पुत्रो मम भार्या मम धनवायमिति तीव्रकाक्षया ।

त्यक्त्वा धर्मबुद्धिं पश्चात् परिपतति दीर्घसंसारे ॥

मिच्छोदयेण जीवो णिंदंतो जेणभासियं घम्मं ।
 कुधम्मकुलिंगकुतित्यं मण्णंतो भमदि संसारे ॥ ३२ ॥
 मिथ्यात्वोदयेन जीवः निदन् जैनभाषित धर्मम् ।
 कुधर्मकुलिङ्गकुत्तीर्य मन्यमानः भ्रमति संसारे ॥
 हंतूण जीवरसिं महुमंसं सेविऊण सुरपाणं ।
 परदब्बपरकलत्तं गहिऊण य भमदि संसारे ॥ ३३ ॥
 हत्वा जीवरसिं मधुमास सेवित्वा सुरापानम् ।
 परद्रव्यपरकलत्रं गृहीत्वा च भ्रमति संसारे ॥
 जत्तेण कुणइ पावे विसयणिमित्तं च अहणिसं जीवो ।
 मोहंधयारसहिओ तेण दु परिपडदि संसारे ॥ ३४ ॥
 यत्नेन करोति पापं निपयनिमित्तं च अहर्निश जीवः ।
 मोहान्धकारसहितः तेन तु परिपतति संसारे ॥
 णिचिदरधातुसत्तं य तरुदस वियलिंदिएमु छचेव ।
 सुरणिरयतिरियचउरो चोइस मणुवे सदसहस्सा ॥ ३५ ॥
 नित्येतरधातुसत्तं च तरुदश विकलेन्द्रियेषु पट् चैव ।
 सुखारकतिर्यक्चतस्रं चतुर्दश मनुजे शतसहस्राः ॥
 संजोगविप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
 संसारे भूदाणं होदि हु माणं तहावमाणं च ॥ ३६ ॥
 संयोगविप्रयोगं लाभालाभं सुखं च दुःखं च ।
 संसारे भूतानां भ्रमति हि मानं तथावमानं च ॥
 कम्मणिमित्तं जीवो हिंडदि संसारघोरकांतारे ।
 जीवस्स ण संसारो णिचयणयकम्मणिम्मुक्को ॥ ३७ ॥

सर्वस्मिन् लोकक्षेत्रे क्रमशः तत्रास्ति यत्र न उत्पन्न ।

अत्रगाहनेन बहुशः परिभ्रमति क्षेत्रसंसारे ॥

अत्रसर्पिण्युत्सर्पिणिसमयावलियासु निरवसेसेषु ।

जादो मुदो यः बहुसो परिभ्रमिदो कालसंसारे ॥ २७ ॥

अत्रसर्पिण्युत्सर्पिणीसमयावलिकासु निरवशेषासु ।

जातः मृतः च बहुशः परिभ्रमति कालसंसारे ॥

गिरयाउजहण्णादिसु जावः दु उवरिल्लवा (गा) दु गेवेज्जा ।

मिच्छत्तसंसिदेणः दु बहुसो वि भवद्धिदी भ्रमिदो ॥ २८ ॥

नरफायुर्जघन्यादिषु यावत् तु उपरितनानि प्रैवेयिकाणि ।

मिध्यात्वसंश्रितेन तु बहुशः अपि भवस्थितो भ्रमति ॥

सन्वे पयडिद्धिदिओ अणुभागपदेसंघठाणाणि ।

जीनो मिच्छत्तसंसा भ्रमिदो पुण भावसंसारे ॥ २९ ॥

सर्वाः प्रकृतिरित्यतोऽनुभागप्रदेशवधस्थानानि ।

जीवः मिध्यात्वनशात् भ्रमति पुनः भावसंसारे ॥

पुत्तकलत्तणिमित्तं अत्थं अज्जयदि पाप्पुद्धीए ।

परिहरदि दयादाणं सो जीनो भ्रमदि संसारे ॥ ३० ॥

पुत्रकलत्रनिमित्तं अर्थं अजर्यति पापबुद्ध्या ।

परिहरति दयादानं स जीवः भ्रमति संसारे ॥

मम पुत्तं मम भज्जा मम धणधणोत्ति तिच्चरुंसाए ।

चइउण धम्मबुद्धिं पच्छा परिपडदि दीहसंसारे ॥ ३१ ॥

मम पुत्रो मम भार्या मम धनधान्यमिति तीव्रकाक्षया ।

त्यक्त्वा धर्मबुद्धिं पश्चात् परिपतति दीर्घसंसारे ॥

मिच्छोदयेण जीरो णिंदंतो जेणभासियं धम्मं ।
 कुधम्मकुलिगकुतित्थं मण्णंतो भमदि संसारे ॥ ३२ ॥
 मिथ्यात्योदयेन जीव निदन् जैनभाषित धर्मम् ।
 कुधर्मकुलिङ्गुतीर्य मन्यमानः भ्रमति संसारे ॥
 हंतूण जीवरासिं महुमंसं सेण्णिण मुरपाणं ।
 परदव्वपरकलत्तं गहिण्ण य भमदि संसारे ॥ ३३ ॥
 हत्वा जीवराशिं मधुमांसं सेण्णित्वा मुरापानम् ।
 परद्रव्यपरकलत्रं गृहीत्वा च भ्रमति संसारे ॥
 जत्तेण कुणइ पाणं निसयणिमित्तं च अहणिसं जीरो ।
 मोहंधयारसहिओ तेण तु परिपडदि संसारे ॥ ३४ ॥
 यत्नेन करोति पाप विषयनिमित्तं च अहर्निश जीव ।
 मोहान्धकारसहितं तेन तु परिपतति संसारे ॥
 णिच्चिदरधादुसत्तं य तरुदसं नियालिंदिएसु छचेव ।
 मुरणिरयतिरियचउरो चोइस मणुवे सदसहस्सा ॥ ३५ ॥
 नित्येतरधातुसत्तं च तरुदशं निकलेन्द्रियेषु पट् चैव ।
 मुरनारकतिर्यक्चतस्रं चतुर्दशं मनुजे शतसहस्सा ॥
 संजोगनिप्पजोगं लाहालाहं सुहं च दुक्खं च ।
 संसारे भूदाणं होदि तु माणं तहाणमाणं च ॥ ३६ ॥
 संयोगनिप्रयोगं लाभालाभं सुखं च दुःखं च ।
 संसारे भूतानां भ्रमति हि मानं तथाग्रमानं च ॥
 कम्मणिमित्तं जीरो हिडदि संसारघोरकांतारे ।
 जीवस्मि ण संसारो णिचयणयकम्मणिम्मुक्को ॥ ३७ ॥

कर्मनिमित्त जीव द्विहति संसारघोरकातारे ।

जीवस्य न संसार निश्चयनयकर्मनिर्मुक्त ॥

संसारमदिकतो जीवोवादेयमिदि विचिंतेजो ।

संसारदुहकंतो जीवो सो हेयमिदि विचिंतेजो ॥ ३८ ॥

संसारमतिक्रांत जीव उपादेय इति विचित्तनीयम् ।

संसारदुःखाक्रांत जीव स हेय इति विचिन्तनीयम् ॥

इति संसारानुमेक्षा ।

जीवादिपयदाणं समवाओ सो निरचये लोगो ।

तिविहो हवेड लोगो अहमज्झिमउडुमेण ॥ ३९ ॥

जीवादिपदार्थानां समवायः स निरूप्यते लोकः ।

प्रविधः भवेत् लोकः अघोमप्यमोर्धमेदेन ॥

निरया हंतंति हेहा मज्झे दीगंयुरामयोसंखा ।

सगो तिसद्धि मेओ एत्तो उडुं हवे मोक्खो ॥ ४० ॥

नरका भवति अधस्तने मध्ये द्वीपाम्बुराशया असख्या ।

स्वर्गः त्रिपट्टिमेद एतस्मात् ऊर्ध्वं भवेत् मोक्षः ॥

इंगितीस सत्त चत्तारि दोण्णि एक्केक्क छक्क चट्ठकप्पे ।

तित्तिय एक्केक्केदियणामा उडआदित्तेमही ॥ ४१ ॥

एकत्रिंशत् सत्त चत्तारि द्वौ एकैकं पट्टं चतुः कल्पे ।

त्रिप्रिकमेकैकेद्रकन्नामानि त्रयादिप्रिपट्टि ॥

अमुहेण निरयनिसिं मुहउगजोगेण डिगिनणरमोअं ।

मुद्वेण लहड मिद्धि एं लोयं विचिंतिजो ॥ ४२ ॥

अशुभेन नरकतिर्यञ्च शुभोपयोगेन दिविज नरसौख्यम् ।
शुद्धेन लभते सिद्धिं एव लोक विचिन्तनीय ॥
इति लोकानुप्रेक्षा ।

अट्टीहिं षड्विद्धं मंसविलित्तं तण्य ओच्छल्यं ।
किमिसंकुलेहि भरिदमचोकरं देहं सयाकालं ॥ ४३ ॥
अस्थिभि प्रतिबद्ध मांसविलित्त रज्जा अउच्छन्नम् ।
किमिसंबुद्धे भरितं अप्रशस्त देह सदाकालम् ॥
दुग्गंधं बीभत्सं कलिमलभरिदं अचेयणं मुत्तं ।
सडणप्पडणसहावे देहं इदि चितये णिच्चं ॥ ४४ ॥
दुर्गंधं बीभत्स कलिमलभृतं अचेतनं मूर्त्तम् ।
स्खलनपतनस्वभावे देह इति चिन्तयेत् नित्यम् ॥
रसरुहिरमंसमेदहीमज्जसंकुलं मुत्तपूयकिमिदुलं ।
दुग्गंधमसुचि चम्ममयमणिच्चमचेयणं पडणम् ॥ ४५ ॥
रसरुधिरमासमेदास्थिमज्जासकुल मूत्रपूयकृमिबहुलम् ।
दुर्गन्धं अशुचि चर्ममय अनित्य अचेतनं पतनम् ॥
देहादो वदिरित्तो कम्मविरहिओ अणंतसुहणिलयो ।
चोकरो हवेड अप्पा इदि णिच्चं भावणं कुज्जा ॥ ४६ ॥
देहात् व्यतिरिक्त कर्मविरहित अणंतसुखनिलय ।
प्रशस्त भवेत् आत्मा इति नित्यं भावनां कुर्यात् ॥
इत्यशुचित्वानुप्रेक्षा ।

मिच्छन्तं अविरमणं कसायजोगा य आसवा होंति ।
पणपणचउतियमेढा मम्मं परिकित्तिदा समए ॥ ४७ ॥

मिथ्याय अपिरमण कपाययोगाश्च आस्त्रना भवति ।

पञ्चपञ्चचतु त्रिरुभेदा सम्यक् प्रकीर्तिता समये ॥

एयंतप्रिणयप्रिरियसंमयमण्णाणमिदि हवे पंच ।

अपिरमणं हिंसादी पंचमिहो सो इन्द्र नियमेण ॥ ४८ ॥

एकान्तप्रिनयप्रिपरीतसंशय अज्ञान इति भवेत् पञ्च ।

अपिरमण हिंसादि पञ्चविध तत् भवति नियमेन ॥

कोहो माणो माया लोहो रि य चउमिहं कसायं खु ।

मणवचिकाएण पुणो जोगो तिप्रियप्पमिदि जाणे ॥ ४९ ॥

क्रोध मान माया लोभ अपि च चतुर्विध कपाय खलु ।

मनोरथ कायेन पुन योग त्रिविरूप इति जानीहि ॥

असुहेदरभेदेण दु एकेकं वणिणदं हवे दुमिहं ।

आहारादीसण्णा असुहमणं इदि विजाणेहि ॥ ५० ॥

अशुभेतरभेदेन तु एकैक वर्णितं भवेत् द्विविधम् ।

आहारादिसज्ञा अशुभमन इति विजानीहि ॥

किण्हादितिणि लेस्मा करणजसोक्खेसु गिदिपरिणामो ।

ईसाविसादभावो असुहमणं चि य जिणा वेति ॥ ५१ ॥

कृष्णादितिस्त लेस्या करणनसौग्येषु गृह्णिपरिणाम ।

ईर्ष्यादिपादभावा अशुभमन इति च जिना नुरन्ति ॥

रागो दोसो मोहो हास्मार्दाणोकमायपरिणामो ।

धूलो वा मुद्गुमो वा अमुहमणो चि य जिणा वेति ॥ ५२ ॥

राग द्वय मोह हास्यादि नाकपायपरिणाम ।

स्थूल वा सूक्ष्म वा अशुभमन इति च जिना नुरन्ति ॥

भक्तिच्छिरायचोरकहाओ वयणं त्रियाण असुहमिदि ।
वंधणछेदणमारणकिरिया सा असुहकायेचि ॥ ५३ ॥

भक्तस्त्रीराजचौरकथा वचन विजानीहि अशुभमिति ।
बन्धनछेदनमारणक्रिया सा अशुभकाय इति ॥

मोत्तूण असुहमावं पुब्बुत्तं णिरवसेसदो दव्वं ।
वदसमिदिसीलसंजमपरिणामं सुहमणं जाणे ५४ ॥

मुक्त्या अशुभभात्र पूर्वोक्त निरवशेषत द्रव्यम् ।
व्रतसमितिशीलसयमपरिणाम शुभमन जानीहि ॥

संसारछेदकारणवयणं सुहवयणमिदि जिणुहिद्वं ।
जिणदेवादिसु पूजा सुहकायं चि य हवे चेहा ॥ ५५ ॥

संसारछेदकारणवचन शुभवचनमिति जिनोद्दिष्टम् ।
जिनदेवादिषु पूजा शुभकायमिति च भवेत् चेश्च ॥

जम्मसमुदे बहुदोसवीचिये दुक्खजलचराकिण्णे ।
जीवस्स परिव्वमणं कम्मामवकारणं होदि ॥ ५६ ॥

जन्मसमुद्रे बहुदोषवीचिके दुःखजलचराकीर्णे ।
जीवस्य परिभ्रमण कर्मास्त्रयकारण भवति ॥

कम्मासवेण जीणो बूडदि संसारसागरे घोरे ।
जण्णाणवसं किरिया मोक्खणिमित्तं परपरया ॥ ५७ ॥

कर्मास्त्रयेण जीव ब्रूयति संसारसागरे घोरे ।
या ज्ञानपथा क्रिया मोक्षनिमित्त परम्परया ॥

आसवहेद् जीणो जम्मसमुदे णिमज्जदे सिण्णं ।
आसवकिरिया तम्हा मोक्खणिमित्तं ण चित्तेज्जो ॥ ५८ ॥

आस्रगहेतो जीव जन्मसमुद्रे निमज्जति शिप्रम् ।
 आस्रगक्रिया तस्मान् मोक्षनिमित्तं न चिन्तनीया ॥
 पारपञ्चाएण दु आमगकिरियाए णत्थि णिव्वाणं ।
 संसारगमणकारणमिदि णिदं आसवो जाण ॥ ५९ ॥
 पारम्पर्येण तु आस्रगक्रियया नास्ति निर्वाणम् ।
 ससारगमनकारणमिति निश्च आस्रज जानीहि ॥
 पुब्बुत्तासग्गमेया णिच्छयणयएण णत्थि जीवस्स ।
 उहयासवग्गिम्ममुक्कं अप्पाणं त्थत्थए णिचं ॥ ६० ॥
 पूर्वोक्तास्रगभेदा निश्चयनयने न सन्ति जीवस्य ।
 उभयास्रगानमुक्त आमान चिन्तयेत् नित्यं ॥

इत्याद्यकानुश्रेशा ।

चलमलिनमगाढं च यन्निय सम्मत्तदिढकग्राहेण ।
 मिच्छत्तामग्गदारणिरोहो होदित्ति जिणेहिं णिदिहं ॥ ६१ ॥
 चलमलिनमगाढं च वर्जयित्वा सम्यक्त्वदृढकपाटेन ।
 मिथ्यात्वास्त्रगद्धारनिरोध भयति इति जिने निर्दिष्टम् ॥
 पंचमहव्ययमणसा अविरमणणिरोहणं हवे नियमा ।
 कोदादिआमगाणं दाराणि कमायरदियपट्ठगेहि (१) ॥ ६२ ॥
 पंचमहाव्रतमनसा अविरमणनिरोधन भवेत् नियमात् ।
 क्रोधादि आस्रवाणां द्वाग्गणि कपायरहितपरिणामं ॥
 सुहजोगेसु पवित्री संवरणं वृणदि अमुहजोगस्म ।
 सुहजोगस्म गिरोहो सुद्वजोगेण संभरदि ॥ ६३ ॥
 शुभयोगेषु प्रवृत्ते संवरण करोति अनुभयोगस्य ।
 शुभयोगस्य निरोध शुद्धापयोगेन सम्भवति ॥

सुदुवजोगेण पुणो धम्मं सुकं च होदि जीवस्स ।
तम्हा संरहेद्दु झ्णोचि विचिंतये णिच्चं ॥ ६४ ॥

शुद्धोपयोगेन पुनः धर्मं शुकं च भवति जीवस्य ।
तस्मात् संरहेतुः ध्यानमिति विचिन्तयेत् नित्यम् ॥

जीवस्स ण संरणं परमदृणएण सुद्धभावादो ।
संरभावविमुक्तं अप्पाणं चिंतये णिच्चं ॥ ६५ ॥

जीवस्य न संरणं परमार्थनयेन शुद्धभावात् ।
संरभावविमुक्त आत्मानं चिन्तयेत् ॥

इति सवरानुप्रेक्षा ।

ग्रंथपदेसगलणं निज्जरणं इदि जिणेहि पणत्तम् ।
जेण हवे संवरणं तेण दु निज्जरणमिदि जाणे ॥ ६६ ॥

बन्धप्रदेशगलनं निर्जरणं इति त्रिभिः प्रज्ञप्तं ।
येन भवेत्संवरणं तेन तु निर्जरणमिति जानीहि ॥

सा पुण दुविहा ज्ञेया सकालपक्का तवेण कयमाणा ।
चदुगदियाणं पढमा वयजुत्ताणं हवे विदिया ॥ ६७ ॥

सा पुनः द्विविधा ज्ञेया स्वकालपक्का तपसा क्रियमाणा ।
चतुर्गतिकानां प्रथमा व्रतयुक्तानां भवेत् द्वितीया ॥

इति निर्वरानुप्रेक्षा ।

एयारसदसमेयं धम्मं सम्मत्तपुण्यं भणियं ।
सागारणगाराणं उत्तममुहसंपजुत्तेहिं ॥ ६८ ॥

एकादशदशभेदो धर्मो सम्यक्त्वपूर्वको भणितः ।
सागारानगाराणां उत्तममुखसम्प्रयुक्तैः ॥

दंसणवयसामाड्यपोसहसच्चित्तरायभत्तेय ।
वम्हारंभपरिग्गहअणुमणमुद्दिह दंसविरदेदे ॥ ६९ ॥

दर्शनव्रतसामायिकप्रोपधसचित्तरात्रिभक्ता च ।

ब्रह्माभपरिग्रहानुमतोदिष्टा दशविरतस्यैत ॥

उत्तमसममद्वयज्जयसचमउच्चं च संजमं चैव ।

नवचागमकिचण्हं गम्हा इदि दसविहं होदि ॥ ७० ॥

उत्तमक्षमामार्दवार्जयसत्यशौचं च समयं च ।

तपस्याग आधिञ्चय ग्रह इति दशविध भवति ॥

कोहुप्पत्तिस्म पुणो बहिरगं जदि हवेदि सक्खादं ।

ण कुणदि किचि वि कोह तस्म समा होदि धम्मोत्ति ॥ ७१ ॥

क्रोधोपत्ते पुन बहिरङ्ग यदि भवेत् साक्षात् ।

न करोति त्रिञ्चिदपि क्रोवं तस्य क्षमा भवति धर्म इति ॥

कुलरूपजादियुद्धिसु तपमुदसीलेसु गारवं किचि ।

जो ण त्रि कुव्यदि समणो मद्वयधम्मं हवे तस्म ॥ ७२ ॥

कुलरूपजातियुद्धिषु तपश्रुतशालेषु गर्गं त्रिञ्चित् ।

य नैव कराति श्रमणो मार्दवधर्मो भवेत् तस्य ॥

मोत्तूण कुडिलभावंणिम्मलहृदयेण चरदि जो समणो ।

अज्जवधम्मं तड्यो तस्म दु सभगदि नियमेण ॥ ७३ ॥

मुक्त्वा कुण्डिलभावं निर्मलहृदयेन चरति य श्रमण ।

आर्जवधर्मं तृतीयं तस्य तु सभवति नियमेन ॥

परमंतायकारणयणं मोत्तूण मपरहृदवयणं ।

जो वटदि मिसु तुरियो तस्म दु धम्मो हवे मच्च ॥ ७४ ॥

परमंतायकारणवचनं मुक्त्वा स्वपरहृदवचनम् ।

य वदति मिथु तुरीयं तस्य तु धर्मं भवेत् सत्यम् ॥

कंसाभात्रणिगिति किंचा वेरगभावणानुत्तो ।

जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं ॥ ७५ ॥

काक्षाभात्रनिवृत्तिं कृत्वा वैराग्यभात्रनायुक्त ।

य वर्तते परममुने तस्य तु धर्म भवेत् शौचम् ॥

चदसमिदिपालणाए दण्डद्याएण इंदियजएण ।

परिणममाणस्स पुणो संजमधम्मो हवे णियमा ॥ ७६ ॥

व्रतसमितिपालनेन दण्डत्यागेन इन्द्रियजयेन ।

परिणममानस्य पुन सयमधर्म भवेत् नियमात् ॥

वित्तयकसायविणिग्गहभावं काउण ज्ञाणसज्झाए ।

जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण ॥ ७७ ॥

त्रिपयकपायत्रेनिग्रहभात्र कृत्वा ध्यानस्वाध्यायेन ।

य भात्रयति आमान तस्य तप भवति नियमेन ॥

णिब्बेगतियं भावइ मोहं चडउण सज्जदब्बेसु ।

जो तस्स हवे चागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहि ॥ ७८ ॥

निर्वेगात्रिरु भात्रयेत् मोहं त्यक्त्वा सर्वद्रव्येषु ।

य तस्य भवेत् त्याग इति भणितं जिनरेन्द्रे ॥

होउण य णिस्मंगो णियभावं णिग्गहिनु सुहदुहद ।

णिदंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्म किंचणं ॥ ७९ ॥

भूत्वा च निस्तङ्ग निजभात्र निगृह्य सुखदुःखदम् ।

निर्द्वन्द्वेन तु वर्तत अवगार तस्याकिञ्चनम् ॥

सत्त्वंगं पेच्छंतो इत्थीण तासु मुयादि दुब्भापं ।

सो बम्हचेरभापं मुक्खदि खलु दुद्धर घरदि ॥ ८० ॥

कंसाभायणिविनिं किञ्चा वैरग्यभावणाजुत्तो ।

जो वट्टदि परममुणी तस्स दु धम्मो हवे सोच्चं ॥ ७५ ॥

काक्षाभायनिवृत्तिं कृत्वा वैरग्यभायनायुक्तः ।

य वर्तते परममुनि तस्य तु धर्म भवेत् शौचम् ॥

वदसमिदिपालणाए दंड्याएण इंदियजएण ।

परिणमसाणस्स पुणो संजमधम्मो हवे णियमा ॥ ७६ ॥

व्रतसमितिपालनेन दण्डत्यागेन इन्द्रियजयेन ।

परिणममानस्य पुनः सयमधर्म भवेत् नियमात् ॥

विसयकसायविणिग्गहभावं काऊण ज्ञाणसज्झाए ।

जो भावइ अप्पाणं तस्स तवं होदि णियमेण ॥ ७७ ॥

विषयकसायत्रिनिग्रहभावं कृत्वा ध्यानस्वाध्यायेन ।

य भावयति आमान तस्य तप भवति नियमेन ॥

णिन्वेगतियं भावइ मोहं चइऊण सब्बदब्बेसु ।

जो तस्स हवे चागो इदि भणिदं जिणवरिंदेहिं ॥ ७८ ॥

निर्वेगत्रिक भावयेत् मोह त्यक्त्या सर्वद्वयेषु ।

य तस्य भवेत् त्याग इति भणितं जिनरेन्द्रे ॥

होऊण य णिस्संगो णियभावं णिग्गहिन्नु सुहदुद्धदं ।

णिइंदेण दु वट्टदि अणयारो तस्स किंचण्हं ॥ ७९ ॥

भूत्वा च निस्सङ्गं निजभावं निगृह्य सुखदुःखदम् ।

निर्द्वन्द्वेन तु वर्तते अनगार तस्याकिञ्चन्यम् ॥

सव्यंगं पेच्छंतो इत्थीणं तासु मुयदि दुब्भावं ।

सो ब्रम्हचेरभावं सुकदि खलु दुद्धरं धरदि ॥ ८० ॥

सर्वाङ्गं पश्यन् छांणा तासु मुञ्चति दुर्भागम् ।

स ब्रह्मचर्यभावं मुकृती खलु दुर्द्धर धरति ॥

सावयधम्मं चत्ता जदिधम्मो जो हु वट्टए जीवो ।

सो ण य वज्जदि मोरुणं धम्मं इदि चितये णिचं ॥ ८१ ॥

आरकवर्मं त्यक्त्वा यतिधर्मे य हि वत्तत जीव ।

स न च वर्जति मोक्षं धर्म्ममिति चिन्तयेत् नित्यम् ॥

णिच्छयणएण जीवो सागारणगारधम्मदो मिण्णो ।

मज्झत्थमावणाए सुद्धयं चितये णिचं ॥ ८२ ॥

निश्चयनयेन जीव सागारानागारधर्मस भिन्न ।

मध्यस्थभावनया शुद्धात्मानं चिन्तयेत् नित्यम् ॥

इति धर्मांनुप्रेक्षा ।

उपपज्जदि सण्णाणं जेण उवाएण तस्सुवायस्स ।

चिंता हवेइ बोही अच्चत्तं दुल्लहं होदि ॥ ८३ ॥

उत्पद्यते सद्ज्ञानं येन उपपद्येन तत्सोपायस्य ।

चिन्ता भवेत् बोधिं अत्यन्तं दुर्लभं भवति ॥

कम्मदयजपज्जाया हेयं खाओरममियणाणं गु ।

सगदब्बमुवादेय णिच्छित्ति होदि मण्णाणं ॥ ८४ ॥

कर्मोदयजपर्याया हेय क्षायोपशमिकज्ञानं खलु ।

एकदृश्यमुपादेयं निधितिं भवति सद्ज्ञानम् ॥

मूलुत्तरपयडीओ मिच्छत्तादी अमंखलोगपरिमाणा ।

परदब्बं सगदब्बं अप्पा इदि णिच्छयणएण ॥ ८५ ॥

मूलोत्तरप्रकृतय मिथ्यावादय असंख्यलोकपरिमाणा ।

परद्रव्य स्वकद्रव्य आत्मा इति निश्चयनयेन ॥

एव जायदि णाणं हेयमुवादेय णिच्छये णत्थि ।

चित्तेज्जड मुणि बोहिं संमारविरमणद्वे य ॥ ८६ ॥

एव जायते ज्ञान हेयोपादेय निश्चयेन नास्ति ।

चित्तयेत् मुनि बोधिं संसारविरमणार्थं च ॥

इति बोध्यनुप्रेक्षा ।

चारसअणुवेक्खाओ पच्चक्खाणं तहेव पडिकमणं ।

आलोयण समाही तम्हा भावेज्ज अणुवेक्ख ॥ ८७ ॥

द्वादशानुप्रेक्षा प्रयाख्यान तथैव प्रतिक्रमणम् ।

आलोचन समाधि तस्मात् भावयेत् अनुप्रेक्षाम् ॥

रत्तिदिव पडिकमण पच्चक्खाण समाहिं सामड्यं ।

आलोयणं पकुव्वदि जदि विज्जदि अप्पणो सत्ती ॥ ८८ ॥

रात्रिदिवं प्रतिक्रमण प्रत्याख्यान समाधिं सामयिकम् ।

आलोचना प्रकुयात् यदि विद्यते आत्मन शक्तिः ॥

मोक्खगया जे पुरिसा अणाइकालेण चारअणुवेक्खं ।

परिभाविउण सम्मं पणमामि पुणो पुणो तेसिं ॥ ८९ ॥

मोक्षगता ये पुरुषा अनादिकालेन द्वादशानुप्रेक्षाम् ।

परिभाव्य सम्यक् प्रणमामि पुन पुन तान् ॥

कि पलवियेण बहुणा जे सिद्धा नरवरा गये काले ।

सिज्झिहहि जे वि भनिया तज्जाणह तस्म माहप्पं ॥ ९० ॥

कि प्रलपितेन बहुना ये सिद्धा नरवरा गते काले ।

सेत्स्यति येऽपि भविका तद् जानीहि तस्या माहात्म्यम् ॥

इदि णिच्छयववहारं जं भणियं कुंदकुंदमुणिणाहें ।
 जो भावइ सुद्धमणो सो पावइ परमणिन्वाणं ॥ ९१ ॥
 इति निश्चयव्यवहारं यत् भणितं कुन्दकुन्दमुनिनायेन ।
 यः भावयति शुद्धमनाः स प्राप्नोति परमनिर्वाणम् ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यविरचिता द्वादशानुप्रेक्षा
 समाप्ता ।

समाप्तोऽयं पट्प्राभृतादिसंग्रहः ।

शुभं भूयात् ।

पद्मश्रुतीय-मूलगाथानामकारादिक्रमेण

सूची ।

गाथाः	पृष्ठसंख्याः	गाथाः	पृष्ठसंख्याः
अ		अवसेसा जे लिंगी...	६२
अहमोहणजोएण ...	३१९	असियसय किरियवाई ...	२८३
अकखाणि बाहिरप्या ...	३०६	अमुही बीहत्वेहि ...	१३९
अगाई दस य दुण्णि य ...	१९८	अस्सजदं ण वदे ...	२२
अचेयण पि चेदा ...	३४७	अह पुण अणा णिच्छदि ...	६३
अज्ज वि तिरयणमुद्धा ...	३५९	” ” ” ” ”	२३४
अज्जाण मिच्छतं ...	३८	आ	
अणं च वसिहुमुणी ...	१७१	आगंतुकमाणसिय ...	१३४
अण्णे कुमरगमरण ...	१४६	आदसहावादनण ...	३१६
अपरिगह सुमणुण्णे ...	१०	आदा सु मग्गणाने ...	३०४
अप्पा अप्पमि रओ ...	१४६	आयदणे चेदिहरं ...	७२
” ” ” ...	२३४	आरुहवि अतरप्या ..	३०९
अप्पा चरित्तवर्तो ...	३५१	आसनहेट्ठं य तहा ...	३४६
अप्पा झायंतारं ...	३५५	आहारमयपरिगह ...	२६१
अप्पा पाऊण णरा... ..	३५३	आहारासणणिदा ...	३५१
अमणुण्णे य मणुण्णे ..	४७	आहारो य सरीरो ...	१०१
अमराण बंदियाण ...	२१		
अयसाण भायणेण ...	२१२	इच्छायारमहत्थ ...	६२
अरसमरुवमगंधं ...	२०८	इद्धिमतुलं विउग्विय ...	२७९
अरहंतभासियत्तवं ...	५६	इय उवएसं सारं ...	३२९
अरहंतंण सुदिट्ठं ...	७२	इय धाइकम्ममुक्को ...	२९३
अरुहासिद्धायरिया ...	३७६	इय जाणिऊण जोई ...	३२५
अवरोत्ति दव्वसवणो ...	१८४	इय णाउ गुणदोसं ...	२८९

गाथा	पृष्ठसंख्या	गाथाः	पृष्ठसंख्याः
इय णाऊण खमाणुण ...	२५७	एवं जिणपणत्त ...	१९
इय तिरियमणुवज्जम्मे ...	१४४	„ „ „ ..	१७७
इय भावपाहुडमिणं...	३०३	एवं सावयधम्म ...	४६
इय मिच्छतावासे ...	२८५	एव संखेवेण य ...	५४
इरिया भासा एसण	५१	क	
उ		कत्ता भोइ भमुत्तो...	२८९
उत्तिक्कसीहपरियं ...	६०	कत्ताणपरंपरया ...	२६
उत्तमवेणणाणी ...	३४४	काऊण गमुत्तारं ...	१
उच्छाहभावणाए ...	३७	कालमर्गन जीवो ...	१५०
„ „ „	„	किं काहिदि बहिक्कम्मं ...	१७१
उत्तममग्गिमगेहे ...	११२	किं अपिण्ण वटुणा ...	१०२
उत्तरइ आ ण जरओ ...	२८०	किं पुण गच्छइ मोह ...	१७९
उद्धदमग्गलोए ...	१६२	किं वटुणा भपिण्ण ..	१६६
उवत्तरगपरिमहगहा ...	१२०	कुट्टियदेव धम्म ..	१६९
उवत्तमत्तमदमजुत्ता	११७	कुट्टियधम्मोम्मि रओ ...	२८५
ए		कोहमयहासलोहा ...	४९
एएण कारणेण य ...	६३	कंदप्पमाइयाओ ...	११६
„ „ „ „	२३५	कदं मूल वीय ...	२५३
एए तिणि वि ...	३१	र	
„ „ „ „	४१	खणुत्तावणवात्थ ...	१३४
एएहिं लक्खणंहि ...	१६	खयारामरमणुयकरं ...	२१७
एक जिगस्म रुव ...	१७	ग	
एक्केक्कगुलयाही ...	१५२	गद इदिय च काये...	१००
एगो मे सस्सओ आदा ...	२०५	गत्तिपादं पुग्गतादं ...	१८२
एवं जिणेहि कहियं ..	३६४	गहिउग्गियाइ मुणिगा ...	१४३
एरिसणुणेहिं गव्वं ...	१०५	गहिक्रय गम्मत ...	१६५
एव आवत्तगणुण ...	१२२	गाहेण अप्पमाहा ...	७०
एवं चिय णाऊण ...	३३	गिहगंयमोहमुक्का ...	१०९

गाथा	पृष्ठसंख्या	गाथा	पृष्ठसंख्या
गुणगणमणिमालाए...	३००	जह तारायणसहिय...	२८८
गुणगणविद्वत्सिखो...	३०५	जह दीवो गम्भहरे...	२७३
गुणटाजमगणेहि...	९७	जह पत्थरो ण भिज्जइ...	२४२
अ		जह फणिराओ रेहइ...	२८८
चउविहविकहाससो...	१३९	जह फलियमणिविमुदो...	३४३
चउसठ्ठिचमरसहिओ...	२३	जह फुल गधमय...	८३
चउकहररामकेसव...	३००	जह बीयम्मि व दट्टे...	२७५
चरण हवइ सधम्मो...	३४२	जह मूलम्मि विणट्टे...	१०
चरियावरिया वद...	३५७	जह मूलाओ सधो...	१०
चारितसमाहडो...	५४	जह रवणाण पवरं...	२३१
चित्ता सोही ण वेसि...	६९	जह सलिलेण व लिप्पइ...	२९५
चेइय वध मोक्ख...	७७	आणहि भाव पढम...	१३१
छ		जाव ण भावहि सच...	२६२
छन्नीवछझायदण...	२८१	जिणणाणदिट्ठि सुद्ध...	३२
छरव्व नवपयथा...	१८	जिणविउ णाणमय...	८४
छायालोसोसद्विय...	२४८	जिणमग्गे पवब्बा...	११९
ज		जिणमुह सिद्धिसुह...	३४०
जह इत्थणेण सुद्ध...	६१	जिणवरणमोसहम्मिय...	७६
जहि पडदि बहुमुदालि...	३७४	जिणवरचरणवुद्ध...	२९४
जरवाहिजम्मरण...	९६	जिणवरमएण ओई...	३१७
जरवाहिदुक्खरहिय...	१०३	जीवविमुक्को सवओ...	२८६
जलपलसिहिपवणवर...	१४१	जीवाजीवविहत्तो...	५२
जत्थ परिगहगहण...	६५	” ”	३३०
जहजायहवहव...	३६८	जीवाणमभयदान...	२८२
जहजायहवसरिसो...	६४	जीवादी सद्वण...	१९
जहजायहवसरिसा...	११६	जीवो जिणपणतो...	२०७
जह ण वि लहदि...	८८	जे के वि दन्वसवणा...	२७०
जह तारायण चदो...	२८७	जे ज्ञायति सद्व्व...	३१७

ગાથા:	પૃષ્ઠસંખ્યા:	ગાથા:	પૃષ્ઠસંખ્યા:
જેળ રાગે પડે દબ્બે ...	૩૫૬	જં મયા દિસ્સદે રૂવ ...	૩૨૩
જે દસળેમુ મઢા ...	૭	જં સવદ તં કીરદ	૨૦
જે	૧૨	જ મુતં જિણઠત્ત . . .	૫૮
જે પાવમોહિદમઈ ...	૩૬૦		
જે પિ પઠતિ ચ ...	૧૪	જ્ઞાયહિ ધમ્મ મુજ્જં ...	૨૬૧
જે પુણ વિસયવિરત્તા ...	૩૫૪	જ્ઞાયહિ પંચવિ ગુરવે ...	૨૭૩
જે પંચચેલસત્તા ...	૩૬૧	જ્ઞ	
જે રાયસંગપ્પુત્તા ...	૨૧૫	જમ્મત્તં અકુજ્જ ...	૨૦૨
જે ઘાઘીસપરીસહ ...	૬૧	જમિક્કણ જિણવરિદે ..	૧૨૮
જેસિં જીવસહાવો ...	૨૦૮	જમિક્કણ ચ તં દેવ... ..	૩૦૪
જો હચ્છદ નિસ્સરિહું ...	૩૨૧	જ મુવદ પયઠિ અમવ્વો ..	૨૮૪
જો કમ્મજાદમદિઓ ...	૩૪૬	જવળોક્કસાચવગ્ગં ...	૨૩૮
જો કોઠિણ્ણ જિપ્પદ ...	૩૧૧	જવવિદ્ધવંમં પયઠદિ ...	૨૪૫
જો કો વિ ધમ્મસીલો ...	૭	જવિણ્ણિં અ જવિજ્ઞદ ...	૩૭૫
જો જાદ્ જોયણસય ...	૩૧૮	જ વિ દેહો વદિજ્ઞદ ...	૩૭
જો જીવો માવતો ...	૨૦૬	જ નિ તિજ્ઞદ વતય ...	૬૭
જો દેહે ગિરવેક્કો ...	૩૧૨	જાણગુણેહિ વિહીણા... ..	૫૪
જો પુણ પરદવ્વરઓ ...	૩૧૫	જાણમ્મિ દસણમ્મિ ...	૨૫
જો રયણસયગુણો ...	૩૩૧	જાણમયવિમલસીયલ ...	૨૭૪
જો મુત્તો ધવદારે ...	૩૨૪	જાણમય અપ્પાણે . . .	૩૦૪
જો સજ્જેમુ સદ્દિઓ ..	૬૧	જાણાવરણદોદિ ચ ..	૨૬૭
જં કિંચિ કય દોસં... ..	૨૫૫	જાણી સિવપરમેટ્ઠી ...	૨૧૨
જં ચરદિ મુદ્ધચરણ ...	૮૦	જાણેણ દસણેણ ચ ...	૨૪
જ જાણદ્ તં પાર્યં... ..	૩૨	જાણ ચરિત્તહીણ ...	૩૪૭
જે	૩૨૭	જાણં જરસ્સ સારો ...	૨૫
જં જામિક્કણ જોઈ... ..	૩૦૫	જાણં દંસગ સમ્મં ...	૩૦
જે	૩૩૦	જાણ પુરિમ્મસ્સ ...	૮૮
જં નિમ્મલં મુધમ્મ... ..	૬૨	જામે ઠવણે દિ ચ ..	૧૨

गाथा.	पृष्ठसंख्या	गाथा.	पृष्ठसंख्या
भिगंथा निहसेगा ...	११३	तेरहमे गुणठाणे ...	९८
निच्छयपयस्य एव ...	२६३	ते रोया वि य सयल ...	१५३
निष्णेहा निस्लोहा ...	११५	त चेव गुणविमुद ...	३५
निंदाए पसंताए ...	३५७	त विवरीओ बघइ ...	२६५
नियदेहरिस्ते ...	३१०	थ	
नियसत्तीए महाजस ...	२५४	बूले तसकायबहे ..	४४
निहसेकिय निहकरिथ ...	३४	द	
त		दहुण य मणुयस ...	२६
तथदई गम्मस ...	३२८	दबसेजममुराए .	८६
तवरहिय ज नाण ...	३४७	दग्गेण सयलनगा ...	२१०
तववयगुणेहि ...	८६	दस दस दो मुपरीसद .	२४१
...	१२१	दसपाणा पमत्ती	१०४
तस्म य करह .	८५	दराविहपाणाहारो ..	२८१
ताम न नजइ अप्पा	३५३	दिक्खताकालाईय	२५८
तिपयरणगहराई ...	२७७	दियसेगद्वियमसुर्ण .	१५४
तिपयराभागियस ...	२४०	दित्रिविदित्रिमाण	४५
तिपयातो सो अप्पा	३०६	दुइय य पुत्तलिय .	६६
तिभोलत्तामित	११९	दुइये नजइ अप्पा .	३५३
तिहि तिणि घरवि	३३१	दुज्जणवयणचदक्क ..	२५६
तिहुमणसत्ति ...	१४२	दुट्ठकम्मरहिय .	३१६
तुगमासे धोसेनो ..	२००	दुमिह पि गयवाय	१४
तुह मरणे दुइरोग .	१४०	दुमिह सेजमवरण ...	४२
ते थिअ भणामिइ जे	२९६	देहादिबलसंयो ..	१५६
ते धग्गा ताण नमो	२७८	देहादिसंगरहिओ ...	२०३
ते धग्गा मुच्चय्या	३६६	देव गुदम्मि य भत्ता ..	३४३
ते धीरवीरपुरिया .	२९८	देवगुण भत्ता ...	३६२
ते मे तिहुवणमहिवा ..	३०१	देवाग गुणविहूई ..	१३८
तेवाला तिणि सदा ..	१५३	दग्गेणयरे सयल ...	१८३

गाथा	पृष्ठसंख्या	गाथा	पृष्ठसंख्या
दसण अणतणाण	८१	परमपय ह्यावतो .	३४१
दसण अणतणाणे . .	९५	परमाणुपमाण वा .	३५५
दसणणाणचरिते	२०	परिणाममि असुदे ..	१३१
दसणणाणचरित्त ...	५३	पव्वजसगचार	३८
दसणणाणावरण ...	२९०	पमुमहिलसुडसग .	१२०
दसणमद्धा भद्दा . .	४	पाऊण णाणसलिल .	५३
दसणमूलो घम्मो .	३	" " " ..	२४०
दसण वय सामाइय	४२	पाणिबहेहि महाअस ...	२८२
दसणमुद्धो मुद्धो ...	३२९	पाव खवइ असेस	२५६
दसेइ भोक्खमग ...	८३	पावति भावसवणा ..	२४७
ध		पाव पयइ असेस ...	२६३
धगधगवत्थदाण ..	१११	पासत्थभावणाधो .	११७
धग्गा ते भयवता ..	२९८	पासडो तिणिण सया .	२८६
धम्ममि निप्पवासो	२१४	पित्तमुत्तरेफस ..	१५३
धम्मो दयाविमुद्धो .	९१	पीओ सि यणच्छीर ...	१४०
धुवसिद्धी निरथयरो	३४९	पुरिसाणारो अण्णा ..	३६३
न		पुरिसो वि जा समुत्तो .	५८
नगो पावइ हुक्ख ...	२०१	पूमादिपु वयमहिय ..	२३२
निगायमोहमुद्धा .	३६१	पचमहव्वयजुणा .	१०८
निबेलपाणिपत्त	६१	पचमहव्वयजुणा	६६
निरुवमच्चलमच्छोहा	८२	" " " . .	३२५
प		पच वि इदियपाणा ..	१०२
पडिदेससमयपुगल ...	१५१	पचविहचलचाय .	२३०
पडिण्ण वि कि कीरइ .	२१०	पचमु महव्वदेसु .	३५८
पयडहि जिणवरलिर्भ ...	२१३	पविदियसंवरण	४६
पयण्णियमाणकसाआ	२१९	पचेवणुव्वयाइ ..	४४
परदव्वरओ वज्जइ ..	३१४	ख	
परदव्व्वाओ दुगइ .	३१५	खलमोक्खणाणदसण ...	२९१

गाथा	पृष्ठसंख्या	गाथा	पृष्ठसंख्या
धारमविहतवयरण	३३१	भावो य पञ्चमार्त्तिय	१२८
धारमये पुरियमणो	३१०	भावो वि दिव्वणिय	२१७
धारमयअत्थजाणे	७१	भीसणवरयणइए	१२९
धारमभंगवियान	१२७	मज्झु इणियसेण	२१८
धारिणियेण पुणे	३५०		म
धारिणयणत्तापण	२६१	मइयणुह जस्स यिरे	८९
धारिसंगवत्थाओ	२३७	मच्छो वि सात्थित्यो	२३५
धारिसंगविमुक्को	३७२	मगवयणछायदम्भा	७३
मुद्ध ज बोद्धो	७८	मज्झिमये वंमियि	१०३
		ममत्ति परिबज्जामि	२०४
म		मयमायकोहरदिया	३३२
मादे दुस्समच्छले	३५९	मयरायणेममाहो	७४
भवसायरे अगत	१४१	मयरायणेगरदियो	१०५
भगवणचोहणत्थ	५२	मतरदिया कलवत्ता	३०७
भावदहिण राउरिस	१३१	मदित्तायेयणपुग्ग	५०
भावदहिओ ज जिग्गह	१३०	महुत्तिओ नाम मुणी	१५७
भावविमुणो सुत्तो	१५६	मादावन्ति असेमा	९९
भावविमुद्धिनिमित्त	१३०	मिरत्तणत्तण्णि	२८४
भाववत्तणे य धीरो	१८७	मिरत्तण तह कयावा	२६५
भावमवणो वि पावइ	२७६	मिरत्तण अज्जाग	३३३
भावतदियो य मुणियो	२४६	मि-त्ताणापु रभो	३११
भावहि अज्जेवत्ताओ	२४२	मिरत्ताणि ओ गो	३७१
भावहि पडमं तरवे	२६२	मिरत्तामज्जमग	३९
भावहि पयपयार	२०९	मूलपुण त्रिपुण य	३७२
भावेण होइ जग्ग	२०१	माहमवत्तवोहि य	२९९
		मगद्विमुक्कमानिय	१५५
मिणी	१८३		र
॥ ५६ भावमुद्ध	५५		
	२०५	रयत्तदयारह	३३६

गाथाः	शृङ्खलाः	गाथाः	शृङ्खला
रमणत्तमं पि जोई ...	३२७	सद्दुदि य पत्तेदि य ...	२३३
रयणत्ते सुअलदे ...	१४५	सपरज्जवसाएण ...	३११
रुवरं सुदत्त ...	१२६	सपरा जंगमदेहा ...	७८
रु		सपरावेस्सं लिगं ...	३७०
रिग इत्थीण हवदि ...	६७	सम्म गुण मिच्छ दोस ...	३७१
रिगम्मि य इत्थीण ...	६८	सम्मत्तचरणसुद्धा ...	३५
रु		सम्मत्तणाणदंसण ...	१६
वच्छलं विणएण य ...	३६	सम्मत्तणाणरहिओ ...	३५८
वयगुत्ती मणगुत्ती ...	४८	सम्मत्तारयणमट्ठा ...	४
वयसम्मत्तविमुद्धे ...	९१	सम्मत्तविरहिया ...	५
वरवयतवेदि सग्गी ...	३२०	सम्मत्तसलिलपवहो ...	६
वालगतकोडिमत्त ...	६४	सम्मत्तादो नाणं ...	१५
विणय पचपयारे ...	२५४	सम्मत्त जो भावदि ...	३६५
वियलिदिए असीदी ...	१४५	सम्मत्तं सण्णाण ...	३७७
विवरीयमूढमावा ...	११७	सम्मत्तंसण पस्सदि ...	४०
विसयकसाएदि शुद्धो ...	३३३	सम्मत्तंसण पस्सदि ...	१०६
विसमविरत्तो समणो ...	२१९	सम्माइदी सावय ...	३७०
विसवैयणरत्तकखय ...	१४३	सयलज्जणवोहणरय ...	७१
विहरदि जाव जिणिदो ...	२७	मवसा सत्तं तित्थ ...	१०७
वेरग्गपरो साहु ...	३७४	सब्बण्डु सब्बदसी ...	३०
वंदामि तवसमण्णा ...	२३	सब्बविरओ वि भावदि ...	२४३
स		सब्बासवप्पिरोहेण ...	३२४
सग्गं तवेण सब्बो ...	३१९	सब्बे कसाय मोत्तु ...	३२१
सच्चित्तमत्तपाण ...	२५३	सद्दुत्तुपण रुवं ...	२१
सत्तगुनरयावासे ...	१३३	सामाइय च पडमं ...	४५
सत्तुमित्ते व समा ...	१११	सादंति ज महत्ता ...	४८
सद्भवरो सबणो ...	३१४	सिद्धो सुद्धो आदा ...	३२६
सद्दवियारो हूओ ...	१२६	सिद्ध जस्स सद्दत्त ...	७५

गाथा	पृष्ठसंख्या	गाथा	पृष्ठसंख्या
सिवमजरामरलिंग ...	३०१	सेयामेयविदग्ध ...	१६
सिमुकाले य अयाणे ...	१५४	सेवहि चउविद्वलिंग ...	२६०
सीलसहस्रद्वारस ...	३६६	सो णत्थि त एणो ...	१८२
सुण्हरे तरुहिदे ...	१०६	सो णत्थि दन्वसवणो ...	१४१
सुण्णायारनिवासो ...	४९	सो देवा जो अय्य ..	९०
सुत्तत्थयविण्णो ...	५९	संखिजमसखिज ...	४१
सुत्तत्थ जिणभणिय ...	५८	सजमसजुणस्स य ..	८७
सुत्तम्मि जं सुदि ...	५६	ह	
सुत्त हि आणमाणो...	५७	हरिहरतुस्सो वि ...	५८
सुभजोगेण सुभाव .	३४५	हिमजलगसल्लि, ...	१४३
सुरत्तिलएसु सुरच्छर	१३५	हिमागहिए धम्मो ...	१६७
सुहेण भाविद णाण ...	३५०	हिमाविह भहिमा ..	४७
		हाऊण दिवचरिता...	३४३

इति मूलानुक्रमणिका ।

पद्मप्राभृतटीकोक्तोद्धरण-श्लोकानामकारादिक्रमेण सूची ।

अ	कर्तुर्नाम	ग्रन्थनाम	पृष्ठसंख्या ।
अहङ्गुणउ तव	धीदेवसेनसूरि	आराधनासारे	६३
अकलङ्को महा	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे	१५१
अकिञ्चनोऽह	शुभभद्राचार्य	आत्मानुशासने	११४
”	”	”	३१९
अकोहणो अलोहो	गौतमर्षि	प्रतिक्रमणसूत्रे	४९
अमिवत्सर्वमक्ष्यो	३५
अन्न यद्यपि योदिता	२७१
अन्नमपि भवेत्	सोमदेवसूरि	यशस्तिरुके	३०२
अजस्तिनीतमा	सोमदेवसूरि	यशस्तिरुके	१०२
अजाकृपाणीय	शुभभद्राचार्य	आत्मानुशासने	२५८
अद्वत्तीसद्वलवा	४१
”	३४४
अग्न्याणादो मोक्ख	११८
अग्निमा महिमा...	१३८
अतिक्रमो मानस	२६८
अत्यल्पा यति	सोमदेवसूरि	यशस्तिरुके	९०
अय देवेन्द्र	श्रुतसागरसूरि	अत्रैव ग्रन्थे	३०४
अयिरेण मिरा	२५९
अदृष्टं किं किमस्पृष्ट	२७१
”	३५४
अदृष्टविप्रदाच्छान्ता	(अन्येषां)	यशस्तिरुके	२९४
अनाश्रयता	जिनसेनानायकः	महापुराणे	१२५
अमाए दालिदियहं	लक्ष्मीधर	...	१४४

अन्तर्बोन्तं वदन	गुणभद्राचार्यः	आत्मानुशासने	१५४
अन्यच्च बहुवारत्राळे	जिनसेनाचार्यः	महापुराणे	१२६
अन्यूनमनतिरिक्तं	समन्तभद्रस्वामी	रत्नकरण्डके	५२
”	”	”	३३०
अन्यलिङ्गकृतं पापं	३६१
अपूजयित्वा यो	सोमदेवसूरिः	यशस्तिलके	८५
अभयदाणु	२८३
अभाविष्य भावेमि	गौतमपि-	प्रतिक्रमणमूत्रे	२८१
अर्हचरणसपर्या	समन्तभद्रस्वामी	रत्नकरण्डके	८०
”	”	”	२३२
अलकबलयरम्भं	सोमदेवसूरि	यशस्तिलके ।	३४५
अलङ्घ्यशक्तिभुवि	समन्तभद्रस्वामी	स्वर्गभुवि	११४
अशोकवृक्ष सुर	२९
”	”	१००
अभूपातश्च दुःखेन	वीरनन्दी	आचारसारे	२५३
अश्रोत्रीव तिरस्कृता	शुणभद्राचार्य	आत्मानुशासने	२८१
आ	आ		
आकर्ण्यचार	शुणभद्राचार्य	आत्मानुशासने	१३
”	”	”	१२९
आकृष्टोऽहं हतो	शुणभद्राचार्यः	ज्ञानार्णवे	११७
”	”	”	२५७
आर्कपिभ अणु	शिवकोटिः	भस्वरयाराधनाया	९
”	”	”	२१३
”	”	”	२५५
”	”	”	२६९
आचारवान्	७९
आज्ञाभिमानमुत्सृज्य	जिनसेनाचार्य-	महापुराणे	१२५
आज्ञामार्ग	शुणभद्रमदन्तः	आत्मानुशासने	११
”	”	”	१२१

आज्ञासम्भवत्व	गुणमद्रमदन्त	आत्मानुशासने	१३
"	"	"	१२१
आतङ्गपावक	२५८
आतङ्गशाक	२८१
आत्मकृत परि	अमृतचन्द्रसूरि	पुरुषोपनिषद्बुधारे	२६४
"	"	"	३८१
आत्मप्राप्त	३०७
आत्मनि माझे	सोमदेवसूरि	यशस्तिरुके	२००
आत्मशुद्धिरियं	३५०
आत्मा मित्र	गुणमद्राचार्य	आत्मानुशासने	११६
"	"	"	३११
आत्मा मनीषिभि	३०९
आद्यास्तु पद	१७
"	६७
आपगासागर	समन्तमदस्वामी	रत्नकरणके	३३
आयुष्मान्	सोमदेवसूरि	यशस्तिरुके	२८३
आरोग्यमुख	७२
आरमे जलिय	३१२
आबलि असल...	४०
"	३४४
आशागर्त	गुणमद्राचार्य	आत्मानुशासने	१४४
आशा दासी	१४४
इ	इ	इ	
इक्कहि फुल्लहि ,	७९
इहोर्विकार	पूज्यपादस्वामी		९३
इष्टिविषयादिलासो	२४६
इष्टीण पुण दिवम्भा	देवसेनसूरि	दर्शनसारे	११
इष्ट भवन्त	सुलोचनाकान्त	...	१०८

उ	उ		
उग्नितानेकसंगीत	जिनसेनाचार्यः	महापुराणे	१२४
उदीचां श्रीमती	१२८
उद्यानादिकृता	जिनसेनाचार्यः	महापुराणे	१२५
उद्युक्तस्व	गुणमद्राचार्यः	आत्मानुशासने	२१३
उपयागित समस्त	मुलोचनाश्रान्तः	...	३०८
उपवासफलेन	प्रभावन्ददेवः	...	३४९
उपवासहो एकहो	३४९
उपसंतस्त्रीणमोहो	नेमिचन्द्रादयः	गोम्मटसारादिषु	९७
”	”	”	२४५
ए			
एकवारं	७
एकहृि कुल्लहि	८०
”	१३३
एका जीवदयै	सोमदेवसूरिः	यशस्तिलके	२८३
एकादशके	सोमदेवसूरिः	यशस्तिलके	९७
एकापि समर्थेयं	”	”	१९
”	”	”	१३९
”	”	”	२१६
”	”	”	२६४
एकावनकोडीओ	२४०
एतरोषविहीनाप्र	वीरवन्दी	आचारमारे	२५२
एदे खल मूल	शैतमर्षिः	प्रतिक्रमणसूत्रे	१५५
एयंत युद्धदरिसी	नेमिचन्द्रसैद्धान्ती	जीवकाण्डे	११८
”	”	”	२३९
एयं सत्यं सव्वं	”	त्रिलोकसारे	८२
एलाचार्यः पूज्य	हन्द्रनंदी	नीतिसारे	१५१
क			
कच्छं खेत वसही	देवसेनसूरिः	दर्शनसारे	१११

कपिलो यदि	सोमदेवसूरि	यशस्तिष्ठके	२०७
”	”	”	३४८
कम्मइ दिट्ठण	३१५
कर्णवतसमुख	सोमदेवसूरि	यशस्तिष्ठके	३४५
कर्णयन् मूर्ति	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२४
काक कृमि	२७२
कान्दर्पी कैलिवशी	शुभचन्द्रयोगी	ज्ञानार्णवे	१३७
कायवाक्यमनसा	समन्तभद्रस्वामी	स्वयभूस्तोत्रे	१०२
काले कल्पशते	”	रत्नकरद्वके	८२
किमय बहुनोकेन	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२५
कुदेवगुरुशास्त्राणां	३४
केन य बाबी बाहिया	७८
कौपीनोऽसौ	६७
क्षुब्धत्वावश्यक	वीरनन्दी	शास्त्रसारे	२५२
क्षुत्पिपासापरा	समन्तभद्रस्वामी	रत्नकरद्वके	९७
”	”	”	२९४
क्षेत्रवास्तुसमुत्सर्ग	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२५
क्षेत्राहो तसभा	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२३
क्षेत्र वास्तु धन	१५
क्रमद्वारिध	२०३
क्रियते भोजन	इन्द्रवन्दी	नीतिसारे	१३८
कचित्कालानु	”	नीतिसारे	११३
ख			६५
खलानां कण्टकानां	२८७
खण्डनी पेषणी खुल्ली	२३३
”	३१३
ग			
गङ्गाद्वारे	९४
गायकस्य सलारस्य	इन्द्रवन्दी	नीतिसारे	११३

गुणप्रामविलोकेषु	सोमदेवसूरि.	यशस्विलके	२७२
गुणेषु दोष	२५३
गुणोत्तान	सोमदेवसूरिः	यशस्विलके	११६
गूढकीटो	२७३
गृहशोभा कृता	जिनसेनार्य	महापुराणे	१२५
गोपुष्पिक श्वेत	इन्द्रनदी	नीतिमारे	११
..	७५
गोपृष्ठात	सोमदेवसूरि	यशस्विलके	१३
घ			
घटमन्त न विप्र	मुलोचनाकान्त	...	३०८
घ			
शत्रुकुहकति	नेमचन्द्रतैद्वान्ती	शिलोदसारे	८२
शक्तिर्णा कुव	.	.	२९३
शक विहाय	.	.	१५७
शत्रुःसंधर्षदिता	इन्द्रनदी	नीतिमारे	७९
शत्रु संघ्यां नरो	७९
शत्रुर्लेशाः सह...	३६०
शर्मराशमर्ष	शिवकोटि	...	१३६
शित्तरथमन्य	शुणभद्रार्य	धर्मानुशासने	२५७
शिम्लारिदशा	२४६
शिशालेखन	सोमदेवसूरि	यशस्विलके	३४५
ज			
जन्मजरामय	शमन्तभद्रार्य	रत्नहरणके	३०६
जमु हिरण्यि	सोमदेवसूरि	परमात्मप्रकाशे	३९
..	२७३
जाम्बविक्रिमान्	जिनसेनार्य	महापुराणे	१२३
जाम्बवान्य	१२३
जाम्बुनिध	१२३
जाम्बुनिधी भवेत्	१२३

आ निशि सयलद	३२५
जानुदहादध स्पर्श	वीरनन्दी	...	आचारसारे	२५३
जिण पुञ्जदि	१३३
जीवकृत परिणाम	अमृतचन्दसूरि	...	पुरुषार्थसिद्धिपुत्राये	३११
...	२६४
...	३४२
जीवा जिणवर	१२६
जैनेश्वरी परामाज्ञा	जिनसेनाचार्य.	...	महापुराणे	३३९
ज मुणि सहह	३३१
जं सङ्गह त	२५३
ज्ञानवा योग्यमयोग्य	वीरनन्दी	...	आचारसारे	८५
ज्ञानकाण्डे किया	सोमदेवसूरि	...	यशस्तिलके	३३
ज्ञान पूजा कुल	समन्तमद्राचार्य	...	रत्नकरशङ्के	७४
...	२६
ज्ञान पगा किया	१०८
...	५४
जबकोडिसया	९५
जाणविहीणह	१८२
ज्याम जिणा	१५३
लिखिदरधाडु	नेमिबहसैदाभी	...	गोम्मतसारे	२०७
...	१२५
ततः शरीरसङ्कटवै	वीरनन्दी	१२
तत्रिच्छालमवात्	१३५
तदर्हजस्तनेहातो	सोमदेवसूरि	...	यशस्तिलके	१२४
तपोयनुमपानक	जिनसेनाचार्य	...	महापुराणे	१२४
तपोविगाहनादस्य	१२४
त्यक्तकामधुसो	१२४
त्यक्तक्रीतातपत्राण	१२४
त्यक्तस्नादि	१२
यवत्वाश्रय

रवमसि सुरासुर	समन्तभद्राचार्यः	स्वयंभूस्तोत्रे	६५
तिर्ययरा तप्ययरा	९८
तिलमध्ये यथा	१७६
तृष्णा भोगेषु	गुणभद्राचार्यः	भास्मानुशासने	३१८
ते बिभ्र धृष्णा	२९७
तै कारणि जिय	१४९

३४

धावरवेशालीसा	२४४
--------------	-----	-----	-----

३५

दर्शनं ज्ञानचारित्र्या	समन्तभद्राचार्य	रत्नकरणके	१९
दीनस्य सूतिका	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे	११२
दुर्लभं जयति	१७६
दुष्टमन्तर्गतं	९४
दण्डसूत्रबोध	टीकाकर्तृ	...	१
इतिश्रयेषु	सोमदेवसूत्रि	यशस्तिलके	४६
देवर्ह सरभर्ह	योगीन्द्रदेव	परमात्मप्रकाशे	१३४
देवाधिदेववरणे	समन्तभद्राचार्य	रत्नकरणके	८०

देवा वि य नेरह्या	१३३
ईक्षणपुर्व्वं गार्ग	९८
इन्द्रमलिगमेद होय	नेमिचन्द्रसैद्धान्ती	इन्द्रसप्रह्ने	८१
इन्द्रमलिगं समास्याय	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे	११९
इन्द्रिणाधोक्षजेशन	१३९
द्वित्रिचतुरिन्द्रियाः	सोमदेवसूत्रि	यशस्तिलके	१०२
द्विषदत्तपास्तथा	२८३

३६

धात्रीवालासती	२९६
धम्मो वरुसहावो	८
...	२१५

न

न विचित्रापाय	३२८
न देवो विद्यते	३०२
नलया बाहू य	नेमिचन्द्रसैद्धान्तो	गोम्मटसारे		११३
नवनवचतुः	श्रीदेव	१०८
न सम्यक्त्वसम	समन्तभद्राचार्य	रत्नकरण्डके		१६
"	"	"		२३९
"	"	"		१३६
नागकणीए मूल	३२०
नानाशास्त्रमहा	श्रुतशागरसूरि.	अत्रैव	...	३७८
नाममान कयया	२६४
नित्यस्नान गृहस्थ	सोमदेवसूरि	यशस्तिलके		३७३
नियमो यमध	समन्तभद्रस्वामी	रत्नकरण्डके		८
निराभरण	गौतमपि.	७९
निवार्यतामक्ति	कालिदास	२०७
निष्ठीबन सदष्टा	वीरनन्दी	आचारसारे		२५३
नि सगोऽह जिनाना	२२९
नेत्रद्वन्द्वे श्रवणयुगले	२७४

प

पदस्थ मन्त्रवाक्यस्थ	१३६
पयडिद्विदिशुभाग	नेमिचन्द्रसैद्धान्तो	द्रव्यसमूहे		२६४
पयोव्रतो न दध्य	२९४
परिणाममेव कारण	सोमदेवसूरि	यशस्तिलके		२६४
पलितच्छेदेन	गुणभद्राचार्य	आत्मानुशासने		२८०
पादान्तरालात्	वीरनन्दी	आचारसारे		२५३
पिच्छे ण हु सम्मत्तो	...	डाडसीगायामु		१२
पुण्य जिन द्र	जिनसेनपादा.	२३९
पोष्टनियहि	३५०
पंचद्वियाणि	७५

प्रसिद्धाष्टसहस्रेक्ष	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१०४
प्रहारो धामदाहो	वीरनन्दी	आचारसारे	२५३
प्रागुदिच्यौ विभजते	९४
प्राज्ञेन ज्ञातलोक	वीरनन्दी	आचारसारे	११३
प्राप्तोत्कर्षं तदस्य	जिनसेनाचार्य.	महापुराणे	१२६
प्रेरिता श्रुतगुणेन	यज्ञनन्दी	पंचविंशतिनाया	८९
फ			
फुल्ल पुष्कारह	७८
घ			
बहु सारथह	२८४
बादरसुहमेगिदिय	२४४
बाण्ये वेरिस न	...गुणभद्राचार्य	आत्मानुशासने	१५५
बाण्यमन्धविहीना	१३०
" "	२३८
बिम्बादलोमति	यज्ञनन्दी	..	७९
बिल्वालाघु	४६
बीएलु नतिथ ...	देवसेनसूरि	दर्शनसारे	११०
भ			
भयाशास्नेह	समन्तभद्रार्य	रत्नकरण्डके	१४
भर्तारिं कुलपर्व	गुणभद्राचार्य	आत्मानुशासने	३
भवणर्वितर	नेमिबन्धसेद्धान्ती	त्रिलोकसारे	१०७
भावविहूण्ड	३०२
भुक्तोजिहता	पूज्यपादाचार्य	...	१४२
" "	३५४
ब्रूधनुर्दृष्टो	सोमदेवपण्डित	यशस्तिलके	२७२
म			
मद्यपलमधु	पण्डिताशाधर	सागारधर्मांमृते	४३
मद्यमासपुरा	पद्मनन्दी	पंचविंशतिनाया	४३
मलीमसाज्ञो	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२४

मक्षोपसर्गांतद्धा	वीरनन्दी	आचारधारे	२५२
मान्य ज्ञान तपो	३४९
मानुष्य सत्कुले	११६
मानुषीं प्रकृति	समन्तभद्रदेवा	स्वयभूस्तोत्रे...	१०१
मा भवन् तस्य	.	..	२१३
मालतीष	शुभचन्द्राचार्या	..	२७१
मिच्छा साधन	मैमिषन्द्राचार्य	गोम्मटसारे	९७
" "	"	"	२४५
मिथ्यात्ववेद	१५
" "	"	...	२०३
मिथ्यात्ववेदी	११०
मिथ्यादृग्भ्यो	३
मुद्रा सर्वत्र मान्या	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे	८७
" "	"	...	१२९
मूढत्रय मदाधा	३२
मूल्यादिष्वपि नेतव्या	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२३
मैथुनाचरणे	शुभचन्द्राचार्या	ज्ञानार्णवे	६८
न्नापयन् स्वाह	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२४
य			.
गच्छाद्वरचित	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे	१५१
गहार्य पशव	१६५
ग्या पतुर्भि	२९६
दहानेन जीवेन	३४९
यव्यादृष्टि न	पडितासाधरा	..	२९१
यशोमारीवीय	गुणभद्राचार्य	आत्मानुशासने	२१३
यस्मिन् सर्वाणि	...	उपनिषदि	३५७
य श्रुत्वा द्वादशा	गुणभद्रभदन्ता	आत्मानुशासने	१३
" " "	"	"	११२
याचिञ्जनकल्प	श्रुतसागरसूरय	पद्मप्राप्तृतीकायां	३०४

यावन्ति जिनवैत्या	गौतमर्षयः	७७
ये गुरुं नैव मन्यन्ते	२२
रजकस्तक्षकश्चैव	११३
रजसेदागमगृह्ण	शिवकोट्याचार्याः	मगवत्याराधनाया		३
	वटकेरलाथ	मूलाचारे च		
रसपूमास्तिमांसा	बीरवन्दी	आन्वारसारै		२५३
रागादिदोष	सोमदेवसूरि.	यशस्तिलके		१०३
"	"	"		३६८
लीलाविलास	सोमदेवसूरि	यशस्तिलके		३४५
वदसमिर्विदिश	गौतमर्षयः	प्रतिक्रमणे		३५५
वन्दिता वन्धमर्ह	जिनसेनाचार्याः	महापुराणे		१२५
वधवन्धच्छेदादे	समन्तभद्रस्वामिन	रत्नकरण्डके		२३६
वतशिखिनि मृतो	पद्मवन्दी	...		२४
वनेऽपि दोषा		२१३
वर्मालिङ्गिता	शुभचन्द्रदेवा	..		२७१
वरिससमदिक्खि		३१४
वरोपलिप्पया	समन्तभद्राचार्यः	रत्नकरण्डके		३३
वरं गार्हस्थ्य		२९७
वरं त्रते पदं दैवं	पूज्यपादाचार्या	...		३३१
वरं स्वहस्तेन	इन्द्रवन्दिनः	...		११३
वाग्गुप्तो हितवाग्	जिनसेनाचार्यः	महापुराणे		१२५
वारह अग्निसिद्धा		१०७
विभावसोरिवोष्ण		२०७
विविधव्यजनस्यागा	जिनसेनाचार्याः	महापुराणे		१२४
वीरचर्या च		६७
वृष्टपाकुल		२७२

वैयावर्धे विरहित	२०३
व्यापतिव्यपनोद	समन्तमद्राचार्य	रत्नकरण्डके			८५
श					
शची पद्मा शिवा	१३८
शमिताखिल	मुलोचनाकान्त		३०८
शत्यमणिस्खलदन्त.	१३५
शालिको मालिक	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे			११३
शास्त्र शास्त्राणि...	१९२
धीमबाहु. धीचन्द्रो	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे			१५०
धीमास्वामिसमन्त	भुतसागरा.	अनैव			३७८
धीमहिभूषण	"	"			"
भुतसागरेण	"	"			३०४
धेष्ठे बले स्थिर	३२९
प					
पौडशापे सहस्राणि	१३८
स					
सकारपुरकारो	२४६
समन्यारंभहिंसा	समन्तमद्राचार्य	रत्नकरण्डके			३३
सज्जाति. सद्गृहस्थ	जिनसेनाचार्या	महापुराणे			१९७
सत्तालोचनमान	८१
सन्तोषकारी	७२
समन्तमद्रः श्रीकुंभ	इन्द्रनन्दी	नीतिसारे			१५१
समस्तुखशीलित	अमृतचन्द्रमूरि		५४
"	"		२७१
स महाभ्युदयं प्राप्य	जिनसेनाचार्या.	महापुराणे			१२४
सम्म चेव थ भावे	कुन्दकुन्दाचार्या.		१२२
सम्यग्दर्शनसंशुद्ध	समन्तमद्राचार्य	रत्नकरण्डके ।			६९
"	"	"			२८८
"	"	"			३२९

सम्यग्दर्शनशुद्धा	समन्तभद्राचार्य	रत्नकरण्डके	३१९
सर्वपापाद्यवे	३४३
सर्व धर्ममयं	गुणभद्राचार्यः	आत्मानुशासने	२७६
सर्वः प्रेप्सति	"	"	१०
सर्वार्थसिद्धि	टीकाकर्ता	अत्रैव	३२
सर्ववस्तु अणिदियो	अभिमानमेरुपुण्ड्र	यशोधरचरिते	१०७
"	"	"	३४७
साम्यं स्वास्थ्यं	पद्मनन्दी	...	८
" "	"	...	३१३
सिंहासनोपधाने	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२३
सीसु भमतह ...	"	...	३०२
सुखमस्तु सुखभूमि	समन्तभद्राचार्य	रत्नकरण्डके	१३३
"	"	"	२७५
सुप्तोरिधत्तेन	मोगराजमहाराज	.	२९५
सूक्ष्म जिनोदित	समन्तभद्राचार्य	...	१२
सूर्यार्धो ग्रहण	सोमदेवसूरि	यशस्तिलके	३३
सेयवरो य आस	१२
" " "	११८
सज्जमु सील	१९७
संन्यस्ताभ्यां	११६
संसारं नरकादिषु	गुणभद्राचार्य	आत्मानुशासने	१३५
"	"	"	२५८
स्पृहा मोक्षेऽपि	पद्मनन्दी	एकत्वसत्त्वा	३४६
स्वगुणोत्कीर्तनं	जिनसेनाचार्यः	महापुराणे	१२५
स्वयुभ्यान् प्रति	समन्तभद्राचार्यः	रत्नकरण्डके	३४४
स्वलक्षणमनिर्देश्य	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२४
स्वामिष्ठमृत्य	"	"	१२५
स्वोचितासनभेदा	"	"	१२४
स्वोपधानाद्यनादृत्य	"	"	१२४

स्व मणिस्नेह	जिनसेनाचार्य	महापुराणे	१२४
स्व स्वापतेय	"	"	१२५
स्व साम्यमैहिक	"	"	१२४
ह			
हृत् ज्ञान क्रियाहीन	" ..	२५
हृदये त्वयि	सुलोचनाकान्त	" ..	१०८
हे चन्द्रम	गुणभक्षाचार्य	आत्मानुशासने	२१७
होह वणिज्जु व	" ..	" ..	३५०

समाप्तेयमनुश्रमणिका ।

प्रकीर्णकमूत्रवास्यानां सूची ।

गाथाः	पृष्ठसंख्याः	गाथाः	पृष्ठसंख्या
अ		न	
अजेवीः ३०	नाम्युपध	२९३
अन्यार्थे ८४	ए	
अष्टौ रथा १४७	पर परि १५२
अहर्जं वा २९४	पापक्रिया ३३८
अवधार २३०	" ११५
इ		य	
इणजिह्व २९७	प्रहणे १८५
उ		भ	
उच्चारण २५५	भूमासा ३०६
उत्तमसं २२५	म	
ए		मार्गाच्यव २ २
एकस्य नि २०४	मूढस्य ३९
क		य	
कृत्तयुद्धो ८३	यस्मै दि ३४१
क्रोधलोभ ४९	गुवन्नन २७२
कृत्तिपासा ११०	ल	
घ		ल्लय १०
घाए घाए ६८	" २४२
घोडिय १५२	घ	
च		विशेः रिच २९३
चिभयेभ २९६	व्याख्यात २४२
ज		दा	
ऊयनुबन्ध २९३	शक्तिस्त्या ३३१
सत्त्वार्थ ३२८	स	
मुभाण गुणा ३३२	स यदा ३४८
मुमत्तभाण २५५	मुंतो हितो २४२
द		ह	
दर्शनवि २२०	हजिया २०६
द्वन्द्वं कल ३१२		

लिंगशीलप्राभृत-रयणसार-द्वादशानुप्रेक्षाणां अकाराद्यनुक्रमणिका ।

अ			इ		
अञ्जवसप्पिणिभरहे	...	४०३	इगतीससप्तचत्ता	...	४३२
„ „	४०३	इच्छियफलं ण लम्भइ	...	३९९
„ „	४०४	इदि निच्छयववहारं	...	४४२
अञ्जयणमेव ज्ञाण	...	४११	इदि सञ्चणपुञ्जं	...	४२४
अङ्गीही पडिबद्धं	...	४३३	इदियविसयमुहाइसु	...	४१९
अणयाराणं वेत्ता	...	३९७	इय लिंगपाहुइमिणं...	...	३८४
अण्णाणी वियसविरत्ता	...	४०६	इइ गियमुवित्तवीय...	...	३९६
अण्णो अण्ण सोयदि	...	४२१	उ		
अण्णं इम सरीरा	...	४२९	उगो तिब्बो दुगो	...	४००
अङ्गुवममरणमेगात्ता	...	४२५	उत्तमसमदम	...	४३८
अप्पाण णाणत्ताण	...	४१८	उत्तमपत्त भणियं	...	४२८
अप्पाण पि ण	...	४०९	उदधीव रदणभरिदो	...	३९०
अरहत्ते सुहभत्ती	...	३९३	उप्पम्भदि सण्णाणं	...	४४०
अरुहा सिद्धाइरिया...	...	४२७	उप्पइदि पइदि	...	३८३
अवसप्पिणिउत्सप्पिणि	...	४३०	उमरगिगसमण	...	४१५
अवियप्पो गिह्दो	...	४१३	उवसमइ सम्भत्ता	...	४२३
अविरददेसमइव्वइ	...	४१६	उवसममवमाविजुदो	...	४०६
अमुहादो गिरयाऊ...	...	४०४	उवसमभिरीइक्षाण	...	४१६
अमुहेण गिरयतिरियं	...	४३२	उहयगुणवसण	...	३९४
अमुहेदरभेदेण दु	...	४३४	ए		
आ			एक्कु खणं ण	...	४०२
आदे दि कम्मगंठी...	...	३८९	एक्को करेदि कम्मं...	...	४१७
आरभे घणघण्णो	...	४१३	एक्को करेदि पार्वं...	...	४२७
आसवहेदू जीवो	...	४३५			

एकमे करेदि गुण ...	४२७	कुसलस तवो गिलुण ...	४२२
एककोह निम्ममो ..	४२८	कोहप्पहुत्तिस्स पुणो ...	४३८
एयारसदसभेय ...	४३४	कोहेण य कलहेण य ...	४१५
एयतविणवविवरिय ...	४३७	कोहो माणो माया... ..	४३४
एवं जायदि णाण ...	४४१	कंखा भावणिविति ..	४३९
एव बहुप्पयारै ...	३९०	कंदप्पमादयाओ ...	३८२
एवं सहिओ मुणिवर ...	३८३	ख	
क		खयकुमूलसुलो ..	३९९
कतकफलभरिय ...	४०३	खाई पूजा ठाई ...	४१७
कम्मणिमित्तं जीवो...	४३१	खुहो रुहो खो ...	४०१
कम्मावविहावसहाव ...	४१८	खेतविसेसे काले ...	३९६
कम्मासवेण जीवो ...	४३५	ग	
कम्मु ण खवेइ ..	४०९	गयइण्यपायनामिब ...	३९९
कम्मुदयवपजाया ...	४४०	गिण्हदि अवतवाव ...	३८२
कसइ वाद जूआ ...	३८१	गुणववतवसमपडिमा ...	४२२
काऊण णमोकारै ...	३८०	गुरुभत्तिविहीणार्ण ...	४०८
कामहुहि कप्पतठ ..	४०३	गथमिण जो ण विट्ठइ ...	४२४
कायकिलेमुववास ...	४०९	ख	
कालमणत्त जीवो ...	४२३	चउगइससारगमण ...	४२०
किण्हादितिणिण्ण ऐस्सा ...	४३४	चम्मट्टिमसलव ...	४१४
किं जाणिऊण सयल ...	४१७	चलमलिणमगाव ...	४३६
किं पलविण्ण बहुणा ..	४४१	चोराण समाएण य ..	३८१
किंपायफलं पक्क ...	४१८	ज	
किं बहुणा वचणेण ...	४२३	जइ णाणेण निसोहो ...	३९०
किं बहुणा शे तज्जि ..	४२०	जइ विसयल्ले ...	३९०
किं बहुणा हो देवि ...	४२२	जत्तेण कुणइ पाव ...	४३१
कुतवकुलिणिक्काणी ..	४०१	जम्मसमुदे बहुदो ...	४३५
कुमयकुमुदपससा ...	३८७	जलवुन्दमत्तकधणू ...	४२५
कुलह्वजादिवुद्धिसु ...	४३८	जसकित्तिपुण्णत्थहे ...	३९८

जह कचण विसुद्धं	३८६	ण वि जाणइ	४००
जह विसयलुद्धं	३८८	ण ३ ३ ३	४००
जाइजरमरणरोग	४२७	ण ३ ३ ३	४१७
जाए विसयविरत्तो	३९०	ण सहति इयरदण	४१४
जाव ण जाणइ	४०९	ण हि दाण ण हि	४००
जिणपूजा मुणिदानं	३९९	ण हु दंढद कोहाइ	४०६
जिणलिंगधरो जोई	४२४	णाणमासविहीणं	४१०
जियवयणगहिदसारा	३९१	णाणस्स गस्थि दोसो	३८६
जिणुद्धारपविट्ठा	३९८	णाणी खवेइ कम्मं	४०६
जीवणिवद्धं वेहं	४२६	णाणेन ज्ञाणसिद्धी	४२२
जीवदया दम सव्वं	३८८	णाणेन दंसणेन य	३८७
जीवस्स ण सुंवरणं	४३७	णाणं चरित्तमुद्धं	३८६
जीवादिपयट्ठाण	४३२	णाणं चरित्तहीणं	३८६
जे पावारमरया	४१४	णाणं सार्ण ओगो	३९१
जे पुण विसय	३८६	णाणं नाऊण थारा	३८६
जेसि अमेज्जमज्जे	४१९	णिक्खेवणयप्पमाण	४२३
जोइसविज्जामंतो	४१३	निचिदरधावुसत्ता य	४३१
जो जोइदि दिग्वाहं	३८१	निच्छयववहार	४१७
जो पावमोहिदमदी	३८०	निच्छयणएण जीवो	४४०
जो मुणिभत्तवसेस	३९७	णिदुद्धुअदुद्धुमा	३९०
जं जाइजरामरण	४२१	निहिट्ठो जिणसमये	४२८
जं जं अउखाण सुहं	४१९	निंदा वंचणदूरो	४१३
जंतं मंतं तंतं	३९८	णियतच्चुवलदि	४१०
ण			णियमुद्धपणुरत्तो	३९४
णच्चदि गायदि	३८०	णिरवाऊ जहणादिमु	४३०
णमिऊण वडुमाणं	३९३	णिरया हवंति देट्ठा	४३२
णमिऊण सम्बसिद्धे	४२५	णिग्घेयतिय भावद	४३९
णरइतिरियाइ दुरइ	३९९	त		
णरणमु वेअणाओ	३८९	तच्चवियारणसीलो	४११
णवणिदि चउदह	४२६	तणुकुट्ठी कुलभंगं	४०१

ताव ण जाणदि ३८५	धम्मेण होइ लिंगं ३८०
निब्बं कायकिलेस ४१२	धरियउ बाहिरि ४०५
तुसधम्मतबलेण ३८९	धावदि िंढणिमित्तं ३८२
द	प
दब्बगुणपञ्चएहि ४२०	पत्त विणा दाण च... .. ३९८
दब्बसिक्कायउप्पण .. ४०४	पत्तिभत्तिविहीण सदी ४०८
दाणीण दालिह ३९८	परमट्टेण ॥ आदा ४२६
दाणु ण धम्म ण . .. ३९५	परसत्तावयकारण .. ४३८
दाण पूजा मुक्ख . . . ३९५	पम्बज्जहीणगहिण ३८३
दाण पूजा सीलं ३९४	पवयणसारम्भास ४१०
दाणं भोयणमेत ३९५	पाओपहृद्भावो ३८१
दिण्णइ सुपत्तदाण ३९५	पारंपजाएण दु ४३६
दिब्बुत्तरणसरित्थ ४१५	पावारंभमिविती ४११
दुक्खे णजहि णाणं ३८५	पिट्ठे सधरणे ४१४
दुग्गंध बीभरस ४३३	पुच्छलि परि जसु ३८३
देवगुरुधम्मगुणचा ४०२	पुत्तकलत्तनिमित्तं ४३०
देवगुरुसमयभत्ता ३९४	पुत्तकलत्तविदूरो ३९९
देह कलत्तं पुत्त ४१९	पुरिसेण वि सधियाए ३८९
देहादिमु भारंमे ४१३	पुम्बठिये खवइ ४०३
देहादो वदिरत्तो ४३३	पुम्बुत्तासवभेयो ४३६
दङ्कतयसरलत्तय ४१३	पुम्ब जिणेहि भणिय ४९३
दसणणाणचरिते ३८१	पुम्ब ओ पचैदिय ४०८
” ” ” ३८२	पुम्ब सेवइ मिच्छा... .. ४०६
” ” ” ३८३	पूयफलेण तिलोए ३९५
दसणभट्टा भट्टा ४२८	पचमद्वन्वयमणसा ४३६
दंसणवयसामाइय ४३७	पचनिहे ससारे ४२९
दसण सुद्धो धम्मो... .. ४१५	ध
ध	च
धणधणाइ ३९८	चहिरंतरप्पमेय ४२१
धम्मज्झाणम्भास ४११	चहिरम्भतरगय ४२१

बंधो निरओ सतो ...	३८२	मोक्खगया जे पुरिसा ...	४४१
बधपदेसगलण ...	४३७	मोक्खमिमित्त दुक्ख ...	४०५
बहुदुक्खभायणं ...	४१५	मोत्तूण अमुहभाव ...	४३५
बारसअणुवेक्खाओ ...	४४१	मोत्तूण कुटिलभाव... ..	४३८
म		मोहु ण छिज्जइ ...	४०५
भस्तिच्छिणायचोर ...	४३५	र	
भयवसनमलविबन्धिय ...	३९३	रज्ज पहाणहीणं	४०८
भुजेइ जहालाइ ...	४१५	रतिदिव पडिक्कमण ..	४४१
भुत्तो धयोपुलोसइयो ...	४१६	रयणत्तयकरण	४२१
भूमहिलाकण्णाइ ...	४०७	रयणत्तयमेव गण	४२३
म		रयणत्तयस्म ह्वे . .	४०५
मक्खिखिलिम्मे ...	४१०	रसदहिरमसमेव	४१५
मणिमतोसहरक्खा ...	४२६	" "	४३३
मदिमुदण्णावलेन ...	३९१	रागो करेदि णिब ..	३८३
मम पुत्तं मम भज्जा ...	४३०	रागो दोमो मोहो	४३४
मयमूढमणायदण ...	३९४	रायाइमलजुदाण	४१२
मलमुत्तयवज्ज चिरं ...	४१९	रुक्खतिरिगन्विदाण	३८७
मादापिदरसहोदर ..	४२८	रु	
मादुपिदुपुत्तमित्त ...	३९६	रायणसीलनुसत्ता... ..	३९१
मिच्छत्त धविरमण... ..	४३३	लोइयजणसग्गादो	४००
मिच्छामइमय ...	४०३	रु	
मिच्छधयार ...	४०२	वट्ठेसु य खंडेसु	३८९
मिच्छोदण जीवो... ..	४३१	वत्थुममग्गो	४०७
मिस्सोत्ति बाहिरप्पा ...	४२१	" "	४०७
मिइरो महधयारो ..	४०२	वदसमिदिपालणाए ..	४३९
मूढत्तयसदत्तय ...	४२१	वयगुणसीलपरीसह ...	४१७
मूलत्तदनदत्तदत्तर ...	४१८	वरभवणजाणवाहण ...	४२५
मूलत्तरपयडोओ ...	४४०	वसहीणडिमोयरणे	४१४
मोक्खगइमणकारण ...	४२०	वाणरगइसाण	४०१

वायरणछद	३८७	सम्बे वि य परिहीणा	३८८
वारि एकस्मि य	३८८	सन्वग पेच्छनो	४३९
विहहाद्वियप्पमुत्तो	४१२	सा पुष्प दुविहा नेया	४३७
विहहाद्वि सु रद	४०४	समग्गिदियरुव	४२५
विणओ भत्तिविहीणो	४०७	सावयधम्म चत्ता	४४०
विसएत्त मोहिदाण	४०८	सालविहीणो रामो	४१०
वित्तयवसायविणि	४३९	त्तिविणे वि ण भुञ्जइ	४१९
वित्तयविरत्तो मुचइ	४१८	सीदुण्ह वाठ पिउल	३९७
वीरे वित्तालणयण	३८५	सीलगुणमहिदाण	३८८
रत्त		सीलस य णाणस्स	३८५
सगगो हवेइ दुग्ग	४२६	सील तवो विमुद्ध	३८८
सत्तगरज्जगवणिहि	३९६	सील रक्खताण	३८७
सत्पुत्तिराण दाण	३९७	सुकुलमुक्ख	३९६
सम्मत्तगुगादो सुगह	४०५	सुणहाण गहहाण	३९०
सम्मत्तगानदराण	३९१	सुदणानम्भास	४११
सम्मत्तरवणसार	३९३	सुदुवचोगेण पुणो	४३७
सम्मत्त सज्जाण	४२७	सुहसो सूरत्त विणा	४०७
समद्वरणमुद्ध	४२३	सुहजोगेमु पवित्ती	४३६
सम्मयिसीही तवगुण	४००	संपविरोहइसील	४१३
सम्म विणा सज्जाण	४०१	संजोगविप्पजोग	४३१
सम्माइगुणविसेसं	४१७	संजमतवसाण	४१६
सम्माइट्ठी कालं	४०३	संसार मदिककतो	४३२
सम्माइट्ठी णागी	४२०	समारउद्वारण	४३५
सम्माणविणयकूई	४०८		
सम्भूहि रक्खेदि य	३८०	हागदानवियार	४०९
सम्मं णागं चेरग्ग	४२४	दियनियमण पाय	३९७
सप्पग्गि होययेत्ते	४२९	हिंसइमु कोहाइमु	४०४
सधे पयडिडिओ	४३०	होऊण य निस्सगो	४३९
सधे ॥ पोगमत्ता सत्त	४२९	हत्ता जीवराशि	४३१

रयणसारस्य पाठभेदः ।

रयणसारस्यस्य प्रथमस्य मुद्रणानन्तरं पुस्तकमेकं ब्रह्मचारिणीतलप्रमादद्वारेण लाला हरमुखराय जैनपुस्तकालयस्य यथासु । तत्रैव पाठभेदोऽत्र मुद्र्यते—

पृष्ठसंख्या	गाथासंख्या	मुद्रितपाठ	पाठांतरम्
१९६	१९	बाहमिसय	बाहमैविदव ।
१९९	३४	बह्मणमायरोखे	वाहीगमायरो तो
१९९	३५	विहायदिहो य	विहीगदिहो ये
१९९	३६	सूलो छयि	सूलाछय
१९९	३६	सीदुण्ढबाहिराइ	सीदुण्ढमरोइ
४००	३८	परिही न	परिहीणो
४०१	४५	परिख	मरिख
४०२	४९	तबचार	तबानार
४०२	४९	जिगवरवयण	जिगवमण
४०२	५२	जहा विगसिजइ	जहा वि य मिजइ
४०३	५४	परम	पुवठ
४०३	५५	गिम्मलवव	गिम्मलमल्लव
४०६	७४	अण्णाणी	अण्णाणीदो ।
४०७	७९	ऊण्णाइ	ऊण्णाइ
४०८	८०	मुंइदये	मुडाओ
"	"	विरमुइदरो	विरमुडाओ
"	८४	सम्मान विग य रुइ	सम्मानविगयरेवा
४१०	९२	शीलविहीणो राइ	शीलविहीणो थाओ
४१६	१२१	यअने	एवे
"	१२३	आगमइण	आगम उण
४१७	१२९	त,	त जायिकण देइ भुदीग जो यो हु मोक्खरओ ।
४१७	१२९	आणनय	अण्णनव

१ बाहमैविभव । २ व्याधीतायाकर स । ३ विहीनदृष्टि । ४ निर्मल जलवत् । ५ सम्मानविनयरूपा । ६ शीलविहीनस्तथा । ७ ॥ हात्ता ददाति मुदान यः स हि मोक्षरत्न । ८ अज्ञानतय ।

४१८	११६	मोदगिब चाकसुह	मोदगिदबाहनिमोह
४१९	१४०	मइ	हई
	१४१	भुजह	लुजहई
४२०	१४३	केणावि न परिहारण वाहण	तेण मिना परिहारण वाहीण (व्याधीना)

४१९ पृष्ठे १४० गाथासूत्रताडमे हद गाथासूत्रमधिक वर्तते—

गुप्तसूत्रसंगण सारामिबन्धनभक्तगण पि ।

मनु जाइ जहो मज्झ बहिरुपाण तहा लेय ॥

४२३ पृष्ठे १६२ एक वर्तमान गाथासूत्र तृतीयपुस्तके नास्ति ।

अथ विशेषोऽत्र रचणमारण्यतृतीयपुस्तके अतिम गाथासूत्रत्रय १५४ गाथालोऽय वर्तते । तत्पश्चात् उक्तसमइ सम्मत इत्यादीनि गाथासूत्राणि यथाकथं वर्तते । अत न पक्ष्यणमार भास धम्मउत्ताणभास अउरबसप्पिणि ६० इती मानि त्रीणि गाथासूत्राणि प्रागुक्तान्येवात्र पुनरपि सन्ति । अतो ग्रन्थसंख्या १७० प्रमिता सजाता । उक्तसूत्रत्रयेऽनन्तरं १६७ प्रमितैव संख्या संजायते । द्वितीय मुद्रितपुस्तके तु १५५ परिमिता गाथा सन्ति अस्मिन् पुस्तके यानि गथा सूत्राणि नैवोपलब्ध त तेषां तत्र तत्रोद्धेत कृत एव ।

शुद्धयशुद्धिपत्रम् ।

अशुद्धयः	शुद्धय	पक्षतय	पृष्ठ
इतिदश	इति दश	६	९
दिह	दिहु	१३	९
भाषया	भाषाया	१२	२८
सूततथ	सुततथ	१४	५८
पडिमा	पडिमा	२५	८०
मविचार्य	मुविषाय	२	९१
ओकोश	भाकोश	९	११०
उन्निह	उन्निहु	१०	१०
उक्त	उक्त	१३	१२२
कीति वद्य	कीर्तिर्वद्य	१२	१२३
रात् एवमन्त	नएवमन्त	८	१४७
इलानोमार	इलाना भार	६	१६८
विशेषत्वात्	विशेषत्वात्	८	,
वृद्धिमिवा	वृद्धिमिवा	६	१७१
तिति	तीति	४	॥
रात्रावेष	रात्रावेष	१७	॥
मुदाटित	मुखाटित	१७	,
वृत्तुं	वृत्तुं	२०	१८१
मुसलीवीरवरो	मुसली वीरवरो	१	१८२
भवनी	भवनी	२३	२१६
मज्जति	मज्जति	१	२१८
बोधि	बोधि	२	॥

मुता	मुता	२
गधमांल	गधर्मलि	१८
धरमनो	धर मनो	१
रपेय	रपेय	१०
बोहेत	बेहिल	११
उलम	उलम	८
लीकादि	लीकादि ।	८
आदेहि	आदे हि	११
महिय	हिय	१९
यार	यार	२२
तहा मूया	तहामूया	११
तथा मूया	तथाडामूया	१२
दवज	दवज	७

शुद्धयशुद्धिपत्रम् ।

अशुद्धय	शुद्धय	पङ्क्तय	पृष्ठ
इतिदश	इति दश	६	९
दिद	दिद्व	१३	९
भाषया	भाषाया	१२	२८
सूततथ	सुततथ	१४	५८
पठिवा	पठिमा	२५	८०
मविचार्य	मुविचाय	२	९१
ओक्रोश	आक्रोश	९	११०
उक्किड	उक्किड्व	७	१७
उक्त	उक्त	२३	१२२
कीति वद्य	कीर्तिर्वद्य	१२	१२३
तत् त्वनन्त	तत्त्वनन्त	८	१४७
हलानोभार	हलानो मार	६	१६८
विशपत्वान्	विशेषत्वान्	८	,
वृद्धिमिवा	वृद्धिमित्वा	६	१७५
तिति	तीति	४	॥
रात्रावेव	रात्रावेव	१७	
मुद्राटित	मुद्रपाटित	१७	
कर्तु	कर्तु	२०	
मुशलीवीरवरो	मुसली वीरवरो	१	
भवर्ता	भवती	२३	
ममलि	ममलि	१	
बोधि	बोधि	२	